



सार्वदेशिक-साहित्य ग्रन्थ माला नं० १

* ओ३म् *

श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी वृत्तान्त

डाक्टर केशवदेवशास्त्री एम. डी.
मन्त्री, सार्वदेशिक सभा देहली
द्वारा संगृहीत व सम्पादित

मिलने का पता:—
सार्वदेशिक भवन, देहली

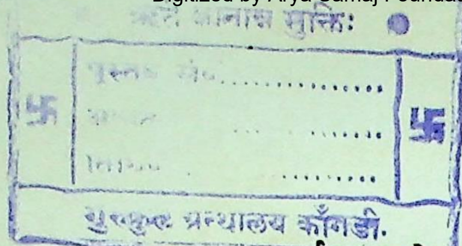
प्रथम वार २००० प्रति } { मूल्य १)

विषय-सूची

॥ भूल सुधार ॥

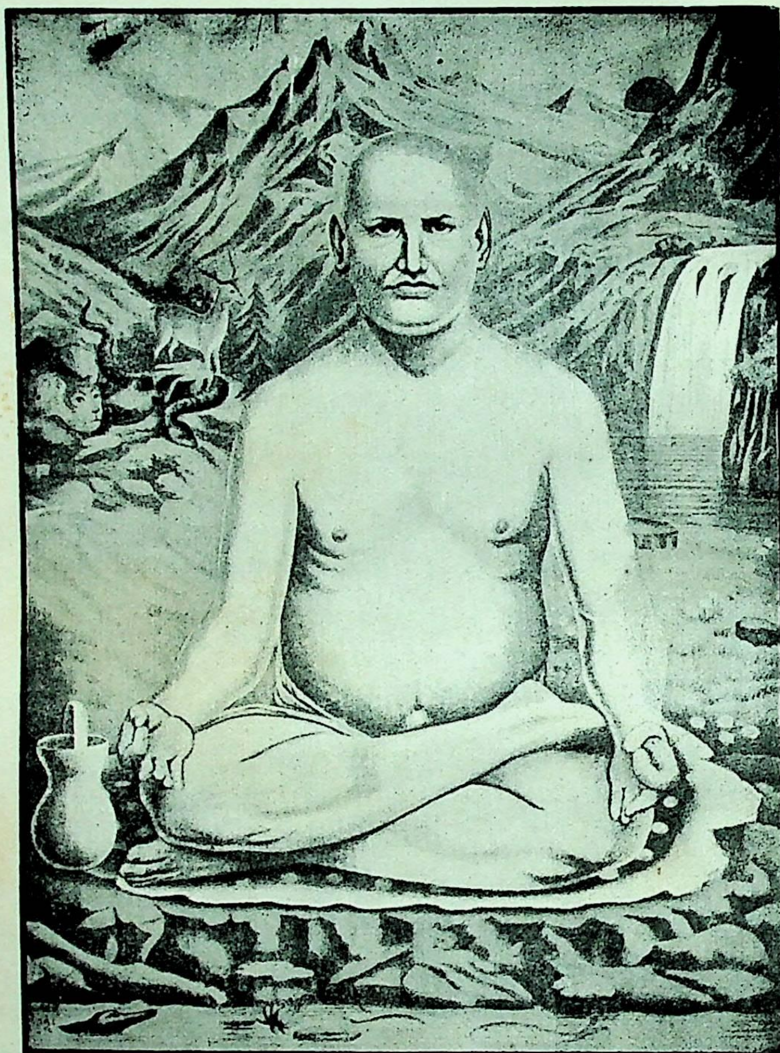
में पृष्ठ २४ पर जहां चौथा परिच्छेद आरम्भ होता है वहां भूल से छठा
पा
[ ] है। पाठक उसे सुधार कर चौथा परिच्छेद पढ़ें। — केशवदेव शास्त्री


R 15.1,SHA-S
34649



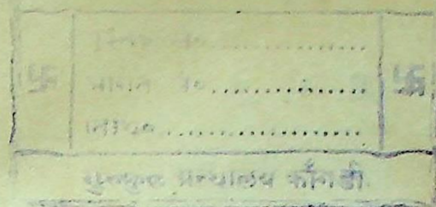
आर्यसमाज के प्रवर्त्तक

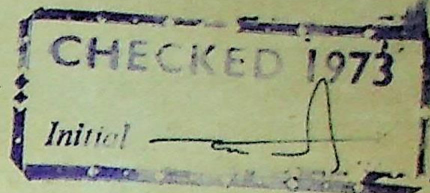
महर्षि दयानन्द सरस्वती



जिनकी प्रथम जन्म शताब्दी शिवरात्रि के सप्ताह में १५ से २१ फरवरी तक सन् १९२५ में मथुरा में मनाई गई।

Murari Art Press, Delhi.





भूमिका

मनुष्य जीवन में कभी २ ऐसी दैविक भावनाओं का आविष्कार होता है जो उसके मस्तिष्क और हृदय को वशीभूत कर लेती हैं। सोते, उठते, खाते, पीते प्रतिक्षण वही भावनाएं विविध रूप धारण कर और मूर्तिमान बन उसके सन्मुख उपस्थित होती हैं। विचार और आदर्श भी इसी प्रकार उत्पन्न होते और यदि सुरक्षित न रहें तो प्रायः विनष्ट हो जाते हैं जो अवस्था व्यक्तियों की होती है वही जातियों में भी पाई जाती है। आर्य समाज के सुविस्तृत क्षेत्र में से एक विचार उत्पन्न होता है मानो किसी व्यक्ति ने झील के निर्मल जल में पत्थर फेंक दिया। उसकी अनुकम्पाएं चहूं ओर फैलती हैं। इस तरङ्ग द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्म शताब्दी मनाने का विचार उत्पन्न हुआ। एक से अनेक तरंगें बन गईं और भारतवर्ष के प्रत्येक कोने में विशेषतया और सभ्य जगत् में साधारणतया चर्चा होने लगी। आर्य जनता ने इस शुभ संकल्प का हृदय से सत्कार किया। भारतवर्ष की राजधानी देहली में एक बृहत् सभा का संगठन हुआ। श्रीमती परोपकारिणी सभा एवं सार्वदेशिक सभा की ओर से विज्ञापन निकाला गया और उसमें आर्य समाजों के प्रतिनिधियों को भी निमन्त्रित किया गया था। आर्य पुरुषों ने अपनी उत्सुकता का परिचय अपनी उपस्थिति द्वारा दिया। सभी उपस्थित नर नारियों में आर्य समाज के प्रवर्त्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

के प्रति अनन्य श्रद्धा और अगाध कृतज्ञता के सद्भाव उमड़ने लगे। एक स्वर से सभी अनुयायियों ने शताब्दी मनाने के संकल्प को स्वीकार किया। आर्य जनता ने टंकारा नामी जन्म भूमि, मथुरा ज्ञानोदय भूमि, देहली, अजमेर और हरिद्वार आदि स्थानों में से किसी एक स्थान में महोत्सव मनाने पर विचार किया। सुतराम, बहुपक्षानुसार आर्यजनता ने निर्धारित किया कि श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी का महोत्सव भगवान् कृष्ण की क्रीड़ाभूमि और स्वामी विरजानन्द सरस्वती की निवास भूमि सुविख्यात

मथुरा नगरी

में मनाया जावे। कौन था महर्षि दयानन्द सरस्वती? और क्यों उनकी शताब्दी मनाने का विचार उत्पन्न हुआ? यह वह प्रश्न है कि जिनका उत्तर उनके अनुयायियों ने इस महोत्सव में अपने क्रियात्मिक जीवन द्वारा दिया है।

बीसवीं शताब्दी में आर्यावर्त में कई एक सुप्रसिद्ध सुधारकों ने देशोन्नति के सराहनीय कार्य में योग दिया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती, सर सय्यद अहमद, मुन्शी कन्हैया लाल अलखधारी और बा० केशव चन्द्र सेन यह सभी महोदय समकालीन थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के प्रवर्त्तक और बा० केशवचन्द्र सेन नव विधान ब्राह्मो समाज के बानी थे। सर सय्यद ने कुरआन की नवीन तफ़सीर और अलीगढ़ यूनीवर्सिटी की रचना द्वारा मुसलमानों में नव जीवन का संचार किया। मुं० कन्हैया लाल अलखधारी ने मृतप्राय हिन्दू जाति में नवशक्ति का संचार किया।

इन सभी सुधारकों और देश भक्तों में श्री स्वामी दयानन्द का स्थान उच्चस्तम था कारण यह कि उन्हों ने कुरीतियों और तवहुमात के निवारण करने के स्थान में आर्य संस्कृति की स्थापना और पुनरुद्धार किया। वेदों के भाष्य द्वारा उन्हों ने सिद्ध किया कि वेद बुद्धि अनुकूल और आर्ष साहित्य के केन्द्र हैं। ईसाई, मुसलमान, जैन मतादि मतमतान्तरों के प्रहारों से जहां उन्हों ने वैदिक धर्म्म की रक्षा की वहां उन्हों ने वर्तमान् हिन्दू जाति में प्रविष्ट अनेक कुरीतियों का बल पूर्वक खण्डन किया। अनुमान १६ वर्ष के निरन्तर परिश्रम से भगवान दयानन्द ने अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की। एक ओर वेद भाष्य, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदाङ्गप्रकाशादि ग्रन्थों की रचना थी तो दूसरी ओर वेद का प्रचार, मतवादियों के साथ शास्त्रार्थ और आर्य्य समाजों की स्थापना का कार्य्य था। जब मनुष्य अपने आदर्श को क्षणभरके लिये भी दृष्टिगोचर होते देखता है तो उसका उत्साह दैविक शक्ति में परिवर्तित हो जाता है और यदि उस समय कतिपय स्वार्थी व्यक्तियों के कारण सुधार में बाधा जानता है तो उस के लिये उनका स्वार्थ असह्य हो जाता है। ठीक इसी भांति सत्य के सामने मतवादियों के स्वार्थ को जान, भगवान् दयानन्द ने खण्डन मण्डन का कार्य आरंभ किया और निरन्तर मृत्यु पर्यन्त इसे सम्पादित करते रहे

मृत्यु की पहेली

जो महात्मा मृत्यु की पहेली को सिद्ध करने के लिये अपने घर से निकला था, जिसने वेदों के अद्वितीय पण्डित से गुप्त भेद जानने की चाबी प्राप्त की थी, जिसने योगबल द्वारा तिमिर अंधकार के वायुदलों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था उसने वर्षों के निरन्तर पुरुषार्थ द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त करली और जिस मूर्ख पाचक ने उसे विष दी थी उसे भी क्षमा दान दे और अपने गृह से खर्च देकर भेज दिया ताकि वह दण्डित न हो। महर्षि के लेखों, व्याख्यानों और शास्त्रार्थों में एक ऐसी अनुपम सत्ता और निष्पक्षपातता का उद्बोधन होता था कि जो सज्जन उनके अनुयायी बनते थे वह इस लिये नहीं कि वह ऋषि प्रणीत सिद्धान्तों को सर्वांश में मानते थे परन्तु अधिक संख्या में इस लिये कि वह भगवान् दयानन्द सरस्वती की शख़सीयत पर गिरवीदा और उनके प्रेम से आकर्षित थे। इस प्रकार निरन्तर ८ वर्ष के परिश्रम के अनन्तर १८७५ में बम्बई नगरी में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना हुई, तदनन्तर १८८३ पर्यन्त भिन्न २ नगरों तथा भिन्न २ प्रान्तों में आर्यसमाजें खुल गईं। हम साधारण पुरुष आज उस महापुरुष के सामने अपना सिर झुकाते हैं। उस में नवीन विचारों, नवीन प्रभावों और नवीन संस्कृति को पैदा करने की सामर्थ्य थी। उसके आदर्श, नवजीवन, नवशक्ति और नवयुग को पैदा करने वाले हैं। उसके जीवन की अनेक घटनाएं मानव हृदयों को आर्द्रीभूत करेंगी। उसके संकट अनन्त मनुष्यों के अश्रुपात का हेतु बनेंगे। उच्च उद्देश्यों और वैदिक आदर्शों की संस्थापना के लिये उसका अनन्य पुरुषार्थ उसे अमर बना गया है। उसके अमृतमय जीवन से आज भी वह आकर्षण शक्ति प्रवाहित हो रही है जो उसके जीवन काल में थी। उसने महर्षि की पदवी उपलब्ध की और

मोक्ष के स्वर्गीय आनन्द

को प्राप्त किया। दयानन्द! आपका परम पुरुषार्थ फलीभूत हो!! पवित्र आत्मा! आप अपनी पवित्रता में विश्राम कीजिये! आपका जन्म सफल हुआ। आपने अपने उद्देश्यमें कृतकार्यता प्राप्त की। अब आप अपने स्वर्गीय स्थान से अपने वपन किये बीजों के

फलों को देखिये। जो आर्यसमाज एक क्षुद्र पर्वतीय नाले के सदृश था आज वह एक बड़े दरया के रूप को धारण कर चुका है और अपनी नहरों और नालों के द्वारा अनेक मनुष्यों का कल्याण कर रहा है। सहस्त्रों वर्ष पर्यन्त मनुष्य आपके प्रदर्शित आदर्शों पर चलते रहेंगे। भारतवर्ष की सभ्यता आप के पदचिन्हों पर आश्रित रहेगी। अनेक नर नारी आप के अनुयायी बनने में गर्वित होंगे और आप की जयध्वनि में अपने आप को सफलीभूत मानेंगे। आप ने न केवल स्वयं मोक्ष के स्वर्गीय आनन्द को उपलब्ध किया है वरन् अन्य मनुष्यों को भी मार्ग दिखला पुण्य प्राप्त किया है

महोत्सव की तय्यारी

भगवान दयानन्द सरस्वती का जन्म काठियावाड़ अन्तर्गत मौरवी राज्य के टंकारा नामी ग्राम में १८२५ ईसवी में हुआ था। शिवरात्रि १९२५ में जन्म शताब्दी का दिवस निर्धारित किया गया। इसी दिवस को मनाने के लिये अनुमान दो वर्ष पूर्व से ही तय्यारी होने लगी थी। देहली की बैठक में २५०००) रुपये की आवश्यक्ता प्रतीत हुई तदनन्तर २५०००) रुपये के स्थान में ५००००) रुपये और अन्य सामग्री के एकत्रित करने का प्रस्ताव स्वीकार हुआ। घोषणा होते ही आर्य्य जनता में विशेषतया उत्साहाग्नि प्रज्वलित होगई। पूज्यपाद स्वामी श्रद्धानन्द और श्रद्धेय श्री नारायण स्वामी जी ने इस यज्ञ के सम्पादन के भार को अपने विशाल कन्धों पर उठा लिया। कुछ काल अनन्तर श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अस्वास्थ्य के कारण यह कार्य्य श्री नारायण स्वामी जी के सपुर्द कर उन्हें कार्य्यकर्त्ता प्रधान बना दिया। ऊपरोक्त महात्मा जी ने भीषण व्रत धारण किया और अपने एकान्त सेवन, स्वाध्याय एवं विश्राम और तपश्चरण के जीवन को अवसान दे नितान्त जन्मशताब्दी रूपी यज्ञ की सफलता सिद्धि को अपना लक्ष्य बना लिया। यह उनके ही पुनीत पुरुषार्थ और अनन्य उत्साह का परिणाम था जो शताब्दी की सफलता का हेतु बना। ज्यों २ समय निकट आता गया, आर्य्य जनता में उत्साह का समुद्र उमड़ता आया। शताब्दी के व्ययार्थ ५००००) रुपये की निधि आर्य्य प्रतिनिधि सभाओं द्वारा एकत्रित हो गई। प्रतिनिधि सभाओं ने "मिलवर्तन" के सुनहरी सिद्धान्त को स्वीकार किया। श्री नारायण स्वामी जी ने

कार्य्य कारिणी सभा

की अनुमति से एक दूसरे के अनन्तर बीस बुलिटनस प्रकाशित कीं। इन से भली भांति ज्ञात होगा कि किस प्रेम, श्रद्धा और संगठन के सद्भावों से प्रेरित होकर आर्य्य जनता ने इस महान् यज्ञ की तय्यारी की थी। जब २ और जिन २ महानुभावों को जो २ कार्य्य सपुर्द किये गये उन्हों ने प्रसन्नता पूर्वक उन २ कार्य्यों को पूर्ण किया। कार्य्यकर्त्ता प्रधान महोदय के उद्योग से

डेम्पियर नगर

नाम की भूमि प्राप्त की गई। यह स्थान मथुरा नगरी और मथुरा जंकशन रेलवे स्टेशन के मध्य में है। इस का रक़बा अनुमान १½ मील लम्बाई और एक मील की चौड़ाई में है। उचित समय पर आर्य्य इन्जिनीयर, ठेकेदार और अन्य कार्यकर्त्ता नियत स्थान पर पहुंच गये। साथ ही श्री महात्मा नारायण स्वामी जी कतिपय सेवकों सहित यज्ञ भूमि में जा विराजमान हुए। सेवकों, दर्शकों और कार्य कर्त्ताओं के लिये भण्डारा जारी कर दिया गया और नियमित जन्मशताब्दी के कार्यालय की स्थापना की गई। प्रबन्ध कर्त्री सभा के अधिवेशन भी इसी पुनीत भूमि में होने लगे। प्रत्येक आर्य समाज, सामाजिक संस्था तथा समाचार पत्रों में बुलिटन द्वारा सूचनाएं

पहुंचने लगीं। क्रमशः आर्य जनता की दृष्टि उत्तरोत्तर इस ओर खिचने लगी। समाचार आने लगे कि अनुमान २०,००० आर्य नर नारी इस यज्ञ में भाग लेंगे। तदनन्तर पच्चीस से पचास हज़ार और पचास सहस्र से एक लाख व्यक्तियों के उपस्थित हो जाने का अनुमान किया गया। इस उत्साह की पराकाष्ठा तब हुई जब अनुमान २५०००० आर्य नरनारी भिन्न २ प्रान्तों से चलकर एक उद्देश्य, एक संकल्प और एक मन को बनाकर अपने २ स्थानों से स्पैशल गाड़ियों द्वारा प्रस्थान कर श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी रूपी यज्ञ में

श्रद्धाञ्जलि

से आहुति प्रदान करने के लिये आ उपस्थित हुए। कैसा अनुपम और अद्भुत दृश्य था! कैसे प्रत्येक नर नारी के हृदय मन्दिर में प्रेम की धारा प्रवाहित हो रही थी! कैसे प्रत्येक व्यक्ति इस यज्ञ की सफलता के लिये सेवा करने पर तत्पर दिखाई देता था! झण्डियों से अलंकृत, विद्युल्लता द्वारा प्रकाशित मुख्य सड़कों से परिमार्जित और यज्ञ की सुरभियों से सुगन्धित पण्डाल देवस्थान बन रहा था। सहस्रों नर नारी समय से पूर्व ही आ उपस्थित हुए। केम्पों की महिमा, और रचना ऐसी विचित्र और अल्पव्यय युक्त थी कि जिस की साधारण आर्य्य जनता से आशा करना दुस्तर समझा जाता था। प्रत्येक दर्शक स्त्री हो वा पुरुष, वृद्ध हो वा युवक, अपने आप को वस्तुतः स्वयं सेवक मान रहा था। आर्यों की नगरी में मादक द्रव्यों, तम्बाकू, सीग्रटादि; मांस मदिरा का नितान्त अभाव था। सात्विक आहार और सात्विक खाद्य द्रव्यों की सामग्री पर्य्याप्त उपस्थित थी

केम्पों और बाज़ारों

का निर्माण वैज्ञानिक रीत्यानुसार हुआ था। स्थान २ पर जल का प्रबन्ध था। परिमार्जकों और शौचागार का प्रबन्ध मथुरा म्यूनिसीपैलिटी ने बड़ी सावधानी से किया था। बाज़ार में जितनी दुकानों का प्रबन्ध किया गया था वह सभी लग चुकी थीं। उपयोगी सामग्री की विद्यमानता और सभी सुविधाओं का मौजूद होना एक ओर और निन्दित तथा वर्जनीय वस्तुओं का अभाव दूसरी ओर इस दिव्य भूमि को देव भूमि बना रहा था। बाज़ारों में हर समय भीड़ लगी रहती थी। लाखों नर नारी पुस्तकों और खाने की दुकानों पर आते जाते दृष्टिगोचर होते थे। नमस्ते शब्द की मीठी ध्वनि प्रतिक्षण कर्णगोचर होती थी।

ठीक १५ फ़रवरी को प्रोग्राम अनुसार निश्चित समय पर यज्ञ का आरम्भ हुआ। महोत्सव के वृहत् पण्डाल के चारों ओर चार यज्ञ कुण्ड निर्माण किये गये थे। इन में चारों वेदों के मंत्रों से आहुतियां दी जाती थीं। एक ही समय पर प्रातः काल चारों यज्ञ-शालाओं से वेद-ध्वनि उठने लगी। शुद्ध सामग्री ने अग्नि को प्रज्वलित कर सुरभि का विस्तार करना आरम्भ किया। यज्ञ की समाप्ति पर जहां वृहत्पंडाल में कार्य आरम्भ हुआ वहाँ दूसरे पण्डाल में आर्य-विद्वत् सभा का संगठन होने लगा और क्रमशः सभी ओर निर्दिष्ट और निर्धारित कार्यवाही प्रारम्भ होगई। क्षण २ में आर्य नर नारियों की बढ़ती हुई संख्या यात्रियों के उत्साह और आमोद को द्विगुणित कर रही थी। क्षण क्षण में तारें और समाचार पत्र आने वाली स्पैशल गाड़ियों का सम्वाद पहुंचा रहीं थीं। जहां देखो

दयानन्द सरस्वती की जय

के जयकारे उठ रहे थे। पण्डाल के समीप ही B.B. & C.I. रेलवे की पटरी थी। इसी पटरी पर से G.I.P. रेलवे की गाड़ियां गुज़र रही थीं। पंजाब की सभी स्पैशल गाड़ियां इसी लाईन से

आतीं थीं। प्रायः स्पैशल पर ध्वजाएं ओ३म् और नमस्ते के झण्डे तथा स्पैशल गाड़ियों के नाम अंकित होते थे। ज्योंही स्पैशल पण्डाल के समीप पहुंचती आकाश "वैदिक धर्म की जय" और "दयानन्द सरस्वती की जय" के जयकारों से गूंज उठता था। उधर पण्डाल के नर नारी प्रतिध्वनियों द्वारा पण्डाल को गुंजायमान कर देते थे। दिन भर यह हर्षनाद उठता रहता था। इसके अतिरिक्त अन्य रेलवे स्टेशनों से भी यात्री आ रहे थे। समीप वर्ती ग्रामों और नगरों से बहुत जनता बैलियों, रथों और बैलगाड़ियों द्वारा पहुंच रही थी। अनेक श्रीमान् हाथरस, आगरा और भरतपुर से अपनी २ मोटरों द्वारा इस महोत्सव में आ सम्मिलित हुए। जो पैदल आये उनकी गिनती करना अति दुस्तर था। इस प्रकार अनुमान २५०००० नर नारी इस यज्ञ में सम्मिलित हुए।

इतनी जनता का साधारण फूस के छप्परों में निवास करना और अपनी २ असुविधाओं को विस्मरण कर बालक, बालिकाओं और स्त्रियों की रक्षा, सेवा, और सम्मान के लिए प्रतिक्षण उद्यत रहना आर्य्यत्व का बोधक था। प्रत्येक कार्य में प्रजातन्त्र भावों का समावेश दिखाई देता था। भिन्न २ प्रान्तों के आर्य, आर्य भाषा को अपनी भाषा, आर्य संस्कृति को अपनी सभ्यता और आर्य मात्र को अपना परिवार मान एक दूसरे से संगति कर रहे थे उनके एक विचार और एक आहार का विचित्र परिचय उस समय मिला जब आर्य्य नर नारियों के प्रतिनिधि, अनेक प्रान्तों और उपनिवेशों के निवासी, ज़ात पात के आधुनिक बखेड़ों से दूर हुए सज्जन, और नखरी सखरी के त्यागने वाले नर नारी गुरुकुल काँगड़ी के विशाल भोजनालय में सम्मिलित हुए और आर्य्यों के

प्रीति भोज़न

में "सहवोऽन्नभागा" को चरितार्थ किया। इस ब्रह्म भोज में एक समय अनुमान २५० स्त्री पुरुषों ने भाग लिया। श्री महाराज सर नाहरसिंह जी शाहपुराधीश, तथा जयपुर की कौन्सिल के मेम्बर ठाकुर नरेन्द्रसिंह जी जयपुर निवासी ने अन्य ठाकुरों और आर्य्य समाजों के सदस्यों, प्रतिनिधि सभाओं के कार्य कर्त्ताओं, परोपकारिणी और सार्वदेशिक सभा के सभासदों के साथ सम्मिलित हो प्रीति भोजन में "संगच्छध्वं सम्वदध्वं संवो मनांसि जानताम् को चरितार्थ करते हुए आर्य्यत्व का परिचय दिया। इस ऐतिहासिक ब्रह्मभोज में आर्यसमाज के सभी सुविख्यात संन्यासी, आर्यसमाज के नेता, भिन्न २ प्रांतों के कार्यकर्त्ता और प्रतिष्ठित आर्य नर नारी उपस्थित थे। महाराजाधिराज ने सभी उपस्थित सज्जनों को निमंत्रण के स्वीकार करने पर हार्दिक धन्यवाद दिया और अपने आचार्य महर्षि दयानन्द के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुए कहा "आज मुझे जीवन की सन्ध्या काल में महर्षि की शिक्षा को क्रिया रूप में चरितार्थ देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है"। अन्य महोदयों के भाषणों का संक्षिप्त वृत्तान्त इस ग्रन्थ में मिलेगा।

आर्य समाज के जन्म दिवस से उत्सवों को रचाने की प्रथा चली आती है। इन उत्सवों में नगर कीर्तन प्रधान अंग माना जाता है। एतदर्थ आर्य जनता ने मथुरा नगरी में—

समग्र आर्यों का नगरकीर्तन

निकालने का संकल्प किया। १७ फ़रवरी को प्रातः काल मुख्य पण्डाल से घोषणा दी गई कि आज २ बजे पण्डाल से नगरकीर्तन का प्रारम्भ होगा। मध्याह्न से पूर्व ही वह क्रम भी सुना दिया गया था कि जिस भांति मण्डलियों का क्रम रखा गया था। इस समाचार ने विद्युत का संचार कर दिया और १२ बजे से ही पण्डाल के बाहर आर्य जनता

एकत्रित होने लग गई। ठीक २ बजे संन्यासियों का मंडल अग्रसर हुआ और एक के पीछे दूसरी मण्डली आगे बढ़ने लगी। अनुमान २॥ बजे तक नगरकीर्तन नगरी में जा पहुंचा और सौ से अधिक मण्डलियां व्यवस्थानुसार चलने लगीं। जनता के कुतूहल और प्रसन्नता की कोई सीमा न रही जब उन्हें आर्य नर नारियों के अनन्य जोश और उत्साह का उद्बोधन हुआ। कैम्पों की रक्षा, बालकों की निगरानी का प्रबन्ध करते हुए भी ऐसा ज्ञात होता था मानो सभी आर्य नर नारी नगरकीर्तन में सम्मिलित हो गये हैं। अनुमान चार सौ संन्यासी गेरुए वस्त्रों की पताकाएं हाथ में धारण किये वेद मंत्रों का उच्चारण करते और दयानन्द की जय के जयकारे बुलाते हुए आगे आगे चल रहे थे। गुरुकुलों के स्नातक और ब्रह्मचारी, कन्या महाविद्यालय की स्नातिकाएं और छात्राएं, भिन्न २ कालिज़ों, स्कूलों और पाठशालाओं के विद्यार्थी, अनाथालयों के बालक और बालिकाएं तिसपर एक ही संग अनुमान ३५००० पंजाब की स्त्रियों का नगरकीर्तन जिसमें कई एक बैण्ड और भजन मण्डलियां भी थीं इन सब का नगरकीर्तन, वैदिक धर्म सम्बन्धी मनोहर और आल्हाद जनक भजनों की गूंज, बीच २ में नवयुवकों का "दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे" आदि गीतों का गाना और क्षण २ में वैदिक धर्म की जय, दयानन्द की जय की ध्वनि और प्रतिध्वनियां मथुरा नगरी की नीवों का कम्पायमान करने के लिये पर्याप्त थीं। अनुमान दो लाख आर्य नर नारियों ने इस संकीर्तन में भाग लिया। दर्शकों की संख्या एक लाख से न्यून न होगी। यह एक ऐसा अनुपम दृश्य था जो चिरकाल पर्यन्त उन सज्जनों की स्मृतिपट पर अंकित रहेगा जिन्हें इस नगरकीर्तन में सम्मिलित होने अथवा देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

पुष्प-वृष्टि

मथुरा सनातनधर्म का कुंज और पण्डों का केन्द्र है। मथुरा और वृन्दावन के बहुमूल्य मन्दिर जगद्विख्यात हैं। इस नगरी में गत चालीस वर्ष से आर्यसमाज का घोर विरोध होता रहा है। इस विरोधाग्नि को संयुक्तप्रांत की संस्था गुरुकुल वृन्दावन ने बहुत कुछ प्रशान्त किया तिसपर भी यहां नवीन विचारों का बहुत न्यून समावेश हुआ है। अपितु इस विचार की तो कल्पना भी न हो सकती थी कि भगवान दयानन्द की मृत्यु के ४२ वर्ष के अनन्तर ही उनके गुरु श्री स्वामी वृजानन्द के निवास स्थान पर कि जहां उनके शिष्य दयानन्द संन्यासी ने सात वर्ष का अमूल्य समय व्यतीत किया था, हां, उसी पुण्य भूमि में और उसी आश्रम के सामने से जहां वह शिक्षा प्राप्त करते थे उनके पथप्रदर्शित वेदों के अनुयायी आर्य नर नारी लाखों की संख्या में इकट्ठे हो वेदों का नाद बजावेंगे और मथुरा निवासी उनपर पुष्पवृष्टि करेंगे। भगवान दयानन्द ! क्या देवताओं के मध्य में निवास करते हुए आपकी पवित्र आत्मा इस दिव्य दृश्य को अनुभव कर प्रसन्न न होती होगी ? कौन मान सकता था कि अर्द्धशताब्दी में ऐसा परिवर्तन हो जावेगा कि पण्डों की सन्तान और मथुरा के सनातन धर्मावलम्बी आर्यों के लिये सबीलें लगादेंगे और उनके संग जयकारों का नाद बजावेंगे। हां मकानों की छतों पर से साधुवाद कहेंगे और पुष्पवृष्टि करेंगे। हमारे हिन्दू भाईयों ने आर्यों के नगरकीर्तन में उसी शिष्टाचार का परिचय दिया जिसकी आर्य जनता से आशा की जा सकती है।

स्वयंसेवकों की वीरता

स्वयं सेवकों और आर्य्य नवयुवकों ने नगर-कीर्तन के प्रबन्ध में अति प्रशंसनीय सेवा और शूरता का प्रदर्शन किया। जब मथुरा के तंग बाज़ारों में सहस्रों नारियां क़तार बांध कर चल रही थीं तो प्रबंधकों को चिंता हुई कहीं बालिकाएं और कोमलाङ्ग स्त्रियां भीड़ भाड़ में कुचली न जायें, एतदर्थ स्वयं-सेवकों को आदेश दिया गया कि वह कुमार कुमारियों और विशेष कर देवियों की रक्षा करें। उन के लिये पर्याप्त जल का प्रबंध रखें। डाक्टरों की उपस्थिति रहे और इन सब से बढ़ कर एक दूसरे से हाथ मिला कर चलें ताकि कोई पुरुष स्त्रियों के बीच में प्रवेश न कर सके। हमारे पुरुषार्थी नव युवकों ने इस आज्ञा का पालन बड़ी उत्तमता से किया, कई फ़रलांग तक जीवित मनुष्य स्तूपवत और उनके हाथ रस्सियों के समान ऐसी दृढ़ता से गुथित थे कि क्या मजाल कोई भी व्यक्ति भीतर आ सके। निरन्तर चार घण्टे पर्य्यन्त मथुरा के बाज़ारों में यह अद्भुत दृश्य दृष्टि-गोचर होता रहा। एक ही स्थान पर अनुमान ३५००० देवियां गाती हुई निकलीं दसरे स्थान पर १०००० नारियां संकीर्तन कर रही थीं, उत्साह और प्रेम से ईश्वर का गुणवाद, वैदिक धर्म के महत्व और दयानंद के प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता के गीत गाती जा रहीं थीं। इतने भारी नगर कीर्तन और जन समूह में से केवल एक कुमारी मूर्छित हुई जिसे तत्काल सहायता पहुंचाई गई थी। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों ने जिस अपूर्व उत्साह और महर्षि के प्रति श्रद्धा का प्रदर्शन किया, वह अत्यन्त प्रशंसनीय था। कन्या महाविद्यालय जालंधर की स्नातिकाओं और छात्राओं ने आर्य्य रमणियों की संस्कृति का बोधन कराया। प्रत्येक मंडली में प्रेम और श्रद्धा की उमगें उमड़ रही थीं। यही कारण था कि समूहरूपेण दो मील लम्बे नगर-कीर्तन में धार्मिक जीवन और विश्वासात्मिक उत्साह की लहरें प्रवाहित हो रही थीं और दर्शकों के हृदय-मन्दिर में दयानन्द की ख्याति को प्रवेश करा रही थीं। नगरकीर्तन अनुमान साढ़े छः बजे भरतपुर दरवाज़े पर पहुंचा। जो कार्य सैकड़ों उपदेष्टाओं से न हो सका था वह इस नगरकीर्तन द्वारा सम्पादित हुआ।

१५ फ़रवरी से लेकर एक सप्ताह पर्यंत शताब्दी भूमि में लाखों नर नारियों की उपस्थिति रहती थी। मुख्य पंडाल में २५००० जन संख्या उपस्थित हो सकती थी, प्रातःकाल से रात्रि के १० बजे पर्यन्त पण्डाल खचाखच भरा रहता था। कोई न कोई कार्यक्रम इतनी जन संख्या के प्रमोद आमोद अथवा ज्ञानवृद्धि के लिये होता रहता था, अनुमान ५००० स्त्रियों के बैठने का प्रबन्ध एक ओर किया गया था। प्लेट फ़ार्म पर अनुमान १००० प्रतिष्ठित आर्य पुरुषों के बैठने का प्रबन्ध था। शुद्धि सभा, साधु आश्रम, दलितोद्धार के पण्डाल पृथक थे। दो छोटे पण्डालों में भिन्न भिन्न कानफ्रेंन्सें होती रहती थीं एक वृहत् तम्बू में सभाओं के संगठन का प्रबंध किया जा रहा था। Over-flow Meetings की भी व्यवस्था की जाती थी। अस्तु, जिधर दृष्टि डाली जाती थी उधर ही श्रोताओं की बड़ी भीड़ भाड़ दिखाई देती थी तिस पर सहस्रों को बैठने के लिये पण्डालों में स्थान न मिलता था। वह प्रायः बाज़ारों में चक्कर लगाते, समाचार पत्रों को पढ़ते, मित्रों से भेंट करते, नवीन पुस्तकों को पढ़ते और ख़रीदते या क्रीडा स्थलों पर जाकर हाकी, क्रिकिट, फुटबाल आदि के मैचों को देखते फिरते थे। प्रदर्शनी

में हर समय सैकड़ों नर नारियों की भीड़ रहती थी। इतनी जनता के लिये—

भोजनादि का सुप्रबंध

भी प्रशंसनीय था। हलवाइयों, भोजनशालाओं और होटलों की व्यवस्था उत्तम थी। प्रत्येक केम्प में और उन के निकट उन प्रान्तों की आवश्यक्ताओं के अनुसार इन्तज़ाम था। सभी सामग्री के निर्ख बन्धे हुए थे। आहार्य्य द्रव्यों का नियमित निरीक्षण होता था ताकि उन में मिलावट न हो। मथुरा की कमेटी की प्रदर्शिनी के कारण समीपवर्ती सड़कों पर भी अनेक स्वतन्त्र नवीन दुकानें खुल गई थीं।। इन सभी साधनों के कारण खान पान में दर्शकों को कुछ भी असुविधा और कष्ट नहीं हुआ। मथुरा की कमेटी ने जल के नलों और टट्टियों की सहायता प्रदान कर शताब्दी के प्रबन्ध में प्रशंसनीय सहायता दी। यात्रियों की चिकित्सा का प्रबन्ध समुचित और विधिवत् किया गया था॥

डेम्पियर नगर की भूमि में भिन्न २ प्रान्तों के लिये केम्प निर्माण किये गये थे। प्रत्येक केम्प का प्रबन्ध केम्प मैनेजर के आधीन था और सभी केम्प मैनेजरों के ऊपर जनरल मैनेजर था। केम्पों के बाहर डेम्पियर नगर की कोठियां थीं। मुख्य पण्डाल के दक्षिण की ओर खेमे और छौलदारियों की कतारें खड़ी की गई थीं। स्थान २ पर प्रकाशार्थ लेम्पों का प्रबन्ध था। यह Tent City अपनी श्रेणी का एक निराला कस्बा बन गया था। प्रत्येक रात्रि को डेम्पियर नगर और उस के आस पास स्वयं सेवकों का पहरा लगता था। पुलीस का पहरा अनुमान एक मील के अन्तर पर था। यात्रियों को पुलीस के सिपाही दिखाई तक न देते थे। आर्य्य जनता की सावधानी और स्वयं सेवकों के चातुर्य्य का परिणाम यह हुआ कि इतनी जनता में बहुत ही न्यून हानि हुई। जहां और जब भी चोरी की बारदातें हुईं वह जनता की अपनी असावधानी अथवा लापरवाही के कारण हुई थीं। रात्रि के १२ बजे पर्य्यन्त प्राय: लोगों का इतस्तत: भ्रमण होता रहता था। प्रात: चार बजे ही ब्राह्म मुहूर्त को मनाने के लिये लोग उठ जाते थे। स्थान २ पर हरिकीर्तन और संकीर्तन का प्रारम्भ हो जाता था। कीर्तन मण्डलियां डेम्पियर नगर के चारों ओर और यमुना के तट पर्य्यन्त सभी सड़कों पर मीठे स्वर से गान करती थीं। यज्ञ मण्डपों अथवा स्थान २ पर केम्पों में हवन होने लगते और वेदमन्त्रों की मधुर ध्वनि से सारा नगर गुंजायमान हो जाता था।

शीतल समीरण में हवनों और यज्ञों का सुगन्धित वायुमण्डल सारे नगरकी प्रेमाच्छादित भूमि और पारस्परिक प्रेमकी धाराएं ऐसे वायु मण्डल को उत्पन्न कर रही थीं जिस में आर्य्य जीवन, आर्य्य सभ्यता और आर्य्य राष्ट्र के स्वप्न आंखों तले घूमते दिखाई देते थे। आर्य्य जनता अपने नेताओं की ओर दृष्टि बान्धे महर्षि की शिक्षा को क्रियात्मिक रूप में अवलोकन करने पर उत्सुक दिखाई देती थी और आशावादी बन ज्ञानवृद्धि की अभिलाषी बन रही थी।

पण्डालों में निरन्तर ६ दिवस पर्य्यन्त आर्य्य जनता में जो विचार उपस्थित हुए वह महर्षि की शिक्षा के द्योतक थे। यहां नित्यम्प्रति मनोहर व्याख्यान, हृदङ्गम गीत, और ग़ज़लें धर्म परिषद और आर्य्य परिषद, के निबन्ध पढ़े गये। यहां ही आर्य्य सम्मेलन संगठित हुआ। इसी पण्डाल में खेलें और बुआए स्काउटस की खेलों का प्रदर्शन किया गया। प्रोग्राम

की मुख्य कार्यवाही भी इसी स्थान पर सम्पादित हुई। आर्य्य विद्वत् परिषद की बैठकें, भिन्न २ सम्मेलन और विविध कानफ्रेंसें सभी दूसरे पण्डालों में बुलाई गई थीं। इन सम्मेलनों में क्या कुछ निश्चित हुआ, क्या २ विचार उपस्थित किये, किस २ व्यक्ति ने भाग लिया और क्या परिणाम निकला, इन सभी विषयों का बोध इस ग्रन्थ के पढ़ने से विदित हो जावेगा।

मुख्य पण्डाल से द्वार पर्य्यन्त बिजली की रोशनी का प्रबन्ध था। निरन्तर ६ दिवस पर्य्यन्त सायंकाल के ६ बजे से रात्रि के ११-१२ बजे तक पण्डाल बिजली की दीप्ति से जगमग करता था। समीप ही अंजन से पावर लेकर डायनोमो के द्वारा बिजली पैदा की जाती थी प्रोग्राम के निश्चयानुसार शिवरात्रि की सायंकाल को दीपमालिका की गई। मुरादाबाद के मुंशी जुगल किशोर ने निरन्तर परिश्रम से सहस्रों रंग बरंगे कागज़ों के कमल फूल तय्यार किये और पण्डाल के चारों ओर बाँसों के फ्रेम बना कर उन पर दीप मालाओं के ऐसे सुन्दर कमल निर्माण किये जो लावण्य और सौन्दर्य के बोधक थे। लाखों नर नारियों ने हर्षान्वित हो इस दीपमालिका का अवलोकन किया। केम्पों और भिन्न २ संस्था मंडपों में भी दीपमालिका मनाई गई थी। उस रात्रिको विद्युत की रोशनी की आभा श्लाघ्नीय थी। मथुरा नगरी की प्रदर्शनी और डेम्पियर नगर में आर्य्यों की दीपमालिका दोनों मिलकर आकाश मण्डल को देदीप्यमान कर रहे थे तिसपर तमसाच्छादित अन्धकार युक्त रात्रि कवि कालिदास के शब्दों में "घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्" के समान थी

समकालीन महानुभावों का परिचय

शताब्दी महोत्सव का अत्यन्त रोचक पहलू वह था जिस में उन सज्जनों का आर्य्य जनता से परिचय कराया गया जिन्हों ने भगवान दयानन्द के दर्शन किये थे अथवा उन के उपदेशों से लाभ उठाया था। इन में वयोवृद्ध तथा कीर्तिवान सर नाहर सिंह जी शाहपुराधीश थे। आपने अपनी अगाध श्रद्धा, भक्ति और महर्षिके प्रति सेवा करने के विचारों को अपने मुखारविन्द से प्रगट किया। आप की अनन्य भक्ति उन प्रेम भरे आंसुओं से टपकती थी जो आपने इस अवसर पर पात किये थे॥

राव राजा तेजसिंह ने इस अवसर पर उन अमूल्य पत्रों का प्रदर्शन किया और उन उपदेशों को बतलाया जो महर्षि ने उन से पत्र व्यवहार द्वारा अथवा जोधपुर की यात्रा सम्बन्धी प्रगट किये थे। दुःख है कि शताब्दी के ९ मास के अनन्तर ही आपका शरीरान्त होगया। आप के हृदय मन्दिर में महर्षि के मिशन को विस्तृत करने की अनेक तरंगे उठ रही थीं। आप के व्याख्यान ने आर्य्य जनता पर अत्यन्त प्रभाव डाला था। श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने यौवन काल के विचारों और बरेली में महर्षि के उपदेशों के प्रभाव पर भाषण दिया। ऐसे ही अन्य अनेक महानुभावों ने अपने २ संकल्पों और अपने जीवन की घटनाओं का दिग्दर्शन कराया। महोत्सव की इस कार्य्यवाही को आर्य्य जनता ने अत्यन्त प्रसन्नता से सुना। एक और बात जो वैयक्तिक जीवन पर प्रभाव डालने वाली थी वह व्रत था। आर्य्य जनता ने

व्रतं चरिष्यामि

के महत्व को भली भाँति अनुभव किया और यद्यपि यह व्रत मौन अवस्था में और भिन्न २ व्यक्तियों ने गुप्त रूपेण धारण किये थे तथापि इसके दूरवर्ती परिणामों को अनुभव करना अत्यन्त दुस्तर है। आर्य्य

नर नारियां शुभ संकल्पों के सद्परिणामों से अपरिचित नहीं। यदि जनता अपने २ व्रतों को दृढ़ संकल्पों से पालेंगे तो यह व्रत उन के जीवनों में अवश्यमेव परिवर्तन उत्पन्न करदेंगे और उन की आयु को सारगर्भित बनाने में उपयोगी सिद्ध होंगे। शताब्दी के अवसर पर जिन सज्जनों ने व्रत धारण किये हैं यदि वह क्रियात्मिक हो जावें तो आर्य्य जनता की महती शक्ति का एक जगत् को बोध होने लगे।

शिवसंकल्पमस्तु

हां, इसी शिवसंकल्प की शिक्षा को स्वयं महर्षि ने धारण किया था। उन के आगमन से पहिले भारत के भिन्न २ प्रान्तों में वेदपाठी और वेदवक्ता विद्यमान थे। योगियों और तपस्वियों का अभाव भी न था। शास्त्रों के व्याख्याता और आर्य्य ग्रन्थों से परिचित पण्डितों की न्यूनता भी न थी परन्तु अन्ध परम्परा और स्वार्थ के कारण प्राय: पण्डित अपण्डित बन रहे थे। उन के भाव यदि दुष्ट भाव न थे तो सात्विक और शुभ भाव भी नहीं थे। वह आत्मिक शक्तियों को विद्यमानता से अनभिज्ञ और आत्मिक बल के आदर्शों से शून्य थे। भगवान दयानन्द सरस्वती ने सब से उत्तम, सब से उत्कृष्ट और सब से अधिक श्लाघ्नीय शिक्षा आत्मिक बल की प्राप्त की थी। वर्षों की निरन्तर तपस्या और ब्रह्मचर्य्य के प्रताप से उन्हों ने अपने आप को

तेज से अभिभूत

कर लिया था, और ज्ञान की ज्योति से जब उन्होंने ऋषि प्रणीत ग्रन्थों और विशेषतया वेद रूपी समुद्र की तह में गोता लगाया तो उन्हें अनन्त बहुमूल्य रत्न प्राप्त हुए। हिन्दू जगत का विश्वास इन रत्नों की सत्ता से उठ चुका था, तिसपर पाश्चात्य शिक्षा ने उन्हें भ्रमात्मिक जाल में ऐसा लपेटा था कि वह वेदों के अपौरुषत्व को उपहासजनक मानते थे। तेजस्वी दयानन्द शुभ संकल्पों की महिमा से परिचित थे। उन की आंखों तले वह दृश्य घूम रहा था जिस से भारतवर्ष की पुण्य भूमि पर ही नहीं वरन् समग्र संसार में आर्य्य संस्कृति का राज्य हो। इसे स्वयं वेद वाणी ने जतलाया है और आर्य्य जनता ने अपनी संमिलित प्रार्थना में उस दृश्य को देखा और सुना है। पुण्यात्मा दयानन्द! यह प्रार्थना जो बीस हज़ार आर्य्य नर नारियों ने एक स्वर से उच्चारण की थी जब आप के दिव्य कर्णों तक पहुंची होगी तो क्या उस ने आप को आह्लादित न किया होगा? यह दृश्य भी अति उत्साहाप्रद था और चिरकाल पर्य्यन्त आर्य्यों की आत्मा को सुखी बनाता रहेगा।

हम ने प्रार्थना को उच्चारण करते समय उन उच्च भावों और शुभाकांक्षाओं के महत्व को समझा अथवा नहीं, परन्तु जिस आत्मा ने सोते उठते, खाते पीते - नित्यम्प्रति इसी दृश्य को अपने सामने रखा था उस की आत्मा के लिये अपने शिव संकल्पों को

मूर्तिमान और साक्षात

रूपमें देखना अवश्यमेव आनन्दप्रद हुआ होगा। जीवन भर में महर्षि ने शिवसंकल्पों को धारण किया। उन्हें क्रियात्मिक जीवन में ढालने के लिये उन्होंने निरन्तर सोलह वर्ष पर्य्यन्त परिश्रम किया। उन के वपन किये हुए बीजों का परिणाम मृत्यु के ४२ वर्ष के पश्चात् शताब्दी महोत्सव पर दिखाई दिया जब अढ़ाई लाख आर्य्य नर नारी महर्षि के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिये मथुरा नगरी में उपस्थित हुए। भगवान दयानन्द न केवल मूर्ति खण्डन (Iconoclost) थे

वरन् क्रान्ति उत्पादक और

नव युग के प्रवर्तक

भी थे। उन्होंने सहस्रों नवीन विचारों को हमारे सम्मुख रखा। शताब्दी के अवसर पर उन में से बहुतों पर हमने विचार किया। अपने कर्त्तव्य से हमने बतला भी दिया कि जो आदर्श हमारे जीवन के अंश होने चाहियें थे वह अभी तक विचार कोटि से आगे नहीं बढ़े। पाठक इस वृत्तान्त में उन भाषणों को पढ़ेंगे जो आर्य जनता के नेताओं ने उनके समक्ष उपस्थित किये हैं। हां! यदि आज दर्जनों भी ऐसे महानुभाव हमारे अन्दर विद्यमान होते जो वेदरूपी अमृत से तृप्त हो, वलधारी बनकर संसार की प्यासी आत्माओं को अमृत प्रदान करने की योग्यता रखते तो आज हम आर्य जनता में अनेक

शक्ति के अंजनों

को विद्यमान पाते। जगत् का इतिहास बतलाता है कि मनुष्य जीवन में आत्मिक बल का प्रादुर्भाव सुगमता से नहीं होता। भावी संतानें इस वृत्तान्त के पृष्ठोंमें स्वयंवर वाले प्रस्ताव पर दी हुई वक्तृताओं को पढ़कर हमारी (Mentality) मानसिक अवस्था पर खिल्ली उड़ावेंगी। उन्हें बालविवाह की प्रथा, स्वयम्वर रीति की उपयोगिता में सन्देह, आधुनिक ज़ात पाँत के बखेड़े आदि विषय उपहासास्पद प्रतीत होंगे और वह दुःख से कहेंगे कि कैसे संभव हो सकता था कि ५० वर्ष के निरन्तर आर्यसमाज की विद्यमानता और वेदों के प्रचार के अनतन्र वेदों के अनुयायी और आर्यसमाज के समासदों ने महर्षि के प्रति अपनी कृतज्ञता अपने जीवनों द्वारा किस भांति से दिखलाई थी? जिस प्रकार अंकुरित बीज पुनः शुष्क बीज के रूप को धारण नहीं कर सकता, इसी प्रकार भगवान् दयानन्द सरस्वती, अथवा यूं कहिये कि वेदों के आदर्श जो अंकुर के रूप को धारण कर चुके हैं वह पुनः वेदों के लिखे और छपे हुए शब्द न रहेंगे। संसार भर में यह आदर्श

भयंकर रूपों को धारण

कर फैलेंगे। देश देशान्तरों और द्वीप द्वीपान्तरों में इन आदर्शों के द्वारा क्रान्ति फैलेगी। स्त्रियों और शूद्रों में अपने २ अधिकारों के लिये जो जाग्रति फैल रही है यह दिनों दिन भयंकर रूपों को धारण करेगी। दयानन्द के नाम और वेद रूपी ध्वजा के इर्द गिर्द शताब्दियों पर्यन्त भयानक वाद विवाद और युद्ध होंगे और जब तक इन आदर्शों के अनुसार नवीन संस्कृति न बन जावेगी तबतक लोगों में शान्ति का साम्राज्य नहीं होगा। भगवान् ने सच्ची कामना से दृढ़ संकल्प किया कि मत मतान्तरों के बखेड़े दूर हों। सभी एक मत होकर—

उन्नति के शिखर

पर चढ़ें। जिन लोगों ने एक मन, एक मत और एक विचार धारणकर अपने२ मतोंको तिलांजलि दे वैदिकधर्म को धारण नहीं किया वे वेद के सामने सिर झुकावेंगे। उन्हीं सिद्धान्तों का प्रचार करेंगेपरन्तु नाम उनका भिन्न ही रहेगा। प्रजा भी जैसे नवीन शासकों के सिक्कों को मान उनका उसी भांति प्रयोग करती है जैसे कि पूर्व में था फिर भी वैसे ही प्रयोग करेगी। महर्षि आर्य, वेद, आर्षग्रन्थ, वैदिक धर्म आदि शब्दों का दिलदादा था परन्तु वेदों के आदर्श इन शब्दों द्वारा विस्तृत होंगे अथवा भिन्न २ और नवीन २ परिभाषाओं द्वारा यह तो भविष्यकाल के गर्भान्तर्गत है। हां, यह निर्विवाद है कि यतः वेदों के अनेक आदर्श संसार भर की संपत्ति हैं

उन्हें अपनाना सभी मनन शील नर नारियोंका कर्त्तव्य होगा। परन्तु जन्मशताब्दी ने उन पवित्र नर नारियों को मथुरा नगरी में आकर्षित किया जो हृदय से मानते थे कि वह इस सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हैं और यह कि वेदों के आदर्शों को क्रियात्मिक बनाना और संसार भर के मनुष्यों के कल्याण के लिये इस कल्याणकारी वेदवाणी को जगत् भर में फैलाना उनका परम कर्त्तव्य है। इस उद्देश्य में आर्य जनता को

क्या सफलता हुई

इस का परिमाण रना दुस्तर है। हम अपने आदर्शों से परिचित हैं। हम अपनी त्रुटियों और निर्बलताओं को भी जानते हैं। हम इस मर्म से भी अनभिज्ञ नहीं कि हमने संगठन की महिमा को बहुत न्यून अंशों में अनुभव किया है परन्तु इस से इनकार नहीं हो सकता कि हम ने अपने आदर्श बहुत ऊंचे रखे हैं और उन आदर्शों की प्राप्ति के लिये हमने अपने पग भी बढ़ाने आरम्भ कर दिये हैं और एक जगत् ने भली भाँति अनुभव भी कर लिया है कि हम ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति इस चिरकाल पर्य्यन्त याद रहने वाली शताब्दी के शुभ अवसर पर अपनी अगाध श्रद्धा और सच्ची कृतज्ञता का परिचय भी दे दिया। इस अवसर ने हमारे उत्तरदायित्व को भी बहुत कुच्छ बढ़ा दिया है। जगत् के सामने इन आदर्शों को रखते हुए हमने मुक्तकण्ठ से मान लिया है कि हम इन आदर्शों को "आर्य्य जीवन" में परिणत करेंगे। हम दयानन्द के सैनिक बन जगत् में क्रान्ति उत्पादन करने का हेतु बनेंगे। हम नवजीवन द्वारा नवयुग को पैदा करेंगे और इस क्षुभित भवसागर को जब तक वेदाज्ञा के अनुसार न देखेंगे विश्राम न लेंगे।

शताब्दी महोत्सव का यज्ञ अपूर्ण रह जाता यदि आर्य्य जनता यज्ञ के रचयिताओं में प्रधान, तन और मन से निरन्तर सेवा करने वाले

पूज्यपाद श्री नारायण स्वामी

के प्रति कृतज्ञता प्रकट किये विना मथुरा नगरी से चली जाती। आर्य्य जनता में इस विचार के उत्पन्न होने की देरी थी कि चहुं ओर से इस का स्वागत किया गया। शताब्दी को व्यतीत हुए आज अनुमान दस मास होते हैं परन्तु एक जगत् जानता है कि श्री नारायण स्वामी जी इस यज्ञ से कैसे श्रान्त और अनथक परिश्रम से कितने पीड़ित हुए हैं। वृत्तान्त अन्तर्गत मान पत्र से विदित होगा कि उक्त पूज्य स्वामी जी ने इस यज्ञ की सफलता में कितना भाग लिया। स्नातक श्री राम गोपाल जी विद्यालंकार का हमें विशेष धन्यवाद देना है जिन्हों ने संग्रह करने, शोधन और सम्पादन में सहायता दी है।

हम उन त्रुटियों से परिचित नहीं जो पुस्तक रचना में रह गई हैं। पाठक यदि सूचित करेंगे तो दूसरी आवृति में उन्हें हटा दिया जायगा। यदि आर्य्य जनता ने इस ग्रन्थ का मान किया तो शीघ्र ही द्वितीय आवृति सुन्दर रूप में और बृहत् आकार में प्रकाशित की जावेगी।

विनीत

केशवदेव शास्त्री



श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी वृत्तान्त

पहिला परिच्छेद

परिचय



मद्दयानन्दर्षि के जन्म को विक्रम संवत् १९८१ या सन् १९२५ ई० में १०० वर्ष होने वाले थे इसलिये श्रीबाबू मदनमोहन सेठ M. A. L. L. B. M. R. A. S. (हाल सब जज गोरखपुर) ने १९१८ ई० के आर्य-मित्र के ऋषिअङ्क में प्रस्ताव किया कि ऋषि दयानन्द का जन्म शताब्दी महोत्सव मनाया जावे। प्रस्ताव दिल को चुभने वाला था इस लिये आर्यसमाज के प्रेस में आन्दोलन आरंभ हुआ। आर्यसमाज से बाहर के प्रेस ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया। अधिकांश सम्मति प्रस्ताव के अनुकूल थी इसलिये आर्यसमाज के अग्रगन्ताओं को प्रस्ताव पर विचार करने के लिये बाधित होना पड़ा।

आर्यसमाज के संगठन में सर्वोच्च स्थान रखने वाली सार्वदेशिक सभा और श्री स्वामी जी महाराज की स्थापित परोपकारिणी सभा के अधिकारियों ने एक सम्मिलित विज्ञापन भारत की राजधानी दिल्ली नगर में २ और ३ सितम्बर १९२० ई० के लिये तमाम आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों, विद्वानों और संन्यासियों की एक बृहत् सभा होने के लिये जारी किया। तदनुकूल सभा संगठित हुई।

दिल्ली की सभा

इस सभा में आर्यसमाजों के प्रतिनिधि बहुसंख्या में सम्मिलित हुए। दोनों सभाओं के अधिकारी भी मौजूद थे। संन्यासियों और कुछेक विदुषी देवियों ने भी सभा के कार्यों में भाग लिया था। शताब्दी मनाये जाने के विषय पर अच्छा विचार हुआ। सभी प्रकार के मत प्रकट हुए। पक्ष विपक्ष दोनों ओर के सज्जनों ने अपने २ मन्तव्य को युक्तियों के साथ सभा के सन्मुख रक्खा और इस प्रकार सभा में उपस्थित सज्जनों के लिये काफ़ी मसाला, सम्मति स्थिर करने के लिये, एकत्र होगया।

सभा के निश्चय

पूर्ण निश्चय इस प्रकार प्रकट किये गये—

(पहिला निश्चय)

श्री स्वामी जी महाराज की जन्म शताब्दी संवत् १९८१ वै० तदनुकूल

१९२५ ई० में शिवरात्रि के अवसर पर मथुरा नगर में मनाई जावे। इस अवसर पर एक बड़ी परिषद हो, महोत्सव भी किया जावे और आर्य समाजों में भी जन्म दिवस का उत्सव समारोह के साथ मनाया जावे।

शताब्दी मनाया जाना निश्चित हो जाने पर इस विषय पर कि वह कहाँ मनाई जावे, बड़ा मनोरंजक वादविवाद हुआ। दिल्ली, अजमेर, मथुरा, हरिद्वार और मुम्बई स्थानों के नाम भिन्न २ सज्जनों की ओर से, उत्सव मनाने का स्थान ठहराने के लिये, पेश किये गये। विवाद इतना विस्तृत होगया कि पहले दिवस यह निश्चय ही नहीं हो सका कि कौन सा स्थान उत्सव के लिये उपयोगी ठहराया जावे। इस लिये रात्रि का समय परस्पर विचार परिवर्तन और सम्मति स्थिर करने के लिये उपस्थित सदस्यों को दिया गया। दूसरे दिन कार्य का आरंभ हुआ। मुम्बई, हरिद्वार के नाम तो इस लिये उड़ गये कि प्रस्ताव कर्ताओं ने उन्हें लौटा लिया। दिल्ली इस उत्सव के लिये इसलिये उपयोगी नहीं समझा गया कि स्वामी जी के जीवन का वह कोई विशेष घटना स्थल नहीं था। अब मुक़ाबिला अजमेर और मथुरा के मध्य रह गया। दोनों महत्त्वपूर्ण स्थान एक (मथुरा) स्वामी जी का गुरुद्वारा, दूसरा (अजमेर) उन का मृत्यु स्थान। अन्त में एक 'नुक्ते' ने सुगमता से स्थान निर्णय कर दिया, और वह यह था कि यह उत्सव जन्म-शताब्दी का है, इस लिये मृत्यु स्थान उपयोगी नहीं हो सकता। मथुरा यद्यपि जन्म-स्थान नहीं हैं परन्तु मनुष्य का विद्या सम्बन्धी दूसरा जन्म, जो सरस्वती माता और आचार्य के संयोग से होता है, गुरु गृह में होता है। अत एव ऋषिदयानन्द के इस दूसरे जन्म का स्थान मथुरा अवश्य है। इस लिये मथुरा स्थान शताब्दी महोत्सव मनाने के लिये निश्चय हो गया।

सभा ने और भी कतिपय निश्चय किये जिनका विवरण इस प्रकार है:—

(दूसरा निचश्य)

परोपकारिणी सभा से सिफ़ारिश की जावे कि वह वेद भाष्य तथा वेदांग प्रकाश को छोड़ कर ऋषि दयानन्द कृत अन्य समस्त ग्रंथों का एक शताब्दी संस्करण छपवाये और पुस्तकों का संशोधन हस्तलिखित कापियों से मिलान कराके करालेवे और इस शताब्दी संस्करण को लागत के दामों पर बेचे।

(तीसरा निश्चय)

ऋषि दयानन्द की जन्म भूमि (टंकारा) और अजमेर में एक २ स्तूप बनाया जावे जिसपर आर्य समाज के नियम, जन्म तिथि, और आर्य समाज की

मुख्य २ ऐतिहासिक घटनाओं का तिथि सहित उल्लेख किया जावे।

(चौथा निश्चय)

शताब्दी महोत्सव के प्रबन्ध के लिये एक शताब्दी सभा बनाई जावे और उस का संगठन इस प्रकार रक्खा जावे कि उस में सार्वदेशिक और परोपकारिणी सभा के समस्त सदस्य, प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के ७, भारतवर्षीय आर्य-कुमार परिषद् के २ सदस्य एवं सात संन्यासी और सात देवियां और प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त, पद के एतवार से, शामिल किये जावें।

यहां यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि तीसरे प्रस्ताव को छोड़कर बाक़ी सब प्रस्ताव कार्य में परिणत हुये। तीसरे प्रस्ताव का आर्यसमाजों ने मूर्तिपूजा फैलने के भय से आम तौर से विरोध किया। इसलिये प्रस्ताव शिथिल सा समझ लिया गया और इस सम्बन्ध में कुछ कार्य नहीं किया गया।

दूसरा परिच्छेद

जन्म शताब्दी सभा का निर्माण

गुरुकुल वृन्दावन के महोत्सव के अवसर पर दिसम्बर १९२२ ई० में जन्म-शताब्दी सभा का निर्माण हो गया और उस में दिल्ली की सभा के चौथे निश्चयानुसार समस्त संस्थाओं के प्रतिनिधियों के नाम आगये जिन की संख्या इस प्रकार है:—

१	सार्वदेशिक सभा के सदस्य	२७
२	परोपकारिणी सभा के ”	२३
३	प्रादेशिक सभा पंजाब ”	७
४	संन्यासी ”	७
५	देवियां ”	७
६	अन्य प्रतिष्ठित सदस्य जो इसी सभा में बढ़ाये गये	१४
७	प्रधान संयुक्त प्रान्त	१
	कुल	८६

इस प्रकार ८६ सदस्यों की शताब्दी सभा निर्मित होगई। कोरम ७ का रहा। इसी सभा में अधिकारियों का चुनाव हुआ जिस का विवरण इस प्रकार है:—

१ श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी संन्यासी प्रधान

२	श्री नारायण स्वामी	उप प्रधान
३	महात्मा हंसराज जी लाहौर	उप प्रधान
४	डाक्टर कल्याण दास देसाई मुम्बई	उप प्रधान
५	श्री हर विलास जी शारदा अजमेर	उप प्रधान
६	सेठ जय नारायण जी कलकत्ता	उप प्रधान
७	बाबू सीताराम जी बी०ए० लखीमपुर	मंत्री
८	" मदनमोहन सेठ M.A.	उप मंत्री
९	" श्रीराम जी आगरा	कोषाध्यक्ष

जुलाई सन् १९२३ ई० में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने प्रधान पद से त्याग पत्र दिया और काम करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। इस पर शताब्दी सभा ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि वे अपना नाम प्रधान पद के साथ सभा में रहने देवें और निश्चय किया कि श्री नारायण स्वामी कार्यकर्ता प्रधान के तौर पर शताब्दी सभा का समस्त कार्य करें।

बाबू सीताराम मंत्री और बाबू मदनमोहन सेठ उपमंत्री भी कार्यालय से दूर रहने के कारण अपने २ पदों का कार्य न कर सके परन्तु सभा ने इन के नामों को पृथक् न करके निश्चय किया कि स्वामी सच्चिदानन्द मंत्री और बाबू गजाधर प्रसाद जी उपमंत्री का कार्य करें। यह परिवर्तित निर्वाचन अन्त तक काम में आता रहा। शताब्दी सभा ने एक कार्य कारिणी सभा अपने सदस्यों में से ३६ सदस्यों की बनाकर अपने समस्त अधिकार उसे दे दिये और कोरम ५ का नियत करदिया जिससे सुगमता से उसकी बैठकें समय २ पर यथावश्यक्ता हो सकें। तदनुकूल कार्यकारिणी सभा के परामर्श से समस्त कार्य उत्तमता से होते रहे।



तीसरा परिच्छेद

शताब्दी कार्यालय की ओर से समस्त आर्य समाजों, आर्य संस्थाओं और आर्यपत्रों और विशेष २ पुरुषों को शताब्दी सभा के समस्त निश्चयों और उनके सम्बन्ध में जो कर्तव्य आर्यों और आर्य समाजों का था, इन सब की सूचना पत्रिकाओं द्वारा दी जाती रही। इन पत्रिकाओं (Bulletins) से शताब्दी सभा के समस्त कर्तव्य का पता चल जाता है। इसलिये ये पत्रिकायें शताब्दी का बहुमूल्य रिकार्ड हैं।

कुल २० पत्रिकायें आरंभ से अन्त तक जारी हुई उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

पहली पत्रिका

पहली पत्रिका पौष कृ० ९ संवत् १९८० वै० तदनुसार १ जनवरी १९२३ ई० को जारी हुई थी। इस पत्रिका के द्वारा दिल्ली की सभा के निश्चय, जिनका उल्लेख पहले हो चुका है, प्रकाशित किये गये। उन के सिवा निम्न बातें और भी उस में अङ्कित थीं:-

(१) विद्वानों की एक सभा बनाई गई और निम्न कार्य उस के सुपुर्द किये गये।

क—निश्चित रूप से आर्य मन्दिरों व वेदियों का चित्र तैयार करें ताकि सब मन्दिर तथा वेदियां

उस ही के अनुसार बनाई जावें।

ख—आर्य सामाजिक त्यौहार पद्धति बनाने के लिये।

ग—यह निश्चय करने के लिये कि कौन २ से त्योहार सब मिलकर मनावें तथा परस्पर प्रेम पूर्वक मिलकर पिछले झगड़ों को आपस में क्षमा कर भूल जाया करें।

घ—कुछ एक वेद मन्त्र तथा लोकभाषा के स्तोत्र आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में स्वर सहित गान करने के लिये छपवाये जावें।

ङ—आर्यों का उत्सवों आदि में हर्षनाद व जयनाद निश्चित करने के लिये।

च—एक आर्य-स्मृति संग्रह तैयार करने के लिये।

नोट—(क) आर्य मन्दिर के कई चित्र भिन्न २ प्रतिष्ठित इन्जीनियरों से बनवाये गये और शताब्दी सभा ने उन में से एकचित्र को पसन्द करके निश्चय किया कि आर्यमन्दिरों के आगे का भाग (Front Elevation) इसी चित्र के अनुसार भविष्यत् में बनाये जाया करें। यह चित्र प्रसिद्ध आर्य इन्जीनियर राय ज्वाला प्रसाद जी का बनाया हुआ था। चित्र बहुत देर से शताब्दी कार्यालय में आ सका था इसलिये शताब्दी सभा ने अपनी १५·३·३५ की अन्तिम बैठक में अपनी उत्तराधिकारिणी सभा सार्वदेशिक सभा की सेवा में छपवाकर आर्यसमाजों में भेजने के लिये भेजदिया है। चित्र के लिये देखो परिशिष्ट (क)

(ख+ग) इस के लिये एक पर्वपद्धति तैयार होकर प्रकाशित हो चुकी है। यह पद्धति प्रसिद्ध संस्कृत साहित्य के विद्वान् पं० भवानी प्रसाद जी हल्दौर (बिजनौर) निवासी ने तैयार की थी और आवश्यक परिवर्तनों के बाद सभा ने उसे स्वीकार कर लिया था।

(घ) ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त के ४ मंत्रों को उस सभा ने इस कार्य के लिये निश्चय कर दिया है। वे मन्त्र ये हैं:—

१. संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ। इडस्पदे समिध्यसे सनो वसून्याभर॥

२. संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

३. समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥

४. समानीव आकूतिः समानाहृदयानिवः। समानमस्तु वो यथा वः सुसहासति।

(ङ) जयनाद 'वैदिक धर्म की जय' नियत हो गया है। हर्षनाद के लिये दो वाक्य उपस्थित किये गये थे। एक "ओ३म् खंब्रह्म"। दूसरा-"ओ३म् तत्सत"; परन्तु सभा निश्चय नहीं करसकी कि इनमें से कौनसा हर्षनाद ठहराया जावे।

(च) स्मृति संग्रह तैयार कराया गया था परन्तु आर्य विद्वानों में इस विषय में इतना अधिक मतभेद था कि उसके दूर करने के लिये जो समय था वह पर्याप्त नहीं था। इसलिये समयाभाव से इस कार्य को भी शताब्दी सभा पूरा नहीं कर सकी।



पत्रिका में अङ्कित अन्य निश्चय ये थे :—

(२) वैदिक सिद्धान्तों पर एक अंग्रेज़ी पुस्तक तैयार करने के लिये इन महानुभावों की एक उपसभा बनादी गई है—१ प्रो० रामदेवजी बी० ए० (संयोजक) २ प्रिं० दीवानचन्द्रजी कानपुर, ३ पं० घासीरामजी मेरठ।

(३) मथुरा में जिस मकान में श्री स्वा० विरजानन्दजी रहते थे उसको मोल लेना तथा उसमें एक आश्रम खोलना।

(४) संस्कृत में सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद प्रकाशित किया जाय।

(५) श्री स्वामी विरजानन्द जी की अप्रकाशित पुस्तक को प्राप्तकर तथा देखकर छपवाया जाये।

(६) २५००० मनुष्यों के ठहरने का प्रबन्ध किया जाय और १५००० तथा ३००० के दो पृथक २ पिण्डाल बनाये जायें।

इन सब ख़र्चों के लिये निम्नलिखित वजट स्वीकृत हुआ :—

२००००) पुस्तक प्रकाशनार्थ
१००००) पिण्डाल तथा कैम्प
१००००) विरजानन्द आश्रम
५०००) कार्यालय व्यय
५०००) फुटकर व्यय

५००००) योग

दूसरी पत्रिका

चैत्र कृष्णा १२ सं० १९८० वै० (१ अप्रेल १९२४ ई०) को दूसरी पत्रिका जारी की गई, जिस में लिखा था कि शताब्दी महोत्सव फाल्गुण कृ० ७ से १३ सं० १९८१ वै० तदनुसार १५ से २१ फ़रवरी १९२५ ई० तक मनाया जायगा।

(२) महोत्सव के कार्य्य क्रम के संबंध में सम्मतियां माँगी गई।

(३) कार्य्य कारिणी सभा के बनाये जाने की सूचना दी गई।

(४) परोपकारिणी सभा को शताब्दी संस्करण निकालने की आवश्यक्ता बतलाई गई।

(५) शताब्दी ग्रन्थमाला के ग्रन्थों की तय्यारी की सूचना दी गई।

(६) आर्य्य समाजों की ध्वजाओं (झंडों) के संबंध में शताब्दी सभा ने निश्चय किया कि उस का रंग गेरुआ (लाल) होना चाहिये और उस पर सूर्य्य के

नोट—(२) दुःख है कि यह पुस्तक तैयार नहीं हो सकी।
(३) मथुरा वाला मकान भी प्राप्त नहीं हो सका।
(४) संस्कृत में सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद प्रकाशित हो गया।
(५) कोई उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकी। कुछेक पुस्तकें मिली थीं परन्तु वे, वे थीं जिन्हें स्वामी विरजानन्द जी ने यमुना में डालने के लिये कह दिया था परन्तु पं० जुगल किशोर जी ने उन्हें रख लिया। ऐसी पुस्तकों का प्रकाशित करना उचित नहीं समझा गया। ये पुस्तकें अनार्ष व्याकरण की थीं।
(६) पहले २५०००) का बजट बना था परन्तु वह अपर्याप्त समझा गया और फिर बढ़ाकर ५० सहस्र करना पड़ा परन्तु खर्च इस से भी अधिक ७० हज़ार के लगभग हुआ।

आकार के बीच में ओ३म् का चिन्ह (ॐ) अंकित होना चाहिये।

(७) श्रीमद्दयानन्द संवत् के संबंध में निश्चय हुआ कि जन्म से उस का प्रारंभ ठहराया जाकर शताब्दी महोत्सव के बाद से उस की गणना १०१ समझी जावे और उस का आरंभ विक्रम संवत् के अनुसार किया जाया करे और उसी के अनुसार महीने भी हुआ करें।

तीसरी पत्रिका

यह पत्रिका वैशाख शुक्ला १ सं० १९८१ वै० तदनुसार ४ मई १९२४ ई० को जारी हुई थी। इस पत्रिका में महोत्सव का प्रस्तावित कार्य्य क्रम लिखा गया था और उस पर सम्मति मांगी गई थी।

चौथी पत्रिका

भाद्रपद शु० ७ संवत् १९८१ वै० तदनुसार ५ सितंबर १९२४ ई० को जारी हुई। इस पत्रिका के द्वारा कार्य्य क्रम स्थिर किया गया जिस का विवरण इस प्रकार है।

महोत्सव का कार्यक्रम

१—प्रथम के ६ दिन १५ से २० फ़रवरी तक नित्यं-प्रति प्रातःकाल संध्या के पश्चात् ६॥ बजे से ८ तक बृहत् यज्ञ और साम गान हुआ करे। पूर्ण यजुर्वेद से यज्ञ किया जावे और यत्न किया जावे कि शताब्दी कैम्प में ५ जगह यज्ञ हुआ करे। सब जगह यज्ञ का कार्यक्रम एक जैसा रक्खा जावे और यज्ञ के पश्चात् ८ से ८॥ तक वेदोपदेश हुआ करे।

२—प्रथम के तीन दिन, आर्यपरिषद् प्रातःकाल ८॥ से १० बजे तक वेदोपदेश के पश्चात् छोटे मण्डप में हुआ करे जिसमें निम्न विषयों पर विचार होकर सम्मति स्थिर की जावेः—

(क) वर्णव्यवस्था का सिद्धान्त किस प्रकार कार्य-रूप में परिणत किया जावे।

(ख) आर्य विद्या सभा, आर्य धर्म सभा और आर्य राज्य सभा की स्थापना किस प्रकार इस समय की जावे।

(ग) इस बात पर विचार करके सम्मति स्थिर की जावे कि अछूतों का उपनयन संस्कार आर्य-समाज में प्रवेश के साथ ही कर दिया जाय अथवा कुछ काल बाद।

(घ) इस बात पर विचार किया जावे कि आर्य-समाज का सभासद् होने के लिये केवल १० नियमों का ही मानना आवश्यक है वा किन्हीं और मन्तव्यों का मानना भी ज़रूरी है? यदि हां, तो किन का?

(ङ) संस्कारविधि में वर्णित संस्कारों की पद्धति के संशोधन पर विचार।

च) सदाचार के नियम की व्याख्या।

(छ) आर्य समाज में प्रवेश होने की विधि प्रत्येक के लिये क्या होनी चाहिये, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान या अन्य कोई।

नोट—१—इसी समय में बड़े मण्डप में व्याख्यान और भजन हुआ करेंगे।

„ २—आर्यपरिषद् का निर्माण इस प्रकार से होगा कि आर्यपरिषद् में कुल २५० तक सदस्य हो सकेंगे जिनमें से २०० का निर्वाचन निम्न भांति होगाः—

(१) पंजाब, संयुक्तप्रांत और प्रादेशिक प्रतिनिधि

सभाएं प्रत्येक २०, २० सदस्यों का निर्वाचन करेंगी ६०

(२) मुम्बई,बंगाल,और राजपूताना प्रत्येक१४ कुल ४२

(३) मध्यप्रदेश, ब्रह्मा, और ईस्ट अफ़रीका प्रत्येक ६ सदस्य १८

(४) जहां प्रतिनिधि सभायें नहीं हैं उन समाजों के प्रतिनिधि ८

(५) परोपकारिणी सभा के प्रतिनिधि ... ४

(६) शताब्दी सभा द्वारा निर्वाचित ६८

कुल २००

(७) ४० सभासद् तक आर्यपरिषद् स्वयं आवश्यकता पड़ने पर बढ़ा सकेगी और १० सभासद् तक आवश्यकता पड़ने पर प्रधान बढ़ा सकेगा। कुल २५० ।

३-मध्यान्होत्तर काल में इन्हीं दिनों में १ से ३ बजे तक बड़े मण्डप में निम्नांकित ८ मतों के विद्वान् निम्न प्रश्नों पर उत्तर रूप में अपने २ निबन्ध पढ़ेंगेः—

१-८ मतों के नामः—

१-बौद्ध, २-जैन, ३-ईसाई, ४-पार्सी, ५-इस्लाम, ६-थ्योसोफ़ीकल सुसाइटी, ७-बहाई मत, ८-वैदिकधर्म ।

२-प्रश्नः—

(१) आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी विचार

(२) सृष्टि उत्पत्ति

(३) ज्ञान का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ

(४) मोक्ष और उस के साधन

(५) सुख, दुःख के कारण

४-धार्मिक सम्मेलन के बाद बराबर तीनों दिन ३ से ५ बजे सायंकाल तक निम्न ८ विषयों पर आर्य विद्वान् निवन्ध पढ़ेंगे और इसी समय में दूसरे मंडप में व्याख्यान और भजन हुआ करेंगे।

निवन्ध के विषय :—

(१) त्रैतवाद

(२) ईश्वरीय ज्ञानवेद

(३) वर्णाश्रम व्यवस्था

(४) संस्कार फ़िलासफ़ी

(५) षट्दर्शन में समन्वय

(६) वैदिक सभ्यता में सदाचार का स्थान

(७) वैदिक कर्म कांड और पशुवध

(८) महर्षि दयानन्द के भाष्य की शैली

५-रात्रि के ७ से ९ बजे तक बराबर प्रथम के तीन दिन १५,१६,१७ फ़रवरी तक आर्यसम्मेलन भिन्न भिन्न विषयों पर विचार करने के लिये हुआ करेगा जिन में आर्यजनता को अपने २ विचार प्रकट करने का यथा सम्भव अवसर मिलेगा ।

६-आर्य सम्मेलन के पश्चात् ९ से १० बजे तक प्रतिदिन एक व्याख्यान उपदेश रूप में हुआ करेगा,

७-१८ फ़रवरी को रात्रि में ७ से १० बजे तक भजन और व्याख्यान होंगे और १९ फ़रवरी की रात्रि में इसी समय व्यायाम सम्बन्धी खेल होंगे ।

८-दूसरे तीन दिन १८ से २० फ़रवरी तक का अवशिष्ट कार्यक्रम इस प्रकार होगाः—

(क) वेदोपदेश के पश्चात् एक व्याख्यान ८॥ से ९॥ तक बराबर तीनों दिन होगा ।

(ख) प्रथम के २ दिन १८ और १९ फ़रवरी ९॥ से १०॥ तक उन महानुभावों का परिचय आर्य जनता से कराया जायगा जिन्हों ने ऋषि दयानन्द के दर्शन करने और उनके सत्संग

से लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त किया है। उन्हें विशेष घटनाओं के प्रकट करने का अवसर भी दिया जायगा, जो स्वामीजी महाराज के जीवन से सम्बन्धित और उन की देखी हुई हैं।

(ग) तीसरे दिन आर्य्य परिषद् की अन्तिम वैठक ९॥ से १०॥ बजे तक होगी।

९–मध्याह्नोत्तर काल में १ से ५ बजे तक शारीरिक और मानसिक वल प्रदर्शक व्यायाम और खेलादि होंगे।

नोट १—शताब्दी सभा ने उप-सभा के लेखानुसार १०००) खेलों के पारितोषिक आदि के लिये स्वीकृत किये हैं और यह भी निश्चय किया है कि जो पहलवानों की कुश्ती कराई जावे उन में पेशेवर पहलवान दाखिल न किये जावें।

” २—१९ फ़रवरी की रात्रि के खेल में प्रबंध की आसानी के लिये १), ॥) और ।) के टिकट लगाये जावेंगे और कुश्ती के दिन भी प्रबंध की आसानी के लिये ।॥), ।), और =) के टिकट लगाये जावेंगे।

” ३—निम्न महाशयों की उपसभा इन खेलों का प्रवन्ध करेगी :—

(१) प्रो० रमेशचन्द्र जी संयोजक
(२) ” देवराज जी सेठी M. A. गुरुकुल कांगड़ी
(३) बा० अलखमुरारी जी B. A. सबजज आगरा
(४) कुंवर चांदकरण जी शारदा अजमेर
(५) पं० महेन्द्र नाथ जी शास्त्री
(६) ” जीगालाल जी आ० स० अजमेर
(७) प्रो० अमरनाथ जी D. A. V. कालेज लाहौर।
(८) ” गोविन्दराम जी M. A., D. A. V. कालेज कानपुर

१०–२१ फ़रवरी अर्थात् शिवरात्रि उत्सव के दिवस का कार्यक्रम इस प्रकार होगा :—

(१) वृहत् हवन और पूर्ण आहुति संध्या के पश्चात् ६॥ से ८ बजे प्रातःकाल तक
(२) वेदोपदेश ८ से ९ तक
(३) व्रत ग्रहण, सम्मिलित प्रार्थना और साम गान ९ से ११ तक
(४) मध्याह्नोत्तर काल में १ से ५ बजे तक भजन और अन्त में देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में वेद प्रचार करने और पुस्तक प्रकाशनार्थ (सार्वदेशिक सभा द्वारा) अपील की जावेगी।

नोट—इसी समय आर्य्य पुरुषों की की हुई कतिपय प्रतिज्ञाओं की घोषणा भी की जायगी।

(५) रात्रि में ८ से ११ बजे तक साम गान संगीत और दीपमालिका होकर उत्सव समाप्त होगा।

नोट—व्रत ग्रहण का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक नर-नारी का अपनी अवस्था पर विचार करके अपनी त्रुटियों में से समस्त अथवा कुछेक के दूर करने का दृढ़ निश्चय कर लेना। जो व्रत ग्रहण करेंगे उन्हें उस से पहिली रात्रि में उपवास करना होगा।

५–इस महोत्सव के साथ एक प्रदर्शिनी भी होगी। जो तीन भागों में विभक्त होगी, जैसा कि उस सभा ने जो इसी काम के लिये बनाई गई थी, निश्चय किया है :—

[क] स्वामी जी महाराज के व्यवहृत वस्त्रादि, उन के लिखे पत्रादि और उन के चित्रादि।

[ख] वैदिक साहित्य की पुस्तकें (छपी हुई अथवा हस्तलिखित)

[ग] आर्य्य कन्या पाठशाला, अनाथालय, गुरुकुल, डी० ए० वी० कालेज, और स्कूल आदि समस्त सामाजिक संस्थाओं के विद्यार्थियों की बनाई हुई वस्तुएं तथा सुलेख आदि । प्रदर्शिनी के लिये २५००) का बजट भी स्वीकार किया गया, और प्रदर्शिनी में प्रवेश फीस -) प्रति पुरुष दैनिक नियत की गई एवं प्रदर्शिनी का समस्त प्रबन्धभार निम्न महाशयों की उप सभा के आधीन होना भी निश्चय किया गयाः—

१—बा० घासीराम जी

२—चौ० मुख्तारसिंह जी

३—बा० व्रजनाथ जी संयोजक

और उप सभा को अधिकार दिया गया कि आवश्यकता होने पर ४ तक और सभासद बढ़ा लेवे ।

पांचवीं पत्रिका

कार्तिक कृष्णा १५ सं० १९८१ वै० तदनुसार २८ अक्टोबर सन् १९२४ ई० को पांचवीं पत्रिका प्रकाशित हुई । इस पत्रिका में दूकानों के प्रबंध के संबंध में आवश्यक हिदायतें और नियम थे जिन का सारांश यहां लिखा जाता है ।

१—यात्रियों के निवास के लिये प्रान्त वार कैम्प बनेंगे, और प्रत्येक प्रान्त के कैम्प में रोटी और पूरी की दूकानें रहेंगी । इन दूकानों की संख्या यात्रियों की आनुमानिक संख्या की दृष्टि से नियत की जायगी, और यत्न किया जायगा कि प्रत्येक कैम्प के लिये भोजन की दूकानें उसी प्रान्त से मंगाई जावें ।

२—इन स्थानिक दूकानों के सिवा पिंडाल कैम्प के निकट एक विस्तृत बाज़ार पृथक लगाया जावेगा । इस बाज़ार में निम्न प्रकार की दूकानें होंगी :—

(क) खाद्य वस्तुओं की, जिन में मिठाई, नमकीन, दूध, दही और सब्ज़ी आदि सभी प्रकार की दूकानें सम्मिलित हैं ।

(ख) वैदिक साहित्य, आर्य्य भाषा साहित्य और अन्य भाषा की पुस्तकें ।

नोट—किसी ऐसी पुस्तक के किसी दूकान पर रखने या बेचने की इजाज़त न दी जायगी जो आर्य्यसमाज प्रतिपादित वैदिक धर्म के विरुद्ध हो, या जिस का भारत वर्ष या किसी प्रान्तिक गवर्नमेन्ट ने प्रचार करना आईन विरुद्ध ठहराया हो, या जो अश्लील और सदाचार के नियमों के विरुद्ध हो ।

प्रत्येक भाषा के नाविल या नाटक साधारणतया इसी कोटि के ग्रंथ समझे जायेंगे; और उन का बेचना निषिद्ध समझा जावेगा ।

(ग) हवन सामग्री और हवन पात्रों की ।

(घ) खड़ाऊं या चपलियों की ।

(च) अन्य किसी देशी वस्तु की, जिस के रखने की इजाज़त पहिले से प्राप्त करली गई हो ।

३—किसी दूकान पर विदेशी घृतादि किसी हालत में भी काम में न लाये जायेंगे ।

४—यदि किसी दूकान पर संख्या २ (ख) के नोट में अङ्कित नियमों के विरुद्ध कोई पुस्तक मिलेगी तो वे पुस्तकें ज़ब्त करली जावेंगी, और दूकान

६ घंटे के भीतर खाली करा ली जावेगी। ऐसे दूकानदार भी किराये के अधिकारी (किसी दशा में) न समझे जावेंगे।

छठी पत्रिका

यह पत्रिका कार्तिक शुक्ला १ सं० १९८१ (३० अक्टोबर १९२५ई०) को प्रकाशित हुई थी। इस पत्रिका में स्वयं सेवकों के लिये आवश्यक नियम इस प्रकार थे :—

स्वयं सेवकों का प्रबंध

शताब्दी महोत्सव का प्रबंध एक मुख्य केम्प मैनेजर के आधीन होगा। उस के आधीन प्रत्येक प्रान्तिक केम्प के लिये एक २ केम्प मैनेजर होगा। केम्प मैनेजर के आधीन एक २ विभाग के लिये एक २ कप्तान होगा और उसके आधीन असली काम करने वाले स्वयं सेवक होंगे। केम्प मैनेजर जिस प्रान्त के केम्प का होगा यथा संभव उसी प्रान्त के व्यक्तियों में से नियत किया जायगा। कप्तानों का नियत करना केम्प मैनेजर के आधीन होगा। काम का जो अनुमान किया गया है उस के अनुसार तजवीज़ की गई है कि सम्प्रति १००० स्वयं सेवक नियत किये जावें। ये स्वयं सेवक आर्य्य संस्थाओं के विद्यार्थियों, आर्य्य कुमार सभाओं के सदस्यों तथा अन्य आर्य्य नवयुवकों में से लिये जावेंगे। यदि कोई अधिक आयु के पुरुष स्वयं सेवक बनना चाहेंगे तो वे भी बन सकेंगें।

स्वयं सेवकों की योग्यता

१—स्वयं सेवकों की सब से बड़ी योग्यता यह होगी कि उन में बहुत उच्च श्रेणी का सेवा भाव हो और नम्रता से सेवा करना ही वे अपना धर्म समझते हों।

२—यह अच्छा होगा कि स्वयं सेवक "प्रारंभिक सहायता" (First Aid) के नियमों से जानकारी रखते हों।

३—उन की बहुत थोड़ी आयु नहीं होनी चाहिये।

स्वयं सेवकों की पोशाक

स्वयं सेवकों की पोशाक (वर्दी) यह होगी कि उन के पास कोट और निकर (नीचा जांघिया) और केसरी रंग की पगड़ी हो। बैज उन को शताब्दी केम्प से मिल जावेंगे।

स्वयं सेविका

देवियों से संबंधित कार्य्यों के लिये आर्य्य संस्थाओं की पुत्रियां स्वयं सेविका नियत की जावेंगी। आवश्यक्ता होने पर थोड़ी आयु के कुमार भी उनको सहायता देने के लिये स्वयं सेवक नियत कर दिये जावेंगे।

सातवीं पत्रिका

यह पत्रिका मार्गशीर्ष कृ० ५ सं० १९८१ वै० (१६ नवम्बर १९२४ ई०) को जारी हुई थी। पत्रिका में मुख्यतया इस प्रश्न का उत्तर दिया गया था कि शताब्दी के बाद क्या होगा? पत्रिका के उपयोगी भाग की लिपि यहां दी जाती है:—

शताब्दी के बाद क्या होगा

अनेक सज्जन प्रश्न करते हैं कि शताब्दी महोत्सव के बाद क्या होगा? क्या धूमधाम से उत्सव मनाने के बाद शताब्दी का प्रस्ताव समाप्त समझा जावेगा? प्रश्न उचित, और पूछने के योग्य है। शताब्दी सभा ने भी इस प्रश्न पर विचार किया है, और सभा विचार के बाद, इस परिणाम पर पहुँची है कि यदि शताब्दी महोत्सव के बाद शताब्दी

के प्रस्ताव की इति श्री समझी गई तो यह महोत्सव मनाना यदि सर्वथा निष्फल नहीं तो निष्फल के सदृश अवश्य होगा। फिर उत्सव के बाद क्या होगा सभा ने इस का भी निश्चय किया है। ऋषि दयानन्द ने, जिनकी हम जन्म-शताब्दी मनाने लगे हैं, अपने स्वीकार पत्र में ३ बातें लिखी थीं:—

(१)— वेद वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उन की व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनाने, और छापने छपवाने।

(२)—वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक मंडली नियत करके देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में भेजकर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराना आदि।

(३)—आर्यावर्तीय अनाथ और दीन मनुष्यों के रक्षण, पोषण और सुशिक्षा में उनका छोड़ा हुआ धन व्यय किया जावे। स्वीकार पत्र में अङ्कित ३ बातों में से अन्तिम के लिये तो आर्य समाजों ने अवश्य कुच्छ यत्न किया है। अनेक स्थानों में अनाथालय खुले हुए हैं जिन में सहस्रों अनाथ बालक बालिकाओं का भरण और पोषण होता है। बाक़ी दो बातों के संबंध में कुच्छ भी नहीं किया गया। वैदिक प्रेस अजमेर केवल एक बार ऋषि दयानन्द का भाष्य ही छाप सका है जिसका छपना स्वामीजी के जीवन काल ही में प्रारम्भ हो चुका था। इसी लिये शताब्दी सभा द्वारा यह निश्चय हुआ है कि जिन दो बातों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है उन्हीं की पूर्ति का विशेष यत्न शताब्दी महोत्सव के बाद, शताब्दी के उपलक्ष में किया जावे; अर्थात् देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में वेद प्रचार करने का कार्य प्रारम्भ किया जावे, और मौखिक प्रचार के सिवा लेख बद्ध प्रचार का कार्य भी पुस्तक प्रकाशन द्वारा जारी किया जावे। शताब्दी महोत्सव के अन्त में इन्हीं कार्यों के लिये धन और जन दोनों के लिये अपील की जावेगी। विश्वास है कि न केवल पुष्कल धन एकत्र हो जायगा किन्तु बहुत से सज्जन अपने आप को इन कार्यों के लिये अर्पण भी करेंगे।

इस समय विदेशों में सायन्स की उन्नति उन्हें वैदिक धर्म की ओर ला रही है। इस लिये यह उचित समय है कि आर्य मिश्नरी विदेशों में जाकर वहां के निवासियों को वैदिक धर्म की दीक्षा देवें। लेखबद्ध प्रचार के संबन्ध में अनेक पुस्तकों और तरह २ के अल्प मूल्य वाले गुटके तैयार होने चाहियें जिनसे प्रत्येक देश निवासी के हाथ में वेद सम्बन्धी कोई न कोई पुस्तक पहुंच जावे। वेदों के सम्बन्ध में अनेक खोजें करनी पड़ेंगी। इस समय ऋग्वेदादि का क्रम प्रायः ऋषि परक है, अर्थात् एक २ ऋषि के साक्षातकृत मन्त्र एक जगह हैं चाहे वे कितने ही भिन्न २ विषयों के क्यों न हों, उन्हें देवता परक करना पड़ेगा जिससे एक २ विषय के समस्त मन्त्र एक जगह हो जावें, और जिससे प्रत्येक विषय के सम्बन्ध में वेदों की समस्त शिक्षाएँ एक जगह मिल सकें। ब्राह्मण ग्रन्थों की देख भाल अभी की ही नहीं गई। कपिल और जैमिनि के दर्शनों को नवीन लेखक उनकी गणना आस्तिक दर्शनों में होते हुये भी नास्तिक दर्शन प्रकट कर रहे हैं। इन का आर्य समाज ने कुच्छ

भी समाधान नहीं किया। वैदिक धर्म के विरुद्ध अनेक छोटी बड़ी पुस्तकें विपक्षियों की ओर से लिखी जा रही हैं उनके उत्तर देने की तो बात ही क्या है उन में से अनेक का ज्ञान भी आर्य विद्वानों को नहीं होता। भला कोई धर्म प्रचारक समाज इतनी उपेक्षा करके जीवित रह सक्ता है? इसलिये इन सारी कमियों की पूर्ति के लिये एक अच्छे पुस्तक प्रकाशन गृह (Publishing House) की आवश्यकता है जिस से लेखबद्ध प्रचार हो सके। ये ही दो काम हैं जो करने होंगे।

आठवीं पत्रिका

यह पत्रिका मार्गशीर्ष कृ० १४ सं० १९८१ वैं० (२५ नवम्बर १९२४ ई०) को जारी हुई थी। इस पत्रिका का उद्देश्य यह था कि समस्त आर्य संस्थाओं (गुरुकुल,कौलिज एवं पाठशाला आदि)के अध्यक्षों से प्रेरणा की जाय कि वे अपनी २ संस्थाओं में १०-१० दिन की छुट्टी करदें जिससे महोत्सव में सम्मिलित होने और सेवा करने का अवसर अध्यापकों और विद्यार्थियों को मिल सके। प्रसन्नता की बात है कि समस्त आर्य संस्थाओं में पत्रिका के आशयानुसार छुट्टियाँ दी गई।

नवीं पत्रिका

पौष कृष्णा ११ सं० १९८१ वैं० (२२ दिसम्बर १९२४ ई०) को यह पत्रिका प्रकाशित हुई। इस में कतिपय बातें अंकित थीं जिनमें से मुख्य ये हैं :—

(१) साप्ताहिक सत्संघ—

बार २ यह बात आर्य्य समाज के अधिकारियों तथा अन्य सज्जनों की ओर से कही गई थी कि आर्य समाजों के साप्ताहिक सत्संघ एक जैसे नहीं होते। इसलिये शताब्दी सभा निश्चय करे कि इन सत्संघों में सब जगह एक जैसा कार्य्य हुआ करे। तदनुसार शताब्दी सभा ने अनेक सज्जनों से रायें लेकर और अपनी उपसभा की सम्मति पर विचार करके, अपने ७ वीं दिसम्बर १९२४ ई० के अधिवेशन में निश्चय किया है कि साप्ताहिक सत्संघ का क्रम इस प्रकार हुआ करे :—

(१) ये सत्संघ प्रायः प्रातःकाल हुआ करें।

(२) प्रथम सब उपस्थित सभासद मिलकर सन्ध्या या कुछेक अन्य वेद मंत्रों का पाठ उच्चस्वर से किया करें।

नोट—प्रातः और सायं नियमित रीति से एकान्त स्थान में सन्ध्या करने का नियम इस सन्ध्या मंत्र पाठ से शिथिल नहीं होगा।

(३) इस के बाद हवन हुआ करे।

(४) फिर ईश्वर स्तुति और प्रार्थना के भजन गाये जाया करें।

(५) तदनन्तर वेद और आर्य्य ग्रन्थों की कथा हो।

(६) तत्पश्चात् उपदेश हुआ करे।

(७) फिर सब सभासद मिलकर उच्चस्वर से ऋग्वेद के अन्तिम सुक्त के (४) चार मंत्रों का पाठ किया करें।

नोट—ये मंत्र समस्त आर्य्यों को याद कर लेने चाहियें

(८) फिर भजन हों।

(९) अन्त में आवश्यक सुचनाएँ देकर शान्ति पाठ के बाद सत्संघ विसर्जन हुआ करे। समस्त आर्य्य समाजों के अधिकारियों को यत्न करना चाहिये कि उपुर्युक्त भाँति

साप्ताहिक सत्संग हुआ करे।

(२) महोत्सव में यज्ञ

अब यह निश्चित हो गया है कि पांचों यज्ञ केवल यजुर्वेद से न होंगे किंतु चार यज्ञ तो चारों वेदों से होंगे और पांचवां यजुर्वेद से होगा। इस प्रकार यजुर्वेद से दो जगह यज्ञ होंगे, और बाक़ी तीन वेदों से एक २ यज्ञ पृथक २ स्थानों पर होगा।

(३) सरकारी दफ्तरों में छुट्टी

शताब्दी सभा की ओर से गवर्नमेन्ट आफ़ इन्डिया को लिखा गया था कि शताब्दी के उपलक्ष में १६ से २० फ़रवरी तक की छुट्टी करदी जावे। १५ और २२ फ़रवरी को रविवार और २१ फ़रवरी को शिवरात्रि की छुट्टी पहिले से हीं थी। उस पर प्रशंसित गवर्नमेन्ट ने उत्सव में जाने वाले आर्यों को छुट्टी देना स्वीकार करलिया। गवर्नमेन्ट की चिट्ठी की लिपि इस प्रकार हैः—

No. F. 849 Public / 24

Government of India–Home Department

From,

The Assistant Secretary
to the Government of India.

To The President.

All India Dayanand Centenary,
Committee, Muttra.

Subject–Holiday for Arya Samajists on the occasion of the Dayanand Centenary..

Sir,

I am directed to acknowledge the receipt of your letter No. 12539 dated the 5th Nov. 1924. I am to say that it is within the Competence of Local Government to grant leave to the employees serving under them and to suggest that you should address them in the matter. As regards the employees of the Government of India offices, such facilities to attend the Centenary as the state of work permits will be given to those Arya Samajists who apply for leave for the purpose.

I have the honor to be,
Sir
Your most obedient servant.
K. P. ANANTAN
Assistant Secretary to the Govt. of India.

उन लोगों को भी छुट्टी मिल जाय जो लोकल गवर्नमेन्ट के आधीन काम करते हैं इस उद्देश्य से समस्त लोकल गवर्नमेन्टों को पत्र भेजे गये थे और प्रसन्नता की बात है कि प्रायः सभी गवर्नमेन्टों ने गवर्नमेन्ट आव इन्डिया के ही शब्दों में छुट्टी की स्वीकारी दे दी थी। देशी राज्यों को भी पत्र लिखे गये थे कि वे भी छुट्टी देवें। उन में से भी बहुतों ने छुट्टी देना स्वीकार कर लिया था। हिन्दू विश्व-विद्यालय के वाईस चान्सलर ने भी अपने विद्यार्थियों को उपरोक्त भांति छुट्टी दे दी थी।

दसवीं पत्रिका

यह पत्रिका पौष कृष्णा १३ सं० १९८१ वै० (२४ दिसम्बर १९२४ ई०) को जारी हुई थी। इसके अनुसार धर्म सम्मेलन (Religious Parliament) का कार्य्य-क्रम आघोषित किया गया था। यह सम्मेलन शताब्दी महोत्सव का ही एक अङ्ग था।

ग्यारहवीं पत्रिका

यह पत्रिका पौष शुक्ला ७ सं० १९८१ वै० (१ जनवरी १९२५ ई०) को प्रकाशित हुई थी। यह पत्रिका शताब्दी महोत्सव के समय देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में वैदिक प्रचार और वैदिक साहित्य मंडल की स्थापना के लिये होने वाली अपील का अच्छा उत्तर देने के लिये आर्य्य जनता को उत्तेजना देने के लिये जारी हुई थी।

बारहवीं पत्रिका

यह पत्रिका पौष शुक्ला ७ सं० १९८१ वै० (२ जनवरी १९२५ ई०) को जारी हुई थी। इस पत्रिका से शताब्दी केम्प में रहन सहन का प्रवंध किस प्रकार का था इस की सूचना जनता को दी गई थी।

तेरहवीं पत्रिका

माघ कृष्ण ११ सं० १९८१ वै० (२० जनवरी १९२५ ई०) को इस पत्रिका के द्वारा शताब्दी महोत्सव का सविस्तर कार्यक्रम प्रकाशित किया गया था।

चौदहवीं पत्रिका

यह पत्रिका माघ कृष्ण। १२ सं० १९८१ वै० (२१ जनवरी १९२५ ई०) को प्रकाशित हुई थी। पत्रिका से शताब्दी महोत्सव के प्रबंध का भास होगा, इस लिये उस के उपयोगी भाग की लिपि यहां दी जाती है :—

यह आवश्यक है कि शताब्दी शिविर (कैम्प) के सुव्यवस्थित रखने के लिये आवश्यक नियम बनाये जावें। तदनुसार ये नियम प्रकाशित किये जाते हैं। कैम्प प्रान्तवार बनाये गये हैं। प्रत्येक कैम्प का एक 'शिविर प्रबन्धक' (Camp Manager) नियत किया गया है। प्रत्येक कैम्प मैनेजर शिविर की प्रबन्ध नीति, मुख्य शिविर प्रबन्धक (Chief camp manager) की नीति के अनुकूल रक्खेगा। मुख्य शिविर प्रबन्धक शताब्दी सभा की नीति का पाबन्द होगा। प्रत्येक कैम्प में स्वयं सेवक आवश्यक सेवा कार्य करेंगे। दूकानदार खाद्य वस्तुएँ बनावेंगे, और यात्री निवास करेंगे इस लिये तीनों विभागों के लिये नियम बनाये गये हैं उनका विवरण इस प्रकार है:—

(१) स्वयं सेवक

स्वयं सेवक दो प्रकार के होंगे:—

(१) स्थिर, जो बराबर उत्सव के दिनों में नियम पूर्वक स्वयं सेवकों का कार्य करेंगे।

(२) अस्थिर, जो यात्रियों में से प्रति दिन सेवा के लिये ले लिये जाया करेंगे।

(१) स्थिर स्वयं सेवकों को सेवा समय अपने वेष में रहना होगा।

(२) स्वयं सेवकों को अपनी ड्यूटी पर ठीक समय पर उपस्थित होना परमावश्यक है।

(३) अपने मुखिया तथा शिविर प्रबन्धक की आज्ञा पालन में दृढ़ रहना चाहिये।

(४) पवित्रता का भाव रखते हुए जनता के साथ आदर और प्रेम का नम्रता पूर्वक व्यवहार करना चाहिये।

(५) प्रत्येक यात्री का कष्ट निवारण करके सुख पहुंचाना, उन को अपना लक्ष्य बनाये रखना चाहिये।

(६) स्त्रियों और बालकों की सहायता का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(७) कोई आपत्ति जनक घटना होने पर आपत्ति निवारणार्थ सुरक्षित स्वयं सेवकों को तुरन्त घटना स्थल पर पहुंचना होगा।

(८) कार्य पर लगे हुये स्वयं सेवकों को अपना कार्य बिना आज्ञा के नहीं छोड़ना चाहिये।

(९) घटना की सूचना तत्काल शिविर प्रबन्धक को देनी चाहिये।

(१०) अपने कार्य की रिपोर्ट नित्य प्रति नोटबुक में दर्ज करके कैंम्पाध्यक्ष से निरीक्षण करालेना चाहिये।

नोट—स्वयं सेवकों को अपने सेवा भाव को ध्यान रखते हुए सेवा समय के अतिरिक्त भी उक्त नियमों के पालन करने में हर्ष अनुभव करना चाहिये।

पत्रिका सं० ५ में वर्णित नियमों को लक्ष्य में रखते हुए खाद्यवस्तुओं के दूकानदारों के लिये विशेष नियम बनाये जाते हैं।

(२) दूकानदारों के नियम

(१) लिखित स्वीकृति प्राप्त किये बिना दूकानदारों को कैम्प में दूकान लगाने का अधिकार न होगा।

(२) दूकान शुद्ध रखनी होगी और प्रत्येक खाद्य वस्तु शुद्धता से तैयार करनी व रखनी होगी।

(३) खाने पीने की दूकान के सामने कीचड़ नहीं होना चाहिये।

(४) भट्टी तथा चूल्हे की आग का विशेष ध्यान रक्खा जावे और काम समाप्त होने पर तत्काल बुझा दी जाया करे।

(५) प्रत्येक दूकानदार को अग्नि बुझाने के लिये पानी वा मिट्टी का पूरा प्रबंध रखना चाहिये।

(६) दूकान पर जो रोशनी हो वह शीशे की चिमनी की होगी।

(७) शुद्ध घृत, शुद्ध दूध तथा देशी खांड बर्तनी होगी।

(८) प्रत्येक वस्तु नियत भाव पर बेची जावेगी !

(९) यदि कोई वस्तु मलीन तथा हानिकारक पाई जावेगी तो वह उठवा दी जावेगी।

(१०) भोजन तैयार करने या पानी के वास्ते कूप या नल का शुद्ध जल काम में लाना होगा।

(११) उपरोक्त नियमों में से किसी का उलंघन करने पर तुरन्त दूकान खाली करनी होगी।

(१२) दूकानदार लोग यात्रियों के साथ नम्रता पूर्वक बात चीत किया करेंगे। यात्रियों को भी ऐसा ही करना होगा।

---

(३) यात्रियों के नियम

(१) जो घर से चलकर कैम्प में पहुंचने तक काम आवेंगे

(१) भीड़ होने के कारण रेलादि के मार्ग में अपने असबाब की विशेष देख भाल रक्खें। यथा

संभव कम बोझे का सामान साथ लावें।

(२) बालकों तथा स्त्रियोंकी रक्षा के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि मूल्यवान् आभूषण तथा वस्त्र साथ न लाये जावें।

(३) गाड़ी बदलने वाले स्टेशनों पर स्वयंसेवकों से सहायता ले लेनी चाहिये वे इसी कार्य के वास्ते वहां नियत होंगे।

(४) अपने आने की सूचना मैनेजर कैम्प को १ सप्ताह पूर्व भेजदें जिस में परिवार की संख्या भी लिख दी जावे ताकि प्रबन्ध में सुगमता हो।

(५) स्टेशन से उतर कर कुली अथवा तांगा आदि आवश्यकतानुसार मिलेंगे। उनका रेट आदि नियत होगा उस से अधिक न दें। स्टेशन पर स्वयंसेवक उपस्थित होंगे।

(६) स्टेशन से उतर कर सीधे अपने २ प्रान्त के शिविर प्रबन्धक के कार्य्यालय में आ जावें जहां से उनके ठहरने का उचित प्रबन्ध हो जावेगा।

(७) प्रत्येक यात्री को अपने साथ दस्ती लालटेन ज़रूर लानी चाहिये।

(२) *कैम्प में पालन किये जाने वाले नियम*

(८) कम से कम जगह में जो स्थान उनको निश्चित कर के दिया गया है उसी में निवास करें।

(९) असबाब को पूर्ण सावधानी से रक्खें, बिखरा हुआ न रहे, ट्रंक आदि खुले न रहें।

(१०) प्रातः तथा सायंकाल नियत सीमा के उपरान्त शौचादि को जावें। कैम्प में नियत किये हुए पाखाने बालकों तथा रोगियों के लिये ही हैं।

(११) मोमबत्ती या खुला दीपक न जलाया जाय।

(१२) यदि भोजन बनाना हो तो नियत स्थान पर बनाया जावे और कार्य्य के पश्चात् अग्नि बुझा दी जावे।

(१३) अग्निहोत्र वाली अग्नि शांत होने पर ही यात्री अपने स्थान को छोड़ें।

(१४) बिछाने के वास्ते चटाई, घड़ा, तथा भोजन सामग्री नियत मूल्य पर मिलेंगी।

(१५) जो कष्ट हो उसकी सूचना स्वयंसेवक द्वारा कैम्प मैनेजर को देनी चाहिये।

(१६) यात्रियों के बहुतायत से आने की सम्भावना है, इस लिये प्रत्येक यात्री को कम से कम जगह में निर्वाह कर लेना चाहिये। यदि कोई यात्री जगह न होने से कष्ट उठा रहा हो तो ठहरे हुए यात्रियों का कर्त्तव्य होगा कि उसको जिस प्रकार भी संभव हो सके जगह देवें।

(१७) प्रत्येक यात्री का कर्त्तव्य है कि स्त्रियों और बालकों के प्रति पवित्रता का भाव रक्खें और उन की रक्षा का अपने को उत्तरदाता समझें और जहां भी उन्हें कष्ट में देखें। उसे दूर किये बिना चैन न लें।

(१८) यदि कोई वस्तु किसी यात्री की पड़ी हुई मिले तो उसे शिविर-प्रबन्धक की सेवा में पहुंचादें।

(१९) यदि दुर्भाग्य से किसी यात्री को तम्बाकू या सिग्रेटादि पीने का अभ्यास हो तो उसे इस बुरे अभ्यास को सदैव के लिये छोड़ देना चाहिये। यदि न छोड़ सकें तो शताब्दी कैम्प में निवास काल के लिये तो छोड़ ही देना चाहिये। यदि ऐसा भी न कर सकें तो यह अच्छा होगा कि ऐसे पुरुष शताब्दी महोत्सव में आने का कष्ट न उठावें।

(२०) यात्रियों को स्नान यमुना में करना चाहिये या शिवताल में, जो मंडप के ठीक पीछे है। स्त्रियों के भी स्नान का प्रबन्ध ताल में किया गया है, उनके लिये वहां परदा लगा दिया गया है। नलों पर स्नान करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। उन का जल केवल पीने के काम में लाना चाहिए।

(२१) जो यात्री धर्मशालाओं में ठहरें वे भी इन नियमों में से उतनों का पालन करें जितने उन से संबंधित हों।

यदि तीनों विभाग के सज्जन इन नियमों का पालन करेंगे तो आशा है कि वे शताब्दी महोत्सव के समय और पीछे आर्य्य समाज की ख्याति का विस्तार करेंगे और इस की उनसे पूर्ण आशा की जाती है। एवमस्तु।

पत्रिका सं० १५

यह पत्रिका माघ शुक्ला २ सं० १९८१ (२६ जनवरी १९२५) को जारी हुई थी और इस में महोत्सव में होने वाली अपील का विवरण दिया गया था जिसके उपयोगी भाग की लिपि यहां दी जाती है।

विदेश प्रचार

विदेश प्रचार की ज़रूरत किसी से छिपी हुई नहीं है। वैज्ञानिक और धार्मिक जगत का मुँह वेदों की ओर हो गया है। वेदों की ओर चलो (Back to Vedas) यह आज कल की प्रसिद्ध पुकार है। युरोप, अमेरिका आदि किसी देश में भी प्रचार करने के लिये निरन्तर एक विद्वान उपदेशक का वहां रहना ज़रूरी है। कम से कम पांच देशों में तो प्रचार शुरू करना चाहिये। एक उपदेशक के साधारणतया निर्वाह के लिये जो विदेश में रहे, कम से कम २५०) मासिक की ज़रूरत है। स्थिर प्रवन्ध होने के लिये पचास सहस्र धन की एक स्थिर निधि अपेक्षित है, जिसका सूद २५०) मासिक हो। इस प्रकार के पाँच उपदेशकों के स्थिर प्रबन्ध के लिये ढाई लाख रुपये होने चाहियें। धनी पुरुष अपने या अपने सम्बन्धियों की यादगार में उनके नाम से यह "विदेश प्रचार स्थिर निधि" की स्थापना कर सकते हैं। इस निधि के नाम के प्रारम्भ में वह नाम सदैव जुड़ा हुआ रहेगा, जिसकी यादगार यह निधि होगी। इस प्रकार पाँच ही धनी पुरुष इस विदेश प्रचार की आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं।

लेखबद्ध प्रचार

इस के लिये वैदिक-साहित्य मंडल (Publishing House) खोला जावेगा, जिस के द्वारा वेद और वैदिक साहित्य के अनेक ग्रन्थ छपेंगे। प्रत्येक देशकी भाषा में वेदों का अनुवाद होगा। संस्कृत भाषा के सहस्रों अप्रकाशित ग्रन्थ प्रकाशित किये जावेंगे और देश और विदेश सभी जगह उन का प्रचार होगा जिस से वैदिक सभ्यता का विस्तार होगा। प्राचीन ऋषि मुनियों की शिक्षा से जगत दीक्षित किया जायगा। इस के लिये भी ढाई लाख रुपये की ज़रूरत है। इस धन के भी अनेक विभाग हो सकते हैं। कोई वेदों के अनेक भाषाओं में छपाने के लिये अपने या जिस के भी नाम से चाहें स्थिर निधि खोल सकते हैं। कोई अंगरेज़ी भाषा में वैदिक साहित्य के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हो, इसी के लिये धन दे सकते हैं। कोई अच्छे २ विदेशी भाषाओं के ग्रन्थों को मातृ भाषा में अनुवाद करने के लिये ही कोई

निधि क़ायम कर सकते हैं। इस प्रकार मौखिक और लेखबद्ध प्रचार के लिये पांच लाख रुपयों की ज़रूरत है। ११ वीं पत्रिका में प्रार्थना की गई थी कि ऋषि के जन्म दिवस तक एक लाख रुपये आर्य पुरुषों को एकत्र कर देने चाहियें। इस पत्रिका में उस समस्त धन का विवरण दिया गया है जिससे ऋषि दयानन्द की वसीअत की पूर्ति हो सकती है। इसी धन की पूर्ति के लिये ऋषि दयानन्द की जन्म शताब्दी दिवस अपील की जावेगी। इस महोत्सव में संख्यातीत नरनारी एकत्रित होंगे, यदि वे उत्साह से काम लेवें और अपनी २ सामर्थ्य और श्रद्धानुसार इस महान यज्ञ में आहुति देवें तो कुछ भी कठिन नहीं है कि इस धन की पूर्ति होजावे। हम आर्य जनता और प्राचीन सभ्यता के विस्तार की इच्छा रखने वाले सज्जनों से आशा रखते हैं कि उन के प्रयत्न और उदारता से यह यज्ञ पूरा होगा।

सोलहवीं पत्रिका

यह पत्रिका माघ शु० ११ सं० १९८१ (४ फ़रवरी १९२५) को प्रकाशित हुई थी, इस के रू से समाजों को सूचना दी गई थी कि वे ऋषि दयानन्द का जन्म दिवस १२ फ़रवरी १९२५ को मनावें। उस के उपयोगी भाग की लिपि इस प्रकार है :—

प्रस्ताव सं० २

"लाला काशीराम जी वैद्य लाहौर का पत्र पढ़ा गया जिस में उन्हों ने लिखा था कि आर्य्य समाज में जन्म-दिवस १५ फ़रवरी से पहले या २१ फ़रवरी के बाद मनाया जावे। इस पर अच्छी तरह से विचार किया गया और अन्त में सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि १२ फ़रवरी १९२५ (गुरुवार) को समस्त आर्य्य जगत् में ऋषि दयानन्द का जन्मोत्सव मनाया जावे और उस दिन बालकों को मिठाई बांटी जावे, भूखों को भोजन दिया जावे, प्रीति भोजन किये जावें और रात्रि में प्रत्येक आर्य्य अपने २ गृहों में रोशनी करे एवं आर्य्य मन्दिरों में भी रोशनी की जावे"

सभा का यह निश्चय आर्य्य समाजों में इसी उद्देश्य से भेजा गया कि इस के अनुसार कार्य करें और १२ फ़रवरी को बड़े उत्साह और समारोह से उत्सव मनावें। उत्सव मना कर मथुरा के लिये प्रस्थान करदें।

सत्तरहवीं पत्रिका

यह पत्रिका माघ शुक्ला १२ सं० १९८१ वै० (५ फ़रवरी १९२५ ई०) को प्रकाशित हुई थी। इस के द्वारा शताब्दी महोत्सव में होने वाली आर्य परिषद् का कार्य-क्रम प्रकाशित किया गया था।

अठारहवीं पत्रिका

इस पत्रिका के द्वारा आर्य्य सम्मेलन का कार्य-क्रम फाल्गुण कृष्ण ४ सं०१९८१(१२ फ़रवरी १९२५) को प्रकाशित किया गया था।

उन्नीसवीं पत्रिका

यह पत्रिका फाल्गुण कृष्णा ११ सं० १९८१ वै० (१९ फ़रवरी १९२५ ई०) को प्रकाशित हुई थी। इस में सम्मिलित प्रार्थना अंकित थी जिस की लिपि नीचे है :—

" सम्मिलित प्रार्थना "

आज अर्वाचीन आर्य्यावर्त के सब से बड़े सुधारक ऋषि दयानन्द का जन्म दिवस है। प्रभो! आप ही की प्रेरणा से देश में दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ था। आर्य्यजाति की दुरवस्था, अनाथों की पुकार, विधवाओं का विलाप, वैदिक धर्म की दुर्दशा, वैदिक सभ्यता का मरणोन्मुख होना, सदाचार का मूल्य घटना, देश का विदेशियों द्वारा पददलित होना आदि ऐसी बातें नहीं थीं जो दयानन्द के जन्म की प्रेरणा का कारण न बनतीं। प्रभो! दयानन्द ने जन्म लेकर आपकी प्रेरणा का उद्देश्य समझा। मुनि विरजानन्द उस उद्देश्य के समझाने का निमित्त बने। दयानन्द ने इसी उद्देश्य की पूर्तिरूप यज्ञ में अपने जीवन की आहुति दी। यज्ञ से सुगन्धि निकली, कहीं वह अनाथालयों के रूप में दिखाई दी, कहीं स्कूल और कालेज, कहीं संस्कृत पाठशाला और गुरुकुल, कहीं दलितोद्धार सभा और शुद्धिसभा, कहीं मुफ़्त चिकित्सा और दरिद्रालयों, कहीं कुरीति निवारिणी और स्वराज्य सभाओं, कहीं मद्य निवारिणी और व्यायाम प्रचारिणी सभाओं आदि के रूपों में प्रकट हुई। प्रभो! आज जो हम यह शताब्दी जन्म महोत्सव मना रहे हैं यह भी उसी आहुति की एक तुच्छ सुगंधि है।

ऐसे पवित्र अवसर पर, प्रभो! यहां एकत्रित हुए हम लक्षों नर नारी इस सारे चमत्कार को आप की अपार दया की एक विभूति समझते हुए, कृतज्ञता प्रकाश करने के लिये, श्रद्धा, भक्ति और प्रेम के साथ आप के सम्मुख अपने शिरों को झुकाते हैं [यहां सब उपस्थित नर नारियों ने अपने शिर झुका लिये थे] और प्राणीमात्र के उपकार के लिये, जो आर्य्य समाज का मुख्य उद्देश्य है, आप के दिये हुये वेदों के शब्दों ही में आप से

प्रार्थना करते हैं :-

५+ १ ४ ३ +५ ११+ २ १० ९ ६
आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्, आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइष-
७ ८ +११ १२ १३ १४ १५ १६ १७
व्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्, दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वा नाशुः सप्तिः
१८ १९ २१ २० २२ २३ २५ २६ २७ २४ २९
पुरन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठाः, सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे
३० २८ ३१ ३२ ३५ ३३ ३४ ३६ ३८ ३७
निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां, योगक्षेमो नः
३९
कल्पताम् ॥ यजु० २२ । २२)

हे प्रभो! इस वृहद्राष्ट्र में तेजस्वी वेद वित् ब्राह्मण उत्पन्न हों। शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण, दुष्टों का दमन करने वाले, महा बलवान्, निर्भय, और वीर क्षत्रिय उत्पन्न हों, दूध देने वाली गायें, भार लेजाने वाले बैल, शीघ्रगामी घोड़े, व्यवहारकुशल स्त्रियां, महारथी शत्रुओं के विजेता पुरुष उत्पन्न हों। यजमान का घर वीर पुत्रों से भरा हो, आवश्यक्ता होने पर वर्षा हुआ करे, हमारे लिये उत्तम फलों को देने वाली औषधियें पकें और हमारा योगक्षेम हो।

शमित्योम्

बीसवीं पत्रिका

यह अन्तिम पत्रिका ज्येष्ठ कृष्णा सं०१९८१ वि० तदनुसार २० मार्च सन् १९२५ ई० को प्रकाशित हुई।

श्री मद्दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव।

जगदीश्वर को अनेक धन्यवाद है कि उन के अनुग्रह से शताब्दी महोत्सव सफलता पूर्वक समाप्त हो गया। यह अन्तिम पत्रिका है जिस के साथ, शताब्दी कार्य्यालय का कार्य समाप्त होकर कार्यालय बन्द हुआ। १५ मार्च को देहली के सार्वदेशिक भवन में शताब्दी-कार्य-कारिणी सभा की अन्तिम बैठक हुई जिस में शताब्दी के आय व्यय के लेखे को, जिस की नियम पूर्वक जांच हो चुकी थी, प्रशंसित सभा ने स्वीकार करके निश्चय किया कि समस्त शताब्दी सभा का धन और सम्पत्ति सभा के कर्तव्य और अधिकार के साथ सार्वदेशिक

सभा को सौंप दिया जावे। तदनुकूल समस्त धन संपत्ति प्रशंसित सभा के योग्य मंत्री श्री डाक्टर केशवदेव शास्त्री M. D. को सोंप दिया गया। अब शताब्दी कार्यालय बन्द हो गया और आगे किसी को शताब्दी कार्यालय मथुरा के नाम कोई पत्रादि नहीं भेजने चाहियें।

(२) शताब्दी सभा ने ५० सहस्र का वजट बनाकर इस धन की पूर्ति का भार प्रान्तिक आर्यप्रतिनिधि सभाओं के आधीन किया था। प्रतिनिधि सभाओं से जो धन वसूल हुआ तथा जो अन्य आय महोत्सव के सम्बन्ध में हुई उस का विवरण इस प्रकार से है :—

(१)	५० सहस्र मध्ये	३५६३५॥)
(२)	डेरों का किराया	६२२६)
(३)	दूकानों का "	२८५६।=)
(४)	पुस्तकों की विक्री	२७१३।≡)॥।
(५)	यज्ञों के लिये दान	२८००।)
(६)	बल्ली-बांस की विक्री	११६१।)
(७)	प्रदर्शिनी द्वारा	४३६)
(८)	खेल के टिकटों द्वारा	२१६४॥।)
(९)	विविध	१५५५=)॥।
	योग	५५५४८॥।)॥

पिंडाल और कैम्प की तय्यारी तथा महोत्सव के अन्य कार्यों में जो व्यय हुआ उस का विवरण इस प्रकार है :—

३८४२॥।-)॥।	कर्मचारियों का वेतन और मार्गव्यय
१४१-)॥।	स्टेशनरी
१०८६॥-)॥।	डाकव्यय
३३८=)॥	तार का व्यय
२९।=)॥	मामूली फ़रनीचर
१४७२॥।=)॥	छपाई पत्रिकादि
११८२४॥)॥	पुस्तकों की छपाई
३१०१॥।≡)।	भोजन व्यय
३३४८।=)	पिंडाल
१४३)	बैंड का मार्ग व्यय
४४५≡)	शताब्दी रिपोर्टरों का वेतन और मार्गव्यय
२४७४०।=)॥	कैम्पों की तय्यारी का व्यय
२२५॥≡)	पहरा व सफ़ाई
१६९२।≡)	रोशनी का सरफ़ा
५५४॥=)	प्याऊ तथा चरसा आदि
९६५॥=)॥	स्वयं सेवकों का भोजन व्यय
६३२८॥।=)॥	डेरों का किराया
१६७५-)	खेलों का व्यय
३१३॥-)	प्रदर्शिनी का व्यय
४३७)	वापसी किराया डेरा
२९१६॥)॥।	यज्ञों का व्यय
६३३॥।=)	छपाई नोटों की
४६४≡)।	बालटी लालटेन आदि क्रय की गई
२६४२॥=)	विविध
६९३७४॥।-)	योग
५५५४८॥।)॥	आय
१३८२६)॥	हानि हुई

(३) देशदेशान्तर प्रचार और वैदिक साहित्य मंडल के लिये जो अपील शताब्दी महोत्सव में की गई थी उस में इस प्रकार आय हुई :—

अपील में नक़द धन	२६०६९॥।-)॥।
नोटों की विक्री का धन	३१४०३)
योग	५७४७२॥।-)॥।

ज़ेवर सोने चांदी के जो लगभग छै सौ रुपये के मूल्य के होंगे, अभी विके नहीं हैं। डाक्टर केशव देव शास्त्री के पास हैं। वे उन्हें यथा संभव शीघ्र बेच कर प्राप्त धन उपरोक्त निधि में जमा कर देंगे। ४० सहस्र से अधिक वायदे और विक्री नोटों का धन अभी प्राप्तव्य हैं। आर्य समाजों के विशेष ध्यान दिये विना शताब्दी के स्मारक रूप इस सार्वदेशिक निधि की पूर्ति नहीं हो सकती। अतः उन्हें विशेष ध्यान देना चाहिये।

(४) शताब्दी ग्रन्थमाला के पुस्तक जो सार्वदेशिक सभा को दिये गये उन सब का मूल्य अनुमानतः २५ हज़ार रुपये है। भविष्य में ये सब ग्रन्थ मंत्री सार्वदेशिक सभा देहली से मंगाने चाहिये

(सूची इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गई है)

(५) पत्रिका को समाप्त करने से पूर्व मैं समस्त आर्य्य समाजों, आर्य्य प्रतिनिधि सभाओं, परोपकारिणी सभा और आर्य्य पत्रों के संचालकों को धन्यवाद देता हूं जिन के सहयोग से शताब्दी महोत्सव सफलता पूर्वक समाप्त हुआ।

(६) शताब्दी का वृतान्त एक उत्तम पुस्तक रूप में तय्यार हो रहा है यथा संभव शीघ्र सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित होगा।

श्री नारायण स्वामी

❀ आय और व्यय पर दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि आय की अपेक्षा १५ सहस्र के लगभग व्यय अधिक हुआ है। आय व्यय से कम क्यों हुई इस का कारण यह है कि पंजाब की प्रान्तिक सभाओं ने अपने २ हिस्से का पूरा धन अदा नहीं किया। आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने दस सहस्र में से चार सहस्र और प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने केवल दो सहस्र धन दिया इस प्रकार छै सहस्र और आठ सहस्र कुल १४०००) रु० चौदह हज़ार, इन सभाओं के ज़िम्मे शेष है। यह धन आने पर उपर्युक्त कमी की पूर्ति हो सकती है। आशा है कि यह सभायें शीघ्र ही अपने ज़िम्मे का धन भेज देंगी। अभी केम्प के बचे हुए सामान का भी बिकना बाक़ी है।



छठा परिच्छेद

धर्म-सम्मेलन

[वैदिक दर्शन आत्मा]

मैं क्या हूं?

पुराना प्रश्न है—मैं क्या हूं? यह प्रश्न धर्म ने किया है, तर्क ने किया है, और विज्ञान ने भी किया है। उपनिषद् में आत्मा को 'प्रतिबोधविदितम्' कहा है, कोई बोध हो उसमें बोध वाले का बोध साथ लगा रहता है। मैं देखता हूं—इसमें देखने के साथ 'मैं' का भाव भी है। यह वृक्ष है—मैं न होऊं तो वृक्ष के होने की साक्षी क्या? सब साक्षियों में अपनी साक्षी का सहभाव है। प्रत्येक चेष्टा अपनी चेष्टा होती है। प्रत्येक प्रत्यय Cognition अपना प्रत्यय Cognition होता है। इसी अपना वा आप को संस्कृत में आत्मा कहते हैं।

ऋग्वेद मं० १० सू० १६४ मं० ३७ में यह पहेली प्रस्तुत आत्मा के लिंग की है:—

न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।

प्रयत्न ज्ञान

अर्थः—मैं नहीं जानता, क्या मैं यही हूं (जो दीखता हूं अर्थात् शरीर)? मैं तो सन्नद्ध (प्रयत्न के लिए उद्यत) होकर मनसा मनन शक्ति (न्याय दर्शन के शब्दों में ज्ञान) द्वारा चरामि गति करता हूं।

शरीर जड़ होने से न स्वयं प्रयत्नवान् है, न ज्ञानवान्। न ही उसमें स्वतन्त्र ज्ञान पूर्वक गति (मनसा चरणम्) करने का सामर्थ्य है।

इसके विपरीत आत्मा

आपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।

ऋ० १, १६४, ३८

इच्छा द्वेष

स्वयं अमरण—धर्मा है परन्तु मरणधर्मा शरीर के साथ एकस्थानी होकर (स्वधया) अपनी इच्छा से जकड़ा हुआ किसी वस्तु की ओर जाता और किसी वस्तु से परे हटता है। अर्थात् इस में राग और द्वेष का भाव है। लोहा भी जड़ चुम्बक की ओर खिचता है, परन्तु उस खिचने में उसकी अपनी इच्छा नहीं होती, इच्छा हो तो कभी भी न खिचे। आत्मा में राग और द्वेष की शक्ति है जिसका विकास और प्रयोग वह स्वतन्त्रता से कर सकता है, जो चुम्बक अथवा लोहा नहीं कर सकता। इस से सिद्ध हुआ कि राग और द्वेष आत्मा ही के चिन्ह हैं।

सुख दुःख

इच्छा और द्वेष सुख दुःख का फल हैं। जिस वस्तु से सुख हो उसकी इच्छा होती है, जिस से दुःख हो उस से द्वेष होता है। सुख दुःख शरीर मात्र के ज्ञापक नहीं हो सकते।

अचेतन को सुख दुःख का भान क्या ?

ऋ० १,१६४, १ में आत्मा को अश्नः अर्थात् सुख दुःख भोक्ता कहा है।

इस प्रकार उपरिलिखित तीन मन्त्रों में आत्मा के छः लिंग बताए गए।

सुख दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्न ज्ञानानि आत्मनो लिङ्गम्। न्याय

यह लिंग वह है जिस में सदा आत्मा अन्य लिंङ्ग कासंकल्प साथ रहता है। संकल्प न हो तो सहसा न दुःख होता है न सुख। न राग न द्वेष, न प्रयत्न न ज्ञान। मन का संयोग न होने मात्र से ही यह लिंङ्ग सिद्ध नहीं होते। इन लिङ्गों के अतिरिक्त कुछ लिंङ्ग ऐसे हैं जो आत्मा के होने मात्र से स्वतः— विना मनोयोग—सिद्ध होते हैं। इन का वर्णन अथर्ववेद के निम्न लिखित मन्त्र में आया है।

यदेजति पतति यच्चतिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद्भुवत्।
तद्दाधार पृथ्वीं विश्वरूपं तत्सभूंय भवत्येकमेव ॥
ऋ० १०,८,११

जो (भुवत्) अपनी सत्ता मात्र से कंपन, पतन, ठहराव (गति), प्राण लेना, न लेना (प्राणापान), आंख झपकाना (निमेषोन्मेष) आदि चेष्टाएं करता है, उसने (विश्वरूपम्) सर्वेन्द्रिय प्रत्यय वाले (रूप्यते प्रतीयत इतिरूपम्) पार्थिव शरीर का धारण किया है और जिस में उन प्रत्ययों की संभूति हो कर सब ज्ञान एक हो जाता है। (इन्द्रियान्तर्विकारः)

इस मन्त्र में वैशेषिक दर्शन कथित प्राणापान, निमेषोन्मेष, गति, इन्द्रियान्तर्विकार— इन लिंगों का वर्णन किया हैं।

यही नहीं न्यायसूत्र के सव्यदृष्टस्येतराभिज्ञानात् इन्द्रियों के प्रत्ययों (बांई आंख का देखा हुआ दांई का एकी करण आंख से पहिचाना जाता है।) का भी समावेश इस मन्त्र के 'संभूय' शब्द में समझना चाहिये।

इसी विषय को ऋ० १, १६४, १५ में अधिक स्पष्ट किया है यथा :—

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षडियमा ऋषयोदेवजा इति।

७ प्रकार का एक साथ ज्ञान देने वाली इन्द्रियों (दो कान, दो नासिकाएं, दो नेत्र, एक मुख) को, जिनमें से ६ (कान, नथुने, नेत्र) यम (जोड़े) हैं, एक ज्ञान-साधन बना कर प्रकट होने वाले को (आत्मा) कहते हैं।

जिस बात को वेद ने स्पष्ट खोलकर कहा था, उसी को दर्शनकार ने सूत्र बना कर कहा। यदि एक पदार्थ को दो बार देखें और पहिली बार देखते समय एक आंख विकृत हो, और दूसरी बार देखते समय दूसरी, तो एक आंख का देखा हुआ दूसरी आँख पहचानती है। प्रतीत यह होता है कि आँखों से भिन्न किसी और व्यक्ति ने एक आंख का देखा हुआ संभाल रक्खा था, वह अब दूसरी आँख द्वारा स्मरण किया। वही और व्यक्ति आत्मा है।

फिर कहा है :—

वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्यरूपे किमपि स्विदेकम्।
ऋ० १, १६४, ६ ॥

अर्थः— जिसने छः (यम) भौतिक इन्द्रियों को अलग २ करके ठहरा रक्खा है, उस अजन्मा आत्मा के ज्ञान में, किसी इन्द्रिय का कोई ज्ञान हो, (अन्य इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किये ज्ञान के साथ) एक हो जाता है।

इस मंत्र में केवल विविध इन्द्रियों के प्रत्ययों का एकीकरण ही नहीं, किन्तु व्यक्तियों के बोध को क्रमबद्ध करने से जाति का ज्ञान Classification, प्रत्यक्ष Perception, अनुमान Inference, उपमान Comparison, शब्दादि प्रमाणों द्वारा प्राप्त सारा ज्ञान-कलाप, किसकी विभूति है, यह रहस्य खोला गया है।

यह क्रियाएं स्वतः चलते यन्त्र की नहीं

यह सब लिंग जीते शरीर में होते हैं, मृत में नहीं। प्राण तथा निमेष को कपाटी (Valve) आदि के समान किसी भौतिक यन्त्र मात्र की क्रिया नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यान्त्रिक क्रिया का स्वयं यन्त्र निरोध नहीं कर सकता, परन्तु शरीरी की इच्छा होने पर शरीर की उक्त क्रियाओं का निरोध हो सकता है। तभी तो प्राणत् के साथ अप्राणत् कहा, एजति के साथ तिष्ठति कहा। यही भाव दर्शनकार ने इन सब चिन्हों को आत्मा के लिंग कहकर व्यक्त किया है। तात्पर्य्य यह कि इन का अस्तित्व आत्मा के बिना संभव नहीं, परन्तु आत्मा इन के बिना भी रहता है। यह लिंग हैं—धर्म नहीं।

शरीर आदि आत्मा नहीं

वेद ने उपर्युक्त मन्त्र में आत्मा के ज्ञापक चिन्हों का वर्णन किया है। यह चिन्ह केवल शरीर के नहीं हो सकते। इस ओर प्रश्न द्वारा संकेत तो किया ही था, परन्तु अब स्पष्ट कहते है :—

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
ऋ० १, १६४, १

इस सुन्दर वृद्ध हो जाने वाले दानादनशील शरीर का भर्ता * (अनादित्रयी में) मध्यम-स्थानीय भोग-धर्मा (आत्मा) है।

शरीर परिणामी है

शरीर होता दानादनशील है, अर्थात् इस के परमाणु प्रतिक्षण क्षीण होते और उनके स्थान में नए परमाणु आते रहते हैं। इसलिये यह कभी वाम सुन्दर है और कभी पलित वृद्ध। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि इस अणु-परिवर्तन के कारण मनुष्य का शरीर प्रत्येक ७ से १२ वर्ष के अन्दर सारे का सारा नया हो जाता है। जब मेरा शरीर इसी जीवन में इतनी वार सम्पूर्ण बदल जाता है तो मैं एक कैसे हूं? वेद कहता है, भोग धर्मा शरीर नहीं, कोई और शरीरी है।

मन आत्मा नहीं।

आत्मा न शरीर है और न इन्द्रिय- यह ऊपर के प्रमाणों से स्पष्ट होगया। मन की गणना भी इन्द्रियों ही में करनी चाहिये: क्योंकि वह भी एक करण है। तत्संभूय भवत्येकमेव ने मन को आत्मा न होने दिया क्योंकि मन अयुगपत्-ज्ञान होने से प्रत्ययों की संभूति का आधार नहीं हो सकता।

आत्मा नित्य है।

इस प्रकार आत्मा की पृथक् सत्ता सिद्ध हो गई। अब उस के कुछ गुणों का वर्णन किया जायगा। आत्मा को दार्शनिकों ने सत् और चित् कहा है। अर्थात् वह नित्य और ज्ञानधर्मा है। आत्मा की नित्यता में श्रुति भगवती का कथन है :—

अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। ता शश्वन्ता।। १.१६४.३८.

अर्थात् अमरण-धर्मा (आत्मा) मरणधर्मा

* भ्राता भरतेः। निरुक्त

(शरीर) के साथ एक स्थानी है, और वह दोनों (शरीर और आत्मा) नित्य हैं।

शरीर शाश्वत है पर मर्त्य। आत्मा शाश्वत भी है और अमर्त्य भी। इस विषय का अधिक विस्तार आगे चलकर करेंगे।

आत्मा अल्पज्ञ है

आत्मा का चित् होना ऊपर प्रमाणित हो चुका है। ज्ञानी है पर सर्वज्ञ नहीं। न इसका कोई विशेष ज्ञान अवश्यं स्थायी है। इसी भाव को सामने रखकर वेद किसी जिज्ञासु के मुख से कहता है :—

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि। ऋ० १.१६४.६.।

अर्थः — न जानता हुआ मैं जानने वालों से पूछता हूं। ज्ञान को आत्मा का लिंग कहने से भी यही अभिप्राय था। आत्मा में ज्ञान और अज्ञान इकट्ठे रहते हैं, अर्थात् किसी विषय का ज्ञान, किसी का अज्ञान।

अणु

आत्मा के सम्बन्ध में अब एक बात और रही वह यह कि इसका परिणाम क्या है? वेद स्पष्ट कहता है :—

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते। अ० १०. ८. २५।

एक (आत्मा) बाल से भी सूक्ष्म अणु है। दूसरा (परमात्मा) मापा नहीं जा सकता अर्थात् विभु है।

परिमाण तीन प्रकार के माने जा सकते हैं :— विभु, मध्यम, और अणु। विभु जो सर्वत्र में हो, मध्यम जो शरीर मात्र में व्यापक हो; अणु छोटे से छोटा। कौनसा शरीर किस आत्मा का है, इसका निश्चय विभु होने की अवस्था में नहीं हो सकता, क्योंकि सब विभु सब

विभु और मध्यम के दोष

शरीरों में होंगे। ऐसी अवस्था में सब आत्माओं का सब शरीरों से सम्बन्ध क्यों नहीं? सब मनों, सब इन्द्रियों से प्रत्येक विभु का संयोग होना चाहिये। विपक्षी कहता है, पूर्व जन्म के कर्मों के फल रूप में प्रत्येक विभु आत्मा, शरीर विशेष से सम्बन्ध होता है, दूसरे शरीरों से उस का सम्बन्ध नहीं होता। इस अदृष्ट में विशेष को कारण कहते हैं, जिस की कल्पना अणु पक्ष में नहीं करनी पड़ती। विभु पक्ष में कल्पना-गौरव है। इसलिये यह पक्ष त्याज्य है। मध्यम हो तो प्रत्येक शरीर के साथ इसका परिमाण बदलेगा अर्थात् जीवन का अपना परिमाण कोई न रहेगा। जिस शरीर में जाएगा, उसी का परिमाण इसका परिमाण बन जाएगा और जिस पदार्थ का परिमाण बदले वह विनाशी होता है। यह आपत्ति आयगी। अणु होने में इन दोषों में से किसी की संभावना नहीं। अणु छोटे से छोटे शरीर में चला जायगा और अपनी शक्तियों से दीप की नांई अपने से बड़े शरीर का द्योतन और अधिष्ठान करेगा। इस विषय का विशेष विस्तार वेदान्त दर्शन २-३-२१—२८ में किया गया है।

सार

जीते शरीर में कुछ ऐसी चेष्टाएँ होती हैं जो जड़ शरीर लिंग नहीं कर सकते, जैसे सुख दुःख की अनुभूति, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और ज्ञान। इन्हीं को न्याय दर्शनकार ने आत्मा के लिंग कहा है। वैशेषिककार ने इन के अतिरिक्त प्राणापान, निमेषोन्मेष, गति इन्द्रियान्तर्विकार (अर्थात् एक इन्द्रिय यथा आंख के अनुभव से दूसरे इन्द्रिय यथा रसना में विकार होना, जैसे खट्टे पदार्थ के देखने मात्र से

मुँह में पानी आना) यह भी आत्मा के लिंग कहे हैं। जब तक शरीर में आत्मा है तब तक यह लिंग रहते हैं,आत्मा न हो तो यह भी नहीं होते। अतः यह इस शरीर से भिन्न आत्मा के चिन्ह हैं। इन्हीं लिंगों को वेद में अश्नः ऋ० १. १६४. १. सुख दुःख भोक्ता, अपाङ् पाङेति ऋ० १. १६४. ३८ किसी वस्तु की ओर जाता है (इच्छा), किसी से दूर (द्वेष), सन्नद्धो मनसा चरामि ऋ० १. १६४. ३७ प्रयत्नवान् होकर ज्ञान पूर्वक विचरता हूं, प्राणत् अप्राणत् प्राण लेता है और नहीं लेता, निमिषत् आंख झपकाता है, एजति पतति तिष्ठति कांपता है, ठहरता है, विश्वरूपं संभूय भवत्येकमेव सार इन्द्रिय-जन्य बोधों का एकीकरण कर एक बोधाधार है अ०१०.८. ११ इन शब्दों में कहा गया है। इन लिंगों के समान चेष्टाएं भौतिक पदार्थों में भी पाई जाती हैं। Air-pump की कपाटी फेफड़े की भांति वायु को धकेलती रहती है। लोहा चुंबक की ओर वैसे ही खिंचता है जैसे आत्मा अपने प्रिय की ओर, परन्तु इन क्रियाओं में आत्मा जैसी स्वतन्त्रता, स्वेच्छा, नहीं कि जब चाहा प्राण न लिया, जिसकी ओर आज खिंचे,कल उस से दूर भी हट गए। इस प्रकार यह लिंग आत्मा की अभौतिक सत्ता को जताते हैं।

अपरिणामी — शरीर तो प्रत्येक ७ वें से १२ वें वर्ष के अन्दर सम्पूर्ण बदल जाता है। तो वह स्थिर व्यक्ति कौन है जो इन बदलते शरीरों में अपरिणामी रहता है? वेद ने ऋ० १. १६४ १.में शरीरों को कभी वाम सुन्दर और कभी पालित वृद्ध कहा है, क्योंकि यह होता दानादनशील है। परमाणुओं को खींचता तथा निकालता रहता है। इसका भ्राता भरणकर्ता भोग-धर्मा आत्मा है।

अमर्त्य — आत्मा के गुण हैं सत् और चित् अर्थात् नित्यता और ज्ञान। वेद ऋ०१. १६४. ३८ में शरीर और आत्मा को शश्वन्ता नित्य कहता है परन्तु फिर वहीं अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः कह कर स्पष्ट कर दिया है कि शरीर (प्रकृति रूप में) नित्य है पर मर्त्य मरणधर्मा है, परन्तु आत्मा नित्य भी है और अमर्त्य भी।

अल्पज्ञ — आत्माका धर्म ज्ञान है परन्तु वह ज्ञान शक्ति मात्र है। किसी विशेष विषय का ज्ञान प्रयत्न से आता है अचिकित्वांश्चिकितुषः ·········पृच्छामि ऋ० १. १६४ ६. 'मैं अज्ञानी ज्ञानियों से पूछता हूं'। यही जीव की अल्पज्ञता है।

अणु — जीव का परिमाण अणु है। वेद कहता है:— बालादेकमणयिस्कं अ०१०.८. २५. एक बाल से भी सूक्ष्म है। विभु हो तो किस शरीर का कौन आत्मा है, इसका निश्चय न होगा। एक शरीर से एक ही आत्मा का संबन्ध क्यों हो, इस के लिये नियामिक कारण नहीं होगा, क्योंकि सब विभु सब शरीरों में होंगे। मध्यम हो तो प्रत्येक शरीर के साथ इसका परिमाण बदलेगा और परिमाण बदलने वाला विनाशी होता है। इस से अनित्यता का दोष आएगा। इस लिये अणु होना ही युक्तियुक्त है।

अध्याय दूसरा ।

[परमात्मा]

विश्वात्मा

आत्मा और परमात्मा का विचार आपस में इतना मिला हुआ है कि शास्त्रों में प्राय: इन दोनों की विवेचना साथ २ की गई है । कई स्थलों पर यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि यहां आत्मा का वर्णन है या परमात्मा का ? प्रसिद्ध लोकोक्ति हैं :— यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे । जैसे शरीर में चेतनता देखकर उस में किसी आत्मसत्ता का विचार उठता है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में किसी नियामिक व्यवस्थापक शक्ति का भान पाकर परमात्मा की सत्ता का अनुमान होता है ।

परमात्मा जीव नहीं

विश्व का आत्मा (परमात्मा) इन शरीरियों में से एक नहीं हो सकता, क्योंकि शरीरी बहुत हैं और इन की शक्ति सीमाबद्ध है । यह न तो सारे जगत् में व्यापक हैं न इनका ज्ञान ही पूरा है । न यह बारी २ से शासन कर सके हैं, और न समूह रूप से शासक हो सके हैं । ब्रह्माण्ड की व्यवस्था स्थिर है वह व्यवस्थापक की स्थिरता चाहती है । यदि मुक्तों का शासन माना जाए तो यह बढ़ते घटते रहते हैं । बन्धनावस्था से मुक्तावस्था में भोग का परिवर्तन तो होता है क्योंकि वहां आनन्द ही आनन्द मिलता है, परन्तु स्वरूप नहीं बदलता कि अल्प शक्ति सर्व-शक्ति हो जाय। इस लिये आत्मा किसी अवस्था में परमात्मा नहीं हो सकता । वेद ने आत्मा के विषय में कहा है :—

अवः परेण पर एना वरेण । ऋ० १. १६४.१७,१८

अर्थः— इस अवर (प्रतीयमान् जगत्) से बड़ा है और उस बड़े (परमात्मा) से छोटा है । पर सूक्ष्म को भी कहते हैं (जों प्रतीति में परे हो)

जीव से सूक्ष्म

प्रमाण के लिए उपनिषद् का यह मन्त्र देखो :—

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्य परं मनः । मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धे-रात्मा महान्परः ॥ उपनिषद्

ऋषि दयानन्द का यह कथन कि परमात्मा आत्मा से और आत्मा प्रकृति से अधिक सूक्ष्म है, इसी वैदिक विचार पर आश्रित है ।

परमात्मा सिद्धि
१.जगत् का प्रवर्तक
Cosmological Argument

परमात्मा की सिद्धि की जो युक्तियां आधुनिक तथा पुरातन तर्क में प्रयोग में लाई गई हैं उन का बीज वेद में है । संसार को देखकर पहिला प्रश्न यह होता है कि इसका विकास कैसे होता है ? विकास में नियम है, निश्चय है । संपूर्ण जगत् की प्रवृति बुद्धि पूर्वक हुई प्रतीत होती है । इस विषय का

विशेष विचार 'उत्पति' प्रकरण में करेंगे। यह बुद्धि प्रकृति की नहीं, और जैसे हम ऊपर कह चुके हैं, किसी आत्मा या आत्मसमूह की भी नहीं। विभु आत्मा परमात्मा की ही है॥

पादोऽस्येहाभवत्। ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि।

यजु० ३१. ४.

उस चतुष्पाद् पुरुष का एकपाद (वहिः प्रज्ञ) इस संसार में प्रकट हुआ। उस से चेतन अचेतन सारा जगत् प्रवृत हुआ।

(चतुष्पाद् शब्द की व्याख्या माण्डूक्योपनिषद् में की गई है। वहां देखो)

आर्य धर्म परमात्मा को जगत् का निमित्त कारण मानता है, उपादान नहीं। उपादान मानने से चेतन से अचेतन और अचेतन से चेतन विकसित होने की समस्या का कोई सुलझाव नहीं हो सक्ता। इस अंश में हमारी प्रवृत्ति की युक्ति पश्चिमीय युक्ति से, जो कृश्चियन मत पर आश्रित है, भिन्न है। पाश्चात्य तर्क यहां ठहर जाता है। हमारी यही युक्ति आगे चलती है।

प्रवृत्ति के पश्चात् धृति का प्रश्न है। संसार के विविध पदार्थ एक दूसरे को आकर्षण आदि शक्तियों से स्थिर हैं। परन्तु यह आकर्षण भी तो बुद्धि-पूर्वक कार्य कर रहा है। सूर्य ने पृथ्वी को और पृथ्वी ने सूर्य को आकर्षण करना किसी की नियामिकता से स्वीकार किया है। इन में यह धर्म कैसे आया? इस धर्म का संकेत ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी की ओर है। वेद कहता है:—

धारक

स्कंभेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः स्कंभ इदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्च यत्॥ अ० १०. ८.२.

अर्थः— धारणकर्ता परमात्मा में आकाश और पृथिवी (सूक्ष्मतम भूत आकाश और स्थूलतम भूत पृथ्वी का नामनिर्देश कर सारे भूतोंकी ओर संकेत है) अलग २ थमे हुए खड़े हैं। उसी धारण कर्ता में प्राण लेने और आंख झपकाने वाला आत्मवान् जगत् है। अर्थात् चेतन अचेतन का आधार प्रभु है।

जहां प्रवृति है, धृति है, वहां निवृत्ति भी है।

निवर्तक

प्रत्येक पदार्थ अपने मूल से परिणाम पाकर कार्य रूप धारण करता है और उस से पीछे फिर उसी कारण में लीन हो जाता है। जैसे पानी से बादल और बादल से फिर पानी बनता है। यह चक्र जैसे अलग २ पिंडों में देखने में आता है, ऐसे ही ब्रह्माण्ड की मर्यादा में भी दृष्टिगोचर होता है। कम से कम इसका अनुमान इसी प्रकार हो सक्ता है। यह क्षय या निवृति भी उसी व्यापक बुद्धि के आधीन है।

कालेनोदेतिसूर्यः काले निविशते पुनः। अ० १६. ५४. १.

अर्थः— संख्या कर्ता परमात्मा से सृष्टिकाल में सूर्य उत्पन्न होता है और प्रलय-काल में उसी में लीन हो जाता है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति दो विरोधी धर्म हैं। इनका समय और मर्यादा-पूर्वक व्यवहार में आना जड़ प्रकृति द्वारा असम्भव है। प्रकृति का स्वतंत्र धर्म या प्रवृति ही हो सकता है या निवृति। संसार स्वतंत्र हो तो उस की गति यान्त्रिक (Mechanical) होनी चाहिय, अर्थात् वह बनता जाए या विगड़ता। या सृष्टि ही सृष्टि होती जाए या प्रलय ही प्रलय हो। सृष्टि होते २ प्रलय और

प्रलय होते २ सृष्टि की प्रवृत्ति कौन करता है? कोई नियामिक शक्ति हो। वह नियामिक चेतन होना चाहिये और फिर उस की चेतनता का प्रभाव विश्व व्यापी होना आवश्यक है।

वेदान्तदर्शन में उपरिलिखित सारे प्रकरण को एक सूत्र में कहा है:— जन्माद्यस्य यतः। १. १. २. अर्थात् ब्रह्म वह है जिस से इस (जगत्) का जन्म, धारण, और विनाश होता है।

अंग्रेज़ी में इस युक्ति को (Cosmological Argument) कहते है। परन्तु पाश्चात्य तर्क में सृष्टि और प्रलय की चक्रपरम्परा का विचार न होने से इस युक्ति का अभिप्राय केवल प्रवृत्ति की युक्ति रहता है।

दूसरी युक्ति रचना या design की है। इसे रचयिता अंग्रेज़ी भाषा में Teleological Teleological Argument कहते हैं। बुद्धि Argument पूर्वक धृति का वर्णन करते हुए हम इस युक्ति की ओर संकेत कर चुके हैं, परन्तु तार्किकों की परिभाषा को दृष्टि में रखते हुए इस युक्ति पर संक्षेप से अलग विचार कर लेने में हानि नहीं।

प्रत्येक विज्ञान (Science) बताता है कि संसार की स्थिति नियमों पर है। इन्हीं नियमों का संग्रह-भूत ही तो विज्ञान है। इन्हीं नियमों के आश्रय से सब कलाओं, सब धन्धों का व्यवहार चलता है। यदि कृषक बीज के पृथ्वी में डाले जाने के पीछे उसके विशेष सेचन आदि संस्कारों के अनन्तर उस के फल-स्वरूप में परिणत होने में सन्देह वान हो तो कृषिकला में प्रवृत्त ही न हो। यही नियम Science of Agriculture कृषि विज्ञान कहलाते हैं। यही अवस्था और विज्ञानों की है। विज्ञान नाम है नियमों का। ब्रह्माण्ड में भौतिक पदार्थों से और फिर सारा भौतिक प्रपञ्च प्राणि-जगत् से एक सूत्र से बंधा हुआ है। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो प्रत्येक क्षेत्र की रचना निराली प्रतीत होती है। कैसा कौतुक है कि इन सब रचनाओं की फिर एक व्यापक रचना है। जगत् के अंग २ की, और फिर इस सम्पूर्ण अंगी की, ध्वनि है संगठन। यह संगठन, यह रचना सर्वज्ञ रचयिता के विना और किस की हो सकती है?

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् सो विद्यात् ब्राह्मणं महत्॥
अ० १०. ८. ३८

अर्थः- जो उस अलग अलग (प्रत्येक विज्ञान के) क्षेत्र में फैले हुए सूत्र को जानता है और फिर उस सूत्र के सूत्र (व्यापक रचना) को जानता है वह परमब्रह्म को जानता है

विज्ञानों और शास्त्रों का अपना २ Synthesis संश्लेष है। इन सब संश्लेषों (Synthesis) का एक परम संश्लेष Highest Synthesis है। इसे ब्रह्म विद्या कहते हैं। इसी संश्लेष का वर्णन उपनिषदों ने इन मनोमोही शब्दों में किया है कि इस के जानने से सब कुछ जाना जाता है। विज्ञान को हेय नहीं बताया किन्तु उसका ध्येय (ideal) और उत्कृष्ट कर दिया है। विज्ञान का परम संश्लेष Highest Synthesis और वेद का सूत्रस्य सूत्र एक है।

वेदान्त दर्शन के दूसरे अध्याय के दूसरे पाद में

इस विषय की अच्छी विवेचना की गई है। विस्तार के लिये वहां देखो।

कर्म फल संयोजक Moral Argument

तर्क की अन्तिम युक्ति धर्म की या आचार की युक्ति है। इसे अंग्रेज़ी में Moral Argument कहते हैं। आचार का आधार परमात्म विश्वास है। योगी फल की आकांक्षा से ऊंचा हो जाता है परन्तु यदि कृति का फल ही न हो तो कोई कर्म करने के लिये प्रेरणा किस भाव से पाए? भलाई का फल स्वयं भलाई ही सही, सदाचार का लाभ केवल आत्मोन्नति ही हो, तो भी इस फल का सफलीकर्त्ता चाहिये।

वेद कहता है :—

सविता सत्यधर्मा अ० १०, ८, ४२

अर्थात् प्रेरक प्रभु का धर्म अटल है। उसने सत्य Righteousness को धर्म बनाया है।

सत्य धर्म है, कार्य इस प्रकार होना चाहिये ऐसा करना कर्त्तव्य है, इस की प्रथम प्रेरणा कहां से हुई। वरुण देवता के सब सूक्त परमात्मा के इसी गुण का प्रतिपादन करते हैं।

आर्य तर्क की विशेषता यह है कि इसने आध्यात्मिक (metaphysical) और आधिभौतिक (Physical) नियमों को एक ही लड़ी में परो दिया है। वही व्यवस्था जो पृथ्वी में डाले हुए बीज को समय आने पर फल बनाती है, किये हुए कर्म को समय आने पर परिपाक भी देती है।

भगवत गीता में कहते हैं :—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

यहां किया हुआ नष्ट नहीं होता। परिपाक का प्रतिबन्धक कोई नियम वा कारण नहीं।

इसी कारण से बादरायण मुनि ने वेदान्त में रचना और आचार की युक्ति (Teleological और Moral argument) को एक साथ एक ही सूत्र में शास्त्रयोनित्वात् कहकर बड़ी सुन्दरता से ग्रथित किया है। हमारी परिभाषा में शास्त्र सत्य प्रतिपादित करने वाली किसी भी व्यवस्था को कहते हैं। भौतिक विज्ञान भी शास्त्र है और आध्यात्मिक विज्ञान भी। बादरायण के सूत्र का अभिप्राय यह है कि जहां इन शास्त्रों के नियमों को संसार की रचना में व्यवहार-रूप में क्रियात्मक भाव देने वाला परमात्मा है, वहां इन नियमों का प्रथम ज्ञान भी प्रभु स्वयं देते हैं। वेदान्त शास्त्र की यह नई युक्ति है जो पाश्चात्यों को नहीं सूझी। इसका विचार हम 'ज्ञान का प्रारम्भ' नाम कि प्रकरण में करेंगे।

पूर्णसत् Ontological Argument

इन सब युक्तियों के अतिरिक्त एक युक्ति विशेष एनसलम ने दी थी। उस का खण्डन कांट ने Ontological Argument कहकर किया था। उस युक्ति का अभिप्राय यह है कि महतो महान् का भाव मनुष्यों में है और इसका निराकरण नहीं हो सकता, इसलिये परमात्मा है। Anselm ने अपनी युक्ति को अशुद्ध रूप दिया। डेकार्ट आदि तार्किकों का नाम भी इस युक्ति के साथ संयुक्त है। अपूर्ण जीव पूर्ण की भावना करता है। यह भावना किसी काल्पनिक भ्रमात्मिक भावना से भिन्न है। भ्रमात्मिक भावनाओं का आधार हमारे सत्य प्रत्यय हैं। उन प्रत्ययों को विविध रूपों में सश्लिष्ट कर हम अपने भ्रमों की सृष्टि करते हैं। भूत प्रेत आदि का हमने प्रत्यक्ष

नहीं किया, परन्तु जिन अंगों की कल्पना हम उन भूत प्रेतों में करते हैं, यथा हाथ पांव दांत मुख इत्यादि, वे हमारे ज्ञान में विद्यमान हैं। उन अंगों का एक अद्भुत मिश्रण हमारा भूतादि का भ्रम होता है। इसके विपरीत पूर्णता को हमने कभी नहीं देखा। तो भी उसकी ओर जाने का यत्न है। दोष हटाने, न्यूनताएं मिटाने का यत्न किसी पारमार्थिक पूर्ण सत्ता की ओर संकेत करता है। हमारी सत्ता (Being) का विचार पूरा नहीं होता जब तक किसी पूर्ण सत् (Perfect Being) की भावना मात्र का ही उसमें समावेश न हो। हमारी अपूर्णता उस पूर्ण को घेर नहीं सकती, इस अंश में वह अज्ञेय है। परन्तु हमारी अपूर्णता भी तो ऊन रह जाती है, असत् हो जाती है, जब तक कि उस से भिन्न कोई पूर्ण न हो। सत्ता, ज्ञान, साफल्य, सब दृष्टियों से वह पूर्ण २ हो। पहिले पूर्ण हो। उस में नञ् समास हो कर अपूर्ण बने। वेद कहता है :—

न कुतश्चनोनः अ० १०, ८, ४४

वह किसी बात में ऊन नहीं।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते। अ० १०,८,१५

परमात्मा परिपक्व जीव से दूर (उत्कृष्ट) है और अपरिपक्व तो उस की ओर जाता ही नहीं।

यहां यह भी सिद्ध हो गया कि परमात्मा मुक्त जीवों से भिन्न है।

अन्तः प्रत्यक्ष Intuitional Argument

यहां तर्क की समाप्ति है। अन्तिम युक्ति (Intuition) अन्तः प्रत्यक्ष की है। वेद कहता है :—

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहायत्। अ० २, १, १

अर्थः— योगी उसे देखता है जो हृदय-देश में छिपा है। फिर कहा है :—

अन्तरिच्छन्तिं तंजने रुद्रं परोमनीषया।
गृभ्णान्ति जिह्वया ससम् ऋ० ८,७२,३

अन्तः प्रत्यक्ष की शक्ति पर हमारे शास्त्रों ने बहुत बल दिया है। प्रत्येक विज्ञान की पूर्ण सिद्धि इसी प्रमाण से मानी है। आज फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक हेनरी बर्गसन भी उसी अन्तः प्रत्यक्ष को Intuition नाम देकर इसी की साक्षि को चरम साक्षि मान रहे हैं।

परमात्मा का स्वरूप, ज्ञान

परमात्मा के गुणों का वर्णन आर्य समाज के दूसरे नियम में किया गया है। वह सब वेद के आधार पर है, जैसा कि हम अभी दर्शायेंगे। परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, सत् प्रकृति भी है। सत् चित् आत्मा भी। परमात्मा आत्मा के ज्ञान में यह भेद है कि परमात्मा ज्ञान स्वरूप हैं। उन का ज्ञान परिमित नहीं। वह सर्वज्ञ हैं। वेद कहता है :—

सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिवश्वघ्नी निमिनोति तानि।
अ० ४, १६, ५.

पृथिवी और आकाश के बीच अर्थात् भौतिक जगत् में और उस के बाहर जो कुछ होता है वह सब राजा वरुण जानता है। यही नहीं, उसके तो प्राणी २ के निमेष उन्मेष तक गिने हुए हैं। आत्म-हत्यारे इन निमेषों को जुए का दाव बनाते हैं।

आनन्द स्वरूप

वेद ने परमात्मा को पूर्ण कहा है। मानुषीय पूर्णता से पूर्णतर— ऐसा पूर्ण जिसकी ओर यह पूर्णताएं दौड़ती हैं और सदैव दौड़ती चली जाएंगी। ऊनता दुःख है, पूर्णता सुख

है। वेद के शब्दों में :—

स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः अ० ।

जिसका आनन्द (स्वः) केवल है अर्थात् उस में किसी अन्य विरोधी भाव का लेशमात्र भी नहीं, उस महतो महान् परब्रह्म को नमस्कार है।

दुःख भोग में है। अकेवल सुख और केवल अभोक्ता तथा अकेवल दुःख भोग कहलाते हैं। परमात्मा अभोक्ता है। वह सुख दुःख से ऊंचा है।

अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति। ऋ० १. १६४. २०

अर्थः—एक (परमात्मा) अभोक्ता होकर साक्षी है। आत्मा का सुख लिंग है। परमात्मा का धर्म, स्वरूप। स्वरूप नित्य है, लिंग अनित्य।

निराकारादि — इसी पूर्णता के भाव में निराकार, सर्वशक्तिमान् अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्व-व्यापक, सर्वज्ञ, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, इन सब भावों का समावेश है। वेद में इन भावों का अलग २ वर्णन भी आया है, यथा :—

निराकार—अकायमव्रणम्। य० ४०. ४

सर्वशक्तिमान्—शुक्रम्। य० ४०, ४

अजन्मा—अजस्तद्ददर्शेक्व अ० १०, ८,४ शृणोत्वजः य० ३४, ५३।

अनन्त—अनन्तं विततं पुरुत्र। अ० १०, ८, १२

निर्विकार—अज एकपात्। य० ३४, ५३

अनादि—सनातनम्। अ० १०, ८, २२

अनुपम—अपूर्वेणेषिता वाचः। अ० १०, ८, २३ न तस्य प्रतिमा अस्ति। य० ३२, ३

सर्वाधार—सो दहंयत सो धारयत। अ० ४, ११, ७

सर्व-व्यापक—उरुकोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा भुवनान्यन्तः। अ० ११, २, १२

सर्वज्ञ—वेद भुवनानि विश्वा। य० ३२, १०

अजर, अमर — अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेनतृप्तोन-कुतश्चनोनः। तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मनं धीरमजरं युवानम्॥ अ०१०,८,४४

अभय—अभयंकर। अ० १०, २१, १

नित्य—एकपात्। ३४, ५३

पवित्र—पवमानः। अ० १०, ८, ४०

न्यायकारी—सोऽर्यमा अ० १३, ४, ४

दयालु—दयसे विजानन्। य० ३२, १८

सर्वेश्वर—सर्वस्येश्वरः अ०। १०, ८, १.

सृष्टिकर्त्ता—य इदं विश्वं भुवनं जजान अ० १३,३,१५

सर्वान्तर्यामी— स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु य० ३२, ८

समयाभाव से हमने केवल संकेत दे दिये हैं। पाठक इन गुणों का विस्तार स्वयं करलें। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने 'आर्य' कार्तिक ७९, तथा मार्ग शीर्ष १९७९ में और पं० विश्वनाथ जी ने पौष १९७९ के 'आर्य' में इस विषय में अधिक विस्तार से लिखा है।

आर्य समाज का दूसरा नियम परमात्मा के

एक मात्र उपास्य — इस स्वरूप का वर्णन कर कहा है कि उसी की उपासना करनी योग्य है। वह वेद के इस वाक्य का अनुवाद मात्र है :—

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः। अ० २, २, १

प्रकाश स्वरूप, ज्ञान और ज्ञेय का धर्ता (आदि मूल) संसार का एक मात्र पति ही नमस्कार के योग्य है। उस की स्तुति प्रजाओं में करो।

पूर्ण एक ही हो सकता है, अनेक नहीं।

सार

संसार को समष्टि शरीर समझ लें तो उसमें एक व्यापक आत्मा की सत्ता प्रतीत होती है। जीवों की शक्ति परिमित है। उनमें से न कोई अकेला सारे विश्व का आत्मा हो सकता है और न यह सब मिलकर। परिमित मिलकर भी परिमित ही रहेंगे। वेद ने आत्मा को कहा है अत्र:परेण ऋ० १. १६४. १७-१८ कि वह परमात्मा से निकृष्ट है। दूसरा अर्थ 'पर' का है सूक्ष्म। अर्थात परमात्मा जीव से भी सूक्ष्म है।

परमात्मा की सिद्धि के लिये निम्नलिखित युक्तियां तार्किक-लोग देते हैं:— १) प्रवृत्ति की युक्ति Cosmological Argument। इस युक्ति का सार यह है कि जगत् की प्रवृत्ति किसी चेतन से हुई है, क्योंकि इसके विकास में बुद्धि-द्योतक नियम काम करते हैं। वेद कहता है:—

ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि। यजु० ३१. ४

उस परम पुरुष से विश्व की प्रवृत्ति हुई, जड़ चेतन दोनों की।

वैदिक-धर्मी इस प्रवृत्ति के साथ धृति और निवृत्ति भी मिला देते हैं। संसार थमा काहे पर है? पदार्थों के पारस्परिक आकर्षण पर। वह आकर्षण स्थिर क्यों है? कौन है जो दो पदार्थों को आपस में आकर्षक भी बनाता है और आकृष्य भी? यह पारस्परिक अनुकूलता धारक का द्योतन करती है। वेद कहता है:—

स्कंभेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कंभ इदं यदात्मन्वद् यत्प्राणन्निमिषच्च यत्॥ अ० १९.२४.१

धारण के पीछे निवृत्ति है। वेद कहता है:—

काले निविशते पुनः। अ० ११. ५४. १

संख्याकर्ता परमात्मा में सबका लय होता है।

इन तीनों भावों, प्रवृत्ति, धृति और निवृत्ति का नियामिक परमात्मा है। यदि यह केवल यान्त्रिक क्रियाएं हों तो निवृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से निवृत्ति न हो सके। प्रकृति का स्वभाव तो या निवृत्ति होता या प्रवृत्ति। उसको समय पर बदल देने वाला चेतन प्रभु है।

(२) रचना की युक्ति Teleological Argument। इस युक्ति का आधार विज्ञान है। विज्ञान संसार के विविध २ अंगों में नियमों का आविष्कार करता है। इसी को रचना या Design कहते हैं। अंग प्रत्यंग फिर आपस में आन्तरिक नियमों से मिले हैं। यथा वनस्पति-शास्त्र वनस्पति-जगत् में नियमों की सिद्धि करता है और पशुशास्त्र Zoology पशु जगत् में। फिर वनस्पतिशास्त्र का पशुशास्त्र से सम्बन्ध है क्योंकि पशु और वनस्पति एक अटूट रस्सी से आपस में बंधे हुए हैं। इस प्रकार सब विज्ञानों के ऊपर एक व्यापक विज्ञान है। उसे ब्रह्म विद्या कहते हैं। वेद में इसी परम संश्लेष highest synthesis को सूत्रस्य सूत्रम् अ० १०.८.३८ कहा है

सूत्रस्यसूत्रंयो विद्यात सो विद्यात् ब्राह्मणं महत्।

प्रत्येक विज्ञान के आधार-भूत नियमों का रचयिता भी प्रभु है; और उस विज्ञान का प्रथम बोध भी प्रभु देता है।

(३. धर्म की युक्ति Moral Argument। सदाचार का आधार परमात्मा की सत्ता का विश्वास है। सदाचार परमात्मा की प्रेरणा है। उसका फल भौतिक हो अथवा अभौतिक या निष्कामता ही,

उस फल का प्रेरक सत्य धर्मा सविता। अ० १०. ८. ४२ है।

आर्य विचार भौतिक नियमों तथा आचार-सम्बन्धी नियमों दोनों के सूत्रीकरण systematisation को शास्त्र नाम देता है। इस शास्त्र का प्रथम प्रादुर्भाव वेद के रूप में होता है। आत्मा की ध्वनि conscience परमात्मा की प्रथम प्रेरणा है। धर्म-मर्यादा आरम्भ में उसी प्रभु की स्थापित की हुई है।

(४) पूर्ण की संभावना की युक्ति Ontological Argument। हम अपूर्ण हैं और पूर्णता चाहते हैं। यह पूर्णता का विचार बिना पूर्ण सत् के नहीं हो सकता। यदि हमारी भावना भ्रम मात्र भी हो तो उसका मूल सत्य प्रत्यय होना चाहिये। क्योंकि भ्रम मात्र भी सत्य का अपभ्रंश होता है। जिस आदर्श को ओर हम दौड़ते हैं और जिसके अंश मात्र का अपने उत्कर्ष में अनुभव करते हैं, वह आदर्श सत् है। वही परमात्मा है।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते। अ० १२. ८. १५.

अर्थात् मुक्त जीव परमात्मा नहीं होते। अमुक्त उसकी ओर जाते ही नहीं।

(५) अन्तःप्रत्यक्ष की युक्ति Intuitional Argument। इस युक्ति का दूसरा नाम है योगी का प्रत्यक्ष।

अन्तरिच्छन्ति तंजने ऋ० ८. ७२. ३

अर्थः—उसे जन के अन्दर ढूंढते हैं।

वेनस्तत्पश्यत् अ० २. १. १.।

अर्थः—योगी उसे देखता है।

आज तत्ववेत्ता हेनरी बर्गसन भी इसी प्रत्यक्ष को परम प्रमाण मानते हैं।

परमात्मा का स्वरूप

१. परमात्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान-लिंगी नहीं। अतः सर्वज्ञ है।

सर्वतम्राजा वरुणो विचष्टे। अथर्व० ४. १६. ५

२. परमात्मा आनन्द स्वरूप है। पूर्ण को क्लेश कैसा?

स्वर्यस्य च केवलम्।

अर्थः—जिसका सुख बेलाग है।

३. दुःख अकेवल सुख में है अर्थात् भोग में। परमात्मा

अनश्नन्न्यो अभिचाकशीति॥

न भोगता हुआ साक्षी है।

४. आर्य समाज का दूसरा नियम—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है।

५. परमात्मा एक है। पूर्ण अनेक नहीं हो सकते

यस्पतिरेकएव। अ० २. २. १

वह पति एक ही है।

६. उपास्यहैः—नमस्यो विक्ष्वीड्यः। अ० २. २. १

नमस्कार करने तथा प्रजाओं में प्रशंसा करने योग्य है।

अध्याय तीसरा।

[सृष्टि की उत्पत्ति]

विज्ञान हमारे साथ है।

परमात्मा की सिद्धि में प्रवृत्ति की युक्ति Cosmological Argument का उल्लेख करते हुए हमने अपना पाश्चात्य विचारकों के साथ इस अंश में मतभेद प्रकट किया था कि हम परमात्मा को जगत् का निमित्त कारण मात्र ही मानते हैं, उपादान नहीं। हमारा अभिप्राय इस कथन से यह न था कि सारा पाश्चात्य जगत् इस विषय में हमारे प्रतिकूल सम्मति रखता है। विज्ञान का पक्ष हमारे साथ है। अभाव से भाव की उत्पत्ति कोई वैज्ञानिक स्वीकार नहीं करता। प्रकृति matter अनादि है, आज इस विषय में आपत्ति उठाना अपने आपको विज्ञान का विरोधी 'उतत्वः पश्यन्न ददर्श' इस उपहास का निशाना बनाना है।

आर्य तर्क में तीन अनादि स्वीकार किये गए हैं। परमात्मा के अनादि होने में किसी परमात्मवादी को आपत्ति नहीं।

जीव अनादि

शेष रहे जीव और प्रकृति। विकासवादी जीते शरीर का सरल से सरल रूप protoplasm कललरस को ठहराते हैं। वे समझते हैं कि इन कललरसों की वृद्धि से संकीर्ण शरीरों का विकास होता है। परन्तु उन के सामने यह समस्या अनिवार्य बनी रहती है कि जीवन का प्रादुर्भाव अजीवन से कैसे हुआ? जड़ पदार्थ में चेतनता कहां से आई? जीव की अलग सत्ता मानने से ही इस गुत्थी का सुलझाव हो सकता है। ऐसे ही जो आदिम कारण केवल आत्मिक सत्ता को मानते हैं, उनके पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं कि आत्मा अनात्मा कैसे होजाता है? जैसे जड़ से चेतनता का विकास असंभव है, ऐसे ही चेतन से जड़ का विकास अयुक्ति-युक्त है। आत्म-तत्व के अतिरिक्त अनात्म-तत्व का अस्तित्व मानना एक अनिवार्य वैज्ञानिक आवश्यकता है।

[प्रकृति भी]

कोई २ कहते हैं, परमात्मा ही प्रकृति और आत्मा को बनाता है। काहे से? अभाव से तो नहीं। तब अपने से बनाता होगा। चेतन (प्रभु) से अचेतन (जगत्) का प्रादुर्भाव की कल्पना इस धारणा को भी अयुक्त बना देती है। रहा जीव, वह पाप की समस्या उपस्थित करता है। परमात्मा मात्र को अनादि मानने से इस शंका का किसी प्रकार समाधान नहीं हो सकता कि पाप की प्रवृत्ति किस से होती है? जीव अपने कर्मों का स्वतंत्र कर्ता है तो उस की स्वतंत्रता किसी दानी का दान नहीं होनी चाहिये। किसी स्वराज्यवादी से ही पूछलो-दान में पाई स्वतंत्रता परतन्त्रता है। स्वतन्त्रता तो

स्वभावसिद्ध ही हो सकती है। केवल परमात्मा के अनादि होने की अवस्था में पाप का मूल-बीज परमात्मा ही रहेगा, और यह किसी सचेत धर्मवादी को अभीष्ट नहीं हो सकता।

अनादि तो तीन ही मानने पड़ते हैं। आत्मा को तृत्व वाद अनादि मानने से विकास-वादियों की यह समस्या झट सुलझ जाती है कि जीवन कहां से आता है? प्रकृति का अनादि मानने से धर्म का विज्ञान से अज्ञान और अज्ञान से पैदा हुआ विरोध मिट जाता है। अर्थात् यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा अनात्मा में परिणत नहीं होता। परमात्मा को अनादि मानने से जगत् की स्थिर, अनादि अनन्त, व्यवस्था का रहस्य खुल जाता है।

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक वेद के अनेक मन्त्र उपर्युक्त प्रकरणों में उद्धृत किये गये हैं कि परमात्मा, आत्मा, और भौतिक जगत्, यह तीन भिन्न २ पदार्थ हैं, यथा :—

स्कंभेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः। स्कंभ इदं सर्व-
मात्मन्वद् यत्प्राणन्निमिषच्च यत्॥ अ० १०, ८, २

धारण कर्ता (परमात्मा) में यह आकाश (सूक्ष्मतम भूत) से पृथिवी (स्थूलतम भूत) तक भौतिक प्रपंच स्थिर है। उसी परमात्मा में यह सब आत्मवान् जो साँस लेते और आंख झपकाते हैं स्थिर हैं।

यह तीनों अनादि, सृष्टि होने में कारण बनते हैं। तीन कारण (१) परमात्मा का नियन्त्रण रहता है, जैसे कुम्हार का घड़ा बनाने में, या जीव का शरीर से नख केश आदि की उत्पत्ति में। (२) जीवों को अपने कर्मों के फल पाने होते हैं। उस फल-भोग की उपर्युक्त सामग्री, चाहे मानसिक हो या भौतिक, प्राकृतिक प्रपंच से उपलब्ध होती है। प्रकृति के इसी धर्म को पुरुषार्थ कहते हैं। और (३) प्रकृति इस प्रपंच का उपादान कारण है, जैसे घड़े का मट्टी, या नखों और बालों का शरीर।

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधिविश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोनशद्यः पितरं न वेद।
ऋ० १. १६४. २२

अर्थः—जिस वृश्चनस्वभाव (जगत्) में अच्छी कर्म-शक्ति वाले फल भोगी जीव रहते और बढ़ते हैं। उसका यही (बसेरा लेना और बढ़ना) भोग्य फल है।........

सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः। ऋ० ५. ६०. ५

अर्थः—प्रकृति प्राणियों के लिये सम्यक् फल देने और सम्यक् जीवन-निर्वाह कराने वाली है।

अब रहा सृष्टि का प्रकार। सांख्यकार प्रकृति सृष्टि का प्रकार को गुणों का साम्य मानते हैं। साम्य का अर्थ है अप्रतर्क्य अवस्था। वेद में आया है:—

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्। अ० १०. ८. ४३

अर्थः—नौ दरवाज़ों वाला पुण्डरीक (शरीर) तीन गुणों से घिरा हुआ है।

यह तीन गुण क्या हैं? आत्मा स्वभाव से गुणातीत है। उसमें जो तारतम्य आता है, वह प्रकृति के संग से है। प्रकृति के गुणों का विश्लेषण हम आत्मा की अवस्थाओं से कर सकते हैं। आत्मा की उत्तम अवस्था 'स्थितधी' की है। वह शुद्ध सात्विक अवस्था है। मध्यमावस्था चंचलता तथा सचिन्त पुरुषार्थ की है। वह राजसिक है। निकृष्ट अवस्था आलस्य की है। वह तामस है। प्रकृति के

प्रपंच में जो पदार्थ सात्विक स्वभाव पैदा करते हैं, वह सत्व-प्रधान हैं। जो राजस प्रवृत्ति लाते हैं, वह रजःप्रधान हैं, इत्यादि।

प्रलयावस्था में तीनों गुणों की विद्यमानता होती है और किसी का विशेष आविर्भाव नहीं होता। इसे साम्य कहते हैं। वेद में प्रलयावस्था की प्रकृति के स्वरूप को यों दर्शाया हैः—

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीम्। ऋ० १०. १२९. १

उस समय सत् न था, असत् न था।

योगसूत्र २. १९ का भाष्य करते हुए व्यास लिखते हैंः—

निस्सत्ता सत्त्वं निःसदसत् निरसत् अव्यक्तं अलिंगं प्रधानम्।

प्रधान को असत् इस लिये नहीं कहते कि उसका अभाव नहीं। सत् इस लिये नहीं कहते कि उसका लिंग [ज्ञापक चिन्ह] नहीं। प्रकृति की सत्ता पुरुषार्थ में है। प्रलयावस्थामें पुरुष का व्यवहार नहीं होता। अतः उस समय प्रकृति को सत् नहीं कह सकते। उसका अत्यन्ताभाव भी नहीं, इस लिये असत् भी नहीं कह सकते। वाचस्पति क्या कह सकते? वही जो वेद ने कहा हैः—

तम आसीत् तमसो गूढमग्रेऽपकेतं सलिलं सर्वमाइदम्।
तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जयतैकम्॥
ऋ० १०. १२६. ३

उस समय अव्यक्त अक्रिया से ढका हुआ था। उसको व्यक्त करने वाला कोई चिन्ह न था। प्रकृति थी। जो महान्; शून्य से ढका हुआ था, वह (परमात्मा के स्वाभाविक) ज्ञान की महिमा से इकला उत्पन्न हुआ।

परमात्मा के ज्ञान को शास्त्रों में तप कहा है।

यस्य ज्ञानमयं तपः। उपनिषद्

परमात्मा के 'तस्य स्वाभाविक ज्ञानबल क्रिया च' से संसार की प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति से शुद्ध सत्व Pure being जिसे महान् या वेद ने आभु (समन्तात् भवति) कहा है, प्रकट होता है। नासदासीत् में सत् का बीज है। उसी का आविर्भाव सृष्टि की प्रवृत्ति है। फिर

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
ऋ० १० १२६ ४.

अर्थः—(परमात्मा का) ईक्षण हुआ। इससे मनन (ज्ञान) का प्रथम बीज पैदा हुआ।

महत् में व्यक्तित्व individuality नहीं होती। इस लिये उसे ज्ञान (प्रकेत) का नाम नहीं दिया। ज्ञान का प्रथम बीज है अहंभाव (अहंकार)। उसका आविर्भाव शुद्ध सत्व Pure being आभु के पश्चात् है।

यह सृष्टि-क्रम सांख्य दर्शनानुसार लिखा गया है। अहंभाव के पीछे तद्भाव आता है। अहंकार ज्ञाता (मन्ता) का ज्ञातृभाव है। ज्ञाता ज्ञेय को चाहता है। इससे एक ओर इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है, दूसरी ओर ज्ञेय की। ज्ञेय केवल ज्ञेयरूप में, जब उसमें और भेद भाव की सृष्टि नहीं हुई, तत् मात्र (केवल वह) होता है। तन्मात्र अधिक व्यक्त होकर भूतों में परिणत होता है।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरिस्विदासीत्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्
ऋ १०. १२६. ५

अर्थः—अब इन पदार्थों का क्रम टेढ़ा होता है। कुछ ऊपर कुछ नीचे।......नीचे अपने में स्थिर

रहने वाला भूत-प्रपञ्च और ऊपर प्रयत्न का साधन (इन्द्रियजाल)।

वैशेषिककार भूतों की उत्पत्ति परमाणुओं से मानते हैं। यह परमाणु सांख्यमकार के तन्मात्र ही हैं। महात्मा कणाद को इन कणों से आगे जाने का प्रयोजन न था। वाचस्पति के मत में तन्मात्र और भूतों के बीच की एक और अवस्था है, जिसे परमाणु कहते हैं।

भूतों का क्रम — भूतों का क्रम उपनिषत्कार ने बांधा है:-

आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी...।

आकाश ethreal state से वायु gaseous state, अग्नि agneous state उस से जल liquid state उस से पृथिवी solid state.

वेद में यह विषय यों आया है :—

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरत् प्रदहन् विश्वदाव्यः।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीत् मातरिश्वा तदानीम् ॥
अ० १०. ८. ४०

अर्थः— जिस ब्रह्म में आकाश (सूक्ष्मतम भूत) पृथिवी (स्थूलतम भूत) सब का प्रकाशित करने वाला अग्नि (मध्य का भूत) उसी में एक पत्नीः (आपः) और वायु (अग्नि से क्रमशः स्थूलतर और सूक्ष्मतर भूत) स्थिर थे।

आधुनिक विज्ञान भी प्राकृतिक प्रपंच की सूक्ष्मतम अवस्था ether को मानता है। gaseous वायवीय आदि अवस्थाएं उस से पीछे घटित हो सकती हैं।

भूत क्या है? — इन पांच भूतों को रासायनिक तत्व नहीं समझना चाहिये। यह भौतिकी physics के विषय हैं। भूतविज्ञान ही तो भौतिकी है। वर्तमान भौतिकी में Ether को heat उष्णता और light प्रकाश का आधार माना है। आर्य तार्किकों ने पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषयों शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, को एक २ भूत का आधेय बनाया है। उष्णता, प्रकाश, विद्युत् की अपेक्षा यह पुराना वर्गीकरण युक्तियुक्त प्रतीत होता है। परन्तु इस के वैज्ञानिक परीक्षण की अब फिर अपेक्षा है।

आर्य तर्क में उत्पत्ति का अर्थ आविर्भाव है। नासदासीत् में सत् (आभु) था। केवल व्यक्त न हुआ था। आभु में मनसो बीज था। उस में तिरश्चीनो रश्मिः था। सूक्ष्म भूतों में स्थूल भूतों की सत्ता थी, आविर्भाव पीछे हुआ।

विकासवाद की समीक्षा — यह प्रकरण अधूरा रहेगा, यदि इस में आधुनिक Biological Evolution जीवन-विकाश के सिद्धान्त की संक्षिप्त समीक्षा न करदी जाए।

जीवन का आरम्भ — विकासवादी protoplasm कललरस को जीवन का सरलतम रूप मानते हैं। वह भौतिक तत्वों का बना है। उस में जीवन कैसे आया, यह प्रश्न प्रकृतिवाद से हल नहीं हो सकता। हम ऊपर कह चुके हैं कि आत्मा की प्रकृति से भिन्न स्वतन्त्र सत्ता है। इसके मानने मात्र से ही यह समस्या झट सुलझ जाती है।

मौलाना रूम — विकासवाद की स्फूर्ति मौलाना रूम को भी हुई थी। उन्हों ने लिखा है :— "पत्थर से मैं वनस्पति हुआ, वनस्पति से पशु, पशु से मनुष्य, मनुष्य से मैं देवता हो जाऊंगा।"

सत्थर से वनस्पति होना तो दूसरे रूप में तत्वों से कललरस बनना है। इस धारणा की कठिनाई को

हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं। शेष, एक वर्ग से दूसरे वर्ग में, परिवर्तन कैसे हुआ, यह मौलाना ने नहीं बताया। उनका ध्येय थियासोफ़िकल सोसाइटी का (Reincarnation) है, अर्थात् एक ही जीव का पुनर्जन्म द्वारा चोला बदलते जाना या विकासवादियों का वंश परम्परा द्वारा शरीर का विकास है कि किसी पुण्यप्रातःकाल वनस्पति देखते २ पशु होजाए, पशु के गर्भ से मनुष्य पैदा हो, इत्यादि ? मौलाना आत्मवादी हैं। इनकी धारणा पूर्वोक्त होगी अर्थात् थियासोफिस्टों की सी। उस पर इस जगह हमें आपत्ति नहीं।

भूगर्भ विद्या की साक्षि वनस्पति के बीज से पशु, और पशु के पेट से मनुष्य अभी तक पैदा होता नहीं देखा गया। विकासवादियों के सिद्धांत का यह भाग (और यही भाग मुख्य है) कोरी कल्पना प्रतीत होती है। विकासवाद का वैज्ञानिक आधार कुछ भूगर्भ-विद्या Geology तथा पशुगर्भ-विद्या Embryology के आविष्कार हैं। भूगर्भ-विद्या के अन्वेषणों से पता लगता है कि पृथिवी की निचली तहों में जलीय प्राणियों के पिंजर हैं, पार्थिव प्राणियों का वहां पता तक नहीं। पशु पक्षी ऊपर की तहों में मिलते हैं। इससे कल्पना यह की जाती है कि पहिले सब प्राणी जलीय अर्थात् मछलियां आदि थे। उन्हीं के प्रजनन से पार्थिव पशुओं की उत्पत्ति हुई। हम ऊपर बता चुके हैं कि संसार की सृष्टि पहले आकाशीय Ethereal अवस्था में से गुज़री, फिर वायवीय अवस्था से, फिर आग्नेय, फिर जलीय और सब से पीछे पार्थिव अवस्था आई। प्रत्येक अवस्था में उस अवस्था के अनुकूल ही प्राणियों का उद्भव हो सकता था। एक वर्ग दूसरे का वंशज नहीं। वह उस के पीछे आया, जब उस के रहने सहने का सामान हो चुका था।

जलीय अवस्था से पूर्व आग्नेय अवस्था है। उस अवस्था का प्राणी कोई चिन्ह छोड़ नहीं सकता। पिंजर छोड़ने वाले प्राणी उसी समय आ सकते हैं जब जलीय से पार्थिव अवस्था का विकास हो रहा हो। प्राप्त पिंजर संभवतः प्रथम पार्थिव सृष्टि हैं।

पशु गर्भ विद्या की साक्षि दूसरी साक्षि पशुगर्भ विद्या Embryology की है। विकास की सीढ़ी में जो प्राणी पूर्वजाति के हैं, उनका गर्भ-जीवन सरल है। ज्यों २ हम अधिक विकसित प्राणियों में आते हैं, उन के गर्भ-जीवन में उनसे निचले वर्ग की गर्भावस्था भी संक्षेप से दोहराई जाती है और उस वर्ग की अपनी अवस्था भी, उस अवस्था के अनन्तर घटित होती है। यथा गर्भस्थ मंडूक पहिले गर्भस्थ मछली के सदृश गर्भस्थ रहता है, फिर अपनी माण्डूकीय गर्भावस्था में आता है। ऐसे ही आगे के वर्गों में होता है। गर्भावस्था की यह संकीर्णता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इस से विकासवादी अनुमान करते हैं कि मंडूक पहिले मछली रहा है, सर्प पहिले मेंडक रहा है, पक्षी पहिले सर्प रहा है इत्यादि। संकीर्णता की उत्तरोत्तर उन्नति वंश-परम्परा का फल होती तो प्रत्येक वर्ग के अन्दर भी पिता की गर्भावस्था पुत्र में दोहराई जाने के साथ २ पुत्र की गर्भावस्था में कुछ विशेषता आती ; परन्तु इस विशेषता का कोई प्रमाण न भूगर्भ में मिलता है न भू-तल पर। प्राणि-जगत् के वर्गों में एक श्रृंखला है उत्तरोत्तर संकीर्णता है, यह बात इन वर्गों की गर्भावस्था से लेकर मरणावस्था तक के सारे जीवन-व्यवहारों में पाई जाती है। इस से रचयिता की रचना की सुन्दर सुव्यवस्था का प्रमाण तो मिलता है, वर्गों के उत्तरोत्तर वंशज होने का प्रमाण नहीं मिलता। वंशज होने का प्रमाण केवल एक ही हो सकता है। वह यह कि एक वर्ग के किसी प्राणी के पेट से कोई दूसरे वर्ग का प्राणी पैदा हो। ऐसा कोई उदाहरण न इतिहास में मिलता है, न भूगर्भ विद्या की खोजों में, और न आधुनिक अनुभव में ही आया है। * [नोट देखो पृष्ठ ४२ पर]

विकासवाद की युक्ति-श्रृंखला में से यदि शेषोक्त अर्थात् वंश-परंपरा संबन्धी कल्पना का भाग, जिस के लिये कोई प्रमाण नहीं, निकाल दिया जाय तो भूगर्भ विद्या तो उपरि-कथित आर्य तर्क प्रदर्शित सृष्टि परंपरा की पोषक यह साक्षियां हमारे अनुकूल हैं। सिद्ध होती है और पशु गर्भ विद्या परमात्मा की सर्वज्ञतान्वित रचना की।

यह सृष्टिक्रम एक कल्प का है। प्रत्येक सृष्टि के पीछे प्रलय होती है और प्रलय के पीछे फिर सृष्टि। यह चक्र प्रवाह से अनादि है और अन्तकाल तक

[नोट पृष्ठ ४१ पर का]

* नवम्बर १९२२ के New age में म० जोनस् बोसन ने लिखा था :——

"इसके आगे मैं निर्भयता से कहना चाहता हूं कि आधुनिक समय तक प्राप्त विज्ञान इस बात का कोई निश्चय नहीं दिलाता कि पृथ्वी पर कभी उत्तरोत्तर-विकास का नियम प्रचलित हुआ हो। प्राकृतिक इतिहास के निरीक्षक, चाहे वह इतिहास भूगर्भ-विद्या का हो व वनस्पति शास्त्र का, इस बात को भली भांति जानते हैं। जब कभी किसी फल व फूल वाले वृक्ष में हम कलम लगाकर उसे नए रूप में लाना चाहते हैं तो उसका परिणाम मूल वृक्ष की अपेक्षा नवजात संतति में अधिक मृदुता लाता है और प्राकृतिक नियम के विरुद्ध अपनी मूल जाति की ओर लौटने का नियम भी पूर्व रूपेण काम करता है। चुनाव द्वारा उन्नति का डार्विन का नियम भी इसी परिणाम को उत्पन्न करता है। मैं अपने बाग़ में घूमता हुआ यहां कलम किये पौधों को देखता हूँ। उनमें कृत्रिमावस्था से अपनी स्वाभाविक अवस्था में आने के लिये युद्ध हो रहा होता है वहां प्रायः यही देखने में आता है कि पूर्व की स्वाभाविक अवस्था जो बलशाली होती है कृत्रिम अवस्था पर विजय पा लेती है। मैं अपने प्रमाण की पुष्टि के लिये मि० हैनरी डमन्डस लिखित "Natural law in the spiritual world" नामी पुस्तक के उस अध्याय को पेश करता हूँ जहां वह कबूतरों और गुलाब के पेड़ों के उदाहरण द्वारा इसी बात को पुष्ट करता है।

आगे चलकर आप लिखते हैं :—

परन्तु अब वस्तुतः चाहे विकासवादी आधुनिक समय में विकास-नियम के चालू होने को मानते हों वा न मानते हों, यह हम जानते हैं कि प्राचीनकालिक, मध्यकालिक व आधुनिक समय में कोई भी ऐसा नमूना इस बात की पुष्टि के लिये नहीं मिलता कि मानवीय जाति-उपजाति (Human species) में परिवर्तन होता है। यदि मनुष्यों की उत्पत्ति बन्दरों द्वारा शनैः २ विकास से मानली जाय तो आगे उनका क्या हुआ? यदि बच्चों ने अपने पिता माता को खा लिया तो उन की हड्डियों को तो वे नहीं खा सकते थे। और इतने असंख्य प्राणियों में से कुछ तो ऐसे बचे रहते जो या तो पाषाण बनकर या ग्लेशियर के सूराखों में सुरक्षित रहते जैसे कि उत्तरीय साइबेरिया में अबतक ऐसे विशालकाय मेंमथ सुरक्षित रहे हैं जिनके पेट में पचा हुआ भोजन तक अभी कुछ २ देखा जा सकता है,.........परन्तु असंख्यों, अरबों और करोड़ों, प्राणियों में से एक भी ऐसा अभी तक प्राप्त नहीं हुआ जो जाति-उपजाति में वृद्धि (उन्नति) व परिवर्तन को दर्शा सके।

प्राचीन मिश्र देशीय क़बरों में प्राप्त शरीर आजकल के ही शरीरों के समान हैं। यदि हम साक-का-रा (Sak-Ke-Ra) के पेरामिड्स की कोठरियों की दीवारों के चित्रों को, एवं ५७०० वर्ष पूर्व के राजाओं की क़बरों के चित्रों को देखें तो स्पष्ट मालूम पड़ता है कि मनुष्यों पशुओं आदि में कुछ भी भेद नहीं आया। अर्थात वे वैसे ही हैं जैसे कि आज कल के। ब्रिटिश म्यूज़ियम का अध्यक्ष डाक्टर ऐथ्रिज Ethridge कहता है:—'इस सारे बड़े अद्भुतालय (Museum) में कोई कण भी ऐसा नहीं है जो यह सिद्ध कर सके कि जातियों [species] में परिवर्तन हुआ है। विकास विषयक $\frac{9}{10}$ बातें व्यर्थ, फ़ज़ूल और निःसत्व हैं। इनका परीक्षण, निरीक्षण व सत्यता पर कुछ भी आधार नहीं है।"

इंग्लैंड को प्रकृति-विद्या विशारदों में से सब से बड़ा विद्वान् प्रोफ़ैसर ओवन (Owen) बड़े बल पूर्वक कहता है:— "आजतक मनुष्य ने जाति (species) परिवर्तन का एक भी उदाहरण हमारे सामने नहीं रक्खा है।

चालू रहेगा। अप्रासंगिकता के भय से हम यहां इस विषय का विस्तार नहीं करते।

सार

विकासवादी केवल प्रकृति को सृष्टि का कारण मानते हैं। उनके मत में Protoplasm कललरस जीवन का सरलतम रूप है। इसी कललरस की वृद्धि और गुणन से संकीर्ण प्राणियों का विकास होता है। कललरस भौतिक पदार्थ है। उसमें चेतनता कैसे आती है? इस समस्या का समाधान जीव को पृथक् और अनादि मानने से ही होता है।

जीव अनादि है

कुछ लोग केवल परमात्मा को आदि कारण मानते हैं। उनसे इस शंका का उत्तर नहीं दिया जासकता है कि चेतन परमात्मा से अचेतन जगत् कैसे पैदा होता है? प्रकृति को अनादि मानने से यह शंका मिट जाती है।

प्रकृति अनादि है।

जीव पाप भी करता है। यदि एक मात्र परमात्मा सृष्टि में कारण हो तो पाप का बीज भी वही ठहरेगा। अतः जीव को अनादि स्वतन्त्र कर्त्ता मानना चाहिए। स्वतन्त्रता पैदा की जाय तो वह स्वतन्त्रता न होगी।

जीव

परमात्मा

परमात्मा की सिद्धि पूर्व हो चुकी है।

सृष्टि के तीन कारण होते हैं। (१) परमात्मा नियामिक होकर। (२) जीव (मरुद्भ्यः ऋ०) कर्मफल का भोक्ता होकर। यही प्रकृति का पुरुषार्थ है। (३) (सुदुघा पृश्निः ऋ०) प्रकृति उपादान होकर।

तीन कारण

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्।

सृष्टि से पूर्व प्रकृति थी। व्यास मुनि ने योग सूत्र २-१९ का भाष्य करते हुए प्रकृति को 'निस्सत्ता सत् निःसदसत्' कहा है। प्रकृति असत् इसलिये न थी कि वह परमार्थ में थी। सत् इसलिये न थी कि उसका व्यवहार न था।

सृष्टिक्रम

महान् तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्।

अभाव से जो महान् ढका हुआ था, वह एक (परमात्मा के) तप से उत्पन्न हुआ

तपः का अर्थ "स्वाभाविकी बल क्रिया" है। उससे नो सदासीत् से आभु pure being सत् (महान्) उत्पन्न हुआ।

मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।

इससे ज्ञान का प्रथम बीज अहंकार—मैं हूँ, यह ज्ञान, और तन्मात्र केवल वह, यह ज्ञान, पैदा हुआ। यह शुद्ध सत्त्व का अधिक व्यक्त रूप है

अहङ्कार तन्मात्र

इसके आगे सृष्टि का क्रम 'तिरश्चीनो-रश्मिः' दो-मुखा होता है।

इन्द्रिय और भूत

स्वधा अवस्तात् प्रयपतिः परस्तात्। ऋ०

अपने में आश्रित रहने वाले भूत एक ओर, यत्न के साधन मन और इन्द्रिय दूसरी ओर।

आर्य तर्क प्रकृति का विकास पुरुषार्थ (जीवों की आवश्यकता) के अनुसार मानता है।

वैशेषिक कथित परमाणु तन्मात्र ही हैं। कणभुक् को इन कणों से आगे प्रयोजन न था।

परमाणु

भूतों का विकास यों हुआ :—

भूतों का विकास

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः।

यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम्।

१. आकाश Etherial state	३. अग्नि Agneous state	५. पृथिवी Solid state
२. वायु Gaseous state.	४. जल Liquid state.	

यह क्रम युक्ति-युक्त है।

विकासवाद एक जाति के गर्भ से दूसरी जाति की उत्पत्ति मानता है, यथा मछली से मेंडक, मेंडक से सांप, सांप से पक्षी, पक्षी से स्तनधारी। इसमें विकासवाद की मुख्य युक्तियां यह हैं :—

विकासवाद की समीक्षा

१. भूगर्भ विद्या की साक्षि-पृथिवी की निचली तहों में जलचरों के पिंजर मिलते हैं। ज्यों २ हम ऊपरली तहों पर आते हैं, अधिक विकसित प्राणियों

के पिंजर मिलते हैं।

इस का उत्तर—भूतों के विकास का जो क्रम ऊपर दिया है, उस में सूक्ष्म भूतों में रहने लि प्राणी ही पहिले पैदा हो सकते हैं। जबतक प्रकृति आग्नेय अवस्था में थी, पिंजर न बन सकते थे पिंजर उस समय बने जब जलीय से पार्थिव सृष्टि होने लगी। यह कारण है कि निचली तहों में जलीय प्राणियों के पिंजर मिलते हैं।

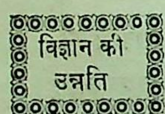
२. पशुगर्भ विद्या की साक्षि-संकीर्ण पशु सरल पशुओं की गर्भावस्था के अतिरिक्त अपनी विशेष गर्भावस्था में से गुज़रते हैं। प्रतीत होता है कि मैंडक पहिले मछली रहा है, इत्यादि।

उत्तर- इस से रचना में क्रम (सूत्र) का द्योतन होता है, विकास का नहीं।

विकास की सच्ची साक्षि एक जाति के किसी प्राणी के पेट से दूसरी जाति के प्राणी की उत्पत्ति ही हो सकती है। और इसका कोई प्रमाण नहीं।

अध्याय चौथा।

[ज्ञान का प्रारम्भ]



आधुनिक युग विज्ञान की उन्नति का युग है। मनुष्य ने विज्ञान-बल से ब्रह्माण्ड भर की शक्तियों को अपने आधीन करने की ठानली है। भाषा का परिमार्जन हो रहा है। विचार व्यक्त करने की उत्तम से उत्तम शैलियों का आविष्कार किया जा रहा है। प्रत्येक देश अपने शब्द-पुंज को बढ़ाता तथा परिष्कृत करता जाता है। आत्मा के सम्बन्ध में भी नए २ परीक्षण हो रहे हैं—ऐसा पत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है।

पशु सदृश मनुष्य

एक ओर यह चमत्कार-पूर्ण दृश्य हैं, दूसरी ओर अफ़्रीका के मानवभोजी मनुष्य हैं। अपने ही देश के भील हैं, गोंड हैं। इन्हें सभ्यता छू तक नहीं गई। विचार होता है कि क्या कभी उन्नत देशों की भी यही अवस्था थी।

भूगर्भ से निकली सामग्री

भूगर्भ विद्या की खोज ने अनेक देशों की भूमि का पेट चीर २ कर पुराने मनुष्यों के पिंजर निकाले हैं। उन पिंजरों के साथ बहुतकुछ ऐसी सामग्री मिली है जो कोरी असभ्यता की परिचायक है। पत्थर के और फिर धातु के टेढ़े मेढ़े बर्तन हैं, अस्त्र हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जहां आज विज्ञान का अखंड, उत्कर्षोन्मुख राज्य है, वहां कभी पशु-सदृश मनुष्य पाशविक जंगली जीवन व्यतीत किया करते होंगे।

विकासवाद

विकासवादियों का कहना है कि आरंभिक मनुष्य बोलना न जानते थे, उन्हें किसी पदार्थ के गुणों का पता न था। आत्मा का तो प्रश्न ही पीछे उठा। ज्ञान का प्रादुर्भाव

आकस्मिक हुआ और उसमें उत्तरोत्तर उन्नति की गई। इसी उत्तरोत्तर उन्नति का परिणाम आजकल का वैज्ञानिक उत्कर्ष है।

धर्मवाद

इनके विरुद्ध धर्मवादी हैं। उनका सिद्धान्त यह है कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने मनुष्य को ज्ञान दिया, भाषा दी, आत्मा का पूरा पता दिया। वही आरंभिक ज्ञान कई अंशों में बढ़ा और कई अंशों में घटा है। हमें इस लेख में यह विचार करना है कि इन में से कौनसा पक्ष ठीक है?

भाषा की समीक्षा

हम सब से पूर्व भाषा को लेंगे, इसलिये कि भाषा मानव सभ्यता का प्रधान अंग है। क्या ज्ञान और क्या तर्क इसी के सहारे उन्नति को प्राप्त होते हैं। किसी जाति की भाषा के उन्नत व अवनत होने से उस जाति की प्रत्येक अंग की उन्नति वा अवनति का परिचय मिलता है। विकासवादियों का कहना है कि भाषा का प्रादुर्भाव धीरे २ होता है। बच्चा पैदा होते ही बोलना नहीं जानता। ज्यों २ बड़ा होता है, उसे बोलना आता जाता है। किसी समय सारी मानव जाति बालक थी, इसे बोलना न आता था। धीरे २ इसने बोलना सीखा। कैसे सीखा? इसमें विविध मत हैं।

बाऊवाऊ वाद

परन्तु सब मत कुछ मिलते जुलते से हैं। एक का नाम है Bow Vow Theory बाऊवाऊ की कल्पना। इसका अभिप्राय यह है कि पशु-जगत् की स्वाभाविक ध्वनियों को सुनकर मनुष्य ने उसके अनुकरण में अपनी भाषा का निर्माण किया। अन्य मतों में पशुओं के स्थान में अन्य पदार्थों को रखकर वही सिद्धांत स्थापित किया है कि भाषा का निर्माण प्राकृतिक ध्वनियों के अनुकरण से हुआ है।

एकान्त में रक्खे गए बालक

धर्मवादियों को पहिले तो उपरिकथित बच्चे के दृष्टान्त पर ही आक्षेप है। बच्चा बोलना नहीं जानता। परन्तु क्या वह किसी नई भाषा का निर्माण स्वयं करता है? बनी बनाई भाषा उसे सिखाई जाती है। अकबर आदि कई राजाओं ने नवजात बालकों को भाषा-भाषी जनता से पृथक् किसी निर्जन स्थान में रक्खा। उन्होंने किसी भाषा का विकास नहीं किया। कहा जा सकता है कि कुछेक वर्ष इस विकास-क्रिया के परीक्षण के लिये अपर्याप्त थे। वस्तुतः बच्चों का दृष्टान्त दोनों पक्षों के लिये कोई विशेष महत्वपूर्ण साक्षि नहीं है। आपत्ति उन कल्पनाओं पर है जो विकास-वादियों की ओर से विकास का स्वरूप बताने के लिये प्रस्तुत की जाती हैं। क्या कोई जाति इस समय बाऊवाऊ आदि शब्दों से कोई नया भाव बना रही है? या कम से कम किसी भाषा के अधिक शब्द ऐसे हैं जिनका मूलाकार भाषा-विज्ञान की दृष्टि से बाऊवाऊ आदि शब्द, जिन को Anomato-poetic ध्वन्यनुकारी कहते हैं, हों? स्वयं भाषा विज्ञान-विशारदों की सम्मति में किसी भाषा में ध्वन्यनुकारी शब्दों की बहुतायत नहीं। भाषा-विकास की कोई कल्पना भाषा के आरम्भ की समस्या को सुलझा नहीं सकी। श्रीयुत मोक्षमूलर

भाषा ईश्वर प्रदत्त है

ने अपने Science of Language नामक ग्रन्थ में स्पष्ट रूपेण स्वीकार किया है कि भाषा तो परमात्मा की प्रदान की हुई प्रतीत होती है। यह प्रदान सृष्टि के प्रारंभ में ही हो सकता था। अथर्व वेद में आया है:—

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथा यथम्। अ० १०. ८. ३३

अनादि परमात्मा भाषा की स्फूर्ति देता है। उसे वैसे का वैसा बोलते हैं।

अर्थात् भाषा अपने पूर्ण रूप में सृष्टि के आरम्भ में प्रादुर्भूत होती है।

ऋग्वेद में कहा है:—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैत नामधेयं दधानाः।

ऋ० १०. ७१. १

हे वाणी के पति परमात्मन्? वाणी का प्रथम

बीज मनुष्यों ने पदार्थों के नाम रखते हुए (आप से) प्राप्त किया।

कुरान में कहा है कि :—

परमात्मा ने आदम को नाम सिखाए।
(सूराबक़र)

विज्ञान-विकास समीक्षा

जो अवस्था भाषा की है, वही विज्ञान की भी है। यदि ज्ञान के उत्तरोत्तर विकास का सिद्धान्त सत्य होता तो प्रत्येक जाति का वर्तमान काल उसके भूतकाल से उत्कृष्ट होता। परन्तु अवस्था इसके विरुद्ध भी है। प्रत्येक जाति को किसी स्वर्णमय भूत का सपना आता है। संभव है वह सपना असत्य हो परन्तु निम्न लिखित साक्षियां सपना नहीं हैं। यह तो प्रत्यक्ष दृश्यमान भौतिक भुवनों की अनुपेक्ष्य बोलियां हैं :—

पुरातत्व विद्या की साक्षि

(१) जोन्स बौसन Jones Bowson ने नवम्बर २२ के New Age में एक लेख लिखते हुए निम्न विचार प्रकट किये हैं :—

"यदि मनुष्य जाति का इतिहास उत्तरोत्तर विकास का इतिहास है, तो क्योंकर चीनी लोग ईस्वी सम्वत् से पूर्व गन पौडर और सामुद्रीय ध्रुवदर्शक सुई (Mariner's compass) से अभिज्ञ थे और क्यों वे अब उसे भूल गए हैं? एवं क्योंकर अब भारत में मुग़ल राज्यों के कारनामों के दर्शनीय दृश्य केवल उनके भवनों और क़बरों में ही देखे जा रहे हैं? हिन्दू जाति क्यों ४०० वर्ष से पीछे चली गई है? क्योंकर १२वीं से १४वीं शताब्दी तक के कम्बोदिया, अंगकोर और जावा में बरोबेदरों के खंडहरों को अब आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता है? क्योंकर पीकिङ्ग में राजकुमारियों के ग्रीष्मऋतु के घरों की छतों पर लगी हुई खपरैलों के बनाने की विधि और ग्रनेडा (Granada) में अलहम्ब्रा (Alhambra) की दीवारों पर रंग के काम करने की विधि का प्राचीन मूर लोगों के साथ ही लोप हो गया? क्योंकर अब मिश्र के रहने वाले लोग ज्योतिष और गणितशास्त्र से अपरिचित हैं जबकि वृत्त के वर्गीकरण सिद्धान्त को जानते हुए उन्हों ने चीप्स (Cheeps) के बड़े २ पैरामिड्स को ऐसी स्थिति में खड़ा किया था जहां कि वे Vernal Equinox के दिन मध्यान्ह समय अपनी छाया को अपने में लुप्त करदे। Hydraulic machinery के विना ही किन साधनों से करनाक और पालमायरा (Karnak & Palmayra) के राज-मन्दिरों पर इतने भारी २ पत्थरों को लाकर रख दिया गया था? चित्र विद्या सम्बन्धी विज्ञान-जिसके कारण ही ऐज़्टक्स (Aztecs) पर चित्र विचित्र सुनहरी और पंखों का काम हुआ था अब क्यों विलुप्त हो गया? निस्सन्देह, जो व्यक्ति धर्मभाव से सत्य की खोज करता है, उसकी यही सम्मति होगी कि अनेक दिशाओं में विनाश के साथ २ कुछेक दिशाओं में ही मानवीय उन्नति हो रही है।"

(२) अगस्त १९२३ के थियासोफ़िकलपाथ में केट हैनसन ने लिखा था :—

नैवदा (Nevada) में जान-टी-रीड (John T. Reid) को एक आदमी का पद-चिन्ह और एक अच्छी प्रकार बना जूते का तला मिला है जिसे वह चट्टान-विषयक अपने भूगर्भ विद्या सम्बन्धी ज्ञान से ५० लाख वर्ष पूर्व का बतलाता है। रौक फेलर संख्या के सूक्ष्म-चित्र-मुद्रकों (Microphotographers) ऐसे सीवन धागों के मरोड़, सीने के छेद, और धागों के माप मिले हैं, जो आज कल के जूतों में प्रयुक्त धागों से अधिक पक्के और सूक्ष्म हैं। इस जूते के तलों के साथ डाइनोसर्ज़ (Dinosaurs) के पैरों का निशान और उनकी हड्डियां भी मिली हैं। प्रोफ़ेसर रीड (Prof. Reid) और उनके सहकारियों को उनके लगातार वैज्ञानिक विश्लेषण, खोज, और परिश्रम, तथा उदारता के लिये धन्यवाद है। उन्होंने इस बात को स्वीकार करलिया है कि

"वे जूते इतनी ऊंची बुद्धि के प्रमाण हैं जितनी कि आजकल लिन (Lynn) ब्रौकटन्स (Brocktons) मैसेचसटस Massachusetts में जूते बनाने में दर्शाई जाती है।"

(३) थियासोफ़िकलपाथ मार्च १९२४ मे C J. Ryan ने लिखा था :—

"माइक्रोनेशिया पश्चिमीय शान्त समुद्र में पोनेप Ponape एक द्वीप है जहां कि बेसाल्ट की बड़ी दीवारें कई वर्ग मीलों तक बनी हुई मिली हैं। उनकी बनावट ठोस विशाल-काय पत्थर की है और वे इतनी दृढ़ हैं कि हज़ारों वर्षों के तूफ़ानभी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सके।"

वैज्ञानिक विकास न तो इन पुरानी जातियों में हुआ है न आजकल की भील गोंड आदि जातियों में स्वतः होता दीखता है। मानव जाति, मानव बालक की तरह बाह्य शिक्षा की अपेक्षा रखती है, स्वतः विकास नहीं करती। विज्ञान का आरंभ दैवी प्रेरणा से होता है।

डार्विन महाशय विकासवाद के प्रवर्तक समझे जाते हैं। श्रीयुत वैलेस इस आविष्कार में उनके सहकारी थे। वह अपनी पुस्तक Social Environment and Moral Progress में शेष विकास को तो मानते हैं परन्तु मनुष्य पर आकर वह भी ठहर जाते हैं। उनका मत यह है कि मनुष्य में आत्म शक्ति का प्रादुर्भाव परमात्मा की विशेष कृपा का फल है। ईसाई संस्कारों के कारण यह महाशय पशु पक्षियों में आत्म-सत्ता नहीं मानते। प्रतीत होता है कि मनुष्य की आत्मशक्ति से इनका अभिप्राय मानवीय विज्ञान विभूति से होगा। इसमें मानव जाति ने विशेष उत्कर्ष दिखाया है। हमें यहां वैलेस महाशय की ईसाइयत की पड़ताल करना अभीष्ट नहीं। हमें तो केवल उनके इतने लेख से काम है कि विज्ञान की आरंभिक प्रेरणा परमात्मा से आती है। उन्हों ने लिखा है:—

"हमको स्वीकार करना चाहिये कि वे मस्तिष्क जिन्होंने ऐसे विचारों का जो इन वेद की ऋचाओं से प्रकट होते हैं, विचारा और उन्हें उपपन्न भाषा में प्रकट किया, किसी अवस्था में भी हमारे उत्तम से उत्तम धार्मिक शिक्षकों, कवियों, हमारे मिलटनों और हमारे टैनीसनों से न्यून नहीं थे।"

वेदका मत

वेद का सिद्धान्त इस विषय में भी वही है जो भाषा के विषय में। ज्ञान का बीज सृष्टि के आदि में मनुष्यों को दिया जाता है। ऐसे ऋषि जो पूर्व कल्प के कर्मों से अपने आपको इतना पवित्र बना चुके हैं कि उनका अन्तश्चक्षु खुल गया है जो अपनी उज्ज्वल प्रतिभा से पदार्थों के तात्विक रूप का अनुभव करते हैं, वह परमात्मा की करुणा से इस पवित्र अमृत को अपने विमल हृदयों द्वारा पाते हैं। उन्हीं की वाणी वेदवाणी होती है।

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः।

यह पिता परमात्मा का उज्ज्वल ज्ञान प्रथम जन्म लेने वाले को प्राप्त होता है। वह ज्ञान ब्रह्माण्ड में स्थिर है।

प्रयो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचादुच्चैः स्वधा अभिप्रतस्थौ॥

अ० ४. १. २

जो प्राणीमात्र का बन्धु-विद्वान् सब दिव्य पदार्थों का तत्व बताना चाहता है, वह परमात्मा से वेद का ज्ञान प्राप्त करता है। उसे नीचे, ऊपर, और बीच में, अपने सहारे से खड़ा उस ज्ञान का अनुभव होता है।

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्

ऋ० १०. ७१. ३

वाणी की खोज यज्ञ से की गई। उसे ऋषियों में प्रविष्ट पाया गया।

चार ऋषि

यहां 'ऋषिषु' शब्द ध्यान देने योग्य है। वेद का प्रथम ऋषि एक नहीं, अनेक हैं, दो से अधिक हैं। कितने हैं? इसका उत्तर इसी सूक्त के अन्त में दिया गया है :—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः ॥
ऋ० १०. ७१. ११

एक (अग्नि) ऋग्वेद का ज्ञान पाता है। दूसरा (आदित्य) मन्त्रों से साम गान करता है। तीसरा ब्रह्मा विज्ञान (अथर्ववेद) को कहता है। चौथा (वायु) कर्म की विधि (यजुर्वेद) को पाता हैः—

इस विभाग का कारण मनुष्यों का बुद्धि-भेद है। मानस क्षेत्र में चार प्रकार का उत्कर्ष पाया जाता हैः—

१. कर्म प्रधान। २. भक्ति प्रधान। ३. ज्ञान प्रधान। ४. विज्ञान प्रधान।

ज्ञान विज्ञान का भेद भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं। संपूर्ण मानसिकता किसी व्यक्ति में नहीं होती, प्रत्येक में एक अंश की प्रधानता और अन्य अंशों की गौणता रहती है। इस नैसर्गिक आवश्यकता की पूर्ति वेद के इस विभाग से होती है।

भूगर्भ की खोजों का उत्तर

अब हमें यह विचार करना है कि भूगर्भ विद्या की उन खोजों का क्या समाधान है जिन के द्वारा पुराने मानव निवासों से जांगलिक जीवन की सामग्री के अतिरिक्त कुछ उपलब्ध ही नहीं होता? इस विषय में धर्मवादी और विकासवादी सहमत हैं। मनुष्य जहां अपनी वैज्ञानिक विभूति बढ़ा सकता है, वहां उसे घटा भी सकता है। धर्मवादी विकास को भी मानते हैं ह्रास को भी। जैसे व्यक्तियां उन्नत और अवनत हो सकती हैं, ऐसे ही जातियां भी। आरंभिक ज्ञान प्रभु देते हैं, फिर उनके बढ़ाने घटाने में मानव व्यक्तियां तथा जातियां स्वतन्त्र हैं।

आत्म-ज्ञान में विकास नहीं हुआ

भाषा तथा विज्ञान का विचार कर चुकने के पीछे आत्मज्ञान का प्रश्न रह जाता है। उस पर भगवती श्रुति का कहना यह है कि—

नूनं तदस्य देवस्य काव्यो हिनोति महोदेवस्य पूर्व्यस्य धाम।
अ० ४. १. ६.

उस प्रभु का काव्य (वेद) भगवान् के महान् स्वरूप का वर्णन करता है।

वेद धर्म-पुस्तकों में सब से पुराना है। यदि आत्म-ज्ञान सम्बन्धी कोई नया अविष्कार इस से पीछे आए धर्म-पुस्तकों ने किया हो अथवा उसी ज्ञान को ही अधिक उन्नत अवस्था तक पहुंचाया हो तो आत्मज्ञान के क्षेत्र में विकास का अस्तित्व माना जा सके। परन्तु ऐसी उन्नति का कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया गया। अतः मानना पड़ेगा कि आत्म-ज्ञान परमात्मा की ओर से आया और पूर्ण आया।

आहा! वह कैसा पुण्य दिवस होगा जब ऋषियों ने वेद की आज्ञा का प्रचार कर मनुष्य जाति को पहिले पहल पशु से मनुष्य बनाया होगा। वेद कहता है:—

अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथा द्युमन्तो विवसन्तु विप्राः।
अ० ४. १. ५.

वह उज्ज्वल ज्योति का दिन उदय होता है जब आज्ञा मिलती है कि अब ज्ञानी लोग ज्ञान पूर्वक विविध २ रीतियों से जीवन-निर्वाह करें। वही दिन मानव सृष्टि का प्रथम दिन होता है।

सार

विकासवाद

विकासवाद का सिद्धांत है कि प्रारंभिक मनुष्य जंगली थे, जैसे कि आजकल अफ्रिका के हवशी तथा हमारे यहां के भील गोंड हैं। उन्हों ने भाषा, विज्ञान तथा आत्म-विज्ञान में उत्तरोत्तर उन्नति की है।

धर्मवाद

इस के विपरीत धर्म का सिद्धांत यह है कि प्रथम ज्ञान परमात्मा ने दिया। उसे मनुष्यों ने कई अंशों में बढ़ाया और कई अंशों में घटाया है।

भाषा की उत्पति

प्रथम भाषा ही को लीजिये। विकासवाद कहता है कि पशुओं तथा अन्य पदार्थ

और क्रियाओं की प्राकृतिक ध्वनियों को सुनकर मनुष्यों ने धीरे २ अपनी भाषा का निर्माण किया। परन्तु न तो कोई भाषा इस प्रकार से बनती देखी गई है न किसी भाषा का शब्द-कोष ऐसे ध्वन्यु-नकारी शब्दों से भरा हुआ है। भाषा के प्रारम्भ की समस्या विकासवादियों से नहीं सुलझी। मैक्स मूलर ने भी अन्त में भाषा को ईश्वर-प्रदत्त माना है। वेद में स्पष्ट कहा है:—

अपूर्वेणेषिता वाचः। अ०

अनादि परमात्मा ने शब्दों की प्रेरणा की है।

ज्ञान का विकास भी हुआ, ह्रास भी

यही अवस्था विज्ञान की है। यदि विज्ञान के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास ही हुआ होता तो सब जातियों की आधुनिक अवस्था प्राचीन अवस्था से उच्च होती परन्तु ऐसा है नहीं। भारतीय और चीनी जातियां इस वाद का प्रत्यक्ष खण्डन हैं। मिश्र के मीनार, जावा के भवन इत्यादि उन देशों के प्राचीन उत्कर्ष का प्रमाण हैं। भूगर्भ विद्या ने पिछले दिनों एक जूते की खोज की थी, जिसकी सिलाई आजकल की कलाओं के सदृश है। वह जूता लाखों वर्ष पुराना कहा जाता है। जावा के भवनों के पत्थर इतने बड़े हैं कि आजकल की कलाएं कठिनाई से उठाकर उन्हें इतना ऊंचा ले जा सकती हैं। मिश्र के मीनार उच्च ज्योतिष तथा गणित विद्या का परिचय देते हैं। जहां एक ओर यह प्राचीन उत्कर्ष का प्रमाण मिलता है, वहां कई देशों में जंगली मनुष्यों के जंगली उपकरण भी उनके पिंजरों के साथ पड़े मिलते हैं। इस समय भी कई पशु-सदृश मनुष्य जातियां हैं। धर्मवाद का समाधान इन जंगलियों के विषय में यह है कि प्रारंभिक ज्ञान इन्हें भी मिला था

ज्ञान का प्रारम्भ परमात्मा से हुआ

परन्तु इन्होंने इसका ह्रास कर दिया। धर्मवाद विज्ञान की प्रथम प्रेरणा प्रभु से मानकर उसके विकास तथा ह्रास की शक्ति मनुष्यों में मानता है। वेद में कहा है:—

ब्रह्म प्रजापतिरुज्जभार। अ० ४. १. ३

वेद परमात्मा से प्राप्त किया गया।

यही वेद वाणी ऋ० १०. ७१. ३ में 'ऋषिषु चार ऋषि प्रविष्टा' कही गई है। ऋषिषु का अर्थ 'बहुत ऋषियों' में है। अर्थात् यह ऋषि दो से अधिक थे। कितने थे? यह भी इसी सूक्त में कहा है:—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्यमात्रां विमिमीत उ त्वः॥

ऋ० १. ७१. १

यह विभाग वैज्ञानिक है क्योंकि मानव-शक्ति ४ प्रकार की होती है:—

१. ज्ञान प्रधान, २. कर्म प्रधान, ३. भक्ति प्रधान, ४. विज्ञान प्रधान। यही विशेषता क्रमशः ऋक्, यजुः, साम, और अथर्व वेदों के मन्त्रों की है।

आत्म-ज्ञान

आत्मज्ञान की पूर्ण प्रेरणा आरम्भ में हुई। वेद कहता है:—

नूनं तदस्य देवस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।

उस प्रभु का काव्य (वेद) उस अनादि देव के महान् तेज का वर्णन करता है।

वेद में आए आत्मा तथा परमात्मा के वर्णन से बढ़ना तो कहां? वैसा वर्णन भी मनुष्यकृत ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। इस विषय में विकास का होना कैसे माना जाए?



अध्याय पांचवां।

[मुक्ति और उसके साधन]

धर्म का ध्येय मुक्ति है अर्थात् छुटकारा। साधारण मनुष्यों के लिये संसार बन्धन है। वह जीते हैं, इसलिये कि उन्हें जीना पड़ता है। वह परिश्रम करते हैं, इस लिये कि उन्हें परिश्रम करना पड़ता है। यदि भोजन का झंझट न हो तो वह हाथ पांव ही न हिलाएं। उनकी दृष्टि में हाथ पांव न हिलाना मुक्ति है! वास्तव में देखा जाए तो आलस्य और मुक्ति एक दूसरे के सर्वथा विरोधी भाव हैं। मुक्त मनुष्य कर्म करता है, हां! कर्म की ग्लानि से सदा छुटा रहता है।

जीवन बन्धन है

ऐसे भी लोग संसार में विद्यमान हैं जो जीवन को मानो त्योहार समझते हैं। उनके लिये जीवन भार नहीं। हंसते खेलते समय-यापन करते जाते हैं, परन्तु मृत्यु उनके लिये भी भयंकर होती है। कोई आपत्ति आजाये तो अधीर होकर बैठ जाते हैं। अवश्यंभावि को भोग लेते हैं सही, परन्तु बाधा-वश होकर। मुक्ति इन बाधाओं से ऊपर होने की अवस्था है। जीवनमुक्त जीता है और सर्वदा आनन्द पूर्वक जीता है। मरे पीछे उसे कल्प पर्य्यन्त जीवन लाभ करना है। उसे मृत्यु का भय नहीं होता। वह तो जीवन मरण का समभाव से स्वागत करता है। इसी अवस्था को वेद में अमृत कहा है।

मृत्यु का भय

'मुक्त स्वभाव' परमात्मा हैं। उन का ज्ञान-बल-क्रिया स्वाभाविक है। उन्हें उस में ग्लानि नहीं होती। प्रभु का परिश्रम वास्तव में अनथक' है। प्राणिमात्र, के कल्याण के लिये वेद का उपदेश कर दिया है। कोई लाभ उठाले तो उसकी इच्छा, न उठाए तो भी उसकी इच्छा। इस का हानि लाभ उसी को होगा। संसार के जीवन का प्रभु के आनन्द पर कोई प्रभाव नहीं।

मुक्त स्वभाव

प्रभु निर्विकार हैं, एक रस, आनन्द स्वरूप हैं। इसके विपरीत मनुष्य की मुक्ति परिश्रम साध्य है, स्वभाव-सिद्ध नहीं। यह जितना परमात्मा के निकट जाता है, उतना अधिक आनन्द का अनुभव करता है। मुक्ति की दशा में आत्मा परमात्मा का अत्यन्त सामीप्य होता है। वेद ने इस भाव को बड़ी सुन्दरता से दर्शाया है:—

मनुष्य की मुक्ति

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश॥

ऋ० १. १६४. २१

अर्थ—जिसमें सुकर्मचारी लोग ज्ञान से अमृत के प्रसाद को निरन्तर प्राप्त करने की घोषणा करते हैं, वह समस्त संसार का स्वामी और रक्षक अपने ज्ञान में रमने वाला मुझ परिपक्व (यम नियम से पके हुए) आत्मा में प्रविष्ट है अर्थात् मुझे उसका साक्षात्कार होता है। इस मुक्ति-सुख का भोग इन्द्रियों द्वारा नहीं होता। आत्मा अपनी शक्तियों से परमात्मा के सहारे उस परम आनन्द का भोग करता है। आगे फिर कहा है:—

तन्नो नशद्यः पितर न वेद। ऋ० १. १६४. २२

वह उस (प्रसाद) को प्राप्त न करेगा जो (जगत्-) पिता को नहीं जानता। यजुर्वेद में भी कहा है:—

तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

उसको जानकर मृत्यु से परे होता है। मुक्ति का और कोई रास्ता नहीं। मुक्ति का साधन परमात्म-ज्ञान है। यह ज्ञान मन आदि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त नहीं होता। परमात्मा का साक्षात्कार गुहा (अन्तर्हृदय) में आत्मा की एकाग्रता द्वारा किया जाता है। अन्य द्वारों पर दूत भेजे जा सकते हैं, यहाँ आप अपना सन्देशहर होना होता है। संस्कृत में विद् धातु का अर्थ ज्ञान और प्राप्ति दोनों हैं। परमात्मा की सिद्धि के प्रकरण में हमने 'अन्तः प्रत्यक्ष' का उल्लेख किया था। वास्तविक ज्ञान वही है जिसकी उपलब्धि इन्द्रियों के आवरण हटा कर की जाती है और परमात्मा के संबन्ध में तो इसके अतिरिक्त और कोई प्रमाण विश्वासप्रद होता ही नहीं। उपरिलिखित मन्त्र (ऋ० १. १६४. २१) में ही साधक परमात्म-दर्शन की अपनी साक्षि देने से पूर्व अपने आपको 'पाकः' अर्थात् परिपक्व कहता है। उसे कुठाली में ढाला जा चुका है। वह अभ्यास द्वारा अब शुद्ध सुवर्ण बन चुका है जिसका वर्ण 'आदित्य-वर्ण' परमात्मा कर सकते हैं। वह कुठाली कौनसी है? सद्विचार सत्योच्चार और सदाचार की। वेद कहता है:—

साधन पर आत्म-प्राप्ति

ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया सुतः। ऋ० ९. ११३. २

महामुनि पतंजलि ने इस साध्य की सिद्धि के लिये अष्टांग योग का उपदेश किया है। यम नियम से लेकर समाधि पर्यन्त सभी चित्त-निरोध के साधन हैं। यमों में समाज संबन्धी संयम का समावेश है, नियमों में वैयक्तिक यन्त्रणा का। फिर आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि, चित्त को एकाग्र करने की सुव्यवस्थित प्रणाली की सीढ़ियां हैं। आसन और प्राणायाम आत्मैकाग्रता के शारीरिक साधन हैं तो धारणा और ध्यान मानसिक उपाय हैं। समाधि मन सहित सब कारणों के पीछे रह जाने की अवस्था है। वहां प्रभु और भक्त के बीच में और कोई नहीं होता है। तभी तो अथर्व वरुण से कहता है:—

आत्मा परमात्मा का ऐक्य

वेदाहं त्वमथावेषा समा जा। अ० ५. ११. १०

मैं जानता हूं जो मेरी तेरी समान ख्याति है। इसी ऐक्यभाव के रहस्य को अधूरा समझकर कुछेक विचारकों ने मुक्त जीव की परमात्मा से स्वरूपतः एकता मान ली है। यह उनकी भूल है। स्वयं वेदान्तदर्शन का अन्तिम सूत्र है:—

भोगमात्र साम्यलिंगाच्च। वेदान्त ४. ४. २१

एकता भोग मात्र की है। अर्थात् प्रभु के आनन्द मात्र को जीव प्राप्त करता है। उसके सर्वशक्तिमत्त्व, स्रष्टृत्व, आदि गुणों को नहीं। ऊपर आए वर्णन के पश्चात् इस प्रश्न पर अधिक विचार करने की आवश्यक्ता नहीं रहती कि क्या मुक्ति ज्ञान जन्य है या कर्म-जन्य? आचार की शुद्धि कर्म-जन्य है। वेद ने विद् धातु का प्रयोग किया है जो प्राप्ति तथा ज्ञान दोनों का बोधक है। ऋ० १. १६४. २१ में जहां अमृत की प्राप्ति 'विदथा' कही है वहां प्राप्त करने वाले को 'सुपर्ण' अर्थात् शोभन-कर्म युक्त कहा है। फिर 'विदथा' का अर्थ है 'ज्ञान से' तथा 'यज्ञ से'। वेद मार्ग में न ज्ञान हेय है न यज्ञ। दोनों 'विदथ' होकर मुक्ति के साधन हैं। उन दो मार्गों का विश्लेषण आधुनिक तार्किकों का किया हुआ है। योगीश्वर कृष्ण तथा योगिराज दयानन्द मुक्ति के लिये कर्म ज्ञान का समन्वय मानते हैं। गीता में स्पष्ट कहा है:—

कर्म-ज्ञान समुच्चय

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः।

ज्ञान और कर्म का पृथक् बताने वाले बालक हैं, पंडित नहीं। ज्ञान में कर्म की पूर्ति होती है अर्थात् परिपक्व कर्म ज्ञान बनता है और फिर कर्म में ज्ञान की सफलता होती है। अतः दोनों साथ २ चलते हैं।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
आरूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥

योग की सीढ़ी पर चढ़ने के इच्छुक के लिये कर्म ही शान्ति का साधन है। उस सीढ़ी पर चढ़ गए के

लिये शान्ति कर्म का साधन है। ऋषि दयानन्द ने मुक्ति को सान्त कहा है। इसमें कारण यह कि जो मुक्ति सान्त है पदार्थ जन्य हैं वह अनन्त नहीं हो सकता। आत्मा स्वभाव से मुक्त होता तो बन्धन उस पर आ ही न सकता। उसका बद्ध होना ही सिद्ध करता है कि वह स्वभाव से मुक्त नहीं। बन्धन को भ्रम मानना एक नए भ्रमजाल में पड़ना है। भ्रम ही हो तो उसकी भ्रममात्र सत्ता ही पारमार्थिक मुक्ति को बाधित करती है। भ्रम मिटाने पर भी तो मुक्ति जन्य ही रहेगी। जिसका आरंभ होता है, उसका अन्त क्यों नहीं ?

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च॥
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥

ऋ० १. २४. १-२

मुक्तों में से हम अत्यन्त सुखस्वरूप आनन्दमय प्रभु का नाम अर्थात् गुणों का सम्यक् मनन करते हैं। वह आनन्दस्वरूप प्रभु हमें अपनी अटूट विशाल (कर्मफल) व्यवस्था के आधीन करे (जिससे) हम फिर माता पिता को देखें (अर्थात् जन्म धारण करें)। मुक्तों में से हम विभु अग्नि का...... ऋषि दयानन्द ने यह मन्त्र मुक्ति से पुनरावृत्ति पर लगाये हैं। विपक्षी इनका प्रकृत पुनर्जन्म को बतलाते हैं। हमारी समझ में 'अमृतानां (मध्ये) वयं' इन शब्दों से स्पष्ट इस मन्त्रका वक्ता मुक्त मनुष्य प्रतीत होता है। यदि 'अमृतानां' का संबन्ध 'वयं' के स्थान में 'कतमस्य' अत्यंन्त सुखस्वरूप और 'प्रथमस्य' विभु अथवा अनादि प्रभु-इन शब्दों के साथ जोड़ दिया जाय तो भी प्रभु के नाम का सम्यक् मनन करने का फल आवागवन चाहना युक्तियुक्त नहीं। सम्यक् ध्यान का फल मुक्ति होनी चाहिये, 'माता पिता का दर्शन' मात्र नहीं। इसके विपरीत मुक्त जीवों का प्रभु की महिमा का मनन करना स्वाभाविक है। वहां फल की आकांक्षा नहीं। जन्म-ग्रहण का विचार प्रभु के अटूट नियम 'मही अदिति' के पालन की दृष्टि से ऐसा होना आवश्यक है और सम्यक् ज्ञानी होने से मुक्त को इससे ग्लानि नहीं हो सकती। बद्ध जीव को माता पिता का दर्शन इस जीवन में हो ही रहा है। उसे दूसरे जन्म की भावना प्रभु-भक्ति के साथ क्यों हो ? हम हैरान हैं कि साधारण पुनर्जन्म पर यह मन्त्र कैसे घटाए जा सकते हैं। ऊपर बताया जा चुका है कि तार्किक युक्ति मुक्ति से पुनरावृत्ति के पक्ष में है। वेद का आदेश भी यही है। ऋग्वेद मण्डल ९ का ११३ वां सूक्त मुक्ति का वर्णन सोम मुक्ति का नाम से करता है। सारा सूक्त पढ़ने और स्वरूप अपने विचार तथा आचार-भवन की आधार-भित्ति बनाने योग्य है। इस सूक्त का एक मंत्र हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

ऋ० ९. ११३. १

जहां कामना का कामनापन दब जाता है, जहां आत्मावस्थिति की पराकाष्ठा है, जहां सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र आत्मतृप्ति है, वहाँ हे अमृत प्रभो! मुझे अमर बना। इन्द्रियपति संयमी आत्मा के लिये सब ओर इस सुख का प्रवाह हो। मुक्ति के स्वरूप का ऐसा सुन्दर-विषयवासनाओं से उच्च, भौतिक ब्रह्माण्डातीत, केवल आत्मानन्द स्वरूप वर्णन वैदिक धर्म का सर्वोत्तम प्रसाद है। इससे ऊंचा न तर्क जा सकता है न कोई और देव-प्रेरणा। इस बात के होते यह कैसे कहा जाय कि धर्म के क्षेत्र में विकास हुआ है ?

सार

कई लोगों को जीवन भार है। कई लोग मृत्यु से बद्धजीव डरते हैं। मुक्त पुरुष जीवन की कर्म-कठिनाई से घबराता नहीं, और मृत्यु का जीवन-सदृश स्वागत करता है। उसका परिश्रम अनथक

है। सफलता निष्फलता उसके लिये समान हैं। जीता हुआ वह ग्लानियों से ऊपर है। मर कर कल्प-पर्यन्त जीवन लाभ करता है। उस जीवन में मृत्यु नहीं होती, इस लिये उसे अमृत कहते हैं। मुक्त-स्वभाव परमात्मा हैं। आत्मा की मुक्ति परिश्रम-साध्य है। स्वभाव-सिद्ध होती तो अब भी प्राप्त ही होती। यदि मुक्ति भ्रम से बाधित हो तो भी बाधित ही है। तब भ्रम का उच्छेद परिश्रम-साध्य रहा।

तमेवं विदित्वाऽति मृत्युमेति। य०

उसे जानकर मनुष्य मृत्यु से पार होता है।

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ऋ०

जहां शोभन कर्म युक्त मनुष्य निरन्तर अमृत पान करते हैं। मुक्ति का साधन परमात्मा को आधार बना उसका आधेय बनना है। इसी को परमात्म-ज्ञान और प्राप्ति विद्या कहते हैं। संस्कृत में 'विद्' धातु का अर्थ 'ज्ञान' भी है' 'प्राप्ति' भी। दूसरा ज्ञान इन्द्रिय-जन्य है, परमात्मा का साक्षात्कार स्वयं आत्मा करता है। वही साक्षात्कार ज्ञान और प्राप्ति दोनों हैं। इस साक्षात्कार का साधन है अष्टांगयोग, जिससे चित्त स्थिर होकर मन का निरोध होता है। योगाभ्यास तब आत्मा और परमात्मा का आनन्द विषयक ऐक्य होता है।

भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च। वेदान्त ४. ४. २१

कर्मज्ञान समुच्चय श्रीकृष्ण कर्म और ज्ञान का समन्वय करते हैं :—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।

यही मत श्री दयानन्द का है। वेद मुक्ति का साधन विदथ (ऋ० १. १६४. २१) को ठहराता है, जिसका अर्थ है ज्ञान और यज्ञ।

मुक्ति सान्त है मुक्ति सान्त है, जन्य होने से। वेद में कहा है :—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं दृशेयं मातरं च॥

हम मुक्त जीव सुखस्वरूप के गुणों का सम्यक् मनन करते हैं, वह हमें अपनी कर्म-फल व्यवस्था के आधीन कर माता पिता के दर्शन कराए।

मुक्ति का स्वरूप मुक्ति का स्वरूप ऋ० ११३ में कहा है। इस सूक्त का एक मंत्र यहां दिया जाता है:—

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

जहां कामनाएं निष्काम हो जाती हैं, जहां स्थिरता की पराकाष्ठा है; जहां आत्माधीनता और आत्म-तृप्ति है, वहां मुझे अमर कर...... कैसे इन्द्रियातीत केवल आध्यात्मिक आनन्द का वर्णन है!

अध्याय छठा।

[सुख दुःख की समस्या]

हम ऊपर बता चुके हैं कि निरपेक्ष विशुद्ध आनन्द तो परमात्मा ही का स्वभाव है। स्वर्यस्य च केवलम् (अथर्व)। उस आनन्द में क्षति नहीं होती, अन्तर नहीं पड़ता। इसके प्रतिकूल जीवों के सुख में दुःख की मात्रा मिली हुई है। ऐहिक सुख सभी सापेक्षिक सुख हैं। संसार भर के प्राणी एक दूसरे की तुलना से सुखी दुःखी हैं। न कोई केवल सुखी है, न कोई केवल दुःखी है जीव को विशुद्ध सुख का अनुभव मुक्तावस्था में होता है। उस अवस्था की सिद्धि,

ऐहिक सुख में दुःख

चाहे जीते जी हो जाय, चाहे मर कर, वह सुख ऐहिक नहीं, उस पार का सुख कहलाता है। इस समय कई वाद ऐसे प्रचलित हैं जो दुःख की सत्ता

दुःखाभाववाद

से ही नकार करते हैं। इनमें प्रमुख मानसिक चिकित्सावाद है। इस वाद के अनुयायियों का मत यह है कि मनुष्य संकटों की कल्पना अपने मन से करता है। यदि हर समय यही विचार किया जाय कि दुःख कोई वस्तु नहीं, मैं निर्मल निर्लेप हूं, मुझे कोई पाप पाखण्ड छू नहीं सकता, तो सभी रोगों का नाश हो जाता है। इस वाद ने कई स्थानों में अपना सिक्का प्रत्यक्ष परीक्षणों द्वारा जमाया है। तर्कना द्वारा विचार किया जाए तो यह संकल्प करना भी कि मैं निष्पाप हूं, मुझे दुःख नहीं छू सकता, दुःख की सत्ता काल्पनिक हो तो भी तो उनकी सत्ता हुई, जिसके विनाशार्थ उक्त जप जाप का विधान है। वास्तव में यह समस्या इतनी सरल नहीं। योग साधन से आत्मा इतना ऊंचा हो सकता है कि सुख दुःख के अनुभव से ऊपर हो जाए। गीता के कथनानुसारः —

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

परन्तु केवल संकल्प मात्र से ऐसा नहीं हो सकता।

जीव-मुक्त

उक्त अवस्था जीवन मुक्त पुरुष की ही है। उसे आत्मरति के कारण शेष सुख तथा दुःख का भान नहीं होता। जैसे किसी विशेष रस के प्रबल आस्वाद के समय शेष रस उस रस में लुप्त हो जाते हैं, ऐसे ही आत्मानन्द-जो सब आनन्दों में परम है-की प्राप्ति की अवस्था में ऐहिक सुख दुःखों का भान लुप्त हो जाता है। परन्तु ऐहिक सुख दुःख का माप तो साधारण जनों की दृष्टि ही से होगा। मुक्त पुरुष सुख दुःख का ज्ञान रखता है, परन्तु अपने लिए वह उसके भान मात्र से ऊंचा हो जाता है। इसके विपरीत संसारी लोगों में सुख दुःख का

भोग की असमानता

तारतम्य रहता ही है। स्वयं आयु एक भोग है। इसकी अवधि सब के लिए बराबर नहीं। कोई जन्म लेते ही मर जाता है, कोई सौ वर्ष और कोई उससे भी अधिक आयु भोगता है। फिर स्वास्थ्य-सुख, सन्तान-सुख, सम्पत्ति-सुख, इन सब सुखों की मात्रा सब के लिये बराबर नहीं। न यह ही बात ठीक उतरती है कि प्रत्येक व्यक्ति के सब सुख मिल मिलाकर दूसरे व्यक्तियों के सुख दुःख के समान हों। हमारा इस तारतम्य की ओर निर्देश करने का यह अभिप्राय नहीं कि दुःख केवल आपस की स्पर्धा में है, यद्यपि मत्सर और स्पर्धा संसार के संकटों का बहुत बड़ा भाग हैं। हमने यहां इस तारतम्य का वर्णन इसलिये किया है कि तारतम्य में किसी भी वस्तु की सत्ता का बोध अधिक स्पष्टता से होता है। यदि सब प्राणियों की सुख की मात्रा समान हो, तो उसे सुख या दुःख कहने में कोई हेतु निर्णायक न हो सकेगा। सुख दुःख का तारतम्य ही सुख दुःख की पहेली को उपस्थित करता है। यह तारतम्य कैसे आता है? प्रकृतिवाद इस तारतम्य का उत्तरदायित्व परिस्थिति-

परिस्थिति-भेद

भेद पर डालता है। यदि केवल भौतिक परिस्थिति-भेद इस तारतम्य की पहेली को बुझा दे तो अध्यात्मवाद की आवश्यकता नहीं रहती। प्राकृतिक विज्ञान की आवश्यकता भौतिक परिस्थिति की ओर निर्देश कर देने से पूरी हो जाती है। कोई शरीर निर्बल है। इसका कारण वैज्ञानिकों की दृष्टि में यही है कि इसके माता पिता दुर्बल थे, अथवा इसे खाने को पूरा अन्न नहीं मिलता। क्यों नहीं मिलता? एक जीव को खाने को पूरा मिले दूसरे को न। यह क्यों? जन्म ही क्यों विविध स्थिति के वंशों में होता है? मेरा यत्न सफल नहीं होता और मेरे पड़ोसी को सफलता सहसा मिल जाती है। भौतिक कारण कुछ हों। इन से आत्मा की सन्तुष्टि नहीं होती। परमात्मा की इच्छा मात्र पर इस तारतम्य का भार डालने वाले धर्मवादी परमात्मा से न्याय नहीं करते।

परमात्म-लीला

अपनी असफलता का उत्तरदायित्व

दूसरे पर डालना कुछ वीरोचित धीरता नहीं। मनुष्य स्वभाव से न्याय चाहता है। परमात्मा को सभी प्राणी एक समान हैं। वह अपने अमृत पुत्रों के सुख दुःख में तारतम्य क्यों करता है? क्या यह सब ठठोल है? किसी ठठोली को इस उत्तर से संतोष हो जाता होगा। धीर पुरुष अवश्य अपने भाग्य के मूल बीज का अपने ही कर्मों में अनुसन्धान करेंगे। कुछ आपत्तियां, असफलताएं, कुछ रीतियां ऐसी हैं जिनकी सत्ता का कारण हमारे इस जीवन के कर्म नहीं ठहराए जासकते। उदाहरणतया मातृ-पितृ-जन्य संस्कार इस जन्म के किन कर्मों का फल होसक्ते हैं? माता पिता की अपनी आत्मिक सत्ता भी तो है। फिर उनके सुकर्मों या कुकर्मों का

वंश जन्य संस्कार

फल सन्तति को क्यों भोगना पड़े? एक मनुष्य किसी रोगी अथवा व्यसनी पिता के घर जन्म लेकर पैतृक रोग तथा व्यसन का भी दायभागी होता है, दूसरा इसके विपरीत स्वस्थ साधु-स्वभाव वंशजों की सन्तान होकर जन्मकाल से ही हृष्ट पुष्ट शरीर तथा निर्दोष मन और मस्तिष्क का भागी बनता है। कारण? क्या यह सब कुछ आकस्मिक है? या किसी लीला प्रिय विगत-मर्याद

पुरुषार्थवाद

प्रभु की लीलामात्र है? दोनों अवस्थाओं में पुरुषार्थ वाद के नीचे से इस वाद का यौक्तिकाधार ही खिसक जाता है। यदि जीवन केवलमात्र आकस्मिक घटनाओं की शृंखला है तो कोई सुकर्म क्यों करे? पुरुषार्थ क्यों करे? मिलता तो वही है जो परमात्मा कहता है। और (अथवा या) प्रकृति ला देती है। इस धारणा में न वीरता है न बुद्धि-

जीवन शृंखला

मत्ता। वास्तव में वर्तमान जीवन किसी भी आत्मा का पूर्ण जीवन नहीं। जीवन-समस्या का समाधान इकले इस जीवन से नहीं होता। जीवनों की लड़ी प्रतीत होती है। इस जीवन से पूर्व और पर अन्य जीवनों की शृंखला होनी आवश्यक है। वह शृंखला वर्तमान सुख दुःख के तारतम्य का कारण बताकर तत्सम्बन्धी समस्या का समाधान करदेती है। एक जन्म का किया कुछ उसी जन्म में फलित होता है, कुछ दूसरे जन्मों में। अनन्तकाल की अपेक्षा से किसी प्राणी का एक जीवन, समुद्र में एक विन्दु से अधिक सत्ता नहीं रखता। जैसे एक क्षण का किया उसी क्षण में ही फलित हो, यह बात आवश्यक नहीं। जैसे एक ऋतु का बोया किसी दूसरी ऋतु में उगता तथा पकता है, ऐसे ही एक जन्म की कमाई दूसरे जन्म में भी भोगी जाती है। अनन्तकाल की अपेक्षा से एक क्षण और एक जीवन बराबर हैं। इस धारणा

अनन्त जीवन की भावना

के होते मृत्यु का महत्त्व कम हो जाता है। सुखवाद के उथलापन के स्थान में गंभीर धैर्य का विकास होता है, और मनुष्य उस रास्ते में पड़ जाता है जिस का ध्येय पुरुषार्थ है। अनन्त काल की भावना में गहराई है। हम अनादिकाल से आते हैं, अनन्त काल तक रहेंगे। हम विधाता की क्रीड़ा मात्र नहीं। हम अपने भाग्य

पुनर्जन्म

का निर्माण आप करते हैं, कैसे उत्तम भाव हैं? इन सब भावों का प्रादुर्भाव पुनर्जन्म के सिद्धान्त से सम्बन्ध रखता है। वेद कहता है :—

य ई चकार न सो अस्य वेद य ई ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश॥

ऋ० १, १६४, ३२

जिसने इस (गर्भस्थ को) बनाया है (अर्थात् पिता माता) वह इसे नहीं जानता। जो इसे देखता है, (अर्थात् परमात्मा) वह इस से छिपा हुआ है। वह माता की योनि में लिपटा हुआ बहुत जन्मों को प्राप्त होकर भोग को प्राप्त होता है।

जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।

मरणधर्मा शरीर का अमर जीव अपनी इच्छा से मरने वाले (शरीर) के साथ सयोनी होकर गमनागमन करता है। कईयों का विचार है कि इस जीवन की समाप्ति पर एक नए जीवन का आरंभ

होता है। उस में कुकर्मियों को अनन्त दण्ड और सुकर्मियों को उनके सुकृत का अनन्त फल मिलता है। सान्त कर्म का अनन्त फल युक्तियुक्त नहीं, इस वाद पर अंधेर नगरी चौपट राजा वाली कहावत ही चरितार्थ होती है। कइयों ने अनन्त दण्ड के अत्याचार को तो समझ लिया है, परन्तु अनन्त सुख-भोग में उन्हें आपत्ति नहीं। इसे वे परमात्मा की दया का परिणाम समझते हैं। यह मत कर्म-भीरुओं का ही हो सकता है। परमात्मा स्वभाव से दयालु हैं। स्वयं कर्म-व्यवस्था उनकी दया है। पुण्य और पाप का फल भौतिक भी है, यह अध्यात्म-वादियों के लिये महान् सन्तोष का कारण है। इसी में उनका प्रायश्चित्त है। किसी पाप के लिये दुःख न भोग केवल उसकी वासना में रहना पड़े, अध्यात्म-दृष्टि के अभ्यासियों को यह असह्य है। यदि बिना निमित्त दया के ही आश्रय से रहना है तो कर्म-फल का झंझट ही उड़ा देना चाहिये। कुछ समय के लिये भी पापियों को नरक का द्वार क्यों दिखाना ? जो दया इस अस्थायी नरक के होने से भी बाधित नहीं होती, वह स्वर्ग के अस्थायी होने से भी बाधित न होगी। स्वर्ग वही है जो हम सुख विशेष के रूप इस संसार में भोगते हैं। पुनर्जन्म की कई प्रत्यक्ष साक्षियां आए दिन प्राप्त होती हैं। थोड़े २ समय पीछे कोई २ बालक ऐसा उत्पन्न होता है जो अपने पिछले जन्म की स्मृतियां साथ लाता है। ऐसे बालक भी देखने में आते हैं जो विना सिखाए छोटीसी अवस्था में किसी कला-विशेष, यथा गान, गणित, कविता इत्यादि में निपुण पाए गए हैं। वैज्ञानिकों के इन परीक्षणों का समाधान पुनर्जन्म के अतिरिक्त क्या है ? क्या अल्पवयस्क मनुष्यों के यह चमत्कार-पूर्ण कर्तब सुख-विशेष नहीं ? एल. ई. ट्रिष्टम ने दिसम्बर १९२४ के 'थ्योसोफिस्ट' में "चमत्कारी बालक" शीर्षक लेख छपवाया था जिस का कुछ उदाहरण अनुवादक के शब्दों में नीचे दिया जाता है :—

न्यूयार्क ईवनिंग पोस्ट से उद्धृतः—

रागी बालक

रागविद्या के क्षेत्र में एक छोटा सा बालक सब को बड़े आश्चर्य में डाल रहा है। उसने आठ वर्ष की आयु में ही कई ऐसे गीत बनाए हैं, जिन्होंने फिडर्क फौच और थ्योडोर का भी ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। अमेरिकन ढंग के चेहरे से युक्त यह अद्भुत बालक निकोलिन जैडलर का लड़का है जो अब संसार की यात्रा को निकला हुआ है और अमेरिकन नैशनल ओर्चैस्ट्रा का प्रबन्धकर्त्ता है। उसकी असाधारण योग्यता का पता कल उस समय लगा जब उसने मिस्टर Engel के घर पर गान किया। टैडी न केवल गान विद्या में प्रवीण है किन्तु वह एक अच्छा कवि और छोटी २ कथाओं का लेखक भी है। इनके अतिरिक्त वह कई प्रकार के नये २ खेलें भी खेलता है। छोटे बालकों में से कइयों ने रागविद्या में अच्छा अभ्यास प्राप्त किया है। इनमें से मुख्यतम लौरेंस लूइस लिंग्रेन है। यह सीटल में रहती है और उसकी आयु ३ साल की है वाशिंगटन स्टेट म्युजिक मैमोरी नामक साम्मुख्य में इसने $\frac{१००}{१००}$ अङ्क प्राप्त किये थे। यह पियानो पर कई कठिन से कठिन गीत निकाल सकती है Touch method द्वारा टाइप राइटिंग पर भी तेज़ हाथ चला सकती है और चतुर्थ श्रेणी के योग्य रीडर्स को भी अच्छी प्रकार पढ़ सक्ती है।

मस्तिष्क सम्बन्धी विचित्रता

ऐनिड ओकलहामा का बालक ऐनवैल मौरों बड़ा ही विचित्र बालक है। उसकी आयु अब तीन वर्ष की है। उसने इससे १८ महीने पहिले पढ़ना आरंभ कर दिया था और अब वह शरीर-विद्या, इतिहास और भूगोल के विषय में प्रायः सब कुछ जानता है। वह लैटिन में गिनती करता है और रागी है। वह उन पुस्तकों को अनायास ही पढ़ लेता है जिन्हें चतुर्थ श्रेणी में पढ़ाया जाता है और इससे भी

[शेष के लिये परिशिष्ट देखो]

जैन धर्म

जैन धर्म एक स्वतन्त्र धर्म है। उच्च तत्व-ज्ञान, मनोरम साहित्य और उपदेश-पूर्ण प्राचीन इतिहास से समृद्ध और शोभायमान होने से सर्व साहित्य प्रेमियों को भी वह अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

जर्मन विद्वान् डा० हर्मन जेकोबी ने कहा है:—

"In conclusion let me assert my conviction that Jainism is an original system, quite distinct and independent from all others and that, therefore, it is of great importance for the study of philosophical thought and religious life of Ancient India."

वह कहते हैं कि अन्त में मैं इस निर्णय पर आ गया हूं कि जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन व अन्य धर्मों से पृथक् एक स्वतन्त्र धर्म है। इस लिये हिंदुस्थान के प्राचीन तत्वज्ञान और धार्मिक जीवन जानने में वह अत्यन्त उपयोगी है।

एक समय वह था कि जब जैन धर्म के विषय में बड़े २ विद्वानों में भी भारी अज्ञान था। कोई जैन धर्म को ब्राह्मण धर्म की, तो कोई बुद्ध धर्म की शाखा समझते थे। कोई महावीर स्वामी को जैन-धर्म का आदिप्रवर्तक मानते थे। बहुत से तो इस धर्म को नास्तिक बताते थे और ऐसा कहने वालों का आज भी अभाव नहीं है परन्तु इन धर्मों के साहित्य के दृढ़ परिचय से विद्वानों में इस बात का ठीक निर्णय हो चुका है कि भगवान बुद्ध के पूर्व भी जैन धर्म का प्रचार था। महावीर स्वामी जैन धर्म के एक सुधारक थे आद्य प्रवर्तक नहीं।

प्रथम पश्चिमी विद्वान् ब्राह्मण और बुद्ध धर्म से परिचित हुए। जैन धर्म सम्बन्धी उनका ज्ञान अत्यल्प था। जैन धर्म सम्बन्धी यथार्थ ज्ञान न होने से, महावीर स्वामी और भगवान् बुद्ध समकालीन होने से और दोनों के कथन में और जीवन में कुछ साम्यता प्रतीत होने से वे बौद्ध और जैन धर्म को एक मानने लगे। परन्तु जैन धर्म से उनका परिचय जैसे २ बढ़ता चला वैसे ही उस के सिद्धान्त और इतिहास बौद्ध धर्म से कितने भिन्न और महत्व के हैं, यह उन्हें साफ़ २ प्रतीत हो गया। इस समय डा० जेकोबी, डा० स्टीइन कोनो, डा० हेल-माउथ तथा अन्य २ विद्वान जैन तत्वज्ञान और साहित्य का अभ्यास कर रहे हैं और यूरुप के देशों में उसका प्रकाशन भी आरम्भ हो गया है।

जैन धर्म के मूल साहित्य से अपरिचय और संशोधक बुद्धि का अभाव यही इस धर्म पर किये हुए आक्षेपों की जड़ हैं।

प्राचीनता

इतिहास का अवलोकन करने से मालूम होता है कि जब हजरत मूसा का यहूदी धर्म, प्राचीन चीन का कनफयूशियस धर्म, बुद्ध भगवान् का बौद्ध धर्म, महात्मा ईसा का ईसाई धर्म, हजरत मुहम्मद का मुहम्मदी धर्म, यह सब धर्म भविष्यता के गर्भ में शांति का अनुभव कर रहे थे, उस समय अर्थात् आज से २४५१ वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने प्राचीन जैन धर्म में सुधार करके उसका प्रचार किया था। इससे यह निर्णय अनिवार्य है कि ऊपर बताये हुए सर्व धर्मों से जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन है। केवल ब्राह्मण धर्म या वैदिक धर्म यह ही एक प्राचीन धर्म है परन्तु इन दोनों में से कौनसा धर्म अधिक प्राचीन है, यह विधान करना कठिन है। तो भी हम देख सकते हैं कि जैसे बौद्ध धर्मीय विकट ग्रन्थ, महावग्ग और महापरिनिब्बाण सूत्र आदि ग्रन्थों में महावीर स्वामी जी के सम्बन्ध में कुछ बातें निकलती हैं वैसे ही रामायण महाभारत में भी जैन धर्म का निर्देश मिलता है। हिंदू धर्म शास्त्र में भी उसका निर्देश है।

जैन धर्म के आदि तीर्थंकर ऋषभ देव का वर्णन श्रीमद्भागवतपुराण के पञ्चम स्कन्ध में मिलता है। जिसकी स्मृति में हमारे देश को भारत वर्ष नाम दिया गया। उस भारत के पिता यह ऋषभ देव जी हैं। उसमें बताया गया है कि ऋषभ देव साक्षात विष्णु के अवतार थे। इतना ही नहीं, वेदों में भी जैन तीर्थंकरों के नाम आते हैं वे सब वेद-प्रणीत नहीं है परन्तु वे तीर्थंकरों के ही नाम हैं। इतिहास--वेत्ताओं के अन्वेषण के फल रूप इस निर्णय के लिये कई प्रमाण मिल जाते हैं।

डा० गेरिनोट ने कहा है कि:—

There can be no longer any doubt that Parshwanath was an historical personage according to the Jain Tradition; he must have lived a hundred years and died 250 years before Mahaveer. His period of activity, therefore, corresponds to the 8th Century B. C......... The parents of Mahaveer were followers of the religion of Parshwanath .... Upto the age we live in there have appeared 24 prophets of Jainism. They are ordinarily called Teerthankaras........ With 23rd Parshwanath we enter into the region of history and reality.

अर्थात् इसमें अब तनिक भी सन्देह नहीं है कि पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष थे। जैन ग्रन्थों में उनकी आयु सौ वर्ष की बताई गई है और उनका अन्तकाल महावीर के पहिले २५० वर्ष कहा गया है। उस पर से पार्श्वनाथ के प्रवृत्ति का समय ईसवी सन् के पूर्व आठवें शतक में आता है……… महावीर के माता पिता पार्श्वनाथ के धर्म के अर्थात जैन धर्मी ही थे……… जिस युग में हम रहते हैं जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर यानी प्रवर्तक हुए हैं ……(और) तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ से तो इतिहास का भी प्रमाण मिलता है।

सारांश यह है कि इन सब प्रमाणों से यह निःसन्देह सिद्ध होता है कि जैन धर्म ही सबसे प्राचीन धर्म है। महावीर स्वामी उसके अन्तिम तीर्थंकर थे और वे बुद्ध भगवान के समकालीन थे। ऋषभ देव उसके प्रथम तीर्थंकर हो गये जिनका काल अत्यन्त ही प्राचीन है।

तत्वज्ञान

जैन धर्म का तत्वज्ञान उच्च श्रेणी का है। उसमें धर्म और नीति की मीमांसा अनुपम है। कर्तव्या-कर्तव्य विचार और चारित्र्य विवेचन अत्युत्तम है। जैन दर्शन में आध्यात्मिक अर्थात मोक्ष आत्मा और परमात्मा सम्बन्ध में स्पष्ट व्यवस्थित और बुद्धिगम्य विवेचन मिलता है। पदार्थ विज्ञान के लिए उसका न्याय (विचार शास्त्र) भी सरल और सूक्ष्म होने से जैन तत्वज्ञान गहन, महत्व-पूर्ण और उदार हो गया है। माध्यस्थ भाव से पढ़ने वाले को प्रतीत होता है कि वह कितना सम्पूर्ण है। इतना ही नहीं, उसको पढ़ने से उसके हृदय में अनुपम आनन्द का अनुभव होगा। जिन्होंने जैन धर्म का तुलनात्मक अभ्यास किया है, जैन धर्म की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

यह जगत क्या है? वह हमको जड़ और चेतन इन दो रूपों में प्रतीत होता है। समग्र संसार इन दो तत्वों में आजाता है। ज्ञान शक्ति यही आत्मा का मुख्य लक्षण है। जो चेतन्य स्वरूप ज्ञान युक्त है वही जीव है और उससे विपरीत जो ज्ञान हीन है वही जड़ कहा जाता है।

जैन तत्वज्ञान इतना उन्नत है कि वह वनस्पति, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि सबमें जीव का प्रतिपादन करता है। उसमें स्थूल और सूक्ष्म ऐसे दो भेद हैं। वर्तमान वैज्ञानिकों की भी यह मान्यता है कि पाषाण में भी सूक्ष्म जीव है। थेक्सस नामक एक प्राणी उन्होंने पाया है जो इतना सूक्ष्म है कि एक सुई की नोक पर वे एक लाख प्राणी आराम से रह सकते हैं।

प्रसिद्ध विज्ञान-विशारद श्री जगदीशचन्द्र बोस ने अपने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया है कि पौधों में

भी क्रोध लोभ आदि विकार पाये जाते हैं। वे सब जीवधारी होते हैं। यही सिद्धांत जैन दर्शन ने हज़ारों वर्ष पहले ही प्रतिपादित किया था।

बहुत सी बातें ऐसी दिखाई देती हैं जिनसे कि यह अनुमान हो सकता है कि वह काल दूर नहीं है जिसमें जैन शास्त्र के समग्र सिद्धांत संसार भर में स्वीकार हो जायेंगे।

जैन दर्शन में नव तत्व माने हैं। १ जीव, २ अजीव, ३ पुराय (अच्छे कर्म), ४ पाप (बुरे कर्म), ५ आश्रव (आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध होने का कारण), ६ संवर (आगामी कर्मों को रोकने वाला आत्मा का परिणाम), ७ बंध (कर्मों का आत्मा के साथ दृढ़ सम्बन्ध), ८ निर्जरा (कर्मों का क्षय), ९ मोक्ष।

जैन तत्वज्ञान का आधार कर्म है। कर्म का आत्मा के साथ अनादि सम्बन्ध है। स्वभाव से आत्मा सच्चिदानन्द रूप है परन्तु कर्मों के आचरण से उसका मूल स्वरूप ढक जाता है। जैसे२ कर्म का नाश हो जाता है आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकाश होता है, यही आत्मसाक्षात्कार है और इसी शुद्ध स्वरूप में मोक्ष का सुख प्राप्त होता है।

जीव जैसे कर्म करे वैसे उसे भोगने ही पड़ेंगे। इसलिए जहां तक कर्मों का समूल नाश न होगा वहां तक उसे जन्म-मरण के क्लेश सहने ही होंगे।

सम्यक् ज्ञान (Right knowledge) सम्यक् दर्शन (Right belief) और सम्यक् चारित्र्य (Right conduct) यह त्रिपुटी मोक्ष का साधन है। आत्मा नित्य है। समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष का अखंडानंद जिन्होंने प्राप्त किया है वे पुरुष मुक्त हैं, उनके लिये फिर जन्म मरण नहीं है यह जैन शास्त्र का सिद्धांत है। जगत् में जब अधर्म बढ़ जाता है ऐसे समय महान् आत्मा अवश्य जन्म लेते हैं। तीर्थंकरों के जन्म से यह बात निश्चित है तो भी मुक्त आत्माओं को पुनः जन्म धारण कराने के लिए कोई कारण नहीं है।

भगवद्गीता में बताये हुए कर्मयोग ही को जैन शास्त्र पुरुषार्थ कहते हैं। यह कर्मवाद का पुरस्कार नहीं है परन्तु बिना किसी की सहायता के जीवन्मुक्त कैवल्यावस्था प्राप्त करने का पुरुषार्थ ही जैन शास्त्र में प्रतिपादित है। आत्मा को सम्यक् ज्ञान अर्थात् केवल ज्ञान प्रा होने से वह जगत को समस्त भावों में जान सकता है, उसका प्रत्यक्ष कर सकता है और उसी के बाद वह मोक्ष पद पर पहुँचता है। मुक्त आत्माओं के निर्मल आत्म-ज्योति में जो आनन्द स्फुरता है वही परम सुख है। ऐसे मुक्त आत्माओं को ही शास्त्रों में शुद्ध बुद्ध निरंजन परब्रह्म इत्यादि कहा है।

ईश्वर

ईश्वर सम्बन्धी विचार में जैन शास्त्र ने एक नवीन मार्ग किया है। किसी अन्य धर्म में यह नहीं मिलता। यह इसका भूषण है। परिक्षीण-सकल-कर्मा ईश्वरः, जिसके समस्त कर्म समूल क्षय को प्राप्त होगये हैं वही ईश्वर है यह जैन शास्त्रका सिद्धांत है। इसलिए ईश्वर एक ही है यह सिद्धांत उसको सम्मत नहीं है। एकमात्र परमात्म-स्थिति को पहुंचे हुए सर्व सिद्ध पुरुष एकाकार होने से समष्टि रूप से उनका एक वचन में व्यवहार हो सकता है।

जैन धर्म का एक सिद्धांत विचार शील विद्वानों के मन को आकर्षित करता है। वह यह कि ईश्वर जगत का कर्त्ता नहीं है। वीतराग ईश्वर न किसी से प्रसन्न होते हैं न किसी से नाराज़ क्योंकि राग और द्वेष का उनमें सर्वथा अभाव है। निर्मल परमकृतार्थ ईश्वर संसार का कारण क्यों बने। सामान्य बुद्धि वाला जब देखता है कि जगत् की सभी चीज़ें किसी न किसी की बनाई हुई होती हैं तब वह अनुमान कर लेता है कि जगत् भी किसी का बनाया हुआ होगा। परंतु यह केवल भ्रम है। क्योंकि सर्वथा राग द्वेष इच्छा आदि से रहित परमात्माको (ईश्वर को) जगत् बनानेसे क्या प्रयोजन? ईश्वर को जगत् का कर्त्ता मानने में और भी कई

आपत्तियां खड़ी हो जाती हैं। तो भी एक प्रकार से ईश्वर जगत् का कर्त्ता हो सकता है।

परमैश्वर्ययुक्तत्वात् मन आत्मैव वेश्वरः।
स च कर्तेति निर्दोषः कर्तृवादो व्यवस्थितः॥

परमैश्वर्य से युक्त होने से मन या आत्मा यही ईश्वर है और यही कर्त्ता समझना चाहिए। इस कथन में दोष नहीं है क्योंकि आत्मा में कर्तृता स्वभाव सिद्ध है।

ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं है यह केवल जैन मत नहीं है, वैदिक मतकी कई शाखाओं में भी ईश्वर को जगत् का कर्त्ता नहीं माना है (देखो वाचस्पति मिश्र की सांख्यतत्वकौमुदी, कारिका ५७।)

स्याद्वाद

अनेक प्रमाणों से जैन शास्त्र में स्याद्वाद सिद्ध किया है जिसको देखकर विद्वानों को बहुत आश्चर्य होता है। एकस्मिन् वस्तुनि सापेक्षरीत्या विरुद्ध-नाना-धर्मस्वीकारो हि स्याद्वादः। एक ही वस्तु को अपेक्षा पूर्वक भिन्न २ दृष्टि से अवलोकन करना स्याद्वाद है। जब हम कुछ भी विधान करते हैं उसमें लक्षित अर्थ से भिन्न अन्य अर्थ सम्बन्धी एक और भी विधान समाविष्ट होता है। यह मेरा भाई है, इस विधान में वह मेरा भाई है यह निर्देश है तो भी उसमें वह किसी का पुत्र और किसी का पिता है यह भी विधान गर्भित है। वस्तु मात्र को अपेक्षा दृष्टि से नित्यानित्य मानने से सर्व ही पदार्थ उत्पत्ति स्थिति और नाश इन स्वभावों से युक्त हैं यह सिद्ध होता है।

बारीकी से देखने से प्रतीत होता है कि सभी दर्शनकारों को स्याद्वाद स्वीकार करना पड़ा है।

साहित्य

जैन साहित्य अत्यन्त विशाल है। ऐसा कोई भी विषय नहीं कि जिस विषय में जैन-प्रणीत उत्तमोत्तम और विद्वत्तापूर्ण ऐसा कोई ग्रन्थ न हो। जैन दर्शन के ४५ शास्त्र ग्रंथ हैं जिनको सिद्धांत या आगम कहते हैं। उनमें ११ अंग १२, उपांग, ६ छेदसूत्र, ४ मूलसूत्र, १० प्रकीर्ण ग्रंथ हैं। प्राचीन समय में शास्त्र लिखे नहीं जाते थे, शिष्य परम्परा द्वारा जिह्वाग्र करा याद रखे जाते थे। समय आने पर उनको पुस्तकों के रूप में लाने की आवश्यकता हुई। आगमों में जो उपदेश है वह महावीर स्वामी के जीवन का और उनके उपदेश का सार है। यह द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथानुयोग और एवं चरण-करणानुयोग इन चार विभागों में बंटा हुआ है।

चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, लोकप्रकाश इत्यादि ग्रन्थ अप्रतिम हैं. इनमें सूर्य चन्द्र तारागण असंख्य द्वीप समुद्र स्वर्ग नरकादि लोक सम्बन्धी बातें मिलती हैं।

हीरसौभाग्य विजयप्रशस्ति, धर्मशर्माभ्युदय, हम्मीरपद्मर्दन, पार्श्वाभ्युदय आदि काव्य ग्रन्थ, सम्पतितर्क, स्याद्वादरत्नाकर आदि न्याय-ग्रन्थ, योगबिन्दु योगदृष्टिसमुच्चय आदि योगग्रन्थ, ज्ञानसार, अध्यात्मसार, अध्यात्मकल्पद्रुम, अध्यात्म-तत्वावलि इत्यादि आध्यात्मिक और सिद्धहेमचन्द्र आदि व्याकरण ग्रन्थ सभी जैन साहित्य के शोभन अलंकार हैं।

प्राकृत भाषा का मौलिक साहित्य जैन पंडितों की कृतियां है। न्याय, तत्व ज्ञान, नीति और गद्य पद्य के अनेक उत्तमोत्तम ग्रंथों से जैन साहित्य ओत प्रोत है। जैन कथा साहित्य बहुत ही सुन्दर है। स्तोत्र स्तुतियां और पुरानी गुजराती भाषा के रास इसी साहित्य के अलङ्कार हैं।

जैन साहित्यके विषयमें Dr. Johns Hutel लिखता है They are the creatures of a very extensive popular literature, अर्थात् जैन साहित्य में सामान्य जनता के लिए उपयोगी ग्रंथ असंख्य हैं।

प्राकृत संस्कृत गुजराती हिंदी और तामिल इन भाषाओं में जैन ग्रंथ लिखे गए हैं।

श्रीमत् सिद्धसेन दिवाकर, श्री हरिभद्र सूरि उपाध्याय, यशोविजयजी उपाध्याय, विनयविजयजी श्रीमद् हेमचंद्राचार्य इत्यादि जैन महापुरुषों ने जैन साहित्यकी समृद्धिमें अपने जीवन सार्थक किए।

गत २५-३० वर्ष से जैन साहित्य का प्रचार विशेषता से आरम्भ हुआ है और तब से इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, इटली और चीन इन देशों में जैन साहित्य का प्रचार अच्छी प्रकार चल रहा है। स्वर्गस्थ गुरुदेव जैनाचार्य श्रीमद् विजयधर्मसूरि जी महाराज के दीर्घ प्रयत्न से इस समय भी जैन साहित्य का प्रचार और अभ्यास अनेक देशों में हो रहा है।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि जैसे २ जैन साहित्य अधिक प्रमाण से लोग पढ़ने लगेंगे और तुलनात्मक दृष्टि से उस पर विचार करेंगे वैसे उस का मनोहर परिमल संसार भर में फैलेगा और वास्तविक अहिंसा धर्म की सँसार को शिक्षा देगा।

जैन इतिहास-कला

जैन तथा जैनेतर विद्वानों का आकर्षण जैन इतिहास की ओर जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हुआ। जैनों का प्राचीन इतिहास गुजरात का प्राचीन इतिहास है और इस दृष्टि से जैन लोगों ने गुजरात के इतिहास की रक्षा की, ऐसा कह सकते हैं। बहुत से ग्रंथ शिलालेखपट्टक, मूर्त्तियां, मुहरें, और तीर्थ स्थान हैं जिन से जैन इतिहास का अन्वेषण हो सकता है।

जैन राज्य खारवेलकी बनाई हुई गुफाएं, शत्रुंजय पर्वत पर के मंदिर, जैनों के श्रेष्ठ स्थापत्य और शिल्प के निदर्शक हैं।

अनेक जैन राजा हुए हैं। जैसे श्रेणिक कोणिक कुमारपाल इत्यादि और वस्तुपाल तेजपाल लोमाशाह चांपाशाह आदि बहुत से जैन मंत्री हो गये जिन्होंने राज्य-शकट चलाये थे।

अहिंसा

अहिंसा यही हमारा विश्व-सन्देश है। संसार के सभी धर्मों में अहिंसा को स्थान है परन्तु जैसा अहिंसा धर्म इसमें है कहीं भी मिलना कठिन है। कई प्रतिष्ठित आदमियों का आक्षेप है कि अहिंसा धर्म से संसार की महान् हानि हुई है। जनता का निर्वीर्य और डरपोक होना इसी धर्म के संस्कारों का फल है परन्तु यह अज्ञान है। अहिंसा धर्म पालन करने वाले धर्म के लिये लड़े हैं और उन्होंने राज भी किए हैं। अहिंसा धर्म में जो आत्म--शक्ति है संयम और विश्व--प्रेम है वह इतर मिलना मुश्किल है। अहिंसा के विषय में ऊपर कहे हुए आक्षेप वही करते हैं जो जैन शास्त्र में प्रतिपादित साधु-धर्म और गृहस्थ धर्म पृथक् २ समझते नहीं है। दोनों को पृथक् धर्म जानने वाला ऐसा आक्षेप कभी नहीं करेगा।

भारत-गौरव लोकमान्य तिलक ने अपने व्याख्यान में एक समय कहा था—

"अहिंसा परमो धर्मः" इस उदार सिद्धान्त ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप मारी है।......
...और घोर हिंसा को वैदिक धर्म से विदा कराने का श्रेय जैन धर्म के हिस्से ही में है।"

वैसे ही डा० स्टीन कोनो कहते हैं:—

इस समय भी अहिंसा की शक्ति पूर्णतया जागृत है। जहां २ भारतीय विचार या भारतीय सभ्यता ने प्रवेश किया है वहां सदा के लिये भारत का यही सन्देश रहा है। इतना ही नहीं, वरन समस्त संसार के लिये भारत का यही गगनभेदी संदेश है। मैं आशा रखतां हूं और मुझे इस बात का विश्वास है कि देवभूमि हिंदुस्थान का भाग्य भविष्य में चाहे कैसा भी रहे भारतवासियों का यह सिद्धांत अमर ही रहेगा।

वैष्णव शैव ईसाई और इस्लामी धर्म भक्ति-मार्ग सिखाते हैं। वेदांत ज्ञान-मार्ग की शिक्षा देता है। झरथोस्थी चारित्र्य--सुधार करते हैं और बौद्ध

और जैन अहिंसा और दया इन महान् सिद्धांतों का ढंढेरा पीटते हैं।

ब्राह्मणों को जैनियों ने अहिंसक बनाया और गुजरातको जहां कि जैन धर्म विशेष प्रमाणमें मिलता है अहिंसा और दया धर्म का केन्द्र बनाया।

महाधर्मों में जैन धर्म की विशेषता अहिंसा ही में है। और यह भी सामयिक विशेषता है कि जैन साधुओं के आचार और रहन सहन संसार भरमें अत्यन्त प्रशंसनीय माने जाते हैं, इस बीसवें शतक में जब कि अन्य मत के साधुओं ने प्राचीन साधु आचार को छोड़ कर प्राप्त सुविधाओं का सेवन आरम्भ कर दिया है।

इस ऐशो आराम के समय में जगत को निवृत्ति-प्रधान जैन सिद्धांत किस प्रकार प्रिय लगेंगे? उसका मुख्य अँग जो त्याग है वह उनसे कैसे बनेगा? परन्तु यह बात परम निश्चित है कि अन्त में सभी को उसी काम को करना होगा।

सज्जनों! जिस धीरता और शांतिके साथ आप लोगों ने मेरा यह व्याख्यान सुन लिया है उसके लिए मैं आप लोगों को अन्तःकरण--पूर्वक धन्यवाद देता हूं। साथ २ यह भी अनुरोध करता हूँ कि धर्म के सामान्य तत्वों में कहीं भी मतभेद नहीं पाया जायगा।

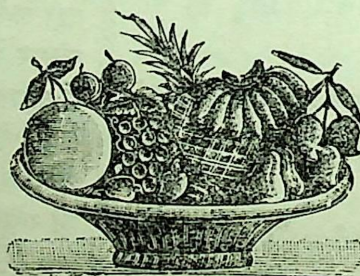
Eternal truth is one but it is reflected in many ways in the minds of the singers.

अगर हर एक धर्म का तुलनात्मक अभ्यास किया जाय और पक्षपात रहित उदार अन्तःकरण से उनका विचार किया जाय तो मतभेद के लिए बहुत ही कम अवकाश रहेगा।

भारत के धार्मिक उत्थान के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह अपने धार्मिक क्लेशों को दूर करे। तभी भिन्न २ मतवालों में ऐक्य का उद्भव होगा जिसके बलसे हम जगत् को अपना सत्य ऐश्वर्य बता सकेंगे।

जैन धर्म जिसका पालन केवल गुजरात ही में विशेषता से होता है भारत और समस्त संसार भी उसे प्रेम की दृष्टि से देख रहा है। वह समस्त भारत का और समस्त संसार का धर्म बने यही मेरी इष्ट देव से प्रार्थना है।

विजयेन्द्र सूरि।



बहाई धर्म

तारीफ़ उस ख़ुदा को सज़ावार है जो मुतक़द्दीस मकिनात की शनाख़्त से पाक है, समझने वालों की समझ से मंज़ा है जिसकी इज़्ज़त बे मशल है जो हमेशा अपने ग़ैर के ज़िकर से मुक़द्दस रहा है और हमेशा अपने सिवा सब के वस्फ़ से बालातर रहेगा इसके ज़िकर के आसमानों पर जैसा कि चाहिए कोई नहीं चढ़ सका न कोई शख़्स जैसा कि लायक़ वस्फ़ इलाही है उसकी बुलन्दियों पर पहुंच सका उसकी अज़ाहदीस को शैवन में हर शान से बेइन्तहा पाक तजल्लियात मशहूर हो रही हैं उसकी बुज़ुर्ग क़ुदरत के ज़हूरों में हर ज़हूर से बेशुमार नूर नज़र आ रहे हैं।

इसकी बुज़ुर्ग सल्तनत के अज़ीब ज़हूर किस क़दर बुलन्द हैं जिनको अदना तजल्ली के सामने आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है सब मादूम महज़ है। उसकी क़ुदरत बालिग़ा की शान कैसी ऊंचा है कि अज़ल से अब्द तक जो कुछ पैदा हुआ है वह सब उसकी एक अदना तजल्ली के अरफ़ां से आजिज़ व क़ासिर रहा और रहेगा। हयाकुल असमाय (यानी पैग़म्बर) मैदान तलब में तशनालब व सरगर्दां हैं। मज़ाहर सिफ़ात (यानी अनतियाइ) बौर तक़दीस में रब्बे अदना कह रहे हैं और उसकी बेज़वाल रहमत के समन्दर की एक मौज ने तमाम मुमकिनात को इज़्ज़त हस्ती के लिबास से मुज़ैय्यन कर दिया है। उसकी बेमिसाल रज़वां के नसीम के एक झोंके ने तमाम मौजूदात को पाक इज़्ज़त की ख़िलअत से सरफ़राज़ फ़रमाया है। इसके अहदियत सल्तनत के दरियाए इरादे में से एक बूंद ने बेइन्तहा व ग़ैर-मुतनाही मख़लूक़ात पैदा करदी है उसके अजाइबात बख़शिस कभी मौत्तिल नहीं हुये। उसके फ़ज़ल के ज़हूर कभी मौक़ूफ़ नहीं हुये। इब्तदाये बेइब्तदा से पैदा किया और इन्तहाय बेइन्तहा तक पैदा करता रहेगा। हर दौर और हर असर में तजल्लियाते ज़हूर से अपनी मख़लूक़ की अजीब फ़ितरतों को ताज़ा फ़रमाता रहा है ताकि जो कुछ आसमानों और ज़मीनों में से ख़्वाह आफ़ाकी बुज़ुर्ग निशान हों या अलनफ़्सी मुक़द्दस ज़हूर हों ख़मख़ानये अज़ाहदीत के वादे से महरूम न रहें और उसके अबर इनायत के क़तरों से मायूस न हों। उसके बेइन्तहा फ़ज़ल के अजाइबात किस क़दर मुहीत हैं कि तमाम काइनात को घेरे हुए हैं ऐसे मुक़ाम पर कि मुल्क में कोई ज़र्रा ऐसा नज़र नहीं आता जो अहदियात के बुज़ुर्ग ज़हरात की हिकायत न करता हो और उसकी ज़ातकी हम्दोशनां में न बोल रहा हो और उस आफ़ताबे हक़ीक़त के अनवार पर देलालत न करता हो। ख़ुदा ने अपनी मख़लूक़ को ऐसा जामै और कामिल पैदा फ़रमाया कि अगर तमाम अहले अक्ल और अहले दिल उसकी अदना-तरीन मख़लूक़की मर्फ़त हासिल करना चाहें तो सब अपनेको आजिज़ व क़ासिर देखेंगे। तो फिर इस आफ़ताबे हक़ीक़त और ज़ाते ग़ैब लायदरक की (जो समझ से बाहर है) मार्फ़त क्योंकर मुमकिन है। आरिफ़ों का अरफ़ाँ और पहुंचने वालों की पहुंच सब ख़लक़े ख़ुदा की तरफ़ राजअ हैं और रहेंगी।

लाखों मूसा तौर तलब में लनतरानी (तुम मुझे नहीं देख सकते) की आवाज़ से बेहोश हैं और लाखों रूह अलक़द्दस आसमाने क़रब में कलमा लनतरानी (तुम मुझे नहीं पहचान सकते) सुनकर मुज़तरब हैं। वह हमेशा से अपनी तक़दीस व तनज़ीह की बुलन्दी के साथ अपनी मुक़द्दस ज़ात में पोशीदा रहा है और हमेशा अपनी बुज़ुर्गी व रफ़-

अत की बरतरी के साथ अपनी हस्ती के ख़ज़ाने में पिनहां रहेगा। आसमाने अरफ़ां पर चढ़ने वाले हैरत की मंज़िल से आगे नहीं पहुंच सके। और हरम क़रब व विसाल के क़ासिद मैदाने अजिज़ व हसरत से बाहिर क़दम न रख सके।

यह ज़र्रा नाचीज़ (बहाये अल्ला , तेरे मुक़द्दस अरफ़ा की मौजके चक्करोंमें सोचने से किस क़दर मुतहईय्यर है और तेरी सनअत के ज़हूरों में रक्खी हुई क़ुदरत पर ग़ौर करने से किस क़दर आजिज़ है। अगर मैं कहूं कि तू नज़र आ सकता है तो नज़र ख़ुद अपने आप को नहीं देख सकती तुझे किस तरह देखेगी। अगर मैं कहूं कि तू दिल से औराक़ किया जा सकता है तो दिल अपने अन्दर की तजल्ली के मुक़ामात का आरिफ़ नहीं है तेरा आरिफ़ क्योंकर हो सकता है ? अगर मैं कहूं तू मारूफ़ है तो तू मख़लूक़ात के अरफ़ान से पाक है। अगर कहूँ कि तू ग़ैरमारूफ़ है तो तू इस से ज़्यादा मशहूर है कि मस्तूर और ग़ैर-मारूफ़ रह सके। अगर्चि हमेशा तेरे फ़ज़ल व वसल व लक़ाय के दरवाज़े मुमकिनात के सामने खुले हुए हैं और तेरे जमाल बेमिसाल की तजल्लि-यात के अनवार वजूद मशहूद व मफ़क़ूद के अरशों पर जलवागर हैं। बावजूद इस बड़े फ़ज़ल के और पूरी और ज़बरदस्त इनाअत के ज़हूर की मैं गवाही देता हूं कि तेरी मुक़द्दस बारगाह जलाल तेरे ग़ैर के अरफ़ान से मुक़द्दस रही है और तेरे बरतरांस की महफ़िल औराक़ मासिवाय से मुनज़्ज़ा रहेगी। तू हस्ती में मशहूर और अपनी ज़ात में मौसूफ़ है अज़ाहदीत की कितनी तसवीरें (आरिफ़) मैदाने फ़िराक़ में फ़िदा हुए और किस क़दर क़दस सह-दियत की अरवाअ सहराये शहूद में मसवहूत हुईं। बहुतेरे आशिक़ कमाल हस्तियाक़ के साथ आतिशे फ़िराक़ के एक शौले से जल गये और बहुत से आज़ाद तेरे विसाल की उम्मीद में जान दे चुके। न आशिक़ों की आहोज़ारी तेरे मैदाने क़दस- में पहुंची न मुश्ताक़ों का चीख़ना चिल्लाना।

और चूंकि इस ज़ात क़दीमके मुरातिब तनज़ील अर्फ़ा और बारयाबी के दरवाज़े मसदूद व ममनूअ हैं इसलिये महज़ फ़ज़ल व बख़शीस की रू से हर अहद वो असरमें अपनी इनाअत का आफ़ताब जूदो करम के मशरक़ से तमाम चीज़ों पर रोशन फ़रमाया और इस जमाल अहदियतको मख़लूक़में से ख़ुद मुन्तख़िब कर के ख़िलअत तख़शीस से अपनी रिसालत के लिये मबऊस फ़रमाया ताकि तमाम मख़लूक़ात को सिलसाल को सर बेज़वाल और तसनीम क़दस बे-मिसाल की राह दिखाई और तमाम चीजें ग़फ़लत और नफ़सानी ख्वाहिश की क़दूरतों से पाक होकर जबरूत अज़लका में जो क़दस बक़ाका मुक़ाम है दाख़िल हों। वही सब से पहिला आइना और सब से क़दीम लिबास और जलवये गैब और कलमये नाम और सुलतान अहदियत का कामिल ज़हूर व बतून का नुमाइन्दा है तमाम मख़लूक़ात को इसी की अताअत जो ऐन अताअतुल्ला है मामूर फ़रमाया। असमाये इलाही के समुन्द्रों की मौजें उसके इरादेसे ज़ाहिर और सिफात इलाही के सारी तारीफ उसके हुकुम से रोशन हैं। मौजूदा तकाअरफात और मुमकिनात की सारी तारीफ अज़ल से अबद तक इसी मुक़ाम रिसालत या ख़िलाफ़त इलाही की तरफ़ राजअ हैं और किसी के लिए इस बुलन्द और आला मुक़ाम से आगे बढ़ जाना मुमकिन नहीं। जो आफ़ताब अहदियत और ख़ुरशैद हक़ीक़त का मुक़ाम है क्योंकि ऐसा ग़ैब लायदरक (समझ से बालातर) हो उस तक प-हुंचना मुसलिम है कि महाल है। पस इस बहरे बातिन वो ज़ात अहदियत की मौज़ें इस ज़हूरे सुभ-हानी रसूलअल्ला के ज़ाहिर में मशहूर हैं। और इस आफ़ताब ग़ैबके अनवार इस तलुअक़दस सहमदानी (ख़लीफ़तुल्ला) से बग़ैर इशारे के चमकते हुए नज़र आते हैं। और सुबह अहदियत से यह दर-ख़शां हस्तियां ऐसी ज़बरदस्त हुज्जत के साथ ज़ा-हिर हुई हैं कि इन मरसिल और चमकने वाली

हस्तियों के सिवाय तमाम दुनियां इनकी सी इज़्ज़त पेश करने से आजिज़ और क़ासिर है।

सज्जनों, नमस्ते !

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती की जन्म शताब्दी के मौके पर आपने बहुत ही अच्छा विचार किया है कि हिंदुस्थान में जो २ मत और पन्थ हैं उनको बुलाकर उन सबसे एक जगह मिलकर उन बातों पर बात चीत करायें जिन पर कभी बाज़ारों और हाटों में और कभी बैठ कर झगड़े हो जाया करते हैं। यह बात आपने बहुत अच्छी सोची है क्योंकि बड़े अफ़सोस की बात है कि दिन पर दिन लोगों के दिलों का लगाव परमेश्वर से घटता जाता है और दिल दुनियां की तरफ़ खिचते जाते हैं खुदा की बातें घटती जाती हैं और लोगों की बातें बढ़ती जा रही हैं और बात यहां तक बढ़ गई है कि संसारी लोग चढ़ाई पर चढ़ाई कर रहे हैं और धर्म और दीनदारी आन पै आन मिटती जाती है। अधर्मी ने धर्म को दबा लया है। इसका असली सबब और कारण यही है कि धार्मिक एकही बातको अलग २ तरह से बताते हैं और पन्थों और समाजों में फूट फैली हुई है और वह एक दूसरे से वैर रखते हैं और आपस के दुश्मन हैं। संसारी धर्मों ने इस फूट की वजह से मौक़ा पाया है और वह रात दिन धर्म की जड़ उखाड़ने में लगे हुए हैं। धार्मिकों को आपस की फूट की वजह से वह ख़ुद दिन पर दिन कमज़ोर होते और दबते चले जाते हैं अगर किसी सर्दार और उसके सिपाही में आपस में लड़ने के बारे में इख़्तलाफ़ हो तो वह फ़ौज़ ज़रूर हार जायगी। आज धार्मिकों में फूट और इख़्तिलाफ़ है। दुश्मनी और झगड़े और एक दूसरे पर इल्ज़ाम रखना उनका क़ायदा होगया है। आपस में एक से दूसरा नहीं मिलता और अगर ज़रूरत पड़े तो एक दूसरे का ख़ून बहाने के लिए तय्यार हैं। (एन० एन०)

तक़लीद ने दुनियादारी सचाई को छिपा लिया है दुनियां में अन्धेरा छागया है और धरम का उजाला जाता रहा है। इस अन्धेरे से लड़ाइयां और झगड़े फैले हुए हैं रसूम और अक़ीदे एक दूसरे से नहीं मिलते और बे-गिनती हैं इस लिए पन्थों, धार्मिकों और दीनदारों में फूट है। अगर्चे धर्म और दीनदारी से लोगों में मेल मिलाप फैलना चाहिए, असली दीन और धरम से लोगों में मुहब्बत और प्यार होना चाहिए और अच्छी बातें पैदा होनी चाहियें, लेकिन लोगों के हाथ में नक़ली चीज़ें हैं और वह असली सचाई छोड रक्खी है जो मिलाप कराती है। लोगों के हाथ में वह अधर्म हैं जो उनके बाप दादा से उन्हें विरसे में मिले हैं और यह इतने फैल गये हैं कि आसमान का उजाला इन तक नहीं पहुंचता और वह अन्धेरे में बैठे हैं। जो उनमें जान डालने का ज़रिया होना चाहिए था वह जान निकालने का सबब होगया है। जो ज्ञान और मार्फ़त की पहचान होता वह उनकी नादानी और मूर्खी का सबूत है। जो चीज़ आदमी की ज़ात बुलन्दी और ऊंचाई का सबब होनी चाहिए थी उसी के सबब से लोग नीचे गिर रहे हैं और ज़लील होरहे हैं। इसी वक़्त और समय के लिए श्री भगवान ने यह वचन और वाइदा दिया था कि जब २ धरम गिर जाता है और अधर्मी उभर आता है तो धरम का पालन करने के लिए अधर्मी का नाश करने के लिए और धार्मिकों का धारण करने के लिए मैं औतार लेता हूं।

सच तो यह है कि आज दुनियां की यह हालत है कि अगर परमात्मा की तरफ से कोई शक्ति या ताक़त हमारे हाथ बँटाने के लिए न आये और इन तमाम आफ़तों को जो बुराई और बिगाड़ के रास्ते में लग रही हैं भलाई की तरफ़ न मोड़े तो तमाम दुनियां हमेशा के लिए नाश और बर्बाद हो जायगी। बहाई लोग यह कहते हैं कि श्रीभगवान के इस वचन और वाइदे को पूरा करनेके लिए एक औतार हो चुका है और उसीके आत्मबल और रूहानी ताक़त का असर है कि दुनियां की सारी चाल ढाल

बदल चली है। इस औतार को दुनियां बहाई अल्ला के नाम से जानती है और जबसे उन्होंने जन्म लिया है विद्वानों का ख़याल है कि तब ही से दुनियां सुधरती दिखाई दे रही है।

इतिहास लेखक और तारीख़दां कहते हैं कि पिछले सौ बरस उससे पहिले के एक लाख बरस के बराबर थे क्योंकि जो कुछ पिछले ज़माने में लोगों ने काम किये हैं उनसे मिलान किया जाय तो मालूम होता है कि इस सौ बरस में जिन बातों के खोज लगाये गये हैं जैसा कुछ साइन्स आगे बढ़ी है अनात्मवादी सभ्यता यानी माद्दी तमद्दुन की जो जो बातें इस ज़माने में निकली हैं वह उसके बराबर हैं। जो किताबें लिखी गई हैं और जो कुछ साहित्य (यानी अदबियात) पैदा हुई हैं अगर ख़ाली उसे ही लिया जाय तो मालूम होगा कि इस ज़माने के लोगों के दिमाग़ी कामका नतीजा पुराने ज़मानों से बहुत कुछ बढ़ गया है। इससे मालूम होता है कि पिछले सौ बरस बहुत अहम और भारी थे। सोचो कि कैसे कैसे करामात और माजिज़े इस ज़माने में हुये हैं। लोगों ने कैसे २ खोज लगाये हैं। साइन्स ने कैसी २ नई बातें मालूम की हैं। मेल मिलाप और सेवा समिति के कैसे २ रास्ते ढूंढे हैं संसार के कैसे२ भेद पा लिये हैं। छिपी शक्तियाँ और ताक़तें ढूंढ निकाली हैं और इनसे काम ले रहे हैं और सचमुच का जादू बनाकर खड़ा कर दिया है, जो आज तक संसार के बोझ से बाहिर था। यूरूप के लोग पलभर में तार देकर पश्चिम पाताल से ख़बर मँगा लेते हैं, लोग उड़कर आसमान की तरफ़ चले जाते हैं या पानी के अन्दर फुर्ती के साथ सफ़र कर सकते हैं। भाप की ताक़त ने परदेशों को एक देश बना रक्खा है, रेल की गाड़ियां सुनसान जङ्गलों को तीर करती और पहाड़ियों को छेदती निकल जाती हैं, जहाज़ समुद्रों पर बग़ैर भटके हुए चलते हैं और दिन पर दिन नई २ बातें मालूम होती चली जा रही हैं। यह कैसा अचम्भे में डालने वाला समय और ताज्जुब-अंगेज़ ज़माना है। आज हर चीज़ सुधार पर है। बादशाहतों और राजधानियों के क़ानून रोज़ बरोज़ बदले जा रहे हैं। अलूम व फ़नून कला और ज्ञान नये सांचों में ढाले जा रहे हैं। ख़याल बदलकर कुछ से कुछ हो रहे हैं यहां तक कि इन्सानियत की बुनियाद तक बदलकर नये सिरे से इसको मज़बूत किया जा रहा है। पुरानी साइन्स बेकार हो चुकी, मिसर के मशहूर जोतिषी टोलोमी का जोतिष काम नहीं देता और साइन्स और फ़िलास्फ़ी के पुराने बयान और व्याख्यान ग़लत और अकारथ समझ कर छोड़ दिये गये। स्वभाव और इख़लाक़ की पुरानी नज़ीरें और क़ायदे आजकल काम नहीं देते। पुराने ख़याल और नक़शे बेकार हो चुके। गद्दियां और राजधानियां गिरकर मिटती चली जा रही हैं। पुरानी चीज़ों और हालतों में जो कुछ भी आज की हालत के क़ाबिल नहीं है उसमें बड़ी २ तबदीलियाँ हो रही हैं इसलिये अब यह बात बिलकुल खुल गयी कि हम को धार्मिक पुस्तकों के नक़ली और खोटे अर्थ यानी दीनी किताबों के ग़लत और तक़लीदी बेबुनियादी तफ़सीरें और तमाम ऐसे बनावटी और अकारथ रिवाज और परखों की मनघड़ंत अटकलें जो हर तरह से सच्चे धर्म के ख़िलाफ़ हैं ज़रूर छोड़ देनी पड़ेंगी और परखों के अर्थों और बाप दादा की तक़लीदी तफ़सीरों को सुधारना पड़ेगा। इन में से कुछ बिलकुल छोड़ देनी पड़ेंगी और जो नई बातें अब पैदा हो गई हैं इनका ख्याल करना पड़ेगा। संसार के स्वभाव यानी दुनियां के इख़लाक़ बदले जायँगे और आजकल की ज़रूरतों को सुधारने और सुलझाने के लिये नये ढंग और तरीक़े सोचने पड़ेंगे। यहां तक कि लोगों को अपने सोचने के तरीके तक बदलने पड़ेंगे और इनको संसार की भलाई के मातहत बनाना पड़ेगा जैसा कि पुराने ज़माने के ख़याल और अर्थ आज काम में नहीं आ सकते इसी तरह पुराने लोगों के खोज लगाने के

तरीके क़ायदे और क़ानून भी धर्म और दीन में काम नहीं दे सकते।

खोज इस्तनबात — बल्कि ख़ुदा के क़ानून के नाम से दुनियां में लड़ाई और झगड़े फैले हुए हैं। दुनियांके खून बहाये जाते हैं और तमाम लोगोंके मेल मिलापके लिये इनमें कोई गुंजाइश नहीं, इसलिए आज हमारा काम यह है कि ख़ुदा के धर्म और सच्चे दीन का तत्व और सत्त ढूंढें। दुनियां के भाईचारे और मिलाप की खोज और वह बात ढूंढ निकालें जिससे सारी दुनियां प्रेम और आनन्द और ख़ुदाई मुहब्बत के रिश्ते में जुड़कर एक हो जाय।

प्रेम-मौहब्बत-आनन्द चैन-आराम — यह प्रेम नित्य उजाला है धर्म की जान है परमात्मिक रोशनी है और ख़ुदा की बादशाहत का दान है।

नित्य दायमी — हमें चाहिए कि इस ख़ुदाई दान के दाता का पता लगावें और उस को कभी न छोड़ें क्योंकि अगर हम पुरखों की लकीर को पीटते रहेंगे तो आये दिन दुनियां गिरती चली जायगी, लड़ाई और झगड़ा बढता चला जायगा और राक्षसी शक्तियां मिलकर एक दिन आदमी की नसल को मिटा देंगी अगर मौहब्बत और प्रेम किसी एक ख़ानदान में पाये जाते हों तो वह ख़ानदान तरक्क़ी करेगा और उस के इख़लाक़ और रूहानियत में तरक्क़ी होगी। लेकिन इनमें वैर और दुश्मनी पाई जायगी तो इनका बर्बाद होना मिटना यक़ीनी और अटल है और इसी तरह अगर तुम सोचो तो तमाम दुनियां के लिए भी यही बात सच है।

मनुष्यमात्र-आलम इन्सानी — जब मौहब्बत फैल जायगी। तो सच्चे आत्मिक रिश्तों में लोगों के दिल बंध जायंगे। मनुष्य, जीव मात्र का दर्जा ऊंचा हो जायगा।

आत्म-बल रूहानी ताक़त — दुनियां का आत्मबल रोज़ ब रोज़ बढ जायगा खुशी अमन व चैन चारों तरफ ज्यादा हो जायंगे, लड़ाइयां और झगड़े मिट जायंगे इख़लाफ़ और फूट बाक़ी न रहेगी।

शान्ति-चैन — और तमाम क़ौमों पर शांत और सुलह अकबर छा जायगी सारी दुनयां एक कुनबा होकर रहेगी। या एक ही समन्दर की लहरों की तरह हो जायगी या लोग एक ही आसमान के तारे बन जायंगे, या एक दरख़्त के फल हो जायंगे तब लोगों को पूरी ख़ुशी और पूरा आराम मिलेगा।

परमात्मा—ख़ुदा — तब दुनियां में पूरा उजाला हो जायगा यानी परमात्मा का शांति प्रताप हासिल हो जायगा।

शांति प्रताप यानी दायमी जलाल — लोग अब्दी ज़िन्दगी पा लेंगे यानी अमृत को प्राप्त होंगे और कहेंगे कि देखो ईश्वरीय धर्म यानी ख़ुदा का दीन इसे कहते हैं।

(अब्दुल बहाई का लैकचर अमरीका)

अपनी बातों के लिये बहाईअल्ला ने औतार लिया था और सख़्त से सख़्त तकलीफ़ें उठाईं थीं और बहाई समाज को जन्म दिया था, बल्कि ख़ुद की ज़िन्दगी में दुनियां के मशहूर लोगों ने पेशीनगोई की थी कि एक दिन यह धर्म सारी दुनियां पर छा जायगा और विद्वान् लोग इसके पल्ले को बहुत भारी मान लेंगे इसलिये अब आप चाह रहे होंगे कि थोड़ीसी बहाई समाज की इतिहास और तारीख़ को बयान करूँ।

इतिहास और तारीख़ — बहाई अल्ला ईरान के पुराने ख़ानदान में पैदा हुए थे और बचपन से ही वह अपने तमाम ख़ानदान में बिलकुल अलग थे। लोग कहा करते थे कि इस बच्चे में कोई भेद है। होश, समझ और

निराली बात कहने में वह अपने बराबरके बच्चों में सबसे बढ़े हुए थे. जो कोई इनको देखता था उनकी तेज़ी पर तअज्जुब करता था। अक्सर लोग कहा करते थे कि यह बच्चा नहीं जीवेगा क्योंकि यह आम तौर पर मशहूर है कि जो बच्चा बहुत ज़्यादा तेज़ होता है वह जल्दी मर जाता है। लड़कपन में बहाई अल्ला किसी मदरसे में नहीं बिठाये गये क्योंकि वह किसी से पढ़ने पर राज़ी नहीं होते थे। तहरान के ईरानी इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं तो भी जो कोई उनसे कोई मुशकिल बात पूछता तो वह बता देते थे और जिस जगह भी होते और वहां लोग साइन्स या दीनी गुफ्तगू करते होते तो हर मुश्किल सवाल पर सब इनका ही कहना मान लेते।

जब तक इनके बाप ज़िन्दा रहे, इन्होंने कोई नौकरी गवर्नमेंट की न करनी चाही अगर्चे इनको बहुत आसानी से मिल सकती थी, इसपर लोग बहुत तअज्जुब करते थे और अक्सर आपस में इस का ज़िकर किया करते कि यह क्या बात है कि ऐसा होशियार और समझदार आदमी कोई बड़ी तनख़्वाह की नौकरी नहीं करता अगर वह चाहे तो उसे हर जगह मिल सकती है (क्योंकि इनके बाप बादशाह के वज़ीर और चचा और दूसरे रिश्तेदार सब बड़ी २ जगहों पर नौकर थे) यह ऐसी बात है कि ईरान का हर शख़्स इसे सच बताता है, चाहे जिससे पूछ लो।

बहाई अल्ला बड़े सख़ी थे और ग़रीबों को बहुत कुछ दिया करते थे और वह कभी किसी को ख़ाली नहीं फेरते थे इनका दरवाज़ा हमेशा खुला रहता और जब लोग देखते थे कि वह अपने लिये कुछ नौकरी या इज़्ज़त नहीं चाहते तो बहुत तअज्जुब करते थे। उनके दोस्त उनको समझाया करते थे कि इस तरह से तुम ग़रीब हो जाओगे क्योंकि इनका ख़र्च बहुत बड़ा था और इनका माल दिन पर दिन घटता चला जाता था। वह एक दूसरे से पूछा करते थे कि यह शख़्स अपने बारे में क्यों नहीं सोचता है लेकिन उन्हें जो लोग समझदार थे वह कहते थे कि यह शख़्स दूसरी दुनियां का मालूम होता है। इसमें कोई भेद है जो आज मालूम नहीं होता, मगर किसी न किसी दिन यह भी खुल जायगा। सच तो यही है कि बहाई अल्ला हर कमज़ोर को पनाह देते थे, हर डरपोक को दिलासा देते थे हर ग़रीब को सहारा देते थे, हर शख़्स से मौहब्बत और प्यार करते थे।

हज़रत बाब के उठने से पहिले ही वह इन बातों में मशहूर हो चुके थे और उनके उठने पर बहाई अल्ला ने कहा कि हज़रत बाब सच कहते हैं और उनकी तालीम फैलाने लगे।

हज़रत बाब कहते थे कि उनसे बड़ा औतार होने वाला है जिसको उन्होंने **मिनयुज़हरअल्ला** के नाम से बताया था, यानी वह शख़्स जिसको ख़ुदा उठायेगा और कहा कि मेरे उठने के नौ बरस बाद मेरे काम की ज़रूरत मालूम हो जायगी क्योंकि नौ बरस बाद वह बड़ी रोशनी ज़ाहिर हो जायगी। नवें वर्ष वह बडी तेज़ी के साथ आगे बढ़ेंगे।

बहाईअल्ला और हज़रत बाब के दर्मियान लिखा पढ़ी हुई थी। हज़रत बाब ने बहाई अल्ला को एक ख़त लिखा जिसमें लफ्ज़ बहाई से तीन सौ साठ लफ़्ज़ बनाये थे।

हज़रत बाब को तबरेज़ में शहीद कर दिया और बहाई अल्ला को बुग़दाद की तरफ़ देशनिकाला दे दिया जहां सन् १८५४ ई० में बहाई अल्ला ने लोगों को अपनी तरफ़ बुलाना शुरू किया। ईरान की गवर्नमेंट ने फ़ैसला किया था कि जब तक वह ईरान में रहेंगे तब तक झगड़ा नहीं मिटेगा। इसलिये इनको ईरान से निकाल दिया था कि अब ईरान में सब चुप हो जायँगे। लेकिन इनको निकालने से उल्टा नतीजा निकला और यह नई ख़बर बड़े ज़ोर से मुल्क में फैलने लगी और बहाईअल्ला की बड़ाई का ज़िकर हर जगह होने लगा। उन्होंने अपना दावा लोगों के सामने बुग़दाद में पेश किया

था। वहां उन्होंने अपने दोस्तों को जमा किया और ख़ुदा का ज़िकर किया। इसके बाद वह शहर छोड़कर कुरदिस्तान के पहाड़ों में चले गये और वहां ग़ारों और भिटों में रहा किये और कुछ ज़माना शहर सुलेमानियां में भी रहे, इसमें दो बरस गुज़र गये और न उनके दोस्तोंको ख़बर थी कि वह कहां हैं और न उनके ख़ानदान वालों को।

अगर्चे बहाई अल्ला अकेले थे और अलग अलग रहा करते थे और किसी से मिलते जुलते भी न थे मगर फिर भी कुरदिस्तान में यह मशहूर होने लगा कि बड़ा अजीब और ज्ञानी करामात वाला शख़्स जो आज कल यहां आया हुआ है लोगों के दिल पर बहुत बड़ा असर करता है बहुत जल्दी तमाम कुर-दिस्तान में इनकी मौहब्बत का असर बिजली की तरह फिर गया। ये तमाम ज़माना बहाई अल्ला ने बड़ी ग़रीबी में गुज़ारा इनके कपड़े भिखारियों और ग़रीबों के से थे इनका खाना लाचारों और नीच ज़ातों का था मगर बुज़ुर्गों की सी शान इनमें इसी तरह मौजूद थी जैसे सूरज के गिर्द दोपहर के वक़्त हाला होता है। हर जगह लोग इनसे बड़ी मौहब्बत और इनकी इज़्ज़त करते थे।

दो बरस के बाद बुग़दाद वापस चले आये इसके बाद उनके सुलेमानियां वाले दोस्त उनसे मिलने आये और उनको अपनी सी हालत में देखा जिसमें वह पहिले रहा करते थे और वह तअज्जुब करने लगे कि यह शख़्स सुलेमानियां में ऐसी तंगी और ग़रीबी में कैसे रहा करता था।

ईरान की गवर्नमेंट का यह ख़याल था कि बहाई अल्ला को देश निकाला देने के बाद उनके सब साथी उनको छोड़ देंगे अब इन लोगों को ख़याल हुआ कि ये तो पहिले से भी ज़्यादा ज़ोर पकड़ चले इनका असर बढ़ चला, और इनकी तालीम दूर २ फैलने लगी तब ईरान के लीडरों ने अपना असर डालकर इनको बुग़दाद से भी निक-लवाना चाहा और कुस्तुनतुनियां के बादशाह ने इनको वहां बुला भेजा और बुग़दाद के ज़माने में बहाई अल्ला ने किसी रोक की परवाह न की। ख़ास कर वज़ीरों और मौलवियों की मुख़ालफ़त की तरफ़ तो ज़रा भी तवज्जह न की। इसलिये ईरान के लीडरों ने फिर अपना असर इस्तेमाल किया और बहाई अल्ला को कुस्तुनतुनियां से एड्रयानो-पल भिजवा दिया। ताकि ईरान से और भी ज़्यादा दूर हो जावें और उनकी तालीम वहां न फैल सके, मगर वह और भी ज़्यादा ज़ोर से फैली।

आख़िरकार उन्होंने आपस में मशवरा करके कहा कि हमने बहाई अल्ला को एक जगह से दूसरी जगह भेजा और हर दफ़ै लोगों में उनकी शौहरत पहिले से बढ़ गई उनकी ख़बरें दूर २ फैल गईं और उनके चिराग़ का उजाला दिन पै दिन ज़्यादा ही होता गया। इसकी वजह यह है कि इनको बड़े बड़े शहरों में रक्खा है जहां आबादी बहुत ज़्यादा थी। इसलिए हम उनको कालापानी क़ैद करके भेजेंगे ताकि लोग जानलें कि वह क़ातिलों और डाकुओं और जुर्म करने वालों के साथी हैं और इस तरह से बहुत थोड़े से दिनों में वह और उनके सब साथी ख़तम हो जायंगे।

जब बहाई अल्ला मक्का पहुंचे तो ख़ुदा की मदद से उन्होंने अपना झंडा खड़ा किया पहिले उनकी रोशनी एक छोटा सा तारा थी लेकिन अब वह एक सूरज हो गई और यूरुप और पश्चिम इसकी रोशनी से जगमगा उठे। जेलख़ाने के अन्दर से इन्होंने तमाम दुनियां के बादशाहों को ख़त लिखे और उनसे कहा कि तुम लोग पंचायत और सुलह अकबर को इख़्तयार करो। बाज़ बाद-शाहों ने उनके दावत के रुक्क़ों को ग़रूर और नफ़रत के साथ देखा। इनमें एक सुलतान रूम (अब्दुल अज़ाज़ख़ां) थे दूसरे नैपोलियन सालिस जिन्होंने जवाब न भेजा। दूसरे रुक्के में बहाई अल्ला ने इनको यह लिखा कि पहिले मैंने तुमको दावतनामा भेजा था जिसमें तुमको ख़ुदा की तरफ़ बुलाया था मगर तुमने परवाह नहीं की बल्कि

यह इश्तिहार दिया है कि तुम मज़लूमों को पनाह देते हो। .खूब मालूम होगया कि तुम ऐसे नहीं हो यहां तक कि तुम अपनी रैय्यत तक पर मेहरबान नहीं हो जो .जुल्म और तकलीफ़ में मुबतिला हैं। तुम्हारी ये बातें .खुद तुम्हारी अच्छाई के ख़िलाफ़ हैं और तुम्हारी बादशाहत जाती रहेगी। फ्रांस तुम्हारे हाथों से निकल जायगा और तुम बड़ी शिकस्त खाओगे। बड़ा रोना और पीटना होगा और औरतें अपने बच्चों के लिए मातम करेंगी। नैपोलियन की तम्बीह आम मुल्कों में फैल गई और लोगों ने इसको पढ़ा।

तुम भी इसको .खुद पढ़ो और ग़ौर करो एक क़ैदी अकेला तनहा बग़ैर किसी यार मददगार के परदेस में जहां इसको कोई नहीं जानता मक्का जैसे जेलख़ाने से नैपोलियन और सुलतान रूम के नाम ख़त लिखना है इसको सोचो कि बहाईअल्ला ने किसी ज़ोर के साथ जेलख़ाने के अन्दर से अपनी दावत का झंडा खड़ा किया तारीख़ को उठाकर देखो मगर तुमको दूसरी ऐसी नज़ीर नहीं मिलेगी यह वाक़ा लाजवाब है न तो पहिले कभी ऐसा हुआ न बाद को। एक क़ैदी जलावतनी परदेसी अपनी तालीम दुनियां में फैलाता है और आख़िरकार वह ऐसा ज़ोरावर हो जाता है कि .खुद उसी बादशाह पर फतह पाता है जिसने उसको जलावतन किया था।

बहाई अल्ला की तालीम दिन पर दिन फैलती चली गई। पच्चीस वर्ष तक क़ैद में रहे और इस पूरी मुद्दत में लोग उनको बुरा भला कहते, सताते कड़ियां और बेड़ियां पहनाते। ईरान में इनका सब माल लूट लिया गया और जायदाद ज़ब्त होगई। पहिले ईरान से बुग़दाद फिर बग़दाद से कुस्तुनतुनियां, फिर एड्रियानोपल और अख़ीर में रूमेली से मक्का के क़ैदख़ाने में भेजा गया।

वह तमाम उम्र बहुत ज्यादा काम किया करते थे और कभी थकते न थे मुश्किल से कोई रात वह आराम से सोते थे और उन्होंने यह सब तकलीफ़ें और मुसीबतें इस लिए उठाईं कि दुनियां एक बेलौस ख़िदमत का ज़हूर एक दास औतार को देखले। संसार में शांति और सुलह अकबर फैल जाय। आदमी आसमान के फ़रिश्तों जैसे हो जांय। अनहोनी बातें और माजिज़ें होने लगें। धर्म का पालन और ईमान की तक़वियत हो। खुदा की क़ीमती और सबसे बड़ी नियामत यानी इन्सानी ज़हन बदन के मन्दिर में पूरी २ ज़ोरसे तरक्क़ी करे ताकि आदमी .खुद .खुदा की तसवीर और उसके जैसा बन जाय। जैसा कि इनजील में कहा है कि हम आदमी को अपने जैसा बनायेंगे।

गर्ज़ कि बहाई अल्ला ने इन तमाम मुसीबतों और परेशानियों को इसलिए झेला कि हमारे दिल रोशन होजांय हमारी रूह बाजलाल होजाय हमारी बुरी बातें अच्छी बातों में बदल जांय। हमारी नादानी जाकर इल्म आजाय ताकि इनसानियत के असली फल को पा लें और आसमानी लक्षण और इख़लाक़ हासिल करलें, अगर्चे ज़मीनके यात्री हैं लेकिन आसमानी रास्तों पर सफ़र करें, अगर्चे ग़रीब और लाचार है लेकिन असली ज़िन्दगी का ख़ज़ाना पालें। बहाई अल्ला ने इस ग़रज़ से तमाम रंज और तकलीफ़ें उठाईं।

अगर्चे आपके तमाम सवालों के जवाब मैं आगे दे चुका हूँ तो भी मुख़्तसिर तौर पर फिर बयान किये देता हूं। लेकिन इससे पहिले मैं आपको जताना चाहता हूं कि अगर ग़ौर करके देखेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि दुनियां के सब धर्म और दीन यही जवाब देते हैं क्योंकि जितने धर्म हैं सबही की बुनियाद सचाई पर है।

हज़रत बहाई अल्ला ने हमको बताया है कि अगर तुम कहीं देखो कि कोई जाति (मिल्लत) किसी पुस्तक को लेकर अपनी धर्म पुस्तक मानती है और उसमें ही जो बातें लिखी हैं उनसे वह

अपने चाल चलन सुधारते हैं और संसार की सेवा में लगे हुए हैं और वह अद्‌ना धर्म पुस्तकों की जिनमें चाल चलन और स्वभाव के क़ानून हैं किसी महात्मा या औतार को बताते हैं तो तुम जानलो कि वह खुदा की तरफ़ से औतार था क्योंकि परमेश्वर (ख़ुदा) कभी किसी ऐसी पुस्तक को दुनियां में कोई जाति में नहीं बनाने देता है जो उसकी तरफ़ से न हो। इस लिए हम दुनियां की तमाम धर्म पुस्तकों को ख़ुदा की किताब मानते और उनके लिखने या लिखाने वालों को महाऋषि और औतार मानते हैं। इसी तरह हम वेदों को भी ख़ुदा की किताब मानते हैं और वैदिक औतारों और महाऋषियों को अपना बुज़ुर्ग मानते हैं और उनकी इज़्ज़त करना ज़रूरी समझते हैं। ऐसे ही महात्मा बुद्ध को औतार मानते हैं। अब रहा ये कि कोई २ बात इनकी आपके लिए ठीक नहीं रही है तो यह कोई नई बात नहीं। हज़रत मूसा की पुस्तक की बहुत सी बातें ईसाइयों की पुस्तकों में बदल दी गई हैं। ईसाइयों और यहूदियों की बातें क़ुरान शरीफ़ में बदल गईं। जब इसकी वजह से हम हज़रत मूसा और हज़रत ईसा को भूठा नहीं बताते तो हम इसी इख़्तलाफ़ की वजह से वेदों को कैसे भूंठा कह सकते हैं। यह ख़ाली पक्षपात है। वेदों के लिखे जाने वाले ज़माने में दुनियां को ऐसी ही बातों की ज़रूरत थी। आज वह ज़रूरत नहीं रही इसमें वेदों की क्या खोट है। लड़ाई के ज़माने में मुल्क में और क़ानून की ज़रूरत है शांति और अमन के ज़माने में और बातों की। कोई किताब थोडाही कहती है कि ज़रूर लड़ो। वह तो यह बताती है कि जब लडाई हो तब ऐसा करो। अगर लडाई होरही हो और फिर भी उस्ताद लडाई का क़ायदा न बताये तो उसका खोट है। इसलिए हम सब धर्म पुस्तकों को ख़ुदा की किताब और पवित्र शास्त्र मानते हैं और इसी लिए हमने कोई शुद्धि या बपतस्मा या ख़वानी का तरीक़ा नहीं रक्खा। बल्कि हमें इसमें भी कोई इन्कार नहीं कि लोग हमें हिन्दू या आर्य या मुसलमान या ईसाई समझें क्यों? जब हम सबको सच्चा मानते हैं तो हैं ही सब कुछ।

चूंकि यह एक बिल्कुल नई बात है कि हम सिर्फ़ अपने को सच्चा और दूसरे धर्मों को झूंठा नहीं बताते इसलिए बाज़ लोग ख्याल करते हैं कि शायद हम यह बात बनावट से या धोखा देने के लिए कह रहे हैं और यह नहीं समझते कि वह ख़ुद भूल में पड़े हैं। जब सब धर्म एकही बात थोड़े से फ़र्क़ से बताते हैं तो हम कैसे किसीको भूंठा धरम कह सकते हैं। या तो सब धरम सच्चे हैं या सब भूठे हैं--और जब हम देखते हैं कि सब में सचाई है सब ख़ुदा की तरफ़ से हैं तो जो चीज़ ख़ुदा की तरफ़ से है हम उसको भूठा कैसे बता सकते हैं और अगर हम बतायें भी तो कौन हमारी बात मानेगा। यह सब तास्सुब्बात पक्षपात हैं जिनसे हज़रत बहाईअल्ला ने हमको बिल्कुल आज़ाद कर दिया जैसे कि आप आगे चलकर सुनेंगे। अभी हाल में देहली में हमारे ख़िलाफ़ एक इश्तिहार छपा है जिसमें लिखा है कि हम मुसलमानों में मुसलमान, आर्यों में आर्य, हिंदुओं में हिंदू और ईसाइयों में ईसाई बन जाते हैं और अपनी असली तालीम नहीं बताते। यह कोरा बैर और दुशमनी है। भूंठ कभी नहीं चल सकता और इसका भांडा जल्द फूट जाता है। हम चूंकि अलग २ धर्मों के अर्थों को मिला के इनका एका दिखा देते हैं और किसी को बुरा नहीं कहते, फूट नहीं फैलाना चाहते और उनकी पक्षपाती चलने के ख़िलाफ़ हैं इसलिए वो लोग हमारे ख़िलाफ़ लोगों को ऐसी बातें कहकर उभारना चाहते हैं, मगर जब ईरान में बीस हज़ार आदमी औरत बच्चों को बड़ी२ सख्तीसे क़तल करने से और हजारों लोगों को मुसीबत में डालने से इसकी रौ न मर गई तो ऐसे इश्तिहारोंसे क्या होगा। बहर हाल हमारा अक़ीदा यह है।

खुदा व ईश्वर सब चीजें इसी से निकली हैं और सब इसी में जा मिलेंगी। सब चीजें .खुदा में ही हैं मगर .खुदा .खुद किसी चीज़ में नहीं है। सब इसमें से इसी तरह निकले हैं जैसे काम करने वाले में से काम, या बोलने वाले में से बात, या सोचने वाले में से .ख्याल निकलता है, जो इन्हीं लोगों की जान है मगर फिर भी जान इन सब से ऊंची है। एक मानी में चीजें .खुद वही हैं लेकिन तो भी दूसरे मानी में वह और ही कुछ हैं।

सनातन नित्य दायमी .खुदा के सिफ़ात गुन भी ऐसे हो दायमी हैं जैसे वह .खुद है यानी उसके गुन भी ऐसे ही सनातनी और नित्य हैं—वह हमेशा से इसमें थे और हमेशा रहेंगे। हादिस नहीं हैं बल्कि अनादि हैं।

रूप-आत्मा .खुदा में से निकली है जैसे हुकुम हाकिम में से निकलता है और ऐसी ही अनादि [अज़ली व अब्दी] है जैसे .खुदा। फिर भी .खुदा के बराबर नहीं कही जा सकती अगर्चे .खुदा के बाद और सब चीज़ों से इतनी ही ऊँची है जितना .खुदा रूह से ऊँचा है। रूह का न कोई शुरू है न अख़ीर है तो भी .खुदा में इसका शुरू है।

संसार आलम ख़लक़त ख़लक़त आलम मौजूदात सृष्टिरचना। सृष्टिभी अनादि है न इसका कोई शुरू है न अखीर है क्योंकि जब .खुदा सनातनी है तो सृष्टि के बग़ैर वह कैसे कहा जा सकता था। बस सँसार भी सनातनी है मगर .खुदा के सामने माया और मादूम है।

इल्म विद्या जब .खुदा की सिफ्तों [गुनों] में से एक सिफ़त आलिम [ज्ञानी] हैं और दूसरी हमदान है तो विद्या भी सनातनी है अगरचे मशहूर यह है कि सब से पहिले यह तब शुरू हुआ है जब .खुदाने अपने दिल में सृष्टि के निमित्त प्रेम पाया। जैसे कि उसने कहा है कि मैं एक छिपा हुआ ख़ज़ाना था मुझे मालूम था कि मेरी मुहब्बत तुझ में है इसलिये मैंने तुझे पैदा किया। तेरे ऊपर अपना साया डाला और तुझे अपना सरूप दिखाया [कुलमात मकनूना अरबी]

निजात मोक्ष मुक्ति कई प्रकार होती है एक तो शरीर की, एक बुद्धिकी, एक चित की, एकस्वभाव इख़लाक़ की, एक धार्मिक, एक कुटुम्बी, एक क़ौमी और एक सारे जगत की और एक आर्थिकी, और हरदर्जे की मुक्ति पाने के तरीके बहुत से हैं लेकिन इन सब मुक्तियों में एक मुक्ति सब से ऊँची बताई गई है। दर हक़ीक़त .खुदा का सबसे पहिला हुकम जो उसने बन्दों के लिए लिखा है वह यह है कि लोग इसके वही के अफ़क़यानी औतार को पहचानें जो उसके हुकम को दुनियां में पहुंचाते हैं। और आलम .खलक़त जिनके ज़रिये से .खुदा सृष्टि को रचता और अपने हुकम दुनियां में पहुंचाता है और अमर सृष्टि रचना और हुकम देने में इसके क़ायम मुक़ाम और औतार हैं। जो कोई उनको पा लेवे उसने सब कुछ पा लिया। और जिसने उनको न पाया वह अन्धेरे में है चाहे वह दुनियां भर के सब काम कर डाले। लेकिन जब तुम इस ऊँचे दर्जे पर पहुंच जाओ तो तुम को चाहिए कि ज़रूर इन बातोंपर चलो जो उस प्यारेकी तरफ़से तुम को कही जायं। क्योंकि इसको मानना और उसके हुकम पर चलना यह दोनों ज़रूरी हैं। किसी एक के बग़ैर दूसरा क़बूल नहीं किया जायगा यह हुकम तुम को इलहाम के मुत्तल्अ परमेश्वर की तरफ़ से दिया जाता है। जो हदें .खुदा ने तुम्हारे लिए बनाई हैं उसमें बुद्धिमान दुनियांके सुधार और लोगों के बचाव का पूरा इंतज़ाम पाते हैं।

दुःख सुख के असबाब वजह दुःख सुख की सब से बड़ी नादानी और कमइल्मी है, दूसरी वजह यह है कि सारी दुनियां ऐसी गुथी हुई कि एक आदमी के अच्छे बुरे काम का असर सारी दुनियां पर पड़ता है। इसमें से कुछ काम तो ऐसे होते हैं कि उनका असर कोशिश करनेसे मिट जाता है और कुछ ऐसे

होते हैं कि आदमी को .खुद अपना रुख बदल कर और .खुशी के साथ उस हालत पर सबर करना पड़ा है।

हज़रत बहाई अल्ला की एक बुनियादी तालीम चूंकि यह है कि सचाई की तलाश करनी चाहिये इसलिये यह पूरा बयान अधूरा रह जायगा अगर यह न बतलाया जाय कि इन में से किसी बात को उस वक्त तक मानना ज़रूरी नहीं जब तक कि आदमी .खुद समझ कर यह न देख ले कि ये बातें क्यों की गयी हैं। इसके अलावा ये है कि हज़रत बहाइ अल्ला की तालीमात में लिखा है कि दीन धर्म ज़िन्दा चीज़ है और वह तरक्क़ी करता है तो फिर तमाम इस क़िस्म की तालीम फ़क़त हमें रास्ता दिखाती है, कोई तयशुदा आख़िरी नतीजा और फैसला हमको नहीं सुनाती है। यह बात तमाम दुनियाँ के धर्म और मज़ाहिब से इतनी अलग है कि अगर मैं आप को यह मसला अच्छी तरह खोल कर न बताऊँ तो बड़ी भारी ग़लत-फ़हमी .फैलने का डर है। इसलिये अब्दुल बहाई का एक छोटा लैकचर इस मतलब पर आपको सुनाता हूँ।

हरकत का नाम है। .खुद हरकत ही जान है। वजूद जो चीज़ चलती फिरती हो वही जानदार कहलाती है और जो न हिले न चले तो गोया वह बेजान है जितनी जानदार चीज़ें हैं वह अपनी २ जगह अपनी जान और ताक़त भर तरक्क़ी करती हैं। सर्व शक्ति और .कुव्वत मुहीत .खुद तरक्क़ी करने वाली चीज़ है, .ख्वाह जिसमानी चीज़ों को लो, .ख्वाह ख़यालीया रूहानी चीज़ों को, कोई भी एक जगह बन्द होकर नहीं रहती। धर्म (दीन) .खुदा के वजूद का ऊपरी लक्षण है इसलिये उसे ज़िन्दा जानदार हरकत और तरक्क़ी करने वाला होना चाहिये। अगर दीन में हरकत न हो और वह तरक्क़ी न करे तो वह मुर्दा और बेजान है। .खुदा की तमाम सिफ्तें हर वक्त ज़ाहिर होती रहती हैं और इनका ज़हूर तरक्क़ी करता रहता है। इसलिये जो चीज़ इनका ज़हूर हो उसको भी मुतहरिक और तरक्क़ी करने वाला होना चाहिये। हर चीज़ की सूरत बदलती रहती है और यह सदा नई जान और नई सूरत का ज़माना है। साइन्स और आर्ट, कला इन्डस्ट्री और ईजादात सबमें इसलाह और दुरुस्ती हो रही है। क़ानून और इख़लाक़ नये सिरे से तरतीब दिये जा रहे हैं। सोचने के तरीक़ों में नई जान डाली जा रही है। पुराने ज़मानों की साइन्स और फ़िलास्फ़ी आज काम नहीं देते। बल्कि मौजूदा गुत्थियों को सुलझाने के लिये नये तरीक़ों की ज़रूरत है। तमाम दुनियाँ की उलझनें जितनी और जैसी आज हैं, ऐसी कभी नहीं थीं। पुराने ख़याल और तरीक़े बड़ी फ़ुर्ती के साथ छूटते चले जा रहे हैं। पुराने क़ायदे और पुरानी रस्में आज की ज़रूरतों को पूरा नहीं कर सकते क्योंकि यह सदी नई ज़िन्दगी का ज़माना है।

हक़ीक़त के ज़हूर का ज़माना है, इसलिये सतजुग तमाम सदियों से भारी ज़माना है। सोचो तो सही कि पिछले पचास साल की साइन्स की तरक्क़ी से गुज़िश्ता तमाम ज़माने की मालूमात को कब घुन लग गया है। क्या पिछले ज़माने के जोतिषियों की जोतिष हमारे ज़माने की जोतिष की उलझनों को सुलझा सकती है और बहुतसे निज़ाम शमशी और कई सैयारोंके मिलापको समझा सकती है। क्या उस अन्धेरे परदे में जो कुछ साल पहिले तक दुनियां पर पड़ा था, ये तेज़ नज़र और रोशनी मिल सकती थी जो आज दुनियां को चुंधिया रही है। क्या पुरानी बादशाहतों की सख़्तियां और बन्धन आजकल की आज़ादी की मांग को जो इस रोशनी के ज़माने में लोगों के दिलों से निकल रही है, पूरा कर सकती हैं। यह बिलकुल खुली हुई बात है कि पुरानी रस्में, पुराने क़ायदे, पुराने तरीक़े आज कोई बड़ा नतीजा नहीं पैदा कर सकते। जब हालत यह है तो क्या बाप दादा की लकीर पीटना (धार्मिक अर्थ) दीनी तफ़सीर पर उनके क़दम पर क़दम रखना आज दुनियां के दीनदार

बनने, धर्म की सेवा करने, रूहानियत हासिल करने, आत्मबल पाने में काम दे सकता है क्या आदमी जिसको ख़ुदा ने अक़ल और समझ दी है इसको यही चाहिये कि बग़ैर सोचे समझे कहावतों, रस्मों और परखों की ऐसी लकीरों का फ़क़ीर बना रहे, जो एक पल भर भी इस उजाले के ज़माने की जांच में पूरी न उतर सके। यह बातें आजकल के विद्वान् और साइन्स वाले कभी नहीं मानेंगे, क्योंकि जब कभी वह देखते हैं कि मुक़द्दमा या नतीजा ग़लत है तो वह ग़लती को निकाले बग़ैर कभी आगे नहीं बढ़ते और उसे फ़ौरन निकाल देते हैं। ख़ुदा के पैग़म्बरों और औतारों ने धर्म की बुनियाद डाली है। उन्होंने कुछ क़ायदे और तरीक़े लोगों की आसानी के लिये बना दिये हैं। उन्होंने ख़ुदा का होना और उसकी पहचान बताई है। अच्छे इख़लाक़ (स्वभाव) के क़ानून मुक़र्रिर किये हैं और लोगों के लिये ऊँचे से ऊंचे चाल चलन का प्रचार किया है। होते होते यह ऊँची तालीम जो सचाई की बुनियाद थी नक़ली और अटकली अर्थों (तफ़सीरों) से ढक गई और बेसमझे बूझे पीछे लगने वालों ने असलियत को बिलकुल ही छिपा दिया। जिन बुनियादी सचाइयों के लिये पैग़म्बरों और औतारों ने मुसीबतें उठाईं तकलीफें झेलीं और हर तरह से सताये गये मगर लोगों के दिलों में बिठाकर छोड़ा वही बातें आज मिटने के लगभग हो गई हैं। इन औतारों में से बाज़ को क़त्ल किया गया और बाज़ को क़ैद किया गया, मगर सबसे नफ़रत की गई और उनसे पीठ फेरी गई। लेकिन वह हमेशा ख़ुदा की सचाई का ही प्रचार करते रहे। उनके चोला छोड़ने और अन्तकाल करने के बहुत थोड़े दिन बाद से ही उन की तालीम (विद्या) की असली सूरत मिटने लगी और नक़ली अर्थ फैलने लगे।

चूंकि लोगों के अर्थ एक दूसरे से बहुत अलग २ होते हैं, इसलिये धार्मिकों में फूट और झगड़े फैल गये हैं। धर्म की असली रोशनी गुल हो गई है और दुनियां का एका (इत्तफ़ाक़) टूट गया है। ख़ुदा के औतारों ने लोगों को एके और मिलाप की तरफ़ बुलाया था। उन्होंने ख़ुदा की सचाई को दुनियां में फैलाया था। इसलिए अगर दुनियां की क़ौमें नक़ली अर्थों (तक़लीदी तफ़सीरों) को छोड़ दें और असलियत की तलाश करें जो हर धरम में मौजूद है तो सब मिल जायंगे और एक दूसरे के गले लग जायंगे। क्योंकि सब तो एक ही है और टुकड़े २ नहीं हो सकता।

क़ौमें और दुनियां के तमाम दीन, आंखों पर तास्सुब (पक्षपात) की पट्टियां बांधे हुए हैं। यहूदी इस लिए यहूदी है कि उसका बाप यहूदी था। मुसलमान अपने बाप दादा की लकीर पर चल रहा है। बौद्ध लोग अपने पुरखों के ईमान पर क़ायम हैं और हिंदू अपने कुनबे का साथ दे रहे हैं। इसके यह मानी हैं कि सब के सब अपनी आंखें बन्द करके दूसरों के धरम (दीन) पर ईमान लाये हुए हैं और उन्होंने कभी इन बातों के समझने की कोशिश नहीं की। ऐसी हालतमें मिलाप हो तो कैसे हो और यह भी साफ़ है कि यह हालत तब तक नहीं सुधर सक्ती जब तक धरम को नई सूरत में पेश न किया जाय। यानी वही असली बुनियादी दीन-क़दीम (सनातन धर्म) दूसरी सूरत में दूसरे तरीक़े से दुनियां को बताने की ज़रूरत है।

सचाई पहिले एक बीजकी तरह थी। इसके बाद धरम की हालत एक ऐसे दरख़्त की सी होगई जिस में पत्ते भी लगे और शाख़ें भी फूटीं। फूल भी निकले और फल भी आये। कुछ दिन बाद पत्ते और फूल मुरझा कर गिर पड़े और दरख़्त भी बुड्ढा होकर बे फल होगया। अब यह कौनसी समझ की बात होगी अगर लोग इस बुड्ढे दरख़्त को पकड़े बैठे रहें और कहे जायं कि अभी तो इसमें जान है यह फल देगा और यह कभी नहीं सूख सक्ता। नहीं, अब फिर से लोगों के दिलों में सचाई का बीज बोने

की ज़रूरत है। ताकि नया दरख़ पैदा हो और ताज़ा धार्मिक फल खाकर दुनियां .खुश हो। इस तरह से वह सब क़ौमें और मतें (मिल्लतें) मिलकर एक हो जायंगी जो आज जुदा २ दीन रखती हैं। नक़लें छूट जायंगी और सच का बोल बाला होगा। झगड़े और लड़ाइयां बन्द हो जायगी और सब एक दूसरे को .खुदा का बन्दा समझकर मिलाप कर लेंगे। क्योंकि सब .खुदा की रहमत (उदारता) के दरख़ के साये में बैठे हैं। .खुदा सब पर महरबान है वह सब पर कृपा करता है जैसे कि हज़रत ईसा ने कहा था कि मेंह तो सब पर ही बरसता है। यानी .खुदा की नियामतें [दया] सबके लिये हैं। सारी दुनियां उसकी मौहब्बत और रहम के साये में है और उसने हर एक के लिए तरक्क़ी करने और सीधे रास्ते पर चलने का इन्तज़ाम कर रक्खा है।

तरक्क़ी भी दो क़िस्म की है, एक जिस्मानी [शारीरिक] और एक रूहानी [आत्मिक]। जिस्मानी तरक्क़ी आस पास की बातों का .ख्याल रखने से होती है और जिस्मानी तमद्दुन (शरीर का सुधार) इसी पर बनी है। रूहानी तरक्क़ी [आत्मिक सुधार] रूहउलक़ुदस के दम का नतीजा है। पवित्र आत्मा के ज़ोर से फैलता है और यह तब मिलता है जब आदमी की रूह(आत्मा) जागकर .खुदा की असलियत को जान लेती है। जिस्मानी तरक्क़ी से दुनियां की .खुशी पूरी होती है। रूहानी तरक्क़ी से आत्मा को शांति, रूह को सरूर और जावदानी (मोक्ष) हासिल होती है। .खुदा के औतारों ने रूहानी तमद्दुन (आत्मिक सुधार) की बुनियाद डाली और सब ज्ञान और इल्म की जड़ और उसका सोत वही थे। उन्होंने ही लोगों का एका जोड़ा है और एका भी कई तरह का होता है। जैसा कुनबे का एका, जिन्स पेशा का एका या कुल क़ौमों का एका। ये सब बिरादरियां और एके थोड़ी देर चलने वाले और जल्दी मिट जाने वाले हैं। इन सबसे कोई बड़ा एका नहीं निकलता। बल्कि अक्सर तो लड़ाई झगड़े के सबब तो यही होते हैं। फूट इनसे नहीं मिटती। बल्कि इनसे .खुदग़र्ज़ी, तङ्ग .ख्याली, वैर और नफ़रत फैल जाती है। लेकिन जिस बिरादरी को धरम फैलाता है उस से जुदा २ क़ौमें मिलकर एक हो जाती हैं और लड़ाई झगड़े मिट जाते हैं। इससे दुनियां एक बड़ा क़बीला [कुटुम्ब] बन जाता है और जगत एक हो जाता है। इसी से क़ौमों में मिलाप छा जाता है और सर्व शांति (सुलह अकबर) छा जाती है। इस लिये हमें चाहिए कि इस बड़े मिलाप का सोत ढूंढें। सब नक़ली अर्थों को छोड़दें और परमात्मा के असल दीन सत धरम को फैलावें। अगर हमने ऐसा किया तो .खुदा भी हमारी मदद करेगा और जिस्मानी और रूहानी .खुशी हमें मिल जायगी। जब तक सब क़ौमें और सब आदमी इस सच्ची बिरादरी में .खुदा से मिलकर एक न हो लेंगे, जब तक क़ौमी और मुल्की तास्सुब (पक्षपात) छोड़कर लोग इस रूहानी बिरादरी में दाख़िल न हो जायंगे तब तक सच्ची तरक्क़ी .खुशहाली और दायमी .खुशी (सनातन शान्त) लोगों को नसीब न हो सकेगी। यह ज़माना नया और जगत बिरादरी का है। साइन्स बढ़ रही है, तिजारतें उभर रही हैं, पोलिटिकल [सियासत] बदली जा रही है, आज़ादी का बोल बाला है। इन्साफ़ नींद से जाग रहा है। यह युग हरकत करने और जाग उठने और कुछ करने धरने का है। यह युग जगत के एके और सेवा [ख़िदमत] का है। यह युग जगत शान्ति का है। यह सचाई का ज़माना है।

[अब्दुल बहा २४ मई सन् १९१२ ई०]

ईसाई धर्म

ईसा मसीह ईसाई मत का आधार है। ईश्वर-दूतों के धर्म-सन्देश में ईसाई मत को इस प्रकार समझाया गया है:--

"मैं आकाश एवं मृत्यु लोक के निर्माता सर्व शक्तिमान् परमात्मा और उसके इकलौते बेटे तथा हमारे स्वामी ईसा मसीह में विश्वास रखता हूं। ईसा मसीह का विचार पवित्र प्रेत (Ghost) द्वारा हुआ था। उसका जन्म कुमारी मेरी (Mary) से हुआ था। उसने पौंटियस पाइलेट (Pontius Pilate) के नीचे तीव्र वेदना सहन की थी तथा सूली पर चढ़ाये जानेके पश्चात् मरने पर उसे ज़मीनके भीतर गाड दिया गया था। तीसरे दिन वह मृत्युलोक से उठकर आकाश में (Heaven) में चढ़ा और इस समय सर्व शक्तिमान् परमात्मा के दाहिनी ओर विराजमान है। उसी स्थान से चलकर वह सजीव तथा निर्जीव प्राणियों का निर्णय करने के लिये हम तक आयेगा। पवित्र प्रेत में, पवित्र कैथोलिक चर्च में, महात्माओं के सत्संग में, पापों की क्षमा में, शरीर के पुनर्जीवन में, और सर्वदा रहने वाले जीवन में मेरा अटल विश्वास है। एवमस्तु।"

१६२५ वर्ष व्यतीत हुए, पैलेसटाइन के नगर बेथेलहम (Bethlehem) में कुमारी मैरी से ईसा का जन्म हुआ था। बाइबिल के पुराने टेस्टामेण्ट (Testament) में उसके जन्म से कई शताब्दियां पूर्व पैग़म्बरों ने जेसस क्राइस्ट वा ईसा के अवतार की घोषणा की थी। ईसा के अवतार से ७०० से अधिक वर्ष पहिले धर्मोपदेष्टा इसाइहा (Isaiah) ने घोषणा की, "हमारे मध्य एक बालक का जन्म हुआ है, हमें एक पुत्र प्रदान किया गया है। गवर्नमेंट उसके कन्धे पर होगी, वह आश्चर्य जनक, परामर्शदाता, शक्तिमान् परमात्मा शाश्वत पिता, और शांति के राजकुमारके नामसे पुकारा जायगा। उसके शासन और शांति की उत्तरोत्तर वृद्धि का अन्त नहीं होगा।"

ईसा की माता का, कुमारी मैरी का, यहूदी राजाओं के वंश में जन्म हुआ था, परन्तु पैलेस्टाइन (Palestine) चिरकाल तक रोम राज्याधीन रह चुका था, एवं राजवंश शक्तिहीन होकर बहुत निर्धन हो गया था।

ईसा का जन्म एक बड़े निर्धन परिवार में हुआ था। वह तीस वर्ष पर्य्यन्त नॅज़रेथ के नगर में रहा था और वहां बढ़ई का काम करके अपनी जीविका चलाता था।

तीस वर्ष की अवस्था में उसने सार्वजनिक सेवाएँ आरम्भ कीं। बाइबिल के नवीन टैस्टामेंट की चार इञ्जीलों अर्थात् मैथ्यू, मार्क, ल्यूक और जॉन (Mathew, Mark, Luke & John) में ईसा के उपदेशों, जीवन एवं कार्य का, जो उसने सार्व जनिक सेवा के तीन वर्षों में सम्पादन किया था, संक्षिप्त विवरण विद्यमान है। उसने १२ निर्धन पुरुषों को अपने शिष्य बनाने के लिए चुना। उसने उनको अपने सिद्धांतों की शिक्षा दे आदेश किया कि वे समस्त संसार में जायें और समस्त जातियों को अपना शिष्य बनायें। उनमेंसे एक शिष्य जूडास इस्कारियट (Judas Iscariot) ने उसको उसके (ईसाके) शत्रु यहूदियों के पुरोहितों के हवाले कर दिया। ये लोग ईसाको पौंटियस पाइलेट (Pontius Pilate) नाम के रोम के शासक के समक्ष ले गये और उसने उसे (ईसाको) सूली द्वारा मृत्यु दण्ड की आज्ञा प्रदान की। ईसा मसीहका सूली पर प्राणान्त हुआ, तदनन्तर वह पृथ्वी के भीतर गाड दिया गया। तीसरे दिन वह मृत्यु स्थान से उठा तथा ४० दिवस तक समय २ पर अपने शिष्यों को दिखलाई पड़ा। इसके पश्चात् ५०० साक्षियों की उपस्थिति में वह आकाश में चढ़ा। उसने फिर आने को

वचन दिया है। आज समस्त देशों में उसके शिष्यों की संख्या लगभग ५० करोड है, जिनमें से लगभग ५० लाख भारतवर्ष में हैं।

ईसा के उपदेश

उस धर्मोपदेश (Sermon) में, जिसका मैथ्यू (Mathew) के पांचवें, छठे और सातवें अध्याय में उल्लेख किया गया है, ईसा के अपने शिष्यों के प्रति उपदेशों का संक्षिप्त विवरण भी मौजूद है। यहां पर उसके कतिपय उपदेश दिये जाते हैं:--

"वे धन्य हैं जो अंतरात्मा में अपने आप को निर्धन मानते हैं!

"स्वर्ग के साम्राज्य के वे हो अधिपति हैं।

"किसी की मृत्यु पर शोक प्रगट करने वाले धन्य हैं। उनको शांति प्राप्त होगी।

"नम्र व्यक्ति धन्य हैं।

पृथ्वी के स्वामी वही बनेंगे।

"वे धन्य हैं जिन्हें भलाई की भूख और प्यास लगती है।

वे सन्तुष्ट किये जायेंगे।

"वे धन्य हैं जो दयालु हैं।

उनको दया प्राप्त होगी।

"वे धन्य हैं जिनका हृदय पवित्र है।

उन्हें परमात्मा के साक्षात् दर्शन होंगे।

"वे धन्य हैं जो शान्ति प्रिय हैं।

"उन्हें ईश्वर के पुत्रों का पद प्रदान होगा।

"वे धन्य हैं जिन्हें भलाई के कारण तीव्र वेदना पहुंचाई जा चुकी है।

स्वर्ग का साम्राज्य उन्हीं का है।

"तुम उस समय धन्य हो जिस समय मनुष्य तुम्हारा तिरस्कार करें, तुम्हें कष्ट दें, और मेरे कारण तुम्हारे विरुद्ध सब प्रकार की बुरी बातें बकें।

इस पर हर्ष प्रगट करो क्योंकि स्वर्गमें तुम्हारा पारितोषिक बहुमूल्य होगा। इसी कारण, तुम्हारे समक्ष उन्होंने धर्मोपदेशकों को तीव्र वेदना पहुंचाई है।

"तुम पृथ्वी के लिए लवण रूप हो। यदि लवण फीका होजाय तो फिर उस दशा में कौन वस्तु उसे नमकीन बनाने में समर्थ हो सकती है? उसके बाद वह किसी काम के योग्य न होगी, केवल इसी योग्य होगी कि बाहर फेंकदी जावे और मनुष्यों के पैरों के नीचे कुचली जावे।

"तुम संसार की ज्योति हो। पर्वत शिखर स्थित नगर नहीं छिपाया जा सकता है और न मनुष्य एक प्याले के नीचे रखने के अभिप्राय से लैम्प जलाते हैं। वे उसको एक ऊंचे स्थान पर रखते हैं और वह सम्पूर्ण गृह को उजला बना देता है। इसी प्रकार तुम्हारी ज्योति जनताके समक्ष प्रकाशमान होने लिए है जिससे कि वह तुम्हें परोपकार वा भलाइ करता हुआ देख सके और स्वर्ग में तुम्हारे पिता का गुणानुवाद कर सके।

"तुम लोगों ने इस बात को सुन लिया है कि किस प्रकार प्राचीन काल के पुरुषों को चितावनी दी जाया करती थी? 'बध मत करो'।

जो कोई बध करेगा वह निश्चय रूपेण मृत्यु दण्ड भागी होगा।

"जो कोई अपने सहोदर से ईर्ष्या करेगा, वह अवश्य ही सैनहेड्रिन के सम्मुख आयेगा।

जो कोई अपने भाई को शाप देगा वह निश्चय रूप से जैहैना (Gehenna) की अग्नि में प्रवेश करेगा।

"परन्तु मैं तुमको बतलाता हूं कि जो कोई बिना किसी कारण के अपने भाई से रुष्ट होगा वह परमात्मा के द्वारा दण्ड भागी होगा।

"अतः यदि तुमको वेदी पर भेंट चढ़ाते समय इस बात का ध्यान भी आजाय कि तुम्हारे सहोदर ने तुम्हारे विरुद्ध अपराध किया है, अपनी भेंट को वेदी पर छोड कर चलते बनो, पहिले सहोदर से मेल करो तब वापिस आकर अपनी भेंट चढाओ।

'तुम लोग सुन चुके हो कि किस प्रकार से कहा जाया करता था 'व्यभिचार मत करो'।

परन्तु मैं तुमको बतलाता हूं कि जो कोई किसी स्त्री की ओर बुरी दृष्टि से देखता भी है वह पहिले ही अपने हृदय में व्यभिचार कर चुका है।

"यदि तुम्हारी दाहिनी आंख तुम्हें रुकावट जान पड़े, इसको निकाल बाहर फेंक दो। अच्छा यही है कि सम्पूर्ण देह को नरक में डालने की अपेक्षा शरीर के किसी एक अङ्ग से वञ्चित हो जाओ।

"और यदि तुम्हारा दाहिना हाथ तुम्हें रुकावट जान पड़े, इसको काट कर फेंक दो। अच्छा यही है कि सम्पूर्ण शरीर को नरक में डालने की अपेक्षा शरीर के किसी एक अङ्ग से वञ्चित हो जाओ।

'यह भी कहा जाया करता था, 'जो कोई अपनी स्त्री को तलाक़ देता है उसको चाहिए कि उस (सहधर्मिणी) को तलाक़ का प्रमाण पत्र प्रदान करे'।

परंतु मैं तुमको बतलाता हूं कि जो कोई सतीत्व धर्म के सिवाय अन्य किसी कारण वश अपनी स्त्री को तलाक़ देता है, वह उसको व्यभिचारिणी बनाता है और जो तलाक़-शुदा स्त्री के साथ विवाह करता है वह भी व्यभिचार करता है।

"तुमने सुना है कि प्राचीन काल के मनुष्यों को किस प्रकार आदेश दिया जाया करता था, 'तुम झूठी कसम मत खाओ, परंतु अपने प्रणों को स्वामी के समक्ष पूरा करो।' परंतु मैं तुम को बतलाता हूं कि तुम कोई सौगन्द मत खाओ, स्वर्ग की भी नहीं क्योंकि वह परमात्मा का सिंहासन है, और पृथ्वी की भी नहीं, क्योंकि वह भी उसके चरणों के टेकने का स्थान है, तुम अपने सिर की भी कसम मत खाओ, क्योंकि तुम एक बाल को भी सुफेद और काला नहीं कर सकते हो।

जो कुछ तुम कहो वह साधारण रूप से 'हां वा नहीं' होना चाहिए। जो कुछ इस उत्तर से बढ़ जाता है उसका फल बुराई है।

"तुम ने कहावत सुनी है 'आंख के बदले आंख और दांत के बदले दांत।'

परंतु मैं तुमसे कहता हूं कि तुम किसी हानि का प्रतिकार करनेके लिए नहीं हो, जो कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर चोट करे, तो दूसरा भी उसकी ओर झुका दो, यदि तुम से कोई कमीज की याचना करे तो तुमउसे अपना कोट भी देदो यदि कोईएक मील जानेके लिए तुम से अनुरोधकरे तो तुम उसके साथ दो मील जाओ। जो तुमसे याचनाकरे उसको दो और जो तुम से उधार लेना चाहे उसकी तरफ़ से भी मुँह न मोड़ो।

"तुमने 'तुमको अवश्य ही अपने पड़ोसी के साथ प्रेम तथा शत्रु के साथ घृणा करनी चाहिए' इस कहावत को सुना है।

परंतु मैं तुम को बतलाता हूं कि अपने शत्रु के साथ प्रेम करो और जो तुम्हें कष्ट दें उनकी बहबूदी के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो जिससे कि तुम परमात्मा के पुत्र बन सको। वह बुराई भलाई दोनों के ऊपर उदय होने के लिए अपने सूर्य्य को भेजता है और न्याय और अन्याय दोनों पर वर्षा करता है।

क्योंकि यदि तुम केवल अपने प्रेमियों से ही प्रेम करो तो उस प्रेम के लिए तुम को क्या पारितोषिक प्राप्त हो सकता है?

"तुम को ठीक उसी प्रकार पर पूर्ण होना चाहिए जिस प्रकार कि तुम्हारा परम पिता परिपूर्ण है।

"ध्यान रखो कि उन लोगों के सामने जो तुम्हें देखते हों, दान मत करो।
अन्यथा ईश्वर से पारितोषिक प्राप्त न होगा।

"जब तुम भिक्षा दो, तब अपने बायें हाथ को इस बात का परिज्ञान न होने दोने दो कि दहिना हाथ क्या कर रहा है-जिससे कि तुम अपनी मनोभिलाषाओं को गुप्त रख सको, तब तुम्हारा पिता जिसको तुम्हारे गुप्त भेद का पता है, प्रत्यक्ष रूप में तुमको पारितोषिक प्रदान करेगा।

'जिस समय तुम परमात्मा से प्रार्थना करो उस समय तुम पाखंडियों की नाईं मत बनो क्योंकि वे यहूदियों के मन्दिरों और सड़कों के कोनों में खड़े होकर प्रार्थना करना पसन्द करते हैं जिससे कि लोग उन्हें देख सकें। मैं तुमको बतलाता हूं कि वे अपना पारितोषिक प्राप्त नहीं करते हैं।

"जब तुम प्रार्थना करो, अपने कमरे में जाओ और दर्वाजे बन्द करदो, और तब अपने गुप्त पिता से प्रार्थना करो और तुम्हारा पिता जिसको तुम्हारे गुप्त रहस्यों का पता है तुमको पारितोषिक देगा। तुम्हारे पिता को तुम्हारे अपनी आवश्यकताओंको प्रगट करने से पूर्व ही, उन सब आवश्यकताओं का ज्ञान होता है।

"निम्न प्रकार प्रार्थना करो! 'हे सर्व शक्तिमान् पिता, तेरे नाम का सर्वत्र आदर हो, तेरा राज्य प्रारम्भ हो, पृथ्वी तल पर ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार आकाश में तेरी इच्छा पूर्ण होती है, पूर्ण हो। आज हमको भोजन प्रदान कर। जिस प्रकार हमने स्वयं अपने क़र्ज़दारों को क्षमा किया है, तू भी हमारे ऋणों को क्षमा कर। तू हमको प्रलोभनों की ओर प्रेरित न कर वरन् बुराई से हमें बचा।'

"क्योंकि यदि तुम मनुष्यों की अनधिकार चेष्टाओं को क्षमा करो तो ईश्वर तुमको क्षमा करेगा। यदि तुम मनुष्यों को क्षमा नहीं करते हो तो तुम्हारा पिता भी तुम्हारी अनधिकार-चेष्टाओं को क्षमा न करेगा।

"पृथ्वी तल पर अपने लिए धन मत इकट्ठा करो, क्योंकि यहां पर दीमक तथा जंग खा जाते हैं और चोर चुरा लेते हैं।

"स्वर्ग में अपने लिए धन इकट्ठा करो जहां पर न तो दीमक और जंग खाते हैं और न चोर चुराते हैं। क्योंकि जहां तुम्हारा धन होगा वहां ही तुम्हारा मन भी होगा।

"शरीर का लैम्प आंख है अतः यदि तुम्हारी आंख उदार है तो तुम्हारा समस्त शरीर प्रकाशमान हो जायगा। यदि तुम्हारी आंख स्वार्थ-पर है तो तुम्हारा समस्त शरीर अन्धकारमय होगा। और यदि तुम्हारा प्रकाश अन्धकार में परिवर्तित हो जाय तब यह कैसी भयानक अंधियारी होगी?

"कोई व्यक्ति दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता है। या तो वह एकसे घृणा करेगा और दूसरे से प्रेम, या वह एक का सहायक होगा और दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखेगा। तुम परमात्मा और मेमन (Mammon) दोनों की सेवा नहीं कर सक्ते।

"अतः मैं तुमको बतलाता हूं कि तुम खाने, पीने और वस्त्रों के लिए परेशान मत हो निस्सन्देह भोजन की अपेक्षा जीवन का अधिक मूल्य है। वस्तुतः वस्त्रों की अपेक्षा शरीर अधिक श्रेष्ठ है। वन्य पक्षिओं की ओर निहारो। न वे बीज बोते हैं और न फ़स्ल काटते हैं। खलिहानों में भी वे कुछ नहीं जमा करते तिस पर भी परमात्मा उन्हें खाने को देता है। क्या पक्षियों की अपेक्षा तुम्हारा मूल्य अधिक नहीं है?

"वस्त्रों के लिए तुम्हें परेशान होने की क्या ज़रूरत है? खेत में कमल के फूलों का खिलना देखो। वे कातने बुनने के लिए कोई मेहनत नहीं करते, तो भी मैं तुम से कहता हूं कि सोलोमन (Soloman) वस्त्रों में सुसज्जित होने पर भी इन फूलों में से एक के समान भी शोभित नहीं हो हुआ था। हे मनुष्यो! जब वह परम पिता परमात्मा जो खेत की उस घास को जो आज खिलती है और कलको भट्टी में फेंक दी जाती है इतनी सुन्दरता से वस्त्र धारण कराता है तो क्या तुम लोगों को अधिक वस्त्र नहीं प्रदान करेगा? हन्त! तुहारा उस पर कितना थोड़ा विश्वास है! तब परेशान हो कर मत चिल्लाओ, हम क्या खायें अथवा हम क्या पियें! हम किस तरह अपना तन ढकें!

तुम्हारे परम पिता को तुम्हारी सारी आवश्यकताओं का ज्ञान है।

"ईश्वर के साम्राज्य और उसकी भलाई को ढूंढो तथा उस सर्वस्व का जिसके मालिक तुम होगे अनुसन्धान करो।

"जांच मत करो जिससे तुम्हारी जांच न हो सके, क्योंकि जैसा तुम जांचोगे उसी प्रकार तुम्हारी भी जांच होगी। और जिस मापका तुम दूसरों के लिए प्रयोग करोगे उसी माप का तुम्हारे लिए प्रयोग किया जायगा।

"तुम अपने भाई की आंख का तो तिल भी देखते हो और अपनी आंख का शहतीर तक नहीं देखते! तुम अपने भाई से किस बल पर कह सकते हो, 'भाई मैं तुम्हारी आंख से तिल निकाल दूं' जब कि तुम्हारी में शहतीर पड़ा हुआ है! अरे पाखण्डी! पहिले तुम अपनी आंख से शहतीर निकालो, तब तुम्हें मालूम होगा कि किस तरह अपने भाई की आंख से तिल निकाला जाना चाहिये।

"याचना कर, तब तुझे भेंट प्राप्त होगी, तलाश कर, तुझे मिलेगा। दर्वाज़े पर खटखटा और दर्वाजा तेरे लिये खुलेगा, क्योंकि जो कोई मांगता है उसको मिलता है। खोज करने वाले को मिलता है। द्वार पर खटखटाने वाले के लिये दर्वाज़ा खुलता है।

"तुम में से कौन अपने पुत्र द्वारा रोटी के टुकड़े की याचना होने पर, उस को पत्थर देगा? अथवा यदि वह मछली मांगे तो तुम में से कौन उसको सांप देगा? अच्छा मान लो कि तुम्हारी सब बुराइयों के होते हुए भी तुम्हें इस बात का ज्ञान है कि किस वस्तु के प्रदान करने में तुम्हारी सन्तानों का कल्याण है तो बतलाओ कि तुम्हारा परम पिता याचकों को कितनी अच्छी भेंट प्रदान करता होगा!

"पैग़म्बरों और धर्म का यही अर्थ है कि दूसरों के साथ ठीक वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम दूसरे लोगों से अपने साथ कराना चाहते हो।

"तंग दर्वाजे से प्रवेश करो क्योंकि वह दर्वाजा और मार्ग जो विनाश की ओर जाता है चौड़ा है। बहुत से उसी मार्ग से जाते हैं। परंतु जीवन की ओर जाने वाला मार्ग सकरा और तंग है। संसार में बहुत कम व्यक्ति उस मार्ग को ढूंढ पाते हैं।

"झूठे पैग़म्बरों से सावधान रहो, जो भेड़ के के वस्त्र पहने हुए तुम्हारे निकट आते हैं परंतु हृदय में वे भयानक भेड़ियों के समान हैं। उनके फल से तुम को उनका ज्ञान होगा। क्या अदागी कांटोंसे अंगूर और भटकटैओं (Thistles) से अञ्जीर पाते हैं? कदापि नहीं। प्रत्येक अच्छे वृक्ष पर अच्छा फल लगता है परंतु सड़े हुए वृक्ष पर बुरा फल लगता है। अच्छे वृक्ष पर बुरा और सड़े हुए वृक्ष पर अच्छा फल कभी नहीं लग सकता। अतएव तुम्हें भी उनके फलों से उनका ज्ञान होगा। उस वृक्ष को जिस पर अच्छा फल नहीं लगता है सब लोग काटकर आग में फेंक देंगे।

"हरेक व्यक्ति 'मुझे स्वामिन्! स्वामिन्!!' के नाम से सम्बोधन नहीं करता है। स्वर्ग के साम्राज्य में ऐसा कहने वाला व्यक्ति नहीं प्रवेश करेगा। परन्तु वहा व्यक्ति प्रवेश करेगा जो परम पिता की इच्छा पूर्ण करता है। उस दिन बहुत से मुझसे कहेंगे, 'स्वामिन्! स्वामिन्!! क्या हमने तेरे नाम के सम्बन्ध में भविष्य वाणी का उच्चारण नहीं किया था? क्या हमने तेरे नाम पर भूत प्रेतों की उपेक्षा नहीं की थी? क्या हम ने तेरे नाम पर आश्चर्य-जनक कार्य नहीं किये थे?' तब मैं उनसे कहूंगा, 'मैं तुमको नहीं जानता! हे अन्यायियो! तुम मेरे सामने से हट जाओ।'

"अब जो व्यक्ति मेरे इन शब्दों को ध्यान पूर्वक सुने और उन पर अमल करेगा, वह उस बुद्धिमान पुरुष के तुल्य हो जायगा जिसने अपना

घर चट्टान पर बनाया था। वर्षा होने लगी थी। बाढ़ आ गई थी। आंधियां चलीं और घर पर टकराईं परन्तु घर नहीं गिरा क्योंकि इसकी नींव चट्टान पर थी।

परंतु जो व्यक्ति मेरे इन शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनकर भी उनपर अमल न करेगा तो वह उस मूर्ख के तुल्य होगा जिसने बालू पर अपना घर बनाया था। वर्षा की झड़ी लगी। बाढ़ आई। आंधियां चलीं और घर पर टकराईं और कड़कड़ाहट के साथ घर गिर गया।"

जब ईसा अपने भाषणों को समाप्त कर चुका था तब उसके उपदेशों पर जनताने आश्चर्य प्रकट किया था। इसका कारण यह था कि उसने उनकी क़ातिबों की भांति नहीं, प्रत्युत एक अधिकारी की भांति शिक्षा दी थी।

जॉन (John) रचित इञ्जील के तृतीय अध्याय में ईसा उसके (ईश्वर के) साम्राज्य में प्रवेश करने की रीति का उपदेश देता है। यहूदी अधिकारियों में एक निकोडेमस Nichodemus) नाम का फेरिसी था। वह जीवन का मार्ग पूछने लिये एक रात्रि को ईसा से मिलने आया। ईसा ने उससे कहा "तुमसे मैं सच २ कहता हूं कि कोई व्यक्ति जब तक कि उसका आकाश--लोक के स्वामी परम पिता परमात्मा से जन्म न हो परमात्मा के साम्राज्य का अवलोकन नहीं कर सकता है।"

उस फेरिसी ने ईसा के आशय को न समझते हुए पुनः प्रश्न किया, कि "वृद्धावस्था में कोई व्यक्ति किस प्रकार जन्म ले सकता है?" ईसा ने उत्तर दिया, "जब तक किसी व्यक्ति का जल और आत्मा (Spirit) से जन्म न होगा, तब तक वह ईश्वर के साम्राज्य में प्रवेश करने का अधिकारी न होगा। जिसका जन्म भौतिक पदार्थ से होता है वह भौतिक पदार्थ ही रहता है, जिसका जन्म आत्मा (Spirit) से होता है वह आत्मा ही रहता है। मेरे इस कथन पर कि तुम सबका जन्म परमात्मा से होना चाहिये; तुम सब लोग आश्चर्य मत करो।

"वायु की जहां इच्छा होती है वहां चलती है। तुम इसका आवाज़ सुन सकते हो परन्तु तुम को इस बात का ज्ञान नहीं होता कि यह किधर से आती और किधर को जाती है। आत्मा (Spirit) से उत्पन्न हुए, हरेक व्यक्ति के विषय में भी यही कहा जा सकता है।" निकोडेमस ने फिर पूछा 'ये बातें कैसे हो सकती हैं?' ईसा ने उत्तर दिया, "परमात्मा संसार से इतना प्रेम करता है कि उसने इस अभिप्राय से कि उसका भक्त नाशवान् जीवन के स्थान में अमर जीवन प्राप्त कर सके, अपने इकलौते पुत्र को न्योछावर कर दिया। परमात्मा ने अपने बेटे को संसार के नाश की आज्ञा देने के लिये नहीं वरन् संसार की रक्षा करने के लिये संसार में भेजा था। जो व्यक्ति उसमें विश्वास रखता है उसको दण्ड नहीं मिलता और जो उसमें विश्वास नहीं रखेगा उसे पहिले से दंड मिल चुका है, क्योंकि उसने परमात्मा के इकलौते पुत्र पर विश्वास करने से इनकार किया।"

सेन्ट ल्यूक (Luke) रचित इञ्जील के १५ वें अध्याय में, हम पढ़ते हैं कि यहूदी धर्म के उपदेशक फैरिसियों और स्क्राइयों ने ईसा की शिकायत की कि 'वह पापियोंका स्वागत करता है तथा उनके साथ भोजन करता है।' अतएव उसने उन्हें यह दृष्टांत दिया कि 'तुम में से कौन १०० भेड़ों का ऐसा मालिक होगा जो उनमें से एक के खो जाने पर शेष ९९ को मरुभूमि में छोड़ कर उस एक के लिये जब तक कि वह मिल न जाय, दौड़ धूप न करता रहता हो? उसके मिल जाने पर वह प्रसन्नता पूर्वक उसको अपने कन्धों पर रख लेता है। घर पहुंचने पर अपने मित्रों और पड़ोसियों को इकट्ठा करके कहता है, 'तुम लोग मेरे साथ आनन्द मनाओ क्योंकि मुझे खोई हुई भेड़ मिल गई है। अतः मैं तुम को बतलाता हूं कि उस एक पापी के ऊपर,

जो उन ९९ अच्छे मनुष्यों की अपेक्षा जिन्हें पश्चात्ताप करने की आवश्यकता नहीं अधिक पश्चात्ताप करता है, स्वर्ग में आनन्द मनाया जायगा।"

ईसा ने यह भी कहा कि "एक आदमी था, जिसके दो पुत्र थे। छोटे ने अपने पिता से कहा, पिता जी! मेरे हिस्से का माल मुझे दे दो। पिता ने उनके बीच सम्पत्ति बांट दी। थोड़े दिन पश्चात छोटे बेटे ने अपने हिस्से की सब वस्तुएं बेच डालीं और दूर देशों में चला गया जहां पर उसने अपनी सम्पत्ति का अपव्यय किया। जिस समय वह अपना सब पैसा खर्च कर चुका उस समय उस देश में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा और वह तङ्गी अनुभव करने लगा। वह उस देश के एक नागरिक का मित्र हो गया। उसने उसको अपने खेतों में सूअर चराने के लिए भेज दिया। जो फली सूअर खाते, उन्हीं को वह प्रसन्नतापूर्वक खा लेता था। किसी ने उसे कुछ न दिया। जब उसको चेत हुआ तब वह सोचने लगा कि 'मेरे पिता के नौकरों के पास कितना अधिक खाने को होगा? और यहां पर मैं भूखों मर रहा हूं। मैं अपने पिता के पास क्यों न जाऊं और उससे कहूं पिता! मैंने ईश्वर और आपके साथ पाप किया है। मैं अब आपका पुत्र कहलाने योग्य नहीं रहा। मुझे अपने किसी नौकर की तरह ही आप रख लीजिये।' यह सोच वह पृथ्वी पर से उठा और अपने पिता के पास पहुंचा। दूर से ही पिता ने उसको देखा। उस पर दया आई। वह उसका चुम्बन करने के लिए दौड़ा। पुत्र ने पिता से कहा, 'पिता! मैंने परमात्मा और आपके साथ पाप किया है। मैं अब आपका पुत्र कहलाने के योग्य नहीं हूं।' पिता ने अपने भृत्यों से कहा, शीघ्र ही सर्वोत्तम पोशाक लाओ और इसको पहिनाओ इसको एक अगूठा दो। इसके पैरों के लिए खड़ाऊं लाओ। भोज दो और आमोद प्रमोद मनाओ क्योंकि मेरा पुत्र मर कर पुनः जीवित हुआ है। वह खो गया था और अब मिल गया।"

हम सेण्ट ल्यूक के १६ वें अध्याय में ईसा का निम्न लिखित दृष्टान्त पाते हैं।

"कोई सम्पन्न व्यक्ति पीली और सुन्दर मखमल के वस्त्र पहिना करता था। वह प्रत्येक दिन बड़े ठाठ बाट से रहता था। लाज़रस (Lazarus) नाम का एक निर्धन मनुष्य उसके दरवाज़े के बाहर पड़ा रहता था। उसके शरीर में स्थान २ पर घाव हो रहे थे। वह उस धनाढ्य व्यक्ति की मेज से गिरे हुए टुकड़ों के खाने में ही प्रसन्न था। कुत्ते आ आकर उसके घावों को चाटा करते थे। दैवयोग से वह मर गया और स्वर्गदूत उसको स्वर्ग में लेगये। वह धनी पुरुष भी मर गया और गाड़ दिया गया। जिस समय नरक में उसको तीव्र वेदना पहुंचाई जा रही थी उसी समय उसने अपनी आंख ऊपर उठाई और स्वर्ग में लाज़रस (Lazarus) को देखा। उसने चिल्लाकर कहा, 'मुझपर दया कर और लाज़रस को पानी में अपनी अंगुली डुबा डुबाकर मेरी जिह्वा को ठंडा करने के लिए भेज क्योंकि ये ज्वालाएं मुझको अत्यन्त कष्ट दे रही हैं।' परन्तु उसको उत्तर मिला 'पुत्र, याद करो। जब तुम जीवित थे तब तुम को सब प्रकार का आनन्द था। लाज़रस उस समय दुःख में था। अब वह सुख में है और तुम दुःख में इसके अतिरिक्त तुम्हारे और हमारे बीच एक खाड़ी मुंह बाये खड़ी है। न तुम्हारे पास से हम तक और न हमारे पास से तुम तक कोई आ जा सकता है, इस पर उस धनी ने कहा, 'अच्छा! मेरी तुमसे यही विनय है कि तुम उसको मेरे पिता के घर भेज दो क्योंकि मेरे पांच भाई हैं। उसको उन तक यह प्रमाण पहुंचाने दो जिस से कि वे भी इस हत्यागृह में न आवें। उसको उत्तर मिला कि 'उनके पास मूसा और पैग़म्बर हैं। वे उनकी बात सुन सकते हैं।' धनी ने नकार में उत्तर दिया और कहा, 'यदि इस लोक से कोई उनके पास जाय तो वे उसकी बात मानेंगे।' उसको फिर उत्तर मिला, यदि वे मूसा (Moses) और पैग़म्बरों की बात न

मानेंगे तो उनको विश्वास हो ही नहीं सकेगा भले ही कोई इस लोक से उनके पास जाय।"

ईसा ने उसके चेले (शिष्य) बनने की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों के लिये निम्न लिखित शर्तें निर्धारित की हैं। "जो मेरी अपेक्षा अपने माता पिता को अधिक चाहता है वह मेरे योग्य नहीं है। जो पुत्रों तथा पुत्रियों को मुझसे अधिक चाहता है वह भी मेरे योग्य नहीं है। जो क्रास (Cross) अर्थात् ईसाई धर्म को स्वीकार न कर के मेरा अनुयायी न होगा वह मेरे योग्य न होगा। जिसने जीवन पाया है वह इसको खोयेगा, और जो मेरे लिए जान गंवायगा उसको यह मिलेगा।'

"कोई शिष्य गुरू की अपेक्षा बड़ा नहीं होता है। न कोई भृत्य अपने स्वामी से बड़ा होता है।"

"जो कोई तुम्हारे मध्य महान बनना चाहता है उसे तुम्हारा सेवक बनना चाहिए। जो तुम्हारे मध्य प्रथम होना चाहता है उसे तुम्हारा दास बनना चाहिए। ठीक वैसे ही जैसे कि मनुष्य के पुत्र का (ईसा का) जन्म सेव्य बनने के लिए नहीं प्रत्युत सेवक बनने तथा बहुत सी जानों के बदले अपनी जान को अर्पण कर देने के लिये हुआ था।"

निर्धनों, पीडितों, तथा दलितों को ईसा ने यह निमन्त्रण दिया है, "हे उग्र परिश्रम करने वाले तथा बोझ से लदे हुए व्यक्तियों, तुम मेरे पास आओ, मैं तुम को तरो ताज़ा करूंगा। मेरा जुआ अपने कन्धों पर रक्खो और मेरे विषय में ज्ञान प्राप्त करो, क्योंकि मेरा हृदय नम्र और सभ्य है और तुम अपनी आत्माओं को तरो ताज़ा पाओगे क्योंकि मेरा जुआ आसान है और बोझ हलका।"

ईसा का अन्तिम उपदेश जो उसने मृत्यु से पूर्व सूली पर चढे हुए दिया था, वह यह था। "मुझे अब भी लोगों से बहुत कहना है, परन्तु तुम अभी इस को सहन नहीं कर सकते हो। तो भी जब सत्यात्मा का प्रादुर्भाव होगा तब वह तुम को सत्य की ओर ले जायगा। वह मेरा यश गान करेगा क्योंकि वह मेरी बातें ग्रहण करके तुम पर प्रगट करेगा।" "जब वह आयगा तब पापियों, धर्मात्माओं और न्यायमूर्तियों को निश्चय दिलाता हुआ, संसार को अपराधी ठहराएगा।"

मृतोत्थान के पश्चात् ईसा ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी, "आकाश तथा मृत्युलोक में मुझे पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया है। समस्त देशों को शिष्य बनाओ। पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा (Holy Spirit) के नाम पर उन्हें ईसाई बनाओ और जो आदेश मैं ने तुम लोगों को दिये हैं उनके अनुसार चलने की शिक्षा दो। मैं हर समय, प्रलय तक, तुम्हारे साथ रहूंगा।"

असंख्य प्रमाणों द्वारा तथा चालीस दिवस पर्य्यन्त अपने आपको प्रगट करते हुए और परमात्मा के राज्य सम्बन्धी मामलात पर वाद विवाद करते हुए, ईसा ने अपने दुखों का अन्त हो जाने पर अपने शिष्यों को दिखला दिया कि वह मरा नहीं प्रत्युत जीवित था। उसने उनके साथ भोजन किया और उनको जेरुसलम (Jerusalem) न छोड़ने और पिता ने जिस बातका वायदा किया था उसके लिये प्रतीक्षा करने का आदेश किया, क्योंकि जॉन (John) ने पानीके साथ तुमको बपतिस्मा (Baptize) दिया था परन्तु इसके थोड़े दिन बाद पवित्र आत्मा द्वारा तुम्हें बपतिस्मा दिया जायगा। जब पवित्रात्मा आविर्भूत होगी तब तुम में शक्ति का सञ्चार होगा और तुम सब समस्त जूदिया (Judea) और समरिया (Samaria) और पृथ्वी के अन्त तक जेरुसलम में मेरे साक्षी होगे।

रॉकवेल क्लेन्सी।

धर्म-सम्मेलन का संक्षिप्त विवरण

धर्म सम्मेलन में जो निबन्ध पढ़े गये थे वह पीछे आ चुके हैं। इस सम्मेलन की, शताब्दी उत्सव में क्रमशः ता० १५, १६ और १७ फरवरी को तीन बैठकें हुई थीं और इसका पूरा २ लाभ श्रोताओं को पहुंचाने के लिये, जो चार निबन्ध पीछे छापे गये हैं, उनके सिवाय पारसी, बौद्ध और इसलाम धर्मों के प्रतिनिधियों से भी अपने २ धर्मों पर निबन्ध सुनाने की प्रार्थना की गयी थी परन्तु, दुःख है, इनमें से किसी का कोई प्रतिनिधि शताब्दी उत्सव में सम्मिलित नहीं हुआ। जिन धर्मों के निबन्ध इस पुस्तक में दिये गये हैं उनमें से 'ईसाई मत' का निबन्ध अंग्रेज़ी भाषा में था अतः उसका हिंदी अनुवाद ही यहां प्रकाशित किया गया है। इस निबन्ध के लेखक रेवरेंड डा० वलेंसी स्वयं भी निबन्ध पढ़ते समय स्थान २ पर अपना अभिप्राय श्रोताओं को हिंदी में समझाते गये थे।

धर्म सम्मेलन का उद्देश्य क्या था इसका उत्तर सम्मेलन के सभापति श्रीयुत गंगाप्रसाद जी एम० ए० के आरम्भिक भाषण से पाठकों को भली भांति ज्ञात हो जायगा, जो संक्षेप में यहां दिया जाता है।

सभापति का आरम्भिक भाषण।

प्यारे भाइयो,

आप ने इस सम्मेलन का सभापति बना कर मेरा जो सम्मान किया है मैं उसके लिये अपने को किसी प्रकार भी योग्य नहीं समझता, परन्तु गुरुजनों की आज्ञा शिरोधार्य होती है अतः इसका पालन करना मेरा धर्म है और मैं केवल इसीलिये यह कार्य अपने ऊपर ले रहा हूं।

आज हम उस महर्षि की जन्म शताब्दी मनाने के लिये इस पंडाल में इकट्ठे हुए हैं जिसने अपने धर्म के लिये अपने जीवन को न्योछावर कर दिया था। मेरी सम्मति में ऐसे अवसर पर एक धार्मिक सम्मेलन का होना आवश्यक था। अतएव मैं इसके लिये इस शताब्दी के कार्य-कर्त्ता प्रधान श्री नारायण स्वामी जी एवं इस के संचालकों को संक्षेप रूप से बधाई देता हूं कि उन्होंने इस महत्वपूर्ण सम्मेलन की योजना की है।

अब मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि संसार में भले ही हज़ारों धर्म हों, परन्तु इसको सब मानते हैं कि किसी के लिये यदि सच्चा धर्म हो सकता है तो एक ही हो सकता है। यदि आप विचार पूर्वक देखें और संसार के भिन्न २ मतों के साथ तुलना करें तो आपको ज्ञात हो जायगा कि उन सब मतों में समानता विद्यमान है। भेद नहीं है। यह हम लोगों की भूल है कि हम छोटे मतभेदों को बहुत बढ़ा देते हैं। यदि हम इस एकता की दृष्टि से संसार को देखें तो, मैं समझता हूं कि जो विरोधी धर्म वाले फैले हुए हैं वे बहुत कुछ काम कर सकते हैं।

स्वामी जी अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' के आरम्भ में प्रश्न करते हैं कि सच्चा धर्म क्या है? स्वामी जी ने इसका उत्तर स्वयं 'सत्यार्थ प्रकाश' में यह दिया है कि संसार में सहस्रों मत प्रचलित हैं परन्तु उनमें से एक ही को सच्चा माना है। यदि आप बौद्ध और जैन मत वालों से पूछेंगे कि सत्य बोलना अच्छा है वा नहीं, तो वे कहेंगे कि अच्छा है। चोरी छोड़ना अच्छा है वा नहीं, वे अवश्य ही कहेंगे कि अच्छा है। महर्षि दयानन्द ने कहा है कि जिस धर्म में सचाई हो उसी धर्म को मानना चाहिए।

महर्षि ने 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखा है कि यदि सब धर्मों का परस्पर मिलान किया जाय तो

सब में समानता मिलेगी। इससे ज्ञात हो जायगा कि महर्षि का संसार एवं अन्य मतों, धर्मों के प्रति कैसा विचार था। आजकल लोग स्वामी जी के विषय में कहते हैं कि उन्होंने अन्य मतवालों की तीव्र आलोचना करते हुए अपमान एवं घृणा का प्रदर्शन किया है। यह नितान्त असत्य बात है। यदि आप 'सत्यार्थप्रकाश' को देखेंगे तो आप को महर्षि के अन्य धर्मों के प्रति विचार का भली भांति ज्ञान हो जायगा। मैं यह मानता हूं कि 'सत्यार्थप्रकाश' में उस समय कतिपय धर्मों की आलोचना की गई थी। जिस समय महर्षि मैदान में आए थे उस समय भारत देश निद्रादेवी की गोद में पड़ा था। और लोग जानते हैं कि जिस समय आदमी सोया पड़ा रहता है उस समय उसे जगाने के हेतु से धक्का देते हैं, इधर उधर हिलाते हैं परन्तु तिस पर भी वह अपना अपमान नहीं समझता। यदि आप ऐसा न करें तो वह घोर निद्रा में पड़ा हुआ मनुष्य शताब्दियों तक न जागे।

उस समय भारत वर्ष की भी ऐसी ही अवस्था थी। स्वामी जी के लिए भी यह आवश्यक था कि वे खण्डन मण्डन करके लोगों के हृदयों में जोश उत्पन्न करदें। यदि वे ऐसा न करते तो जनता उन पर तथा उनके उपदेशों पर ध्यान न देती। आज भारतवर्ष जागृत होगया है और आप लोग देखते हैं कि अब आर्य्य समाज में इस प्रकार का खण्डन मण्डन भी नहीं होता है। मेरे कहने का तात्पर्य्य यह है कि महर्षि दयानन्द वैदिक धर्म का प्रचार करने के साथ २ संसार के अन्य धर्मों को घृणा की दृष्टि से नहीं देखते थे, वरन कहते थे कि उनमें भी कुछ सच्चाई वर्तमान है। उनका कथन था कि वेद से सच्ची बात निकल कर संसार में तथा संसार के धर्मों में फैली है। यदि इस दृष्टि से देखेंगे तो पता लगेगा वस्तुतः शताब्दी सभा के इस निश्चय से कि भिन्न २ मतों के विद्वान् अपने मतों की व्याख्या करके आपके सन्मुख रक्खें, वाद विवाद का कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल अभिप्राय यह है कि संसार के जितने बड़े २ धर्म हैं उनके विद्वान इस शताब्दी में आयें और उस महर्षि की शताब्दी को जिसने अपना जीवन धर्म के अर्पण कर दिया, देखें और समझें।

कुछ कवितायें

सभापति के भाषण और उक्त चार निबन्धों के अतिरिक्त धर्म सम्मेलन में स्वामी दयानन्द जी के जीवन पर कई कवितायें भी पढ़ी गयी थीं। उनमें से दो यहां दी जाती हैं।

पहिली कविता मुन्शी हरसहाय माथुर खुरसंद, उपदेशक आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त, साकिन अमरोहा वारिद बिजनौर की थी। जो निम्न प्रकार है:—

(१)

कौन कहता है कि स्वामी जी कोई औतार थे,
ब्रह्मचारी, ऋषी, योगी, नेता जगउद्धार, थे।
बस फ़क़त दुनियां में सच्चाई के पैरोकार थे,
और बजुज़ ना अहल * हर ज़ रूह के ग़मख्वार थे।
धर्म और विद्या के सूरज उनसे वाक़िफ हैं सभी,
ज़र ज़मी ज़नका न उन पर हो सका क़ाबू कभी॥

(२)

थे नुमायां स्वामीके चेहरे पै आसारे जलाल,
मुस्तइद, गम्भीर नाज़ुक तवा ज़ोरावर कमाल।
इब्तदा ही में थे वह बेइन्तहा रौशन ख्याल,
ज़र्रे थे ख़ुरशीद उनको क़तरे दरिया की मिसाल।
उनमें औसाफ़े हमीदा सबके सब थे इन्तख़ाब,
बात जो मुंह से कही, साबित हुई वह ला जवाब॥

(३)

श्रीगणेश उनको हुई थी ज्ञान की इस तरह पर,
शिव की पूजा में पिता के साथ की इक शब सहर।
वाँ उन्हें मंदिर में ये इक माजरा आया नज़र,
यानी वाहन गणपती का आ चढ़ा शिम्भू के सर।

* कुपात्र

शक हुआ दिल में कि इस मूशक की क्या औक़ात है,
मूरतो भगवान है यः और कोई बात है ॥

(४)

सोचने की बात थी दिल में बहुत था पेचोताब,
किस लिये शिवजी का चूहे पर नहीं है रौबो दाब।
बाप से भी क़बिले तिसकी न पाया कुछ जवाब,
महवे हैरत दीदये बेदार थे हम रङ्गे ख़्वाब।
कोह पर रहरो को शब में वर्क़ जूं दिखलाये राह
×ज़ुल्मते शब में नज़र आया उन्हें यूं रूप माह ॥

(५)

दिन न था वह रात थी शिवरात्री की बे मिसाल,
घट में प्रगट जब हुवे स्वामी के शिव शिम्भूदयाल।
इक चमक के बाद बाक़ी रह गया दिल में ख़्याल,
उस महा प्रभू की पूजा मूर्ति में है महाल।
पृतमा पूजा से कब परमात्मा पूजन हुआ,
निर्विषय रखना था उलझन में यह उल्टा मन हुआ ॥

(६)

रङ्गो, बू, गुल सब्ज़ा, गुलशन, कोहो, सहरा वर्गो बार
चांद सूरज पृथिवी आकाश जल थल सब्ज़ा ज़ार।
मुर्गो मोरा माहिओ इंसानो हैवां †मर्ग़ज़ार,
उस महाप्रभु को मत भूलो ये सबकी है पुकार।
मूर्ती दर्शन से रौशन है वचश्मे दूरबीं,
यानी इन अशिया से उसमें फ़ौक़ियत कुछ भी नहीं ॥

(७)

इल्म की तहसील का शायक़ था स्वामी बे हिसाब,
दिन में उनके हाथ से छुटती न थी एकदम किताब।
रात को आंखों में आता था बहुत मुश्किलसे ख़्वाब,
अ़क्ल से दिल बस्तगी थी क्या व अह्या में शबाब।
इल्म के दरियाको पीजाऊं यह थी उस दिल में लहर
चांद की जानिब कशाँ हो जिस तरहसे मौजेबहर ॥

(८)

इल्म की तहसील ही का शौक़ था आठों पहर,
चांद थी गोया किताबऔर थी चकोर उनकी नज़र।
सीनाकावी :: में रहा मसरूफ़ होकर बे जिगर,
§क़ारे दरिया से निकाले जिस तरह कोई गौहर।
कान से ज़रदार हो जिस तरह कोई कानकन,
आर्ष ग्रन्थों से समेटा आपने इस तरह धन ॥

(९)

साल में बाईसवें वह बाप मां का चांद था,
ब्रह्मचारी, तेजधारी ख़ानदां का चांद था।
पूर्णमासी की तरह कामिल जहां का चांद था,
इल्म में यकता ज़मीनो आसमाँ का चाँद था।
बापमां को ब्याह की उस ‡ मेहर के थी बस उमङ्ग,
बात पक्की होगई होने लगे घर राव रङ्ग ॥

(१०)

पर न थी मंज़ूर स्वामी को सगाई देखना,
सुनके शादी की न फिर उनको कल आई देखना।
इब्तदा में उसकी फ़िक्रे इन्तहाई देखना,
बाप मां से भागता है उसको भाई देखना।
अहले दुनिया को कुटुम्भी गौहरो याक़ूत हैं।
धर्म सम्बन्धी को नाक़िस रिशते उलझे सूत हैं ॥

(११)

छा रहो था हर तरह दुनियां में गहरा अन्धकार,
थी यतीमों की दुहाई और बेवों की पुकार।
कमसिनी की शादियों के हो रहे थे सब शिकार,
बाज़ कलजुग के पुजारी कर रहे थे लूट मार।
कोई था महबूब मौला का कोई उसका पिसर,
लूटते [:]अय्यार थे और लुट रहे थे बेख़बर ॥

(१२)

कुछ अहम ब्रह्मास्मी कहने पै बेहद थे अड़े,
मूर्ति पूजा के बाजे बाजे शैदा थे बड़े।
जब खुली झांकी तो श्रद्धा से मौअद्दब हैं खड़े,
होगये पट बन्द तब पेशे नज़र पर्दे पड़े।
थे बहुत से नास्तिक महवे ख़्याले रागो रङ्ग,
बाज़म वामी हेच था जिनके लिए नामूसोनङ्ग * ॥

× अंधेरा † जंगल चरागाह :: छाती कुरेदना § गहराई ‡ सूरज [:] चालाक * औरतों की इज़्ज़त

(१३)

मुल्क में आतिश परस्ती हो रही थी शोला वार,
सैकड़ों मज़हब थे और फ़िरके थे उन में बेशुमार।
देखकर इस हाल को स्वामी का दिल था बेक़रार,
इस मुसीबत पर किया आराम को अपने निसार।
रोशनी से ज्ञान की नाबूद हों यूं दिल से राग,
चोर जैसे भाग जायें घर में जब हो जाए जाग॥

(१४)

काम को एक वक्त है किस वक्त में है काम क्या,
आग जब घर में लगी हो नींद में आराम क्या।
काहिली तुम ख़ुद करो फिर गर्दिशे अय्याम क्या,
जब इरादा कर लिया फिर सुबह क्या और शाम क्या।
चल दिया इक रोज़ स्वामी घरसे नाता तोड़कर,
मुल्क का मालिक बना दुनियां से रिश्ता छोड़कर॥

(१५)

वाह ! स्वामी आपसे इन्सान दुनियां में कहां,
ब्रह्मचारी इस तरह रह जाय ऐसा नौजवां।
वरना इन्सानों की निस्बत शायरों का है बयां,
परदे से ये और भी ज़ाहिर हुआ राज़े निहां।
आंखें परवाने हैं दीपक महज़बीनों का जमाल,
कू बकूबे परके उड़ते हैं ब परवाज़े ख़याल॥

(१६)

सत्यधारी, धर्मध्वज, निष्काम और बलवान था,
क़ौमों के उद्धार का हरवक्त जिसको ध्यान था।
वेदज्ञाता, ब्रह्मनिष्ठ योगी, दया की खान था,
देख लो तारीख़ को ऐसा कोई इन्सान था।
मौजज़े के क़ायलो देखो ये आकर मौजज़ा,
ज़िन्दगी स्वामी की था बेशक़ सरासर मौजज़ा॥

(१७)

वह गए तनहा मगर घर सोगो मातम आ गया,
चाँद निकला घुप अंधेरा सारे घर में छा गया।
राम बन में सिर्फ़ चौदह साल को भेजा गया,
देव बस सीता को और लक्ष्मण को भी लेता गया।
ख़ास मक़सद को लड़े थे राम तो लङ्केश से,
फ़ायदे को आम के ये भिड गए सब देश से॥

(१८)

रीछ बानर फौज में उनके करोड़ों साथ साथ,
यां फ़क़त इक आत्मा बलवान दो मज़बूत हाथ।
अङ्गद और सुग्रीव उनके पास थे दो लोकनाथ,
वालिए मुल्कों को उनके वास्ते था दांव घात।
एक वहां दशकन्ध था और बीस भुज वाला उदू*,
यां करोड़ों सर थे अरबों हाथ वाले शत्रु॥

(१९)

आज दुनियां पर ये रोशन स्वामी का उपकार है,
आज मुल्कों मुल्कों स्वामी जी की जय जय कार है।
फतह है उपकार की ख़ुद मतलबी की हार है,
झूठ, हिंसा, मक्र ख़ुदगर्ज़ी ये इक फिटकार है।
साधुओं सन्तों में स्वामी घर से आकर जा मिले,
इस चमन में फूल देखो कैसे कैसे हैं खिले॥

(२०)

बाप मां भाई बहिन ने वां किया मुश्किल से सब्र,
चूंकि स्वामी फ़र्द थे समझा न घर वालों ने जब्र।
जानते थे जाके बरसेगा ये इन लोगों पे अब्र,
हिंदु, मुस्लिम, जैनी, नुसरानी§ यहूदी, बौद्ध, गब्र::।
बाप ने भेजे थे पीछे ढूंढने प्यादे सवार,
एक दफ़े आए भी लेकिन फिर गए स्वामी पधार॥

(२१)

योग के अभ्यास की स्वामी के दिल में थी लगन,
धारणा में यम नियम के दिल में रहते थे मगन।
जिस किसी साधु को सुनते रखता है इदराके फ़न,
जाकर उससे सीखना चाहे पहाड़ हो या कि बन।
पूर्णानन्द आपके विख्यात सन्यासी गुरू,
योगानन्द जी आपके थे योग अभ्यासी गुरू॥

(२२)

कृष्ण नामी शास्त्री व्याकरण का उस्ताद था,
राजगुरू की मेहर थी वेदों से दिल आबाद था।

* दुश्मन § ईसाई :: पारसी

था जो ज्वाला नन्द पुरी स्वामीसे वह दिल शाद था,
योग सिखलाने की सेवा नन्द गिरी बुनियाद था।
स्वामो जी इन दोनों के ममनूने एहसा थे कमाल,
स्वामी जी के दिलमें इन दोनों का बेहद था ख्याल ॥

(२३)

चन्द आमिल योग के आबू पै रखते थे क़याम,
पहुंचे स्वामी जी वहां उनका सुना जिस वक्त नाम।
हल किए आमिल ने उनसे योग के ना.ज़ुक मुक़ाम,
ब्रह्मचर्य और योगो विद्या का था यह वेदोक्त काम।
जिन महा विद्वानों का स्वामी पै कुछ उपकार है,
उन महापुरुषों की बालें आज हम सब मिलके जय॥

(२४)

हैं बहुतसे अहले फ़न दुनियां में और कामिल हुनर,
आलिमो फ़ाज़िल हैं यकता ए ज़माना हैं बशर।
बूटियां जँगल में हैं पिनहां बहुत हैं काने ज़र,
पर वही पहिचानता है जिसको हासिल है नज़र।
गुन ग्राहक तबा थी स्वामी की और जौहर शनास,
अपनी हर हर चश्मे पर जाकर बुझाता था प्यास ॥

(२५)

चोटियों पर आबू विन्ध्याचल हिमालय के गया
साधुओं के दर्शनाभिलाषी ने देखो हर गुफा।
बर्फ़ और पत्थर से चिथड़े पांव कांटों से क़बा,
हाथ में सोटा लिये वह शेर बन बन में फिरा।
दूध या फल फूल खाकर घूमता था सुबह शाम,
मंजिले मक़सूद की जानिब था हरदम तेज़ गाम॥

(२६)

जाबजा स्वामीने यह सुन कर कि एक पंडित महान,
वेद के लासानी माहिर फ़ाजिलो फ़ख़रे जहान।
इल्म में गहरे अथा इज़्ज़त में ऊंचे आसमान,
नाम विरजानन्द है मथुरा में है उनका मकान।
हो गया शागिर्द स्वामी जाके विरजानन्द का,
छक गया अमृत को चश्मा पाके विरजानन्द का ॥

(२७)

वेद वेदांग और षट दर्शन के जो मफ़हूम थे,
स्वामी विरजानन्द को अच्छी तरह मालूम थे।
देखते थे चश्म बातिन से जो कुछ मरक़ूम थे,
ज़ाहरी असबाब उन नज़रों से सब मादूम थे।
उनसे की तालीम हासिल स्वामी ने बस तीन साल,
साल में चालीसवें पूरा हुआ वह वा कमाल॥

(२८)

जब कि स्वामी ‡फ़ारिग-उल-तहसील और कामिल हुआ
तब श्री गुरुदेव ने एक रोज़ मौके. से कहा।
हो बली पुरषार्थी रखते हो तुम फ़िक्रे रसा,
आप ग़ालिब हैं हवासों पर नहीं *बीमो रिजा।
तारक-उल-दुनिया हो उपकारी हो और रोशनख़्याल
आप जैसे आप हो .ख़ुद जानते हो अपना हाल॥

(२९)

आजकल दुनियां में कोई और तुमसा हो तो हो,
बल्कि सदियों तक भी कोई और ऐसा हो तो हो।
आप से ज़्यादह किसी ने मुल्क परखा हो तो हो,
धर्म को ऐसा किसी ने और समझा हो तो हो।
ज़िन्दगी को जाने हैं आप हैं अञ्जाम क्या,
क्या इरादा आप का है कीजेगा अब काम क्या॥

(३०)

बोले स्वामी हे दयानिध आप का अहसान है,
है अगर कुछ इल्म मुझ को आप ही का दान है।
नाथ सन्यासी रहूंगा मेरी जब तक जान है,
और वह कर्त्तव्य है जो आपका फ़रमान है।
बोले एक दिल की तमन्ना है उसे घर लाइये,
धर्म जो वेदों का अज़ली है उसे फैलाइये॥

(३१)

वेद अज़ली इल्म के मख़ज़न हैं अज़मत के कमाल,
इख़्तलाफ़ उनसे हुआ जिस वक्त लाज़िम था ज़वाल।
जब कि देखा ग़ैर मुल्कों ने कि यहां अबतर है हाल,
हमला आवर और भी करने लगे तब पाय माल।

‡ सनातक * हर्ष शोक

राज ताक़त धर्म दौलत नंग और इज्ज़त गई।
उस पै बीमारी है एक तब्दील मज़हब की नई॥

(३२)

वेद है दुनियां व उक़बा के लिये सीधी सड़क,
उसकी पाबंदी से हो जाते हैं इन्सां बेधड़क।
वेद को दुनियाँ ने रक्खा है मिसाले मर्दुमक*
वरना लाखों ही सहीफे [:] मिट गये ज़ेरे फ़लक।
है कसौटी धर्म की बस वेद उसको जानिये,
इस परख में जो कि पूरा हो उसी को मानिये॥

(३३)

सुन के स्वामी ने किया फ़ौरन सरे तसलीम ख़म,
और कहा हे नाथ है जब तक कि मेरे दम में दम।
यह इरादा है रहूं इस राह में साबित क़दम,
यतन उतना चाहिए जितना कि मक़सद हो अहम।
मैं अकेला हूं इधर और सारी दुनियां है उधर,
आप की कृपा की मुझपर चाहिए हरदम नज़र॥

(३४)

की तसल्ली स्वामी वृजानन्द ने और दी दुआ,
सर झुका कर पैरों पर गुरुदेव के स्वामी उठा।
जै पुकारी धर्म ने और फ़तह बोली मरहबा,
आई नुसरत* की सवारी जब चले वह पियादहपा।
हिंद से दौरे ख़िज़ां गुज़रा बहार आने लगी,
हर रविश बादे बहारी फूल बरसाने लगी॥

(३५)

आगरे में आके मथुरा से हुए स्वामी मुक़ीम,
भर के दामन फूलों से चलने लगी बादे नसीम।
मुश्क़ो अम्बर की छिपाने से नहीं छिपती शमीम‡,
प्रश्नो उत्तर के लिए आने लगे सदहा फहीम।
सूखे धानों पानी बरसाने लगा अबरे मुतीर×,
खेत सब सैराब थे और उनसे वह निकला वहीर।

(३६)

वां से चलकर धौलपुर आये गये फिर ग्वालियार,
फिर करौली जैपुर अजमेर और हुआ पुशकर पे वार।
रामघाट, अतरोली, सिरसा, कासगंज, सोरों, अहार,
फ़र्रुख़ाबाद, कानपुर, कन्नौज, काशी बार बार।
बम्बई, पंजाब, बंगाला, उड़ीसा और विहार,
यू० पी० मदरास राजपूताना व करनाटक बरार॥

(३७)

ज्यों समन्दर में कोई प्रवेश कर जाये मगर,
घूमता हो सिंह बन में जिस तरह से बेख़तर।
चाँद जैसे आँख तारों की झपाये रात भर,
ज्यों कोहर के दल पे सूरज फ़तह पाता है सहर।
शहरों २ स्वामी ने सब आलिमों को जें किया,
मसअले जिसने अहम थे उसने सबको तै किया॥

(३८)

मुनहरिफ़ जो वेद से थे आर्य्या बनते गये,
जो दलीलें सुनके समझे थे न रुकते बिन कहे।
आर्यों को सबही कहते हैं कि हैं गोया बड़े,
आर्य्या बालक से क्या हिम्मत अरस्तू की अड़े।
हां कुछ एक मद्दे मयपिन्दारा आंखें होगईं,
वरना सब क़ौमों की अब तो चार आंखें होगईं॥

(३९)

मंत्र वेदों के पलट देते थे काया आन में
दौड़ती थी बर्क़ की सी रौ हर एक इन्सान में।
दस्त क़ुदरत थी कुछ उस निर्पक्ष के फ़रमान में,
सच तो यह है जान आती थी तने बे जान में।
जो विमुख वेदों से जब तक था रहा वह नीमजां,
वेद सुनकर सैकड़ों याँ होगये मौजिज़ बयां॥

(४०)

भाप बिजली रौशनी के और हवा के कल के काम,
है सभों का ज़िक्र वेदों में सराहत से तमाम।
सुबह कैसे होती है और किस तरह होती है शाम,
मिन्नो इन इजरामे फ़लकी का नुमायाँ है निज़ाम।
घूमने और गोल होने का ज़मीं के है बयान,

* आंख की पुतली [:] किताब * फ़तह ‡ खुशबू × बरसाऊ बादल † ग़ुरूर

रक़बे की तस्दीक और कुत्बैन का भी है निशान *॥

(४१)

कीमया हिकमत फ़ुलाहत‡ का बयां है वेद में.
इल्मे मौजूदा तो अशयाये निहां है वेद में।
सारे इल्मों का ग़रज़ काफ़ी निशां है वेद में,
है जहां में वेद और सारा जहां है वेद में।
एक सी रहमत है इन्सानों पै ईश्वर की दवाम,
देवबानी में अज़ल से वेद ही हैं लाकलाम।

(४२)

बाज़ कहते हैं के दावा वेद का है रायगां,
इस तरह इंजील और क़ुरान में भी है बयां।
पर किया तसदीक़ उसको आलमों ने कब यहां,
श्रुतियों में है जो कुछ इस तौर पर है वह अयाँ।
समझा यूरुप ने बहुत कुछ ख़ुद निराले तौर से,
वेद का लिक्खा पढ़ा करते हैं इन्सां ग़ौर से॥

(४३)

अहल यूरुप वेदों से अब तक भी है कम आशना,
माद्दी तहक़ीक़ ही तनहा नहीं है मुद्दआ।
है सदाक़त वेद की साइन्स की भी रहनुमा,
वालिये मुल्कों को जब इस बात का होगा पता।
रोशनी का है यक़ीं फिर इक ज़माना आयेगा,
जो अन्धेरा छा रहा है ख़ुद फ़ना हो जायेगा।

(४४)

जो के थे आज़ाद और था हक़ शनासी जिनका रंग,
स्वामी की तक़रीर सुनकर वह तो रह जाते थे दंग।
आरज़ू होकर काम करते थे बसद जोशो उमंग,
ख़ुद ग़रज़ अहले हवस जाहिल मगर करते थे जंग।
शहरों शहरों इस्तक़ाबुल† को मुक़र्रर की समाज,
मुल्के मफ़्तूहा पै कायम कर रहा था धर्मराज॥

(४५)

राज की तमसील स्वामी के लिये जेबा नहीं,
राज की होती हुकूमत भी दिलों पर है कहीं।
आज है घी के चिराग़ों से मुनव्वर सब ज़मीं,
आज है मथुरा की अज़मत सबके दिल में जा गुज़ीं।
स्वामी ने तालीम वेदों की जो पाई थी यहाँ,
झुक के सिज़दा कर रहा है इस जमीं को आसमाँ॥

(४६)

जब के स्वामी कर चुके प्रचार वेदों का तमाम,
और हुई तसनीफ़ भी उनकी बहुत सी इख़्तताम।
तब हुई इच्छा श्री शम्भू की और आया पयाम,
शान्त से ध्यान अवस्थित हो पधारे मोक्ष धाम।
आर्यों पर आ पड़ा सब भार उनके काम का,
आप भी ख़ुरसन्द करलें, फ़िक्र कुछ अन्जाम का।

*   *   *   *

दूसरी कविता श्रीयुत सूर्यदेव शर्मा, डी० ए० वी० कालेज कानपुर की थी:—

(शार्दूल विक्रीड़ित वृत्त)

जागी जीवन-ज्ञान-ज्योति जिसमें जीता जगद्वन्दको।
वन्दों वैदिक सूर्यदेव गुरु को, स्वामी दयानन्दको॥

(१)

होती वृद्धि अधर्म की जब कहीं, अन्याय आधारमें।
धर्माधार धुरीण धैर्य बहाता, धर्मध्वजी धार में॥
मुक्तात्मा तब जन्म ले उतरते, सम्पूज्य संसार में।
दे आनन्द दयानुरूप बनते, जाते निराकार में॥

(२)

छोड़ा था घर बार धन्य धरणि, माता पिता मानके।
विद्या हेतु बिताय बालपन को, जिज्ञासु हो ज्ञानके॥
भोगी भोग निधान खोज करके, धीधारणा ध्यानके।
सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध बनके, थे योग्य निर्वाणके॥

*देखो यजुर्वेद अध्याय २० मन्त्र ४३, अ० ३३ मन्त्र ७५; अ० १३ मन्त्र ४४; अ० ६ मन्त्र २१; अ० १० मन्त्र १६। ऋग्वेद मण्डल १ अध्याय १८ सूक्त १२३ मन्त्र ७। यजुर्वेद अध्याय ७ मन्त्र १६; अ० १८ मन्त्र ४०; अ० ३ मन्त्र ७; अ० ३३ मन्त्र ७; अ० १६ मन्त्र ४६; अ० ६ मन्त्र २८।

‡ खेती का इल्म   † मुकाबला

(३)

घूमे कानन कुञ्जमें कुधर में, बीथी गली ग्राम में।
मारा मान महान पंडितन का, शास्त्रार्थ संग्राममें॥
कीने वेद विशुद्ध बोधयुत जो, प्राणी धराधाममें।
पाया अन्तिम काल प्रेम प्रभुका, निर्वांण निष्काममें॥

(४)

राजा रंक सिखाय एक प्रभुकी, आराधना साधना।
फैलाई श्रुतिसिद्ध सत्य सुखकी, संभावना भावना॥
होवे वेद प्रचार चारु जगमें, कैसी रही कामना।
पा निर्वाण गये तथापि मनमें, ये थी बसी वासना॥

(५)

भाता है खलको न भव्य यश वा, जो गौरवागार है।
जाने हैं कब मूढ़ मुक्त मग क्या, सत्यार्थ क्या सार है॥
पापोने धन लोभ में विष दिया, हा दुष्ट भूभार है।
कीना घातक किन्तु मुक्त ऋषिने ऐसा महोदार है॥

(६)

शय्यासीन हुए ऋषीश फिर भी, धैर्यस्थ चेते रहे।
आर्योंको अनुकूल कर्मकृतिका, आदेश देते रहे॥
प्रेमी भक्त महान ज्ञान गुरु का, सामोद लेते रहे।
सेवा में सविशेष यत्न करते थे शिष्य केते रहे?

(७)

पाया था गुरुदत्त ज्ञान गुरु का, जीता जगज्जाल था।
था अत्यद्भुत दृश्य कारुणिक था, तेजस्वपै भाल था॥
पीछे भक्त सभी खड़े कर लिये, मृत्युन्मुखी काल था।
'द्वारे दो सब खोल वेदपथके' गूंजा यही ताल था॥

(८)

गायत्री जपमंत्रगान करके, संलग्न हो ज्ञान में।
प्राणायाम प्रपूर्ण श्वास भरके, दी धारणा ध्यान में॥
"इच्छा है जगदीश आज यह तो, हो पूर्ण औसानमें।
लीला आज अपार की" कह हुए, तल्लीन निर्वाणमें॥

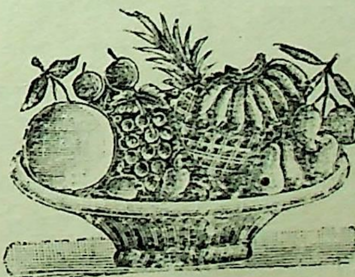
(९)

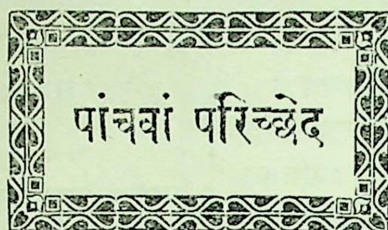
"गूंजे गौरव गीति का जगतमें, भावे भली भारती।
"माने मानवमान ज्ञान गुरु का, हों मुक्त मेधावती॥
"वाणी वैदिक ये विनोद वनके आमोद आभावती।
"दे सन्देश विशेष विश्वपतिका, निर्वाण यात्रायती॥"

(१०)

हा स्वामिन! जब दिव्य दीप अवली, से शोभते ओक थे।
था अस्तङ्गत सूर्य किंतु श्रुति का, फीके पड़े लोक थे॥
छोड़ा जीवन मध्य आर्यजनको हा शोक! बेरोक थे।
हो आदर्श अनूप आप अब भी, जैसे श्रुतालोक थे॥

इनके अतिरिक्त कानपुरके महाशय ज्वाला-प्रशाद जी, जालन्धर के म० गुरुदत्त दर्द और ठाकुर प्रवीणसिंह जी ने भी कवितायें सुनायी थीं जिनको अनेक श्रोताओं ने पसन्द किया था।





धर्म-परिषद् का संक्षिप्त विवरण

श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव के अवसर पर धर्म परिषद् की योजना इस लिए की गई थी कि इस परिषद्में आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा वैदिक धर्म के विशेष २ सिद्धांतों पर निबन्ध पढ़वा कर उन सिद्धांतों की पुष्टि के साथ २ जनता को उनका परिचय कराया जाय। इसी लिए शताब्दि महोत्सव की तारीख़ १५, १६ और १७ फ़रवरी के दोपहर को इस परिषद् की तीन बैठकें करने का निश्चय किया गया था और उनमें पढ़े जाने के लिए आर्य समाज के आठ विद्वानों से निबंध तैयार कराये गए थे। परन्तु तारीख़ १७ फ़रवरी की दोपहर को मथुरा में आर्यों का शानदार जलूस निकलने के कारण धर्म परिषद् का अधिवेशन नहीं हो सका और तीन निबन्ध पढ़ने से अवशिष्ट रह गए। वे निबंध निम्न प्रकार थे:—

१. पं० विश्वबन्धु शास्त्री एम० ए० आचार्य ब्राह्म विद्यालय लाहौर "वैदिक संसार का स्वरूप" इस विषय पर।
२. पं० विश्वनाथ विद्यालङ्कार, "ऋषि दयानन्द के भाष्य की शैली" इस विषय पर।
३. पं० रुद्रदेव वेद शिरोमणि, "वैदिक कर्मकाण्ड और पशुवध" इस विषय पर।

निबन्ध परिषद् में जिस क्रम से पढ़े गए थे उसी क्रम से इस पुस्तक में प्रकाशित किये गए हैं, पं० धर्मेन्द्रनाथ तर्कशिरोमणि पंडाल में कोलाहल बहुत होने के कारण अपना निबन्ध पढ़ नहीं सके थे, उन्होंने निबन्ध की मोटी मोटी बातों पर मौखिक व्याख्यान दिया था, जिसका आशय प्रकाशित किया गया है।

इस परिषद् के सभापति स्वामी सत्यानन्द जी महाराज प्रत्येक निबन्ध-लेखक का जो परिचय श्रोताओं को देते जाते थे उसे पाठकों को सुगमता के लिए यहां भी दिया जाता है।

१. पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति गुरुकुल विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक हैं और वह सार्वदेशिक सभा की ओर से बड़ी योग्यता पूर्वक कर्नाटक प्रांत में वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य करते रहे हैं।

२. राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी एक वृद्ध पुरुष हैं, आप वयोवृद्ध ही नहीं अपितु विद्यावृद्ध भी हैं। आप अपने जीवन में दयानन्द के वीर सहकारी थे। जब वाद विवाद होता था तब आप से शत्रु हार जाते थे। आपने पञ्जाब और यू० पी० में बड़े २ मैदान मारे हैं। स्वामी जी के प्रति आपके हृदय में वह श्रद्धा एवं प्रेम वर्तमान है कि यदि उनके नाम पर कोई हमला करे तो आप प्रतिकार में अपने प्राण विसर्जन करने के लिए सर्वदा उद्यत रहते हैं। आप रियासत बड़ौदा के शिक्षण विभा

में अछूतों के लिए बहुत उपयोगी कार्य करके ख्याति पा चुके हैं।

३. पं० धर्मेन्द्रनाथ तर्कशिरोमणि गुरुकुल वृन्दावन के प्रथम स्नातक हैं। आर्य सामाजिक जगत में आप को सब पहिचानते हैं और आजकल आप मेरठ कालेज में प्रोफेसर हैं।

४. पं० घासीराम जी एम० ए० आर्य समाज के पुराने सेवक हैं। आर्यसमाज के अनन्य भक्त और प्रेमी हैं। पाश्चात्य दर्शन शास्त्र के आप प्रकाण्ड पण्डित हैं। आज कल आप संयुक्त प्रांतीय प्रतिनिधि सभा के प्रधान पद को सुशोभित कर रहे हैं।

५. पं० रामस्वरूप मिश्र प्राच्य दर्शनों के योग्य विद्वान् हैं।

सभापति स्वामी सत्यानन्द जी ने जो आरम्भिक भाषण किया था उसका सार निम्न प्रकार है:—

बहिनो और भाइयो! इस अवसर पर मैं कुछ कहना चाहता हूं। मैं उस विषय पर ही कहूंगा जो स्वामी जी को अत्यन्त प्रिय था तथा जो आर्य समाज के लिए जीवन प्राण है। ऐसे उपयोगी अवसर पर धर्म परिषद् का जो विषय रक्खा जाय वह आर्य समाज के जीवन को पुष्ट करने वाला तथा आर्य समाज की आत्मा होना चाहिए। यदि कोई मुझ से प्रश्न करे कि "आर्य समाज का जीवन क्या है?" तो मैं उत्तर दूंगा कि वेद ईश्वर का ज्ञान है और यही आर्य समाज की आत्मा है। इसके बिना कोई व्यक्ति धार्मिक नहीं हो सकता, साथ ही साथ गम्भीर दृष्टि से विचार करने से वह आर्य समाजी भी नहीं हो सकता जो वेद का स्वाध्याय न करता हो। आज तक यह अखण्ड सिद्धान्त चला आया है। किसी ने इस पर सन्देह नहीं किया है। मैं यह कहना चाहता हूं कि स्वामी दयानन्द के अटल विचार से यह ध्वनि निकल रही है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। यह आर्य समाज की आत्मा है। जिस आर्य समाजी में धर्म के लिए जोश नहीं है, मेरी सम्मति में तो वह आर्य समाजी गिरा हुआ आर्य समाजी है। मेरा इस बात के कहने में यह प्रयोजन है कि अब गुरुकुल के एक स्नातक आपके सामने एक निबन्ध पढ़ कर सुनायेंगे और आपको बतलायेंगे कि आर्य समाज में इस विषय पर मत-भेद नहीं है। किसी ने आज तक नहीं कहा है कि हमारे यहां मतभेद है। हम आर्य समाज के एक सिद्धांत पर निरन्तर चले आते हैं जिस पर आज तक किसी ने कोई किसी प्रकार का आक्षेप नहीं किया। मैं आपके सामने उस सम्मान के लिए जो आपने मुझे सभापति का आसन प्रदान कर मेरे प्रति किया है अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूं।

इन निबन्धों और भाषणों के अतिरिक्त परिषद् में समय समय पर साधारण भजन और गान भी होते रहते थे जिनमें कन्या महाविद्यालय जालन्धर की छात्राओं की एक गीतिका उल्लेख योग्य है।



'ईश्वरीय ज्ञान'

:o:

(ले० पं० धर्मदेव सिद्धांतालङ्कार)

मया वरेद। वेद माता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशु कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

ईश्वरीय ज्ञान वेद यह एक सुप्रसिद्ध और पुराना पर साथ ही अत्यन्त गहन विषय है। यह बहुत अच्छा होता यदि शताब्दी समिति किसी बड़े अनुभवी विद्वान् से इस विषय पर निबन्ध पढ़ने की प्रेरणा करती पर यतः यह भार मेरे निर्बल कन्धों पर डाल दिया गया है अतः जैसे तैसे करके अपनी शक्ति के अनुसार उसे उठाने और इस कठिन कार्य को निभाने का मैं प्रयत्न करूंगा, यद्यपि मुझे आशा नहीं कि मैं इसमें कुछ भी उल्लेख योग्य सन्तोषजनक सफलता प्राप्त कर सकूंगा। एक तो विषय ही इतना विवादास्पद और गहन और दूसरा इसकी तैयारी के लिए जितने समय की अपेक्षा थी उससे बहुत कम मुझे मिल सका, इसलिए सैकड़ों त्रुटियों का होना इसमें स्वाभाविक है तथापि आशा है विचारशील आर्य सज्जन नीर-क्षीर-विवेक-दक्ष हंस की तरह केवल सार का ग्रहण करते हुए अपने सौजन्य का परिचय देंगे।

इस विषय पर निबन्ध लिखने के समय सैकड़ों जटिल विवादास्पद प्रश्न सामने उपस्थित होते हैं। यथा (१) ईश्वरीय ज्ञान की कुछ आवश्यकता भी है या नहीं? क्या प्रकृति और सदसद्विवेक बुद्धि वा Conscience मनुष्य को सन्मार्ग की सूचना देने के लिए पर्याप्त नहीं? अथवा क्या विकासवाद के सिद्धांत के अनुसार मनुष्य धीरे २ स्वयं उन्नति नहीं कर सकता? (२) यदि ईश्वरीय ज्ञानके बिना सचमुच ही काम चलना असम्भव है तो वह ईश्वरीय ज्ञान कैसा होना चाहिए, कौन २ सी कसौटियों से उसकी परख हो सकती है? (३) वर्तमान समय में ईश्वरीय ज्ञान होने का दावा रखने वाले अनेक सम्प्रदायों के अनेक धर्मग्रन्थों में केवल वेदों को ही क्यों ईश्वरीय ज्ञान वा अपौरुषेय स्वीकार किया जाए? वेदों के अन्दर वे कौनसी विशेष शिक्षाएं अथवा उपदेश हैं जो मानवीय बुद्धि की पहुंच के बाहर हैं और जिन्हें ईश्वरीय माने बिना गुज़ारा चल ही नहीं सकता? (४) ईश्वरीय ज्ञान से सम्पन्न और अत्युत्कृष्ट होने पर भी क्या वेदों का अक्षर २ माननीय है? क्या प्रचलित मंत्र रचना भी ईश्वरीय है? अपौरुषेय और नित्य है? (५) 'वेद' के अन्दर कौन २ से ग्रन्थों का समावेश होता है? केवल चार संहिताएं ही वेदशब्दवाच्य हैं अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों का भी वेद नाम है? क्या चारों वेद एक ही समय में विशेष ईश्वरीय प्रेरणा से प्रादुर्भूत हुए अथवा भिन्न २ समयों में भिन्न २ अनेक ऋषियों द्वारा उनका निर्माण होता रहा? ये सब प्रश्न हैं जो वेद विषयक निबन्ध लिखने वालेके मन में स्वभावतः उत्पन्न होते हैं और जिनमें से एक २ विषय स्वतंत्र विस्तृत निबंध की अपेक्षा रखता है। ४० मिनट के समय में समझ में नहीं आता कि इस जटिल विषय के साथ कैसे न्याय किया जा सकता है।

पूर्व इसके कि मैं ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता इत्यादि के सम्बन्ध में अपने विचार आप के सामने उपस्थित करूं, वेदों के विषय में परम्परागत विचार और प्रायःपाश्चात्य विद्वानों द्वारा स्वीकृत भावों का थोड़ा निर्देश कर देना आवश्यक मालूम

होता है ताकि हम पक्षपातशून्य होकर किसी परिणाम पर पहुंचने का यत्न करें।

स्मृति ब्राह्मण उपनिषत् इत्यादि सब एक स्वर से वेदों को ईश्वरीय मानते हुए उनकी महिमा के गीत गाते हैं। मनुस्मृति 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' 'धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः' 'श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी, इत्यादि स्पष्ट वचनों द्वारा वेद भगवान् को ही अन्तिम प्रमाण बताती है और 'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥' इत्यादि श्लोकों द्वारा जो ब्राह्मण कुलोत्पन्न होकर भी वेद में परिश्रम नहीं करता और दूसरी बातों में व्यर्थ समय गँवाता है वह इसी जन्म में शूद्र हो जाता है यह व्यवस्था देती है। ऐतरेयादि सभी ब्राह्मण भी "प्रजापतिर्वा इमान् वेदानसृजत" इत्यादि वाक्यों द्वारा स्पष्ट शब्दों में वेदों की ईश्वरीयता का प्रतिपादन करते हैं। उपनिषद् ग्रन्थ, जिन के भावों की उच्चता और गम्भीरता पर अनेक पाश्चात्य धुरन्धर विद्वान भी लट्टू हो गए हैं, वेदों को 'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।', 'तस्मादृचः सामयजूंषि दीक्षाः', 'यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।' इत्यादि वचनों द्वारा स्पष्ट रूप से ईश्वरीय ज्ञान प्रमाणित करती हैं। इसी प्रकार न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदांत सब के सब दर्शनशास्त्र अन्य विषयों में कुछ मतभेद रखते हुए भी इस अत्यावश्यक विषय में लगभग समान अभिप्राय प्रकट करते हैं और 'मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्, तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्, शास्त्रयोनित्वात् अत एव च नित्यत्वम्, इत्यादि सूत्रों द्वारा वेदों की निर्भ्रांत प्रमाणता, नित्यता, अपौरुषेयता इत्यादि को सिद्ध करते हुए उन पर किये जाने वाले अनृत, व्याघात, पुनरुक्ति इत्यादि दोषों का खूब अच्छी प्रकार परिहार करते हैं। यही बात रामायण महाभारत तथा सम्पूर्ण प्राचीन और नवीन संस्कृत साहित्य के विषय में कही जा सकती है।

एक ओर जहां भारतीय तत्त्वज्ञानियों और विद्वानों की वेदों के विषय में इतनी आदर बुद्धि है कि वे वेद विरुद्ध किसी भी बात को बिना संकोच के छोड़ने के लिए उद्यत हैं जहां वे बिना ननु न च के वेद को स्वतः प्रमाण मानते हैं वहां दूसरी ओर अनेक धुरन्धर पाश्चात्य विद्वान् वेदों को बच्चों की खिलखिलाहट और गडरियों के गीत बतलाते हैं। उनके अनुसार वेदों का अधिक भाग प्राकृतिक देवताओं की स्तुति और प्रार्थना तथा लम्बे चौड़े यज्ञ याग इत्यादि की प्रक्रियाओं से, जिनके अन्दर घोड़े, बकरी, गाय इत्यादि जानवरों की ही नहीं, पुरुषों तक की भी आहुति देवताओं को प्रसन्न करने के उद्देश्य से दी जाती है, भरा हुआ है। पाश्चात्य लोगों का कहना है कि वेद भिन्न २ समयों में भिन्न भिन्न लोगों द्वारा जिन्हें ऋषियों के नाम से पुकारा जाता था बनाये जाते रहे और उनमें से कई भाग शायद महाभारत के भी बाद निर्माण किये गये। अथर्ववेद, जो पहले तीन वेदों से बहुत पीछे बना, प्रायः सारे का सारा जादू टोने की बातों से भरा हुआ है कर्तव्य शास्त्र विषयक उच्च शिक्षाओं का वेदों के अन्दर सर्वथा अभाव सा पाया जाता है इत्यादि। यहां समयाभाव के कारण पाश्चात्य विद्वानों के वेद विषयक मत के सार का केवल उल्लेख मात्र कर दिया गया है उद्धरण देना अनावश्यक है।

हमारे सामने पहला सीधा सा प्रश्न यह है कि क्या हम अपने देश के प्राचीन ऋषि मुनियों, दार्शनिकों और अन्य विद्वानों द्वारा स्वीकृत वेद विषयक मत की अवहेलना करते हुए पाश्चात्य मत को, जो बहुत कुछ पक्षपात-ग्रस्त होकर तथा वैदिक भाषा और विचार सरणि से पूर्णतया परिचित न होते हुए बनाया गया है, अधिक प्रामाणिक मान सकते हैं? क्या हम ऐसे विषयों में जहां हमें कुछ सन्देह हो प्राचीन सभी विचारकों से अपने को ही

अधिक बुद्धिमान् मानकर उनके विश्वास को सर्वथा भ्रममूलक और मिथ्या विश्वास कह कर टाल सकते हैं ? इसका उत्तर मैं विचारशील श्रोताओं पर छोड़ता हूं।

अब सबसे पहला विषय जो 'ईश्वरीय ज्ञान वेद' के सम्बन्ध में हमारे सन्मुख उपस्थित होता है वह 'ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता' का है। सौभाग्य से इस विषय पर अब बहुत कुछ विचार किया जा चुका है अतः मैं इसके विस्तार में जाना अनावश्यक समझता हूं। हम ईश्वरीय ज्ञानवादी आस्तिकों का कहना है कि माता, पिता, गुरु इत्यादि से शिक्षा ग्रहण किये बिना कोई शिक्षित नहीं हो सकता, संसार की सारी जातियां का इतिहास इस बात की साक्षी है कि जब तक उनके अन्दर उत्तम शिक्षक उत्पन्न नहीं हुए तब तक उनकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय बनी रही, वे चिरकाल तक अवनति के गर्त में पड़ी रहीं। असीरिया के असुरवानीपाल, स्वेविया के सम्राट् फ्रेडरिक २य, स्काटलैंड के जेम्स चतुर्थ और मुग़ल बादशाह अकबर द्वारा छोटी मात्राओं में किये हुए सुप्रसिद्ध परीक्षण भी इसी बात को प्रमाणित करते हैं कि दूसरों से सिखाये बिना मनुष्य साधारण उपयोगी भाषादि विषयक ज्ञान तक नहीं प्राप्त कर सकता, इसलिये जैसे पिता पुत्र को उपदेश करता है वैसे सबके पितृस्थानीय भगवान्ने सब मनुष्योंके कल्याणार्थ अंतर्यामिरूपसे जीवों को धर्माधर्म, पाप पुण्य, शारीरिक मानसिक सामाजिक उन्नति के साधन, मनुष्य जीवन का उद्देश्य इत्यादि विषयों का जो अन्यथा मनुष्यद्वारा अग्राह्य थे उपदेश किया जो वेदसंहिताओं के अन्दर पाया जाता हैं। आस्तिकों का कथन है कि जैसे कोई भी संस्था बनाने अथवा कारखाना इत्यादि चलाने से पूर्व भी उसके नियमों का बना डालना अत्यावश्यक होता है इसी प्रकार संसार रूपी इस विशाल संस्था को नियमपूर्वक चलाने के लिये भगवान् ने सबके हितार्थ वेदरूप से नियमों का निर्देश कर दिया, जिन पर चलने से ही प्रत्येक नर नारी का कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं! यह बात साफ़ है कि यदि किसी देश में चोरी न करने इत्यादि विषयक कानून न बने हुए हों तो चोरी करने वालों को दण्ड देना भी वहां न्याययुक्त नहीं कहा जा सकेगा। कम से कम चोरी करने वाला उस अपराध के लिये उत्तरदाता न होगा। इसलिये और नहीं तो Code of Laws अर्थात् नियमग्रन्थ वा वेद के शब्दों में ऋत और सत्य (Physical and moral eternal laws) प्रतिपादन करने वाले ज्ञान का सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् द्वारा मनुष्यमात्र के पथप्रदर्शक अथवा Guide के तौर पर दिया जाना बड़ा युक्तियुक्त प्रतीत होता है। प्लेटो और कान्ट जैसे सुप्रसिद्ध दार्शनिक-शिरोमणियों ने भी धार्मिक तथा नैतिक विषयों में पथप्रदर्शन के लिये ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता को स्पष्ट शब्दों में अनुभव और प्रकट किया है। प्लेटो के फ़ेडो इत्यादि ग्रन्थों में पाये जाने वाले इस विषयक वाक्यों का अंग्रेज़ी भाषान्तर इस प्रकार है—

"We will wait for one, be he a God or an inspired man to instruct us in religious duties, and to take away the darkness from our eyes."

"We must sieze upon the best human views in navigating the dangerous sea of life, if there is no safer or less perilous way; no stouter vessel or divine revelation for making this voyage."

Plato's Pheado

अभिप्राय यह है कि धार्मिक कर्तव्यों में शिक्षा देने के लिये हमें या तो परमेश्वर और या उस द्वारा प्रेरित किसी पुरुष की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जो हमारी आंखों के आगे छाये हुए अन्धकार को हटा दे। इस मानवजीवन रूपी समुद्र को भली भांति

पार करने के लिये यदि हमें ईश्वरीय ज्ञान जैसा कोई प्रबल साधन मिलना सर्वथा असम्भव हो तो अच्छे से अच्छे मानवीय विचारों पर अपना आधार रखना पड़ेगा।

जर्मनी के दार्शनिक-मूर्धन्य कान्ट ने भी "We may well concede that if the Gospel had not previously taught the universal moral laws in their full purity, reason would not yet have attained so perfect an insight of them." इन शब्दों को लिख कर आचार सम्बन्धी नियमों की पूर्ण शिक्षा के लिये ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता और मानवीय बुद्धि की असमर्थता को साफ़ स्वीकार किया था।

ईश्वरीय ज्ञान-वाद को जो महानुभाव नहीं मानते उनका तीन वर्गों में विभाग हो सकता है—(१) सदसद्विवेक बुद्धिवादी (२) प्रकृतिवादी (३) सामाजिक विकासवादी। इन तीनों के मत का संक्षेप से निर्देश कर के उसकी थोड़ी सी आलोचना करना इस प्रकरण में अनुचित न होगा।

सदसद्विवेक बुद्धिवादी सज्जनों का कहना है कि परमेश्वर ने सत्यासत्य धर्माधर्म, पाप पुण्य इत्यादि के विचार के लिये जो अन्तरात्मा वा Conscience हमें दे दी है वही पर्याप्त है, उसके अतिरिक्त ईश्वरीय ज्ञान की कुछ ज़रूरत नहीं है। इसके उत्तर में हमें इतना ही कहना है कि यद्यपि हम स्वयं कुछ अंश तक सदसद्विवेक बुद्धि की प्रामाणिकता मानते हैं, 'स्वस्य च प्रियमात्मनः', 'सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः' इत्यादि वचनों द्वारा हमारे स्मृतिकारों और कवियों ने उसका महत्त्व स्वीकार किया है, इतना ही नहीं स्वयं वेद तक में 'दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥' इत्यादि मन्त्रों द्वारा सदसद्विवेक बुद्धि की उपयोगिता का प्रतिपादन किया गया है तथापि केवल उसे धर्माधर्म पाप पुण्य कार्याकार्य के निर्णय में पर्याप्त नहीं माना जा सकता क्योंकि उसका आधार बहुत कुछ सामाजिक परिस्थिति तथा शिक्षादि पर है। एक वेदानुयायी आर्य, वैष्णव अथवा जैन के घर जो बालक पैदा होता है उसे स्वभावतः मांस मद्यादि से घृणा होती है और उसकी अन्तरात्मा उसे सदा ऐसी चीज़ों का सेवन करने से रोकती है, पर जो बालक मांस मद्यसेवी अंग्रेज़ अमेरिकन अथवा अन्य किसी ऐसे ही पुरुष के गृह जन्म लेता है उसकी अन्तरात्मा उसे इन चीज़ों से परहेज़ रखने की कोई विशेष प्रेरणा नहीं करती। यह परिस्थिति का प्रभाव नहीं तो और किस चीज़ का प्रभाव है? इसी विचार को मन में रखते हुए जर्मनी के दार्शनिकाग्रगण्य कान्ट ने 'Metaphysics of morals' नामक पुस्तक में ठीक लिखा है कि:—Feelings which naturally differ in degree can not furnish a uniform standard of good and evil, nor has any one a right to form judgments for others by his own feelings."

इस सबके अतिरिक्त एक दूसरी बात जो मैं सदसद्विवेक बुद्धिवादियों से कहना चाहता हूं वह यह है कि अधर्म का थोड़ा बहुत निर्णय अन्तरात्मा की साक्षि द्वारा करने में वे चाहे कुछ समर्थ हों भी जाएं पर जीवन का उद्देश्य, जीव ब्रह्म प्रकृति के स्वरूप मोक्ष प्राप्ति के साधनादि विषयों का ज्ञान तो केवल इस बुद्धि द्वारा होना सर्वथा असम्भव है।

प्रकृतिवादी सज्जनों का कहना है कि केवल प्रकृति को ही देख कर मनुष्य अपने कर्तव्य और हित का विचार कर सकता है, उसके लिए ईश्वरीय ज्ञान की कल्पना क्यों की जाए। इस के उत्तर में अधिक कहना व्यर्थ है। यदि केवल प्रकृति मनुष्य को ज्ञान देने में समर्थ होती तो इस पृथिवी—तल पर कोई भी जाति असभ्य दशा में न पाई जाती, क्योंकि प्रकृति की पुस्तक सब के लिए

समान रूप से खुली हुई है। पर बात तो यह है कि इस पुस्तक को पढ़ना ही बड़ा कठिन है। बड़े २ विद्वान् वैज्ञानिक पुरुष ही इसका पाठ कर सकते हैं दूसरे लोग यदि प्रकृति के अन्दर प्रायः प्रचलित 'जिसकी लठो उसकी भैंस' अथवा Survival of the fittest और खुल्लमखुल्ला प्रतिबन्ध रहित संभोग इत्यादि व्यवहारों का अनुसरण करने लगें तो सदाचार और Morality का दुनियाँ से नामो निशान ही मिट जाए। इस लिए केवल प्रकृति को नैतिक और धार्मिक शिक्षा देने में समर्थ समझना एक बड़ी भारी भूल है।

तीसरा वर्ग सामाजिक विकासवादियों का है। उनका विचार है कि प्राकृतिक और नैतिक जगत् में समान रूप से विकास का नियम काम कर रहा है। उनके कथनानुसार धार्मिक नैतिक सामाजिक सब विषयों में क्रमिक विकाश हुआ है। बहुत प्राचीन काल में लोग सर्वथा असभ्य अवस्था में थे। उन्हें रहने सहने तक का ढंग न आता था। उन्हें किसी उत्तम राज्य पद्धति का ज्ञान न था। वे पत्तों या छालों से शरीर ढक कर रहते थे। धीरे २ वे उन्नति करते गए। पहले लोग सूर्य्य चन्द्र पत्थर आदि की उपासना करते थे धीरे २ बहुदेवतावादी (Polytheists) बने। बहुदेवतावाद के अनन्तर हीन-देवतावाद वा Hero-theism की बारी आई। उसके बाद अद्वैतवाद वा Monism, फिर एकेश्वरवाद (Monotheism) और अन्त में अनीश्वरवाद (Atheism) की बारी आयेगी। इसी तरह का विकाश सब विषयों में स्वयं होता जाता है। होते २ मनुष्य उन्नति के शिखर पर पहुंच जाता है, ईश्वरीय ज्ञान वा इलहाम का मानना बिल्कुल फ़जूल है।

इसके उत्तर में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि सामाजिक विकासवाद स्वतःसिद्ध वस्तु नहीं, बल्कि एक कल्पनामात्र है जिसके लिये कुछ भी पुष्ट आधार नहीं है। इस बात को प्रायः विकासवादी पाश्चात्य विद्वान् भी मानते हैं कि इस समय जो ग्रन्थ हमें मिलते हैं उनमें से वेद सबसे पुराने या कम से कम बहुत पुराने ग्रन्थ हैं। प्रो० मैक्समूलर जैसे धुरन्धर विद्वान् ने Vedic Hymns इत्यादि अपने ग्रन्थों में Rigved is the oldest book in the library of mankind इत्यादि वाक्यों द्वारा स्पष्ट रूपसे ऋग्वेद की मानवीय पुस्तकालयमें सब से अधिक प्राचीनताको स्वीकार किया है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि वेदों के निष्पक्षपात अनुशीलन से सामाजिक विकासवाद की कोरी कल्पना पर कुठाराघात होता है। वेदों के अन्दर जो उच्च धार्मिक और आचार सम्बन्धी भाव पाये जाते हैं उन्हें देख कर प्राकृतिक विकासवाद के प्रवर्तक डा० रसेल वैलेस ने अपने सुप्रसिद्ध Social environments and moral progresss नामक ग्रन्थ में आश्चर्य के साथ लिखा है:—

"In the earliest records which have come down to us from the past, we find ample indications that geneaal ethical conceptions, the accepted standard of morality and the conduct resulting from these were in no degree inferior to those which prevail to-day though in some respects they differed from ours. The wonderful collections of hymns known as the Vedas is a vast system of religious teachings, pure and lofty as those of the finest portion of the Hebrew Scriptures." इस उद्धरण में उन्होंने बताया है कि वेद के नाम से प्रसिद्ध आश्चर्य जनक संहिता में बाइबल के अच्छे से अच्छे भागों के तुल्य पवित्र और ऊँची धार्मिक शिक्षाएं पाई जाती हैं। Teachings of the Vedas नामक ग्रंथ के ईसाई लेखक पादरी फ़िलिप्स वेद की एकेश्वर पूजादि विषयक उच्च शिक्षाओं से यहां तक प्रभावित हुए हैं कि उन्होंने वैदिक शिक्षाओं को एक प्रारम्भिक ईश्वरीय ज्ञान का परिणाम स्वीकार किया

है। उनके अपने शब्द ये हैं "We are justified therefore in concluding that the higher and purer conception of the Vedic Aryans were the results of primitive Divine Revelation."

प्रो० मैक्समूलरादि विद्वानों ने अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश की है कि किसी तरह वेदों से एकेश्वरवाद न सिद्ध होने पावे पर अनिच्छा से भी उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा है कि वेदों के अन्दर किसी २ जगह ऐसे स्पष्ट तौर पर एकेश्वर की पूजा का विधान किया गया है कि उससे इन्कार किया ही नहीं जा सकता। ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त (१. १२१) का निर्देश करते हुए वे कहते हैं:—

'I add only one more hymn (Rig 1. 121) in which the idea of one God is expressed with such power and decision that it will make us hesitate before we deny to the Aryan nations an instinctive monotheism." (History of Sanskirt Literature) P. 568.

वेदों में 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥' "प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव", "यो देवानां नामधा एक एव, य एक इद्व्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।", "न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते......स एष एक वृदेक एव", इत्यादि हज़ारों मन्त्रों के होते हुए भी पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों को बहु देवतावादी अथवा हीनदेवतावादी सिद्ध करने का ठेका लिया हुआ है यह आश्चर्य और खेद की बात है।

इसी तरह समाज संगठन के विषय में वेदों में "संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।' इत्यादि जो उपदेश जाते जाते हैं उनकी उच्चता को देखते हुए सामाजिक विकासवाद की कल्पना का स्वयं खण्डन हो जाता है। सार्वजनिक प्रेम का जो आदर्श वेदों में 'दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् मित्रस्याहं चक्षुषा समीक्षे' इत्यादि मन्त्रों द्वारा दिया गया है क्या उसके सामने वैदिक आर्यों को जङ्गली मानने की कल्पना ठहर सकती है? वेदों के अन्दर वर्णित राजपद्धति भी एक अत्यन्त उत्कृष्ट स्थिति का बोध कराती है, क्यों कि वहां 'आत्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवास्तिष्ठाविचाचलिः। विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्।' इत्यादि मन्त्रों द्वारा राजा के प्रजा द्वारा चुनाव, 'विशि राजा प्रतिष्ठितः' इत्यादि द्वारा प्रजा की इच्छा पर राजा का आधार और 'सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।' इत्यादि द्वारा ग्रामीण और राष्ट्रीय सभाओं का साफ़ प्रतिपादन किया है। वेदों को केवल मानवीय रचना मानते हुए भी इस प्रकार सामाजिक विकासवाद की कल्पना बड़ी निर्मूल सी प्रतीत होने लगती है। पर हम इस से भी आगे जाते हैं। वेदों के निष्पक्षपात अनुशीलन से हमें पता लगता है कि केवल वेद ही है जो मनुष्यमात्र की सर्वतोमुखी उन्नति अथवा Harmonious development के साधनों का स्पष्ट रीति से उल्लेख करता है। केवल वेद ही है जिसमें संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण शब्दों में वर्णित गुण-कर्मानुसार चार वर्णों में मनुष्य जाति का विभाग संसार की समस्त कठिन समस्याओं को हल करके किसी भी जाति के सामूहिक जीवन को सुखमय बना सकता है। वेद को छोड़कर और कोई भी धर्म ग्रन्थ नहीं है जिसमें श्रद्धा और तर्क, ज्ञान और कर्म, त्याग और भोग का अत्यन्त सुन्दर मेल करके मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी क्रियात्मक मध्य मार्ग का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया हो। वेद के सिवाय कोई ऐसा धर्म ग्रन्थ नहीं है जिसे न केवल धर्म और भाषा का बल्कि विज्ञान का भी मूल कहा जा सके और जिसमें विज्ञान वा प्रकृति-नियम-विरुद्ध बातों का सर्वथा अभाव हो, यहां तक कि उसमें

वर्णित वैज्ञानिक सृष्टि क्रम को देखकर जैकोलियर सरीखे फ्रांसीसी विद्वान् आश्चर्य के साथ लिखें: –

'Astonishing fact! The Hindu Revelation (Veda) is of all revelations the only one whose ideas are in perfect harmony with modern science, as it proclaims the slow and gradual formation of the worlds."

अर्थात् बड़े आश्चर्य की बात है कि जितने भी इस समय ईश्वरीय ज्ञान के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथ मिलते हैं उनमें केवल वेद ही ऐसा है जिसके विचार आधुनिक विज्ञान के सर्वथा अनुकूल हैं। ईश्वरीय ज्ञानवादियों का दावा है कि सर्वज्ञ जगदुत्पादक भगवान् ने वेदों के अन्दर न केवल नैतिक जगत् (Moral Govt) के बल्कि प्राकृतिक जगत् के अन्दर पाये जाने वाले अटल नियमों का भी प्रतिपादन कर दिया है, ताकि प्रत्येक मनुष्य उनसे लाभ उठाकर अपने जीवन को यथार्थ सुखमय बना सके। वैद्यक ज्योतिष इत्यादि अनेक अनेक विद्याओं का मूल स्पष्ट तौर पर वेदों में पाया जाता है। 'अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।' इत्यादि मन्त्र कितने साफ शब्दों में जल-चिकित्सा का तत्व बता रहे हैं। 'यत्रोषधीः समग्मत राजानः समिताविव। विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः॥' इत्यादि मन्त्र कितनी सुन्दरता से उत्तम वैद्य का लक्षण बता रहे हैं। इसी तरह 'ये ऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्' इत्यादि में रोग जन्तुओं का कैसा साफ़ वर्णन पाया जाता है। अथर्ववेद के तो सैंकड़ों सूक्त औषधियों के गुण वर्णन से भरे हुए हैं। इस बात को देखते हुए और साथ ही आयुर्वेद ऋग्वेद या अथर्ववेद का उपवेद है इस परम्परागत विश्वास को ध्यान में रखते हुए, वेदों के विद्याओं के मूल होने से कोई इन्कार नहीं कर सकता। ज्योतिष वेद के अङ्गों में से एक है जिस को जानना वेद के यथार्थ ज्ञान के लिये आवश्यक है यह भी स्मरण रखने योग्य बात है।

अब तक के लेख से ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता और सामाजिक विकासवादादि की असत्यता को प्रमाणित करने का यत्न किया गया है। साथ ही वेदों की अन्तरीय साक्षि से उन्हें ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने की कोशिश की गई है क्योंकि ये सब बातें केवल मानवीय रचना में पाई जानी अत्यन्त कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव हैं। विषय को ज़रा अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं यहां पर महर्षि गार्ग्यायन प्रणीत प्रणववाद नामक एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ के आधार पर चारों वेदों के प्रतिपाद्य विषयों का संक्षेप से निरूपण करना चाहता हूं और उसके पश्चात् मन्त्र रचना आदि के सम्बन्ध में कुछ विचार किया जाएगा।

ऋग्वेद के विषय में महर्षि गार्ग्यायन का निम्न लेख है 'अस्मादय प्रजायेत, अनेनेदं विनश्यति अत्रेदं तिष्ठति एतस्य यं कालः, यतःसर्वाणि भूतानि भवन्ति भविष्यन्ति वा, यतश्चायमात्मा तिष्ठति, येन नियमेनायमात्मा परिवर्तते, विवतते प्रवर्तते निवर्तते च। इत्यादि ज्ञानप्रकारमात्रमृग्वेदेन बोध्यं भवति। तस्माज्ज्ञानार्थमृग्वेदं विद्धीत्युपदेशः॥' पृ० २६६

तात्पर्य यह कि जगत की उत्पत्ति धारण संहार आत्मा का स्वरूप इत्यादि ज्ञान के सब विषयों का ऋग्वेद के अन्दर प्रतिपादन है अतः ज्ञानप्राप्ति के लिए उसका अवश्य अध्ययन करना चाहिए।

यजुर्वेद के विषय में प्रणववाद के षष्ठ तरङ्ग में महर्षि गार्ग्यायन इस प्रकार बतलाते हैं।

यजुर्वेदश्चेत्यं क्रियानिष्ठो वेदितव्यः। कारणव्यवहारः, कार्यकारणयोः सम्बन्धः, कर्तृकरणसम्बन्धः, कर्तृकारणयोर्व्यवहारः, कर्तृकरणकार्यप्रयोजनसम्बन्धः, अन्यदपि तदावश्यकं च सर्वं यजुर्वेदोपन्यस्तं भवति। एवं सर्वेषमुत्पत्तिमात्रविधानं च यजुर्वेदेन बोध्यम॥ पृ० २७०

तात्पर्य यह कि यजुर्वेद मुख्यतः क्रियापरक है अतः इसके अन्दर कारण का व्यवहार, कार्य कारण

का सम्बन्ध कर्ता और साधन का सम्बन्ध इत्यादि तथा सबकी उत्पत्ति मात्र का विधान किया गया है। यजुर्वेद के प्रतिपाद्य विषय की ही व्याख्या में महर्षि गार्ग्यायन ने विस्तार से १६ संस्कारों का विवरण किया है जो द्रष्टव्य है।

सामवेद के प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध में महर्षि गार्ग्यायन 'प्रणववाद' के सप्तम तरङ्ग में लिखते हैं--

'तस्माज्ज्ञानपरा क्रियापरा च या शक्तिः सैवेच्छारूपा सर्वार्थदायिनी सामवेदव्यवस्थिता भवति।

ऋग्वेदो ज्ञाननिष्ठः स्याद्दहमो धर्मबोधकः।
यजुर्वेदः क्रियानिष्ठः साम त्विच्छापरः स्मृतः।
ज्ञानक्रियाविशेषः स्याच्चेच्छा सम्बन्धरूपिणी।
त्रिभिश्च भासते सर्वं स एव प्रणवः परः॥

अभिप्राय यह है कि सामवेद के अन्दर उस दिव्य इच्छाशक्ति (इसी को प्रार्थना उपासना इत्यादि का नाम दिया जा सकता है) का प्रतिपादन किया गया है जिसमें ज्ञान और क्रिया दोनों शामिल हैं और जो सब अर्थों को सिद्ध करने वाली है। इस प्रकार इन तीन वेदों में क्रमशः मुख्य रूप से प्रतिपादित ज्ञान क्रिया और इच्छा के द्वारा सम्पूर्ण तत्त्व का भान होने लगता है। इसी का विस्तार करते हुए फिर उसी तरङ्ग में बताया गया है कि "यथा शक्त्या विद्युदुपस्थितिः ध्यानाद्युपस्थितिः मानसविचारः, इन्द्रियनिग्रहादिशक्तिः सर्वातीतशक्तिमत्त्वम्, जननमरणशक्तिः, धर्मार्थ काममोक्षाणां तत्त्वव्यवहारश्चेत्यादिसर्वम् सामवेदे स्पष्टमुक्तं भवति॥' अर्थात् जिस शक्ति के द्वारा ज्ञान ध्यानादि की उपस्थिति हो जाती है, इन्द्रियोंको वश में करने, अपनी इच्छा से उत्पन्न होने और मरने, अद्भुत शक्ति सम्पादन करने तथा धर्मार्थ काम मोक्ष के तत्व व्यवहार का सारा वर्णन सामवेद में स्पष्ट तौर पर पाया जाता है।

अथर्व वेद के प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध में महर्षि गार्ग्यायन प्रणववाद के ८म तरङ्ग में यों लिखते हैं "अथातः सर्वविधेयः समाहारार्थको ह्याथर्वणो वेदः। अस्मिन् वेदे क्रियामात्रस्य व्यवहारः, तत्त्वज्ञानादिलक्षणम्। कर्माद्युपसंहार, सर्वाश्च ब्रह्मविद्याः सर्वं च ब्रह्मशास्त्रमन्तःप्रतिष्ठित माख्यातम् अतश्चाथर्ववेदज्ञानेनैव सर्वसंसारतत्त्वस्य बोधो भवतीति विज्ञेयम्। अणूनां च प्रत्येकं यादृशी क्रिया तादृश्येवाथर्ववेदेन बुध्यते।" पृ० ४३४

अर्थात् अथर्ववेद में ज्ञान कर्म इच्छा तीनों का समाहार है इस वेद में तत्वज्ञान इत्यादि का लक्षण तथा सम्पूर्ण ब्रह्मविद्या का विस्तार से प्रतिपादन है सृष्ट्युत्पत्ति के समय अणुओं की कैसी क्रिया होती है इत्यादि विषयों का भी ज्ञान अथर्ववेद के पढ़ने से भली भांति हो सकता है।

इन महत्व पूर्ण उद्धरणों से वेदों के प्रतिपाद्य-विषय की कुछ स्पष्ट कल्पना हो सकती है। यह भी पता लग सकता है कि वास्तव में वेद जादू टोने वगैरह की फ़ज़ूल बातों तथा व्यर्थ के यज्ञ यागादि से भरे हुए नहीं है बल्कि उनमें सृष्ट्युत्पत्ति इत्यादि विषयक अत्यन्त उत्कृष्ट तत्त्वों का प्रतिपादन और उन साधनों का वर्णन है जिन से प्रत्येक व्यक्ति आन्तरिक और बाह्य शक्तियों का विकास करके परमानन्द प्राप्त कर सकता है। इस प्रकरण में प्रणववादसे ही ऋग्वेद यजुर्वेदादि शब्दों की व्युत्पत्ति का उल्लेख कर देना भी कुछ अनुचित न होगा।

"ऋग्वेदसंहिता इत्यस्य ऋच्यते ज्ञायते ब्रह्मतत्त्वं सर्वं संक्षिप्त यया सा ऋग्वेदसंहिता, यजते क्रियते ब्रह्मतत्त्वभासनं सङ्क्षिप्त यत्र सा यजुर्वेदसंहिता। साम्यते इष्यते ज्ञानक्रिया इति सामवेदसंहिता तथा चर्व्यते प्राप्यते ब्रह्मतत्त्वमेतत्त्रयफलमित्यथर्ववेदसंहिता पदार्थः।"

चारों वेद संहिताओं का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मतत्व है इस बात को 'प्रणववाद' में अच्छी प्रकार स्पष्ट किया गया है। चारों वेदों के अध्ययन से ही ब्रह्मतत्व का ज्ञान हो सकता है पृथक् २ नहीं

ऐसा वहाँ सिद्धांत प्रकट किया गया है और उसके लिये 'ऋग्यजुःसामाथर्वप्रतिष्ठितं ब्रह्म विद्धि',

स ऋग्वेदसिद्धो विशुद्धोऽयमात्मा,
यजुर्वेदमूलप्रयुक्तोऽयमात्मा ।
तथा सामगः सामगीतोऽयमात्मा,
ह्यथर्वस्थितो युक्तिमूलश्च वेद्यः ॥
ऋग्वेदैर्वा यजुर्वेदैः, तत्सामाथर्वसञ्ज्ञकैः ।
प्रत्येकं तन्निरर्थं स्याच्चतुर्भिर्ब्रह्म बुध्यते ॥

इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों के वचनोंको उद्धृत किया गया है।

इतनी विवेचना से पता लग सकता है कि हम आर्य लोग क्यों वेद को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करते हैं और क्यों हमारा यह विश्वास है कि परम कारुणिक भगवान् ने मनुष्य मात्र के हित के लिये वेदों के द्वारा मनुष्य को सर्वाङ्गीण उन्नति के तत्वों का ज्ञान कराया। यह बात साफ़ है कि जो भी ग्रन्थ ईश्वरीय होने का दावा करता है उसके अन्दर सृष्टिनियम वा विज्ञान विरुद्ध कोई बात न होनी चाहिये, उसके अन्दर परमेश्वर के पवित्र गुण कर्म स्वभाव का ही प्रतिपादन होना चाहिये, उसके अन्दर शारीरिक, मानसिक, सामाजिक उन्नति और पवित्रता के साधनों का वर्णन आवश्यक होना चाहिये। परमेश्वर पक्षपाती न सिद्ध हो अतः वह ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में ही दिया जाना चाहिये। ये सब बातें ज़िन्द अवस्ता, बाइबल, कुरान इत्यादि में चरितार्थ नहीं होतीं क्योंकि उनमें पृथ्वी के चपटी होने, केवल कुन इत्यादि शब्द द्वारा सृष्टि उत्पन्न होने, परमेश्वर के पश्चात्ताप करने, ख़ुदा के फ़रिश्तों द्वारा उठाये जाने इत्यादि का वर्णन है जो बातें तर्क और विज्ञान से टाकरा (टक्कर ?) खाती हैं। इन ग्रन्थों को ईश्वरीय मानने वाले भी, ये सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर द्वारा दिये गये, इस बात का दावा नहीं करते। केवल वेद ही है जिस के अन्दर ईश्वरीय ज्ञान की ये परीक्षायें सम्पूर्ण रूप से लागू होती हैं और जिसके अनुयायियों का यह दावा है कि वेद ही भाषा धर्म और विज्ञान का मूल है। अब मन्त्ररचना पर थोड़ा सा विचार करके वेद की ईश्वरीय ज्ञानता के सम्बन्ध में किये जाने वाले आक्षेपों अथवा शंकाओं की संक्षिप्त आलोचना की जायगी।

ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता इत्यादि को मानते हुए भी बहुत से सज्जन ये समझते हैं कि वेदमन्त्र ऋषियों के बनाये हुए हैं। उनका कहना है कि वेदोक्त ज्ञान को तो ईश्वरीय माना जा सकता है पर मन्त्ररचना को ईश्वरीय मानना सर्वथा असंभव है। यदि मन्त्ररचना भी ईश्वरीय हो तो वेदों में प्रार्थनाएं नहीं पाई जानी चाहिएं, पर वेदों का तो बहुत सा हिस्सा प्रार्थनाओं से भरा हुआ है, इतना ही नहीं, स्वयं वेद मन्त्रों में ऋषियों के नाम तथा हम इन मन्त्रों को बनाते हैं इस आशय के वाक्य पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ

अकारित इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ॥
ऋ० १ । ६३ । ६

सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय ॥
ऋ० १ । ६२ । १३

ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै॥
१ । ८८ । ४

प्रवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः ॥ १ । ७८ । ५

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे ।
द्युम्नैरभिप्रणोनुमः ॥ १ । ७८ । १

इत्यादि मन्त्रों को प्रस्तुत किया जा सकता है जिनमें गोतम रहूगणादि ऋषियों के नाम स्पष्ट तौर पर आये हैं। उनका यह भी कहना है कि वेदों में 'पूर्व', 'नूतन' शब्दों के द्वारा प्राचीन और नवीन का अनेक स्थानों पर निर्देश किया गया है इत्यादि।

मैं स्वीकार करता हूं कि इस उपर्युक्त आशङ्का के लिये आधार अवश्य विद्यमान है, इसे हम निर्मूल कह कर नहीं टाल सकते, पर हमें इस बात को

याद रखना चाहिये कि मन्त्रों अथवा सूक्तों के साथ जिन ऋषियों के नाम लगे हुए हैं वे उनके सत्यार्थ के प्रसिद्ध द्रष्टा और प्रचारक थे न कि बनाने वाले। ऋषि शब्द के विषय में ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः। तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्शत् त ऋषयोऽभवँस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते।" "ऋषयो मंत्रद्रष्टयो भवन्ति" इत्यादि निरुक्त जैसे प्राचीन ग्रन्थों के वाक्यों की उपेक्षा कर हम अपनी कल्पना को ही उससे अधिक प्रामाणिक नहीं मान सकते हैं। हिरण्यगर्भ, श्रद्धा, शिवसंकल्पादि सूक्तों के पढ़ने से साफ़ पता लगता है कि ऋषियों नाम प्रायः किसी विशेष विषय अथवा सूक्त गत भाव के प्रचार के कारण पड़ जाते थे। उदाहरणार्थ ऋ० १०।१२१ का ऋषि हिरण्यगर्भ माना गया है क्योंकि उसका प्रारम्भ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे से होता है। ऋ० १०।१५१ का देवता श्रद्धा है। ऋषि का नाम भी श्रद्धाकामयनी माना गया है। ऋ० १०।८२ का देवता विश्वकर्मा है, ऋषि का नाम भी विश्वकर्मा-भौवन माना गया है। १०।१२५ का देवता वागाम्भृणी और ऋषि का नाम भी वागाम्भृणी माना गया है। ५।५१ के स्वस्तिवाचक मन्त्रों का ऋषि भी स्वस्त्यात्रेय बताया गया है। यजुर्वेद अ० ३४ के यज्जाग्रतो दूरमुदेति इत्यादि ६ मन्त्रों का, जिनके अन्त में तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु यह पाठ आया है, ऋषि भी शिवसंकल्प बताया गया है। इस तरह के सैकड़ों उदाहरणों से ऋषि विषयक उपर्युक्त स्थापना की पुष्टि होती है। यदि वैसा न मानकर ऋषियों को मन्त्रोंका कर्ता ही माना जाए तो अनेक आपत्तियां आती हैं। उदाहरण के तौर पर कई मन्त्रों के पांच छः ऋषि बतलाये गए हैं। क्या उन सब ने कौंसिल करके मन्त्र बनाये? ऋ० ५।२४ पर 'बंधुः सुबंधुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा ऋषयः,' ५।२५-२६ पर वसूयव आत्रेया ऋषयः, ५।२७ पर त्र्यरुण स्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽत्रयो ऋषयः ऐसा लिखा है। सामवेद ३।१।५३ के 'अभिप्रवः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे' इस एक ही मंत्र का 'वालखिल्याः' ऐसा ऋषि बताया है। साम पूर्वार्चिक ६। २।७ के ४थे मंत्र 'प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतम्' का ऋषिगणः ऐसा ऋषि बताया गया है। सामवेद ६। १।३ का भरद्वाज काश्यप गोतम अत्रि विश्वमित्र जमदग्नि वशिष्ठ इनको ऋषि बताया गया है। क्या इससे स्पष्ट नहीं पता लगता कि मंत्रार्थ का विशेषरूप से मनन करके प्रचार करने वालों को ही ऋषि नाम दिया गया है। सामवेद उत्तरार्चिक १।२ के मं० २० 'प्र सोम देववीतये' के 'भरद्वाजादयः सप्त ऋषयः' कह कर ऋषि बताये गये हैं। सामवेद उत्तरार्चिक ६।३ के 'अग्न आयूंषि पवस असुवोर्जमिषं च नः' इस एक ही मंत्र के 'शतं वैखानसाः' कह कर १०० ऋषि बताये गए हैं। बस अधिक उदाहरण देकर निबंध को लम्बा करने की ज़रूरत नहीं। इतनी विवेचना से यह बात निःसन्दिग्ध रीति से स्पष्ट हो जाती है कि ऋषि का अर्थ मंत्रकर्ता नहीं बल्कि मन्त्रद्रष्टा ही है। सच्ची बात तो यह है कि अत्रि जमदग्नि विश्वमित्र भरद्वाज प्रियमेध वशिष्ठ गोतम इत्यादि नाम वेद मन्त्रों से ही देखकर ऋषियों ने अपने तथा अपनी संतानके रक्खे। इसके लिए—

सर्वेषां तु स नामानि, कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ, पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

इत्यादि मनुस्मृति में पाये जाने वाले वचन प्रमाण हैं। अब भी ईसाई लोग बाइबल और मुसलमान कुरान वगैरह में आए हुए नामों का प्रायः प्रयोग करते हैं, फ़र्क केवल इतना है कि वेद में विश्वमित्र प्रियमेध भरद्वाज इत्यादि शब्द विशेष गुण वाचक थे पीछे उन्हें संज्ञावाचक बना दिया गया। इस विषय में मीमाँसा दर्शन में जो वेद की अनित्यता के सम्बंध में शङ्का उठाकर उसका 'परं तु श्रुति सामान्यमात्रम्' अर्थात् वेदमें जो शब्द आये हैं वे सामान्यवाचक हैं वे सब संज्ञावाचक नहीं इस प्रकार

समधान किया गया है वह विशेष द्रष्टव्य है। गोतम कुत्स इत्यादि शब्द वेद में स्तुतिकर्ता तथा बुद्धिमान के वाचक हैं। ब्रह्म शब्द का अर्थ धन अन्न इत्यादि निरुक्त में दिया ही है इसलिए 'अकारि त इंद्र गोतमेभिर्ब्रह्माणि' इत्यादि ऊपर उद्धृत मंत्रों में गोतम वंशज ऋषियों द्वारा वेद मंत्रों के बनाये जान का वर्णन है ऐसा मानने के लिए कोई प्रबल प्रमाण नहीं। 'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अथ ते सुम्नमीमहे ॥ तेजोऽसि तेजो मयि धेहि' इत्यादि प्रार्थनाओं के विषय में यही कहा जा सकता है कि जैसे पिता वा शिक्षक पुत्र या शिष्य को प्रार्थना करना सिखाता है वैसे ही पितृस्थानीय परम गुरु परमेश्वर ने भक्त पुत्रों के मुख में इन शब्दों को रखा है। प्राचीन नवीन का जो उल्लेख है उसका भी एक सीधा समाधान है। हमारे विश्वासानुसार वेद सब कालों के लोगों के उपकार के लिए सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकाशित किए गए, इसलिए उनके अन्दर 'अग्निः पूर्वेभि ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।' ये नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अंगिरसो गा अविन्दन्। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे।' इत्यादि मंत्रों का पाया जाना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि हम प्रार्थना करते हुए 'हमारे पूर्वज जिस तरह भगवान् की स्तुति करते थे वैसे हम भी करें' इत्यादि शब्दों का उच्चारण करें तो इससे वेदमन्त्रों की नवीनता नहीं पता लगती बल्कि वेदों की सार्वकालिकता सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त 'देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते' इत्यादि मन्त्रों के देखने से जिनमें 'पूर्वे' के साथ वर्तमान काल की क्रिया का प्रयोग किया गया है यह भी निर्देश स्पष्ट मिलता है कि पूर्व का अर्थ वेद में पूर्ण भी हो सकता है। इस विषय पर अभी बहुत कुछ विचार करने की आवश्यकता है यहां केवल थोड़े से निर्देश कर दिए गये हैं। समय अत्यन्त स्वल्प होने के कारण विस्तार में जाना असम्भव है।

अनेक सज्जन वैदिक ज्ञान को ईश्वरीय मानते हुए भी मन्त्ररचना को ऋषिकृत मानते हैं उनका ऐसा विश्वास है कि विशेष साधना और तपस्या के द्वारा ऋषियों को जो दिव्य ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ उसे ही उन्होंने मन्त्ररूप में धर दिया जिनके संग्रह को अब वेदसंहिता के नाम से कहा जाता है। मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि कुछ समय पूर्व तक मुझे स्वयं भी इस कल्पना की संभावना में विश्वास था पर प्रश्न की गहराई में जाने पर इसके अन्दर अनेक दोष साफ दीखने लगते हैं। (१) शिक्षकादि से बिना सिखाये हुए लोगों को ध्यान इत्यादि का ठीक मार्ग किस तरह ज्ञात हुआ? (२) दिव्य ईश्वरीय ज्ञान जो ऋषियों को प्राप्त हुआ वह किस रूप में था? क्या बिना किसी प्रकार के शब्दों के ज्ञान सम्भव है? (३) ऋषियों को जो ज्ञान प्राप्त हुआ उसको उन्होंने बिलकुल शुद्ध रूप में अपनी भ्रांत कल्पनाएं सर्वथा मिलाये बिना रक्खा इसका क्या प्रमाण है? (४) भाषा की उत्पत्ति क्या केवल मानवीय यत्न से सम्भव है? इनके अतिरिक्त जब हम भाषा विज्ञान के इस प्रसिद्ध सिद्धांत को दृष्टि में रखते हैं कि विचारों और भाषा का नित्य सम्बन्ध है जैसा कि निम्नलिखित प्रसिद्ध विद्वानों के लेखों से मालूम होता है तब तो हमें स्पष्ट भाषा का भी मूल ईश्वरीय मानना पड़ता है और उसके माने बिना हमारा गुजारा चल ही नहीं सकता।

हेर्डर नामक भाषाविज्ञ का कथन है Without language man could never have come to his reason and senses.

शेलिंग ने कहा है Without langnuage it is impossible to conceive philosophical, nay even any human consciousness.

हीगल का कथन है We think in names.

सर विलियम हैमिल्टन ने कहा है Words are the fortress of thought.

प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर ने इस सिद्धांत को प्रबल युक्तियों से सिद्ध करते हुए इसे ही सारे भाषा विज्ञान और दर्शन शास्त्रका आधार बता कर यहां तक लिख दिया है कि 'We think in words' must become the charter of all exact philosophy in future. पूर्वीय विद्वानों ने तो 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे' इत्यादि द्वारा इसके सिद्धांत का स्पष्ट प्रतिपादन किया ही है। अतः आर्योंके परम्परागत इस विश्वास को कि वेदों का शब्द अर्थ सम्बन्ध नित्य है निराधार और युक्ति विरुद्ध नहीं माना जा सकता। भाषाओंके तुलनात्मक अनुशीलन से वैदिक भाषा भारतीय ही नहीं बल्कि दूसरे देशों में प्रचलित सब भाषाओं की भी जननी है तथा किसी समय यही सब देशों में बोली जाती थी, यह स्पष्ट तौर पर सिद्ध किया जा सकता है। 'बाप' हडिगर इत्यादि प्रसिद्ध भाषा-विज्ञानियों ने भी 'At one time Sanskrit was the one language spoken all over the world' आदि वाक्य लिखकर इसी स्थापना का समर्थन किया है। इस लिए वैदिक भाषा पर किसी एक देश विशेष की भाषा होने का आक्षेप नहीं किया जा सकता। मन्त्र रचना की अद्भुतता भी उसकी ईश्वरीयता की स्पष्ट साक्षी देती है। मनु इत्यादि प्राचीन मुनियों तथा श्री मध्वाचार्य, ऋषि दयानन्द आदि आचार्यों का सिद्धांत था कि वेद के प्रत्येक मन्त्रके आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक ये तीन अर्थ सम्भव हैं। कहीं स्पष्ट और कहीं अस्पष्ट तौर पर इनका ज्ञान होता है। 'अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च। आध्यात्मिकं च सततं वेदांताभिहितं च यत्॥' मनु० ६। ८३ इत्यादि मनुस्मृति के श्लोकों से यही बात पता लगती है। निरुक्तकार यास्क मुनि ने भी अनेक मन्त्रों के इसी प्रकार दो २ तीन २ अर्थ किए हैं। अग्नि सूक्त, रुद्र सूक्त, ब्रह्मचर्य सूक्त, इन्द्र सूक्त इत्यादि के मन्त्रों में किस तरह भौतिक अर्थों के साथ साथ आत्मा परमात्मा इत्यादि तत्वों का प्रतिपादन किया गया है यह देखकर विद्वानों की बुद्धि चकित हुए बिना नहीं रह सकती। इसीलिए प्रसिद्ध दर्शनकार कपिल ने कहा है 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे।' अर्थात वेदों में वाक्यों की रचना बुद्धिपूर्वक है ऐसे ही ऊटपटांग नहीं। अब वेदों पर जो आक्षेप किए जाते हैं उनमें से कुछ एक का संक्षेप से यहां विचार किया जायगा।

वेदों पर पहला मुख्य आक्षेप यह किया जाता है कि इनके अन्दर हिंसा का बहुत वर्णन है। शत्रुओं को मारने का ज़ोरदार शब्दों में विधान करने वाले वाक्यों से वेद भरे हुए हैं। 'उद्वृह रक्षः सह मूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि।' अर्थात् हे इन्द्र शत्रुओं को जड़ से उखेड़ दो, ऊपर नीचे और बीच में से उन्हें काट डालो इस आशय के सैकड़ों मन्त्र चारों वेदों में पाये जाते हैं। इस प्रकार की शङ्काओं के उत्तर में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि वेद में अनमित्रता अर्थात् सर्वथा शत्रुरहितता को ही आदर्श माना गया है और 'मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्तां मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' तथा 'अनमित्रं नः पश्चादनमित्रं न उत्तरात्। इन्द्रानमित्रं नोऽधरादनमित्रं पुरस्कृधि' इत्यादि प्रार्थनाएं की गई हैं। पर यतः यह सम्भव नहीं कि सब के सब मनुष्य धर्मात्मा बन जाएं और युद्ध इत्यादि की कभी ज़रूरत ही न रहे, वेद में यह क्रियात्मक उपदेश किया गया है कि जनता अथवा समाज के हित के लिये यदि तुम्हें युद्ध करना अनिवार्य मालूम हो तो उसमें संकोच न करो। उस समय समाज की उन्नति के रास्ते में रोड़ा अटकाने वाले नीच पुरुषों के खूब अच्छी तरह से दाँत खट्टे करो, पर ऐसा करते हुए भी 'कारागार' इत्यादि की सज़ा की आज्ञा देने वाले न्यायाधीश की न्याईं जहां तक हो सके अपने मन को फिर भी द्वेष के भावों से दूर रक्खो, इसी उच्च शिक्षा को वेद में विजेता के मुख से 'असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं

नो अस्तु' अर्थात् हमारे लिये सब दिशाएं शत्रु-रहित होवें हम पराजित शत्रु के साथ भी हम द्वेष नहीं करते, हमें सब तरफ़ से निर्भय प्राप्त होवे इस तरह के महत्वपूर्ण शब्द रख कर दिया गया है। इस तरह के मन्त्रों में यह साफ़ कर दिया गया है कि वेद जिस युद्ध को क्षत्रियों का आवश्यक कर्तव्य बताता है वह भी द्वेष से प्रेरित हो कर और बदला निकालने के भाव से नहीं किया जाता बल्कि केवल समाजहित और देशरक्षा के ख्याल से। इसीलिये अद्वेष विषयक 'विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्' 'अद्वेषे द्यावापृथ्वी हुवेम' 'आरे द्वेषांसि सनुतर्दधाम' इत्यादि प्रार्थनाएं प्रायः सब सूक्तों में पाई जाती हैं।

वेदों पर दूसरा मुख्य आक्षेप पुनरुक्ति का किया जाता है। यह कहा जाता है कि वेदों के अन्दर व्यर्थ बहुत से मन्त्र और सूक्त बार २ दुहराये गये हैं। सामवेद के ७८ मन्त्रों को छोड़ कर और सब प्रायः ऋग्वेद से लिये गये हैं। अथर्ववेद में भी हज़ारों मन्त्र, बीसियों सूक्त के सूक्त ऋग्वेद और यजुर्वेद से नकल कर के रख दिये गये हैं। यजुर्वेद में भी ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों की व्यर्थ पुनरुक्ति पाई जाती है। इस पुनरुक्ति को दूर करने के लिये कटिबद्ध स्वामी हरिप्रसाद जी जैसे वैदिक मुनि ने तो केवल ७८ मन्त्रों का शुद्ध सामवेद पृथक् पुस्तक रूप में छपवा भी दिया है। यहाँ यह बात स्मरण रखना चाहिए कि वेदों पर यह आक्षेप कोई नया नहीं है। गौतम मुनि के न्यायदर्शन में भी पूर्वपक्ष के तौर पर उसका निर्देश किया गया है, उसके उत्तर में गौतम मुनि ने बताया है कि वेदों में अभ्यास अर्थात् सप्रयोजन पुनरावृत्ति पाई जाती है, निरर्थक पुनरुक्ति नहीं। पर केवल इतना कहने से शङ्का का समाधान नहीं होता। पुरुष सूक्त जैसे कई सूक्त चारों वेदों में पाये जाते हैं। मन्त्रों में कहीं कहीं पाठभेद है जो अर्थ को साफ़ करने में सहायक है। उदाहरणार्थ, पुरुष सूक्त के प्रथम ही मन्त्र में ऋग्वेद और अथर्ववेद में 'विश्वतो वृत्वा' और यजुर्वेद में 'सर्वतस्पृत्वा' पाठ है। यजुर्वेद में 'उतामृतत्वस्येशानः' और अथर्व में 'उतामृतत्वस्येश्वरः' यह पाठ है। यजु० में 'ऊरू तदस्य यद् वैश्यः' और अथर्व में 'मध्यं तद् य यद् वैश्यः' इस तरह के पाठ हैं। इतने उदाहरणों से पाठभेद की सार्थकता समझ में आ सकती है। कई मन्त्रों की पुनरावृत्ति प्रकरणभेद से हुई है। 'शं नो देवी रभिष्टये' यह मंत्र एक स्थान पर जल और दूसरे स्थान पर ईश्वर के प्रकरण में आया है। इसी तरह 'अग्ने नय सुपथा' यह मन्त्र एक स्थान पर ईश्वर और दूसरे स्थान पर राजा के प्रकरणमें आया है। ऐसे ही अन्य सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं। जो वेद मन्त्र चारों वेदों में आये हैं उनका ऋग्वेद में विज्ञानपरक व्याख्यान समझना चाहिये। कई स्थानों पर पुनरावृत्ति अर्थ की दृढ़ता और विषय को अत्यावश्यक बतलाने के उद्देश्य से भी की गई है। इतने लेख से आशा है वेदों पर पुनरुक्ति का आक्षेप करने वाले महानुभावों की शंका का कुछ समाधान अवश्य हो जायगा।

अनेक सुप्रसिद्ध महानुभावों का, जिनमें दौर्भाग्य से स्वनामधन्य महात्मा गांधी जी का नाम भी शामिल है, यह कथन है कि वेद बाइबल, क़ुरान ज़िन्द अवस्ता सब समान रूप से ईश्वरीय वा (Inspired) हैं और यतः इन सबका प्रकाश (Revelation) अपूर्ण आत्माओं द्वारा हुआ अतः वे सब अपूर्ण हैं अर्थात् उनमें से कोई निर्भ्रांत नहीं। ऐसे महानुभावों के विचार में ऋषि दयानन्द ने वेदों के एक २ अक्षर को सत्य और उन्हें विज्ञान तथा धर्म का मूल मानकर स्वयं मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी होते हुए भी सूक्ष्म रूप से उसे प्रचलित किया।

हम ऐसे महानुभावों को आदर की दृष्टि से देखते हैं। महात्मा गांधी जी का तो नाम लेते ही मेरा सिर आदर भाव से नत हो जाता है, पर खेद है

कि वेदादि विषयक उनके विचारों का हम ज्यादह मूल्य नहीं समझ सकते। वे ख़ुद भी यह दावा नहीं करते कि उन्हें वेद के विषय में कोई निश्चित ज्ञान (First hand information) है। गलती से वे ऐसा समझते प्रतीत होते हैं कि स्वामी दयानन्द जी ने ही सबसे पहले वेदों की निर्भ्रान्तता अथवा उनके अक्षर २ के सत्य होने का सिद्धान्त आविष्कृत किया। वास्तव में आर्ष और संस्कृत साहित्य का अनुशीलन किया जाय तो पता लगेगा कि मनुस्मृति ब्राह्मण दर्शन उपनिषदादि के लेखक ऋषि मुनियों और श्री शंकराचार्य श्री रामानुजाचार्य श्री मध्वाचार्यादि सभी आचार्यों का ऐसा ही मन्तव्य था। इसे ऋषि दयानन्द का आविष्कार समझना बड़ी भारी भूल है। महात्मा जी तथा उनके इस विषयक विचारों से सहमति रखने वाले महानुभाव भले ही वेदों की निर्भ्रान्तता के सिद्धान्त को न मानें पर उन्हें यह कहने का अधिकार नहीं कि ऋषि दयानन्द ही इसका आदि प्रवर्तक था। ऐसा कहना उनकी आर्ष साहित्य से अनभिज्ञता को ही प्रकट करता है और कुछ नहीं। वेद को निर्भ्रान्त मानने का सूक्ष्म रूप की मूर्तिपूजा के साथ क्या सम्बन्ध है यह हमारी साधारण बुद्धि में तो नहीं आता। महात्माओं की दिव्य बुद्धि ही शायद इस तरह की कल्पना कर सके। वेद बाइबल और क़ुरान की ईश्वर आत्मा और पुनर्जन्म भक्ष्याभक्ष्य बलिदान इत्यादि विषयक शिक्षाओं में इतना ज़मीन आसमान का फर्क है कि इन सबको समान रूप से ईश्वरीय मानना किसी प्रकार भी संगत नहीं समझा जा सकता। एक ओर जहां आर्यों के विश्वासानुसार वेद एकेश्वर पूजा का उपदेश करता हुआ आत्मा को अमर मानकर पुनर्जन्म का स्पष्ट प्रतिपादन करता और मांस मद्यादि सेवन को पाप समझता है वहां बाइबल और क़ुरान अधिकतर ईसामसीह और मुहम्मद साहेब के नाम में विश्वास को मोक्ष प्राप्ति का एक मुख्य साधन बतलाते और मांसादि के सेवन को कुछ भी अनुचित नहीं समझते। वे पुनर्जन्म से सर्वथा इन्कार करते हैं। सृष्ट्युत्पत्ति ही नहीं आचार व्यवहार इत्यादि विषयों में भी उनके उपदेश एक दूसरे के साथ टकरा खाते हैं। इसके अतिरिक्त क्या यह माना जा सकता है कि परम कारुणिक भगवान् ने मनुष्यमात्र के यथार्थ ज्ञान के लिये एक भी पूर्ण पथ-प्रदर्शक नहीं बना दिया अथवा सृष्टि के प्रारम्भ में वह ज्ञान नहीं प्रकाशित कर दिया जिसे हम सम्पूर्ण ज्ञान की अन्तिम सीमा वा (Standard) कह सकें और जो सम्पूर्ण मानवीय त्रुटियों तथा अपूर्णताओं से सर्वथा मुक्त हो? क्या मनुष्य इस संसार सागर में केवल गोते खाने के लिए अथवा जीवन भर अन्धकार में भटकने के लिए बनाया गया है? हमारा यह विश्वास है कि प्राकृतिक चर्म-चक्षुओं की सहायता के लिए भगवान् ने जिस प्रकार अद्भुत सूर्य को रचा है इसी प्रकार आन्तरिक दृष्टि की सहायता और विशेषतया गूढ़ आध्यात्मिक तत्वों को समझकर परमानन्द प्राप्त कराने के लिये सर्वाङ्गीण उन्नति के पथ प्रदर्शक वेद रूपी सूर्य को उसी दयानिधि ने दिया है ताकि हम व्यर्थ अंधकार में न भटकते फिरें और उसके आश्रय से अपने जीवन को सफल कर सकें। यदि हम इस सूर्य के होते हुए भी अंधों की तरह भटकते फिर रहे हैं तो इसमें हमारा अपना ही दोष है। संस्कृत की कहावत मशहूर है 'नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति।' प्रकाश को प्राप्त करना यह हमारे अपने ही हाथ में है। भारतवासी ही क्यों, दूसरे देशवासी भी यदि परिश्रम करें और निष्पक्षपात होकर सत्य वैदिक ज्ञान को प्राप्त करने का यत्न करें तो निःसन्देह उन्हें सफलता प्राप्त हो सकती है। हां यदि हमारे मन में प्रकाश पाने की इच्छा ही न हो यदि पक्षपात-ग्रस्त होकर हम यह समझ बैठें कि वेदों से कुछ प्रकाश मिलने की आशा नहीं तब तो हमारी अवस्था अवश्य निराशा जनक सी है। वैदिक ज्ञान को यदि हम सम्पादन करना

चाहते हैं तो केवल ग्रन्थ पढ़ लेना ही पर्याप्त नहीं उसके लिए विशेष प्रकार की साधना की आवश्यकता होगी। प्राचीन काल में गुरु अपने शिष्यों को जो कम से कम १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य काल में विशेष तपोमय जीवन व्यतीत करने का आदेश देते थे यह कोई मिथ्या विश्वास न था। वास्तव में रहस्यमय ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ख़ास तरह की तैयारी की ज़रूरत होती है। जो पुरुष अभिमानी होकर केवल तर्क के बल से उच्च ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, जिसके हृदय में श्रद्धादेवी का निवास नहीं हुआ, वह वेद के अभिप्राय को ठीक तौर पर समझ सकेगा यह आशा व्यर्थ सी है। इसीलिए निरुक्तादि में 'न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा' इत्यादि सिद्धांत माना गया है।

अन्त में मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि 'वेद ईश्वरीय ज्ञान है' इस बात को युक्तियों और प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने मात्र से कुछ विशेष लाभ नहीं हो सकता, जब तक हम आचार्य ऋषि दयानन्द के 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है' इस आदेश का क्रियात्मक पालन न करने लग जायं। 'गुड़ मीठा है गुड़ मीठा है', इतना कहने मात्र से उस आदमी का मुँह मीठा नहीं हो सकता जिसने गुड़ का स्वाद न लिया हो। यह दुःख की बात है कि हम में से बहुतों ने अभी तक वेद के नित्य स्वाध्याय का नियम नहीं बनाया और वेदों को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने में ही अपना बहुतसा समय लगा दिया है। ऋषि दयानन्द की जन्म शताब्दी के इस पवित्र अवसर पर हम में से प्रत्येक आर्य को पवित्र वैदिक ज्ञान को स्वयं प्राप्त करने और यथासम्भव उसके क्रियात्मक और मौखिक प्रचार करने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए, तभी इस शताब्दी यज्ञका मनाना सफल हो सकेगा। मङ्गलमय भगवान् और आचार्य ऋषि दयानन्द की दिवंगत पवित्र आत्मा हमें सदा सत्य वैदिक धर्म के सच्चे निर्भय अनुयायी होने और अपने जीवन को यज्ञमय बनाने का सामर्थ्य देवे इस प्रार्थना के साथ मैं इस निबन्ध को समाप्त करता हूं।

बोलो वैदिक धर्मकी जय! बोलो ऋषि दयानन्द की जय!

संस्कार-मीमांसा

महर्षि दयानन्द ने संस्कारविधि की भूमिका में, संस्कारों का महत्त्व दर्शाते हुए बतलाया है कि संस्कार सब सुधारों के सुधार और सर्व उन्नतियों की उन्नति कराने वाले कर्म हैं। संस्कार शब्द का अनुवाद नागरी भाषा में उन्नतिप्रद तथा जीवन सुधारक कर्म हम करेंगे। काशीके पण्डित ध्रुव जी ने हिन्दू धर्म की बालपोथी में, जो कुछ संस्कार सम्बन्धी लिखा है, उसका सार यह है कि पशु जीवन को दैवी जीवन बनाने वाले कर्म।

प्रत्येक संस्कार में ईश्वरोपासन तथा होम किया जाता है। महर्षि मनु ने जप और होम को शुद्धि तथा मानवोन्नति करने वाले कर्म कहा है। यूरोप के पदार्थ विज्ञानियों के शिरोमणि लार्ड केलिविन ने जड़ जगत का नियन्ता शक्तिमान ज्ञानमय ईश्वर

को स्वीकार किया है। अतः पुराने आर्यों का आस्तिक होना आज विज्ञानियों को उनकी विद्या तथा धर्मोन्नति का उच्च रूप दर्शा रहा है। हवन यज्ञ सम्बन्धी पश्चिम के विज्ञानियों के मत दर्शाकर हम सिद्ध कर सकते हैं कि इसके करने से नाना प्रकार के रोग जन्तु भागते, वायु शुद्ध होती और वर्षा हो सकती है। मद्रास के 'डाक्टर किंग' ने माना है कि घी और केशर के होम से प्लेग का प्रकोप शांत हो सकता है। फ्रांस के 'डाक्टर हैफ़किन' ने लिखा है कि घी विषनाशक पदार्थ है। इङ्गलैण्ड के 'डाक्टर डेविड' लिखते हैं कि रोगी की कोठरी में धूप जलाने से रोग जन्तु दूर होते हैं। 'मार्सडन साहब' ने इस तत्व को दर्शाया है कि गर्म हवा अधिक वाष्प धारण कर सकती और पार्थिव अंश मेघ को जमाने का काम करते हैं। उक्त दोनों बातें हवन से होती हैं इसलिए हवन से वर्षा हो सकती है।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि नाना प्रकार के रोग जो ऋषभ औषधि वर्षों तक सेवन करने से आर्यों के नहीं मिटे थे वह हवन, यज्ञ द्वारा मिट गए। पुराने आर्य वैद्य होम के धूम से 'इञ्जेकशन' का काम लेते थे। सब संस्कार सूर्य की तरफ मुंह करके करने का विधान है। गत वर्षों में पश्चिमी लोगों ने माना है कि सूर्य की लाल किरणें गरमी देने वाली, पीली किरणें प्रकाशदाता और नीली रोगनिवारक हैं। ज्वरों के जनक रोग-जन्तु सूर्य किरणों से एक घंटे में नष्ट होते हैं। नव प्रकार के महान लाभों का वर्णन अमेरिका के 'डाक्टर इरा ड्यू' ने किया है। इसलिए भारतीय तथा पार्सी आर्यों का सूर्य-सेवन करने और होमप्रिय होने का फल उनको रोगों से मुक्त कराता था।

१—वनस्पति तथा पशु सृष्टि में हम जीवन वृद्धि सम्बन्धी निम्न नियम पाते हैं। (१) ऋतु काल में उत्पत्ति (२) स्वयंवर द्वारा, उत्तम बीज तथा उत्तम क्षेत्र प्राप्त करना (३) उत्तमता लाने के लिए कलम लगाने की पद्धति वा दूर कुलों में अगोत्र विवाह। (४) रोगी भूमि तथा रोगी बीज का संतान रहित होना।

हमारे ऋषियों ने ऋतुकाल में गर्भाधान का विधान किया है। दश रात्रियों को उत्तम ऋतुकाल कहा है। कन्या उत्पन्न करने वाले ५वीं, ७वीं आदि अयुग्म रात्रियों में और पुत्रार्थी ६ठी ८वीं आदि युग्म रात्रियों में गर्भाधान करें। गत वर्ष अमेरिका के 'डाक्टर डेविड रिटर' ने 'फ़िजिकल कलचर' में इसी तत्व की पूर्ण रूप से पुष्टि की है कि युग्म रात्रियों में गर्भाधान करने से पुत्र होता है।

स्वयम्वर शब्द भारतवर्ष में बड़ा पुराना है। पशु सृष्टि में (नेचरल सिलेक्शन) अर्थात स्वाभाविक स्वयंवर का नाम यूरोप के पण्डित इसे दे रहे हैं। मनु ने जो पापी मलीन और रोगी कुल विवाह के समय छोड़ने का आदेश किया है, वह इसी नियम को व्याख्या है। आज पश्चिम में यूजेनिक्स अर्थात सन्तान को उच्च बनाने की विद्या की जो भारी चर्चा डाक्टर चला रहे हैं वह महर्षि मनु के उक्त श्लोक और स्वयंवर नियम का एकमात्र मन्थन हो रहा है। स्वयंवर मानने वाले हमारे ऋषि कभी जन्म से वर्ण नहीं मानते थे स्वयंवर और अगोत्र विवाह, जो विवाह संस्कार के मुख्य अंग थे, आज इनकी उत्तमता को पश्चिम का यूजेनिक्स शास्त्र तथा उन सर्व डाक्टरों के लेख जिन्होंने सेक्शुयल साइन्स (S-xual science) पर पुस्तकें लिखी हैं सिद्ध कर रहे हैं। Heridity अथवा कुल प्रभाव जिसको हमारे शास्त्र लिख रहे हैं उसको आज यूजेनिक्स के प्रचारक मानने लगे हैं। मनुष्य का संस्करण करके पशु से देव बनाना जो हमारे ऋषियों का उद्देश्य था उस पर यूरोप के विद्वान आ गए। इस समय भारतीय प्रजा जन्म से वर्ण मानने के कारण स्वयंवर नियम पर चल नहीं सकती। जब तक भारतीय आर्यों में १६ वर्ष की

कन्या और २४ वर्ष के कुमारों का विवाह स्वयंवर प्रचारक आर्यसमाज नहीं करेगा, तब तक नहीं 'यूजेनिकस' का उद्देश पूरा होगा और नहीं गर्भाधान और विवाह संस्कार सफल हो सकेंगे।

वनस्पति जगत् में, कलमी वृक्षों का नाम उत्तम और महान् गुणवाले वृक्ष हैं। इनसे उत्पन्न होने वाले फल अति उत्तम निकलते हैं। न्याय दर्शन मनुष्य मात्र की एक जाति बतलाता है, इस लिए कि वह आपसमें विवाह करके अपने समान आकृति वाली सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। सन्तान की कलम तभी लग सकती है जब हम पुराने ऋषियों के समान अपनी बिरादरी मनुष्य जाति समझ कर उसमें गुण कर्मानुसार विवाह करें। दूर कुल और दूर देश में विवाह होने से ही शास्त्र में कन्या को 'दुहिता' कहा गया है। हम सप्तपदी के नियमों को भूल गये। उनमें पत्नी को पति अपनी सखी दर्शा रहा है। सखी के अर्थ मित्र समान आदि के हैं, न कि दासी के। हम नारी-पूजक हैं। हम उनको बुर्के और हैरम की दासी बनाने वाले नहीं। स्वतन्त्र सखी-रूपा देवियों के दर्शन करने हों तो दक्षिण में चले जाइये, जहाँ आपको दक्षिणी और मरहटा देवियां खुले सिर वीर नारियों के समान विचरती नजर आयेंगी। यदि विवाह और गर्भाधान संस्कारों के प्रताप से मनुष्य देव बन सकते थे तो स्त्रियां देवियां बन सकती थीं। शतपथ में लिखा है कि यदि कोई अपने घर में "पण्डिता" पुत्री उत्पन्न करना चाहे तो कर सकता है। कैसे महान् वह ऋषि थे जो अपनी इच्छा से पुत्र पुत्री देवी और पण्डिता उत्पन्न कर सकते थे। इस समय अमेरिका में स्त्रियों को बहुत विदुषी बनाया जा रहा है। जीवन में सब प्रकार की स्वतन्त्रता उनको वहां प्राप्त है। हमारे विवाह-मन्त्रों में वधू को उपदेश दिया गया है कि तू पति-कुल में जाकर चक्रवर्ती राजा की रानी के समान निर्भय महावीर और पूर्ण स्वतन्त्रता से विचरने वाली हो अर्थात कहा गया है कि तू सम्राज्ञी बने।

२--दूसरा संस्कार प्राचीन समय में पुन्सवन होता था। गर्भिणी और उसका पति दोनों वीर्यवान् बने रहें, अर्थात गर्भकाल में परस्पर गमन न करें, यह इसका प्रथम उद्देश्य था। कै, उलटी आदि स्त्री को दूसरे वा तीसरे महीने में आने लग जाती हैं। उससे गर्भ के गिर जाने का भय रहता है। इस संस्कार में होमधूम के अतिरिक्त वट की नस्वार से यह रोग दूर किया जाता था।

३--तीसरा संस्कार सीमन्तोन्नयन छठे वा आठवें महीने किया जाता था, जब कि गर्भ-गत बालक का शिर बन रहा हो। उस काल में स्त्री अपनी इच्छा शक्ति से एक सिद्ध योगी के समान अपने सन्तान की काया पलट सकती थी। यदि माताएं चाहें तो राष्ट्र में वज्रकाया महारथी महावीर तथा ऋषि उत्पन्न कर सकती है। लोग पूछा करते हैं कि गुरु और पिता से भी बढ़ कर माता को क्यों बड़ा कहा है? उसका उत्तर इस संस्कार से मिलता है। छठे महीने से लेकर जन्म-काल तक माता, ऋषि, वीर आदि जिस प्रकार की सन्तान पैदा करना चाहे कर सकती है। यदि मनुष्य हल चलाने और रणमें जाने और अनेक प्रकार के कष्ट सहने का अभिमान कर सकते हैं तो उन सबसे बढ़ कर गर्भिणी माता एक सच्चे योगी के समान अपने चमत्कार भरी इच्छा शक्ति का अभिमान कर सकती है। जो जातियां सभ्य हैं वे कभी रण भूमि में नारी जाति के ऊपर हाथ नहीं उठातीं। महर्षि मनु ने क्या उत्तम कहा है कि 'तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियः रक्ष्याःप्रयत्नतः" अर्थात हे मनुष्यो यदि तुम प्रजा विशुद्धि जो 'यूजेनिकस' का उद्देश्य है, जो विवाह गर्भाधान पुन्सवन सीमन्त का सार है, इस को चाहते हो तो प्रयत्न से देवियों की रक्षा करो।

४-चौथा संस्कार जातकर्म था। जातकर्म में मन्त्र-पाठ और जल-मार्जन का महत्व आज यूरोप के विद्वान् समझ रहे हैं। इच्छा शक्ति को दृढ़ करने से आधे रोग फौरन दूर हो जाते हैं। यह उनका कथन है।

संस्कार में मन्त्रपाठ का प्रयोजन यही है कि मार्जन से उस घबराहट को दूर करना है जो उस समय होती है डाक्टर सूरने फैमिली मेडिसन में जल-मार्जन की जरूरत दर्शाई है। नाड़ी--छेदन की क्रिया यदि उत्तमता से की जाय तो शीतला रोग नहीं हो सकता। नवबालक को मधु और घृत चटाना जुलाब का काम देता है। उसकी जिह्वा पर ओ३म् लिखना और उसके कान में वेद शब्द उच्चारण करना उसके मन--रूपी ग्रामोफोन में ओ३म् और वेद के अनुराग का अटल बीज बोना है। महावीर और बज्रतनु का आशीर्वाद बतलाता है कि पुरानी मातायें किस प्रकार वार--प्रसवा होती थीं। उस सेवा--युग में प्रसूता को भङ्गी के समान अछूत नहीं माना जाता था।

५--पांचवां नामकरण संस्कार है। इससे पहिले चार संस्कारों के उत्तम व मध्यम होने की सूचना मिल सकती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के गुण कर्म के नामों से संतानों के विचारों को प्रभाव युक्त किया जा सकता है। इस समय संस्कृत-जन्य अथवा स्वदेशी--भाषा-जन्य नाम पर से महान् आर्य जाति के अङ्गों का बोधन हो सकता है। सिंहादि नाम राजपूत मरहटे गुरखा और सिक्ख जो सब गुण कर्म से क्षत्रिय वर्ण के हैं अपनी संतानों के रखते हैं। ब्रह्मदत्त भूदेवादि नाम ब्राह्मण वर्ण के द्योतक हैं। जिस तिथि को बालक जन्मा है उस तिथि के देवता और नक्षत्र के नाम से आहुति हवन में डाल कर लोगों को ज्योतिष शास्त्र की रीति द्वारा, जन्म-दिन की सूचना दी जाती थी। उत्तम नाम, जो बच्चों को सदा महान् उच्च बनाने की प्रेरणा करते रहें, रक्खे जाते थे। सिक्खों का जब सिंह नाम रक्खा गया तो वह आज सचमुच सिंह बन रहे हैं।

६--छठा संस्कार निष्क्रमण है। बालक को खुली हवा में ले जा कर सूर्य--दर्शन कराया जाता था। शुद्ध वायु और सूर्य--ताप के लाभ को हमारे ऋषि अमेरिका के वर्तमान उच्च डाक्टरों समान इस उत्तमता से जानते थे कि उन्होंने शुद्ध पवन और सूर्य-सेवन को संस्कार का ही रूप दे दिया। भारतीय आर्य महिलायें भूत, प्रेत आदि मिथ्या भ्रमों के कारण, इस संस्कार को भूल गई हैं। बच्चों को तेजस्वी और निर्भय बनाने वाला यह संस्कार है सृष्टि--दर्शन से मानसिक शक्ति का भी विकाश होता है।

७--सातवां संस्कार अन्नप्राशन था। गत ३० वर्षों में यूरोप के विद्वान् इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि मनुष्य का भोजन मांस नहीं किंतु फल शाक अनाज और मेवा है। ऋषियों ने वेदादि शास्त्रों के आधार से निश्चित रूप से जान लिया था कि मनुष्य अन्नाशी है। इसलिए जब बच्चों के दांत निकलने लगते थे तो अन्न-प्राशन कराने के लिए यह संस्कार करते थे। आशीर्वाद में वह कहते थे कि कि तू अन्न का पति और अन्न के खाने वाला होवे।

८—आठवां संस्कार चूड़ाकर्म वा मुंडन था। यह संस्कार प्रायः तीसरे वर्ष के आरम्भ में किया जाता था। अब तक तो बच्चा मानो सुखमय जीवन व्यतीत करता रहा है। अब दाँत और दाढ़ निकलने के साथ मानो सब रोग बच्चे पर धावा करने लगे हैं। शिर को ठंडा और पांव को गरम रक्खो यह तत्व ऋषि जानते थे। अनेक अँग्रेजी लेखक डाक्टर मूअर आदि लिखते हैं कि बच्चे के शिर के बाल कटवा दिये जावें। सुश्रुत में मुंडवाने से रोग निवृत्ति चिकित्सक स्थान अध्याय २४ श्लोक ७२ के अन्दर दर्शायी है। चरकके सूत्र स्थान अध्याय ५ सूत्र १३९३ में मुंडन से आयु-वृद्धि दर्शाई है। ऋषियों ने रोग हटाने और आयु बढ़ाने के लिए ही संस्कार रचा था। कोई भी दवाई का लेप आज तक ऐसा नहीं निकला जो कई मास तक एक बार लगाने से शिर को ठंडा रख सके, सिवाय मुण्डन क्रिया के। मुण्डन से कपाल की रचना विशेष जानने का

अवसर मिलता है। गुरुकुल सूपा जिला सूरत में वहाँ के वैद्य मुंडे हुए छात्रों के शिर स्वयं देखते तथा कपाल-शास्त्री श्री नरमदाशंकर को दिखाकर उनके स्वभाव और विद्या-अनुराग का पता लगाते हैं। योगी डेविस, महात्मा गुरुदत्त इस विद्या के लाभ मानते थे। बम्बई के आर्यसमाजी बन्धु श्री गिरधरलाल महेता ने अथर्ववेद के आधार से इस पर उत्तम पुस्तक लिखा है। इसलिए मुंडन से बच्चे के स्वभाव और अनुराग को हम जान सकते हैं। बालतोड़ फोड़े कोमल बालों की जड़ टूटने से होते हैं। दांत निकलने के समय शिर पर कच्चे बालों के टूटने से बालतोड़ फोड़े न हो जावें इसलिए मुंडन किया जाता है। मुंडन क्रिया से बालों की जड़ मजबूत हो जाती और फोड़ों का भय नहीं रहता। भविष्य में जो बाल मुन्डन के पीछे उगते हैं वह खूब मजबूत होते हैं इसको सब डाक्टर भी मानते हैं। उक्त कारणों से कन्याओं के मुन्डन की भी जरूरत है। इस लिए शिर को ठंडा रखने, बालतोड फोडों से बचाने, कपाल विद्या के जानने में सहायता देने, शिर के छिद्रों में वायु और प्रकाश पहुंचाने, शिर में तेल की मालिश करने और मानवी शरीर के प्रधान अँग शिर की रक्षा से सर्व क्रियातन्तु तथा ज्ञानतन्तुओंको बलवान् करनेके आठ उद्देश्योंके निमित्त मुन्डन सँस्कारकी जरूरत है। दूसरे वर्ष की समाप्ति और तीसरे वर्ष के आरम्भ होने अथवा पहिले वर्ष के अन्दर यह सँस्कार करते थे।

९—नवम सँस्कार कर्णवेध है। इसे मुन्डन का सहायक समझिये। सुश्रुतकार इसका समय छठा वा सातवां मास दर्शाते और लिखते हैं कि "रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत।" विद्यालँकार भिषगाचार्य पं०ईश्वरदत्तजी (कानपुरी) कहते हैं कि 'रक्षा शब्दके अर्थ आधि व्याधि अर्थात् सर्व प्रकार के रोगों से निवृत्ति के हैं।' उनका कथन है कि 'कलकत्ते में उनके गुरुजी के पास जो बीमार कर्ण रोग के आते थे उनमें प्रायः अधिक संख्या उनकी होती थी जिनका कर्णवेध नहीं हुआ था। सुश्रुत चिकित्सत स्थान अध्याय १९ श्लोक २१ में लिखा है कि:—

शंखोपरि च कर्णान्ते, त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम्।
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदंत्रवृद्धिनिवृत्तये॥

इसमें शंख शब्द के अर्थ के सम्बंधमें उक्त कानपुरी भिषगाचार्य जी कहते हैं कि शंख वैद्यों का पारिभाषिक शब्द है और इसके अर्थ कर्ण-कुहर-परिधि अर्थात् कान के छेद का घेरा है। इस घेरे के ऊपर अर्थात् शंख के ऊपर कहने से दोनों दैव छिद्र आ जाते हैं और कर्णान्ते शब्द से तीसरे नीचे के दैव छिद्र का समावेश हो जाता है अर्थात् उक्त सुश्रुत वचन का आशय यह है कि शंख से ऊपर के दो दैव छिद्र और नीचे का तीसरा दैव छिद्र बींधना चाहिये। यत्न से सेवनीम् अर्थात् जोड़को छोड़ कर व्यत्यय से शिरा को बींधन करने से अंत्र-वृद्धि-निवृत्ति हो जाती है। उक्त भिषगाचार्य पं० ईश्वरदत्त जी का कथन है कि 'बंगाल में कर्ण-विंधन द्वारा वैद्य लोग विशेष इलाज करते हैं, अंड-वृद्धि तथा अंत्र-वृद्धि का।' बालकों को बाल्यपन में अंत्र-वृद्धि रोग प्रायः रहता है। कई बच्चों के अंडकोष कई महीनों तक दृष्टि नहीं पड़ते। कभी एक अंडकोष नीचे उतरता है कभी दूसरा। इन सब आपत्तियों को निवारण करने के लिए कर्ण-वेध संस्कार बड़ा ही उपयोगी है। श्री आयुर्वेदाचार्य कविराज ताराचरण जी चक्रवर्ती व्याकरणतीर्थ आयुर्वेद शास्त्री कलकत्ता निवासी शंख के वो ही अर्थ करते हैं जो ऊपर हमने किए हैं। प्रत्येक कान में तीन दैव छिद्र होते हैं इनका बिंधना कर्ण-वेध संस्कार के अन्दर वह जरूरी बतलाते हैं। उनका दृढ़ मत है कि "कर्णवेध के अभावसे अंत्र-वृद्धि और कर्ण-कण्डू (खाज आदि) कर्ण-रोग होते हैं।"

"शारङ्गधर में जो वैद्यक का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है कर्ण-रोग में कर्ण-शिरा-वेध इलाज बताया गया

है।" "प्रत्येक मनुष्य जब वह कान को कुछ मिनट के लिए रखकर सूर्य प्रकाश में देखे तो उसको तीन दैव छिद्र प्रत्येक कान में नजर आ सकेंगे। विदित रहे कि सूर्य किरणें जहां से गुजरें वह स्थल दैव छिद्र है"।

युक्त प्रांत के बरेली नगर में गुरुकुल सूर्पा के आचार्य प० ईश्वरदत्त (जसपुरी) जब गये तो उन्होंने वहां पर मालूम किया कि एक विंधक पुरुष नगर में पांच आना दक्षिणा लेकर अंड-वृद्धि-निवृत्ति के लिये कान के मध्य में ठीक दैव छिद्र को बींध कर धागा डाल देता है। उक्त पंडित जी वहां एक रोगी से मिले और पूछा कि आपका कौनसा रोग दूर हुआ है? रोगी ने कहा कि मुझे अंड-वृद्धि का रोग था वह कर्णवेध के पीछे जाता रहा। भिषगाचार्य पं० ईश्वरदत्त जी कानपुरा) स्नातक गुरुकुल कांगड़ी का कथन है कि प्रायः सब से ऊपर के छिद्र के बींधन से अंत्रवृद्धि का रोग दूर होता है। जो लोग कहते हैं कि जब अंत्रवृद्धि, अण्ड-वृद्धि वा कण्डू रोग होंगे तब हम कर्णवेध करा लेंगे, उनके उत्तर में उक्त भिषगाचार्य कहते हैं कि यह ठीक है, परन्तु हमारे गुरुवर अपने अनुभव से कहते हैं कि जिन बालकों के तीन छिद्र किसी अनुभवी वैद्य वा हस्तकुशल मनुष्य से बींधे जाते हैं उनको उक्त प्रकार के रोग होते ही नहीं।

वादी कहता है कि सुश्रुत ने एक स्थल पर बालकों के रक्तस्राव का, उनकी निर्बलता के कारण निषेध किया है इसलिए कर्णवेध नहीं करना चाहिये। इसके उत्तर में हम कहेंगे कि होमोपेथिक की गोली और पुड़िया भर की दवाई में भेद है वा नहीं? कहां सुई से बींधना और कहां भारी रक्तस्राव का करना? भिषगाचार्य पं० ईश्वरदत्त जी का कथन सत्य है कि कर्ण बींधने से दो चार बूंदें रक्त की निकलनी सम्भव हैं। गत ३० वर्षों में हमने भी बीसियों कर्णवेध संस्कार देखे पर उनमें कहीं भी रक्त की धारा छूटती हुई नहीं पाई। दक्ष बींधने वाला जब हो तो कभी अनर्थ नहीं होगा। अतः वादी की चिन्ता व्यर्थ है। विंधक लोग गलियों में जब आते हैं तब मातायें दूध पीते बच्चों को बिंधवा देती हैं। जहां तक हमें मालूम है एक भी बालक का अधिक रक्तस्राव नहीं हुआ और कान बींधने से बालक मर गया हो यह तो आज तक हमने सुना ही नहीं। वादी का प्रश्न बतला रहा है कि वह कर्णवेध से लहू की धाराएं निकलेंगी ऐसी कल्पना कर रहा है, जो कि ठीक नहीं।

बालक का रक्तस्राव न करो, यह शब्द जिस सुश्रुतकार ने लिखे, वह ही महर्षि रक्षा और भूषण निमित्त कर्णवेध का भारी विधान विस्तार पूर्वक अपने ग्रन्थ में स्वयं कर रहे हैं कि अमुक मंगल दिवस में करो इत्यादि। वह स्वयं क्या भूल गये कि बालक का रक्तस्राव तो हमने करना ही नहीं। वादी को कान में सीवनी का भय भग है पर वह सीवनी स्थल कान में है ही नहीं जिसका वर्णन सात सेवनियों में किया गया है। साधारण जोड़ के स्थानों को बींधन वाला बचाना जानता है और दैव छिद्रों में बींधन से किसी प्रकार की सीवनी के विंध जाने का भय रहता ही नहीं। बाईस करोड़ आर्य जनता के बालकों के कान रात दिन बींधे जा रहे हैं और माता पिता सब प्रकार की सावधानी कर लेते हैं।

दांत निकलते समय मसूड़ों में डाक्टर नस्तर लगाकर बालक का रक्त स्राव करते हैं। क्विनाईन को डाक्टर लोग सुई से (भुजा) में बींधते हैं। शीतला का टीका सुई से बींधा जाता है। वादी इन सब पर चुप है केवल सुई से कान बींधने पर डरता है। यजुर्वेद के एक मंत्र में दोनों कानों में सोना धारण करने का विधान है। सोना सूर्य-रश्मि समान रोग-जन्तु-निवारक है। (देखो संस्कार चन्द्रिका, परिशिष्ट भाग, तृतीय संस्करण)

सुश्रुत (शा० स्था० अध्याय ५ श्लोक २४) के अनुसार सप्त सेवनी (सीवन) शरीर में हैं। पांच शिर में, एक जिह्वा में और एक लिंगेन्द्रिय के नीचे।

कान मे कोई भी सीवन ऐसा बड़ा नहीं जो इनके अन्दर आया हो, तिस पर कर्णवेध में सीवन के अर्थ ये सात पारिभाषिक सीवन नहीं हो सकते किन्तु साधारण जोड है, यह निर्विवाद है।

सुश्रुत अध्याय पांच में शंख की गणना प्रत्यंगों के अर्थ में आ सकती है, न कि मर्म-स्थल के अर्थ में। बड़ोदा के सुप्रसिद्ध मल्ल-शिरोमणि तथा अस्थि-चिकित्सक श्री माणिकराव जी के निज के पुस्तकालय में मरहटी भाषा की एक पुस्तक 'व्यावहारिक योग' है जो श्रीयुत पाण्डुरंग गोपाल बाल कृत है। इस पुस्तक के पृ० ५२ पर जो लेख है उसका भाषानुवाद निम्न प्रकार है:—

"मस्तिष्क इसके अन्दर सहस्र दल हैं। इसकी नसें अनगिनत हैं। इसका सम्बन्ध गुदा द्वार तक और अण्ड कोष तक है। यह पीठ के मनके में से होकर पृष्ठवंश रज्जुज्ञानवेन से गुजर कर कान के मध्य भाग में संयुक्त होता है।"

* * * *

१०—दशम संस्कार यज्ञोपवीत है। जो समाज संसार में प्रगतिशील पुरुषार्थी होना है वह अपने सब काम नियम और व्यवस्था से करता है। इसी के अनुसार ऋषि लोग बालक को यज्ञोपवीत रूपी विद्या-चिन्ह धारण कराते थे। इस चिन्ह से जहां समाज के जन उसके सम्बन्ध में अपने कर्तव्यों को पालन कर सकते थे वहां वह भी अपनी तीन प्रतिज्ञाओं को स्मरण करता हुआ अपने आपको उच्च बनाने का यत्न करता था। यज्ञोपवीत का जो मंत्र है उसमें प्रथम पवित्रता, दूसरे बल और तीसरे विद्या तेज का वर्णन है। इन तीन व्रतों को धारण करने वाला ब्रह्मचारी होता था। अश्वपति महाराज ने जो उपनिषद् में कहा है कि मेरे राज्य में एक भी अविद्वान् नहीं, तो इससे पाया गया कि प्राचीन काल में शूद्र बालक भी बराबर यज्ञोपवीत धारण करते थे। आचार्य गुरुकुल सूपा पं० ईश्वरदत्त जी ने सुश्रुत के लेख को जो 'सत्यार्थ प्रकाश' में भी आता है अनुसंधान करके सिद्ध कर दिया है कि पूना के छपे हुए सुश्रुत में शूद्र कुलोत्पन्न बालक को यज्ञोपवीत का अधिकार है।

यजुर्वेद अध्याय २६ मं० २ का जो अर्थ ऋषि दयानन्द ने किया है उसके अनुसार मनुष्यमात्र के बालक वेद पढ़ सकते हैं। बङ्गाल के पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी ने ऐतरेयालोचन में ऋषि दयानंद के अर्थों को युक्त और उत्तम दर्शाया है।

११—एकादश संस्कार वेदारम्भ है। वेदारम्भ के लिये बालक गुरुकुल में जाता था। गुरुकुल अपने गृह के समान कोई भय का स्थान नहीं था। जो लोग प्राचीन शिक्षण में गुरुकुल के भयंकर डंडे का वर्णन कर उसको यम-स्थान बतला रहे हैं वह भूल करते हैं, कारण कि गुरु के प्रतिज्ञामन्त्र में परस्पर हृदयों की अनुकूलता का वर्णन आता है और कुल शब्द भी उसी भाव का बोधक है। उस समय शिक्षक ही परीक्षक होते थे जैसे कि आजकल जापान में होते हैं। इसलिये परीक्षाओं की व्यर्थ चिन्ताओं से छात्र मुक्त रहते थे। नारद ऋषि कितने विज्ञान, कितनी शिल्पकलायें व्यवहार रूप से सीख, गुरुकुल से निकले थे, यह उपनिषद् बतला रहा है। शकुन्तला नाटक के पाठ से कण्व ऋषि के गुरुकुल का जहाँ पता चलता है, वहां गौतमा आचार्या के कन्या गुरुकुल में शकुन्तला आदि पढ़ती थीं यह भी निर्विवाद सिद्ध है। उस समय गुरुकुल प्रत्येक ग्राम में एक ज़रूर होता था। उस समय गुरुकुलों से, जैसा कि कण्व ऋषि के आश्रम के वर्णन से पता लगता है, छात्रों को विद्यादान और अन्नदान दोनों ही मिलते थे। आजकल बालचरों की दश प्रतिज्ञाएं जो हैं इन सब का समावेश ब्रह्मचारियों के कर्तव्यों में हो जाता है। भिक्षावृत्ति ब्रह्मचारी रोज़ करते थे और प्रत्येक गृहस्थी उनको रोज़ ही भिक्षा अवश्य देते थे। १४ विद्या और चौंसठ कलाएं सिखाने के लिये गुरुकुलों में प्रबन्ध होता था। चारों वर्ण के धन्दे उत्तमता से सीखे हुए गुरुकुलों से निकलते

थे। गुरु प्रायः गृहस्थी होते थे और कभी २ वानप्रस्थी। गुण कर्म से वर्ण बनाने के लिये यह ज़रूरी है कि शिक्षण और अन्न दोनों का दान दिया जावे ताकि पतित वा निर्धन के बालक को भी गुरुकुल में प्रवेश करने का साहस हो सके और सम्भव है कि यही बालक जाबाल समान ऋषि बनकर निकल सके।

१२—बारहवां संस्कार समावर्तन है। इसमें स्नातक कुल छोड़ पितृगृह में आता है और अपने धन्दे को सत्य और धर्म इन दीक्षांत महान् उपदेशों के अनुसार धारण कर अपने वर्ण की सूचना देता हुआ धनी बनता है।

१३—तेरहवां संस्कार विवाह का है। सुश्रुत के लेखानुसार १६ और २५ विवाह करने वालों की कम से कम आयु होनी चाहिये। अशक्त और दीर्घरोगी को, गुरु तथा समाज का दृढ़ नियम और स्वयम्बर नियम का घर २ में प्रचार, विवाह करने से रोक देता था। आज लोग कन्याओं को आभूषण देने और विवाहोपलक्ष में भारी भोज कराने में अपना यश समझते हैं। उस समय एक गाय पितृगृह से और घर के बने तथा कते हुए स्वदेशी वस्त्र पतिगृह से वधू को विवाह-समय दिये जाते थे। चार फेरे और सप्तपदी विवाह के मुख्य अङ्ग हैं। फिर कर सब जनता को प्रतिज्ञाओं का सुनाना ही फेरे हैं। सप्तपदी गृहाश्रम के वह ज़रूरी और सुखदायक नियम हैं जिनपर चलकर गृहस्थ स्वर्ग बन जाता है। जिस प्रकार आज Before the Bench शब्द का भावार्थ जज्ज आदि के से लिया जाता है उसी प्रकार 'अग्नि-समक्ष' प्रतिज्ञा करने का व्यवहार था। अग्नि-समक्ष का भाव मंडप में बैठे हुए सज्जनों से था।

"विश्वे देवाः" अर्थात् सब विद्वानों के हृदय रजिष्ट्रार के पत्रक का काम देते थे। प्रतिज्ञा-मन्त्र बतला रहे हैं कि एक पुरुष का एक स्त्री से मरण-पर्यन्त विवाह सम्बन्ध रहेगा अर्थात् Monogamy आर्यविवाह का स्वरूप था। किसी भी सूत्रग्रन्थ में किसी प्रकार की मूर्तिपूजा का विधान नहीं मिलता।

१४—चौदहवां संस्कार वानप्रस्थ है। आजकल युरोप और अमेरिका के विद्वानों ने जो वृद्ध पुरुषों के हितार्थ पुस्तकें रची हैं उनमें वह मनकी प्रसन्नता, सात्विक आहार, विश्राम, प्राणायाम, साधारण व्यायाम और स्वाध्याय पर ज़ोर दे रहे हैं। ये सब और इनसे भी बढ़कर उच्च तथा उपयुक्त नियम वानप्रस्थी के लिए शास्त्रों में लिखे हैं। पुराने वानप्रस्थाश्रम शांति भवन के रूप में दृष्टि पड़ते हैं। ब्रह्मका चिंतन हवन योगाभ्यास और द्वन्द्वसहन रूपी तपस्या इसकी आधारशिलायें हैं।

१५—पन्द्रहवां संस्कार संन्यास सम्बन्धी है। जब कि वृद्ध मनुष्य का शरीर निर्बल हो चुका है तो मन निर्बल नहीं हो रहा। श्रीयुत देवेन्द्रनाथ महाकवि ने कहा है कि जिस प्रकार फल पकने पर गुठली अन्दर मज़बूत होती जा रही है उधर उस समय बाहर का फल कोमल बन रहा है। ठीक यही अवस्था संन्यासकाल में होती है। यहां मन को गुठली की उपमा दे सकते हैं। लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा यह तीन भयंकर रोग मन को अशांत करते रहते हैं। एक मात्र योगाभ्यास ब्रह्मचिन्तन और पूर्ण वैराग्य जो विवेक पर निर्भर है उक्त त्रिविध मानसिक एषणाओं से वृद्ध पुरुष को बचाकर सन्यासी बना सकते हैं। वानप्रस्थ की कठिन तपस्या के पश्चात् अति कठिन तपस्या इस समय करनी होती है। प्रत्येक सन्यासी को मृत्युञ्जय बनने की तैयारी करनी होती है।

एक मात्र सत्य का उपदेशक पूर्ण त्यागी वैरागी और योगी सन्यासी ही हो सकता है। उसके उपदेश किसी देश विशेष के लिए नहीं किन्तु मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए हैं। संसार को अपने जीवन द्वारा शांति मार्ग प्राचीन सन्यासी ही दिखा सकते थे। आज अमेरिका में विद्या वृद्धि के लिए

Travelling Libraries की भारी प्रथा । भारत वर्ष में यह काम जीवित जागृत परिव्राट अर्थात संन्यासी ही करते थे।

१६—सोलहवां संस्कार अन्त्येष्टि है। यूरोप में जिस दिन हर्बर्ट स्पेन्सर की शव जलाई गई उस दिन से वैज्ञानिक जगत में इस संस्कार की मानो धूम मच गई। गोल्डस्मिथ की कविताओं में एक स्थल पर यह शब्द आते हैं "Dust to dust and ashes to ashes" इनसे सिद्ध होता है कि यूरोप की आदि प्रजा में मुरदे जलाने की उत्तम प्रथा थी।

Home Encyclopeadia के पाठ से विदित होता है कि कोलम्बस के पहले प्राचीन अमेरिका की सभी प्रजा मुर्दे जलाती, गायत्री जपती, राम का त्यौहार मनाती, हवन करती और शिर पर शिखा रखती थी। सब ही वैज्ञानिक ऋषियों के इस संस्कार के महत्व को मान चुके हैं।

यह सोलह संस्कार किसी न किसी रूप में भारतीय आर्य प्रजा में पाये जाते हैं। यदि हम आर्य संघ बनाना चाहें तो हमें इनका जन मंडल में प्रचार करने की बडी भारी आवश्यकता है।

जिसको अंग्रेजी में Missionaries for all lands कहते हैं उसको "परिव्राट" का प्राचीन शब्द किस उत्तमता से प्रगट कर रहा है इसको बुद्धिमान सोच सकते हैं।

आज जो तपोधन महर्षि दयानन्द जी की इस जन्म शताब्दी के उत्तम तथा शुभ अवसर पर आप सब भारतीय आर्य, वैदिक सनातन धर्माभिमानी, आर्ष संस्कृत, आर्यसंस्कृति और आर्ष संस्कारों के परम भक्त होकर, भूलोक भर में विदेश-प्रचार निधि की नींव डाल रहे हैं, सच पूछिए तो आप अति प्राचीन 'परिव्राट संस्था' को पुनः सार्थक करने लगे हैं। ईश्वर हम सब को बल दें कि हम उसके त्रिविध शांतिदायक विज्ञान-मूलक एक मात्र सत्य सनातन वैदिक धर्म प्रचार के लिए तन मन और धन को अर्पण कर सकें।

ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

बड़ौदा
ता० १०-२-२५.

आर्यबन्धु—
आत्माराम अमृतसरी।

वर्ण-व्यवस्था

(पं० धर्मेन्द्रनाथ तर्क शिरोमणि के भाषण का सारांश)

आज जिस विषय पर निबन्ध पढ़ना है वह 'वर्ण व्यवस्था' है। यदि मैं इसका वर्णन करूं तो आप में से बहुत से थक जायंगे। मैं चन्द मिनटों में आप को बतलाने की कोशिश करूंगा कि आज सँसार में वह कौनसा प्रश्न है जिसका उत्तर वर्ण व्यवस्था द्वारा दिया जा सकता है?

सज्जनो! आज हम पाश्चात्य सभ्यता में बह रहे हैं। समाज एक बड़ी चीज़ है। इन्सान एक बडी चीज़ है। यदि आप यूरोपियन इतिहास को देखेंगे तो ज्ञात होगा कि यूनान में इन्सान बड़ी चीज़ समझा जाता था। यूनान में इन्सान को वह पद दिया गया था जिसके सामने राष्ट्र भी कोई चीज़

नहीं। युरोप ने साइन्स और फ़िलासफ़ी में बड़ी उन्नति की परन्तु यदि आप रोम का इतिहास पढ़ें तो ज्ञात होगा कि इन्सान भी कोई चीज़ है। रोम ने समाज को बड़ी उन्नति की। परन्तु तो भी हम लगातार ५-- सदियों तक यूरोप में धर्म का राज्य देखते हैं। धर्म के राज्य से मेरा आशय यह है कि वहां ईसाइयों का राज्य था। हमारे हृदय पर अब भी पाप का राज्य है। हम परलोक के ही नहीं, वरन् दुनियाँ के भी ठेकेदार बने हुए हैं। इसी बीच मार्टिन लूथर (Martin Luther) जर्मनी में पैदा हुआ, उसने आज़ादी फैलादी और उसने कहा कि इन्सान ऊँचा है। धर्म के मामले में कोई उसे दबा नहीं सकता है। बस, इस प्रश्न को पूर्ण रूपेण समझ लेने में हम वर्ण-व्यवस्था के अर्थ को भली भांति समझ सकेंगे। आज कल चारों ओर से प्रजातंत्र की आवाज़ आ रही है। फ्रांस अमेरिका में Republican गवर्नमेंट है। आज वहां इंसान दूसरों के आधीन नहीं है। परंतु मैं आप को बतलाना चाहता हूं कि वहाँ भी वस्तुतः बड़ों का राज्य है। युरोप, अमेरिका के अन्दर प्रत्येक मनुष्य की आय ४--५ हज़ार रु० है। वहां की दशा देखकर हम विचार करते हैं कि उन लोगों की बड़े चैन से गुज़रती होगी। परन्तु हालत क्या है? आप चलकर देखें। बड़े लम्बे २ मार्ग बने हैं। लंडन में गगनस्पर्शी मकानात हैं। परंतु आओ उसी लंडन के अन्य भागों में चलें। मज़दूर घोंसलों में पड़े हुए हैं, उनको रोटी तक नहीं मिलती है। आज राष्ट्र व्यक्तित्व को पैरों तले कुचल रहा है। कहा जाता है कि देश के नाम पर मर मिटो क्योंकि यह बड़ा पवित्र काम है। परन्तु इसका किसी को पता नहीं कि देश-भक्ति किस लिए है। इंगलैन्ड ने लाखों, करोड़ों रुपया कमाया परंतु किसके लिए? इसलिए कि एक करोड़ आदमी महलों में बैठकर भोग विलास करें और अरबों मज़दूरों के पसीने, नहीं २ मैं तो खून कहूंगा, से करोड़ों नदियां भर जावें। आवाज़ यह होती है कि व्यक्ति-स्वातंत्र्य सब को मिल गया, परन्तु व्यक्तित्व का ह्रास हो रहा है। व्यक्तियों को सताया जा रहा है। इसी के कारण राष्ट्र का राष्ट्र से लड़कर खून बहाकर नाश हो रहा है। युरोप में अनिवार्य शिक्षा है। परंतु इसके साथ क्या तमाशा है? बालक स्कूलों में जाते हैं परंतु साथ ही रोटी कमाने के लिए ८--८ घंटे काम करते हैं। न करने पर बालकों पर मार पड़ती है। बहिनो! सुनलो वे आज तुम पर अत्याचार करना चाहते हैं। युरोप थियेटर्स में आपका आदर करना चाहता है, परंतु रोटी के लिए आपकी अवहेलना करता है मैं आप को बतला देता हूं कि युरोप में एक क़ानून बनाया गया है। यह क़ानून देवियों की भलाई के लिए बना था। क़ानून यह है कि एक मज़दूर को बच्चा पैदा होने के दिन एक मास की छुट्टी मिला करे। किसी ने पूछा इसका मतलब क्या है। जवाब मिला बालक के जन्म के बाद से छुट्टी दी जायगी। मतलब यह कि वे मज़दूर को एक दिन की भी छुट्टी देने के लिए तैयार नहीं है।

फिर प्रश्न होता है व्यक्ति--स्वातंत्र्य से क्या लाभ है? क्या इस स्वाधीनता (Freedom) की, जिसका इतना मान किया जा रहा है, बदौलत मनुष्य ने मनुष्य को नहीं सताया? क्या राष्ट्र ने राष्ट्र का खून भी नहीं पिया? आज राष्ट्र के नाम पर युरोप ने सब कुछ रख दिया। कहते हैं कि युधिष्ठिर ने घोर पाप किया है। सचमुच आज युरोप ने आंखों के सामने अपने दांव पर सब कुछ रख दिया है। वहां वे लोग देश-भक्ति के लिए क्या २ करने को तैयार नहीं हैं? यदि एक आदमी अपने देश के लिए छल कपट करे, झूठा व्यवहार करे तो वह बुराई नहीं है, क्योंकि जो कुछ उसने किया वह देश के लिए है। मुझे एक बात याद आती है कि जिस समय पार्लियामेंट में वारेन हेस्टिङ्गस पर इम्पीचमेंट (दोषारोपण) किया गया तो कहा गया कि वारेन हेस्टिंगस् ने बड़ी २ बुराइयां की हैं परन्तु जो कुछ किया वह इंग्लेण्ड की भलाई के लिए

किया। अतः देश की भलाई के लिए एक मनुष्य कितना ही पाप करे वह क्षम्य है। क्षम्य ही नहीं वरन् यह उसका एक सद्गुण है। मुझे बतलाना है कि युरोप ने राष्ट्र के नाम पर अपना ब्राह्मण शक्ति को और क्षात्र शक्ति को न्योछावर कर रक्खा है। जब युरोपीय महायुद्ध छिड़ा तब वहां कहा गया कि कालेजों में ताले डाल दो। बालकों को साइन्स पढ़ाई जाय उन्हें मनुष्य को मारने वाला गैस तैयार करना सिखाया जाय। सरस्वती को देश की पूजा में नहीं नहीं देश की हत्या में लगा दिया जाय। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि युरोप के पादरी लोग जो धर्म के अवतार थे, चर्चों में जाकर परमात्मा से कहते थे, "जर्मन हार जाय, इंग्लैण्ड की विजय हो।" क्या आप समझ सकते हैं कि युरोप में व्यक्ति का आदर ज्यादा है? राष्ट्र के नाम पर धर्म-गुरुओं ने अपना कर्तव्य छोड़ा। वहां देवियां देशभक्ति के लिए अपना स्त्रीत्व धर्म भी त्याग देती हैं और इस देशभक्ति का परिणाम यह होता है कि कुछ धनपति भोग विलास करते हैं। यही वहां का आदर्श है? क्या भारतवर्ष के जीवन में भी हम ऐसी कल्पना कर सकते हैं? हमें यह कदापि ख्याल नहीं हो सकता कि देश की भलाई के लिए सदाचार और सतीत्व को नष्ट किया जाय। उन्हीं जातियों में जीवन है जो संयम की रक्षा करना चाहता हैं।

उदयपुर के राज्य घराने के दरबार में एक पत्र पढ़ा जाता है। उसमें लिखा है—"मैं एक छोटे गांव की राजपूत स्त्री हूं। मेरे ऊपर हमला करने के लिए औरङ्गजेब अपने एक सरदार को सेना के सहित भेज रहा है। आप हमारी रक्षा कीजिये। राणा स्वयं पत्र लेकर पढ़ता है। मन्त्री कहता है, 'महाराज! देवियों की रक्षा करना आपका धर्म है। परन्तु सोच लीजिये उदयपुर का नाश हो जायगा। अतः विचार लें कि औरङ्गजेब के सरदार से युद्ध ठान लेने में कितनी हानि है? राणा ध्यान पूर्वक सोचकर कहते हैं, 'अरे मन्त्री! क्या सलाह देता है? पढ़ता हूं, पत्र को, खूब पढ़ता हूं। भले ही उदयपुर का नाश हो जाय परन्तु यह असम्भव है कि एक देवी पुकार करे और राणा चुप बैठा रहे (तालियां और हर्ष ध्वनि)।" आर्यों की समझ है कि आदर्श रक्षा के लिए यदि खून बहाया जाय तो कोई बड़ी बात नहीं। परन्तु हमेशा हृदय में उच्चतम आचरणों का आदर्श बना रहे। आर्यों ने इस प्रकार भारतीय सदाचार की रक्षा की थी।

युरोप में बड़े कारबार होते हैं। गवर्नमेंट कहती है, 'अच्छा एक कमीशन बैठाओ। मेम्बर्स सफर का फ़र्स्ट क्लास भत्ता लेते हैं। तीन मास के बाद रिपोर्ट मिलती है। इसके पश्चात् फिर झगड़े होते २ नया क़ानून बनता है। आज खबर आती है इंग्लैंड में एक काउन्सिल बैठेगी। मित्रो! मैं कहता हूं कि जब हम पापी हैं तो कोई क़ानून, कोई कान्फ्रैंस उद्धार नहीं कर सकता है। जब मिट्टी भट्टी में तपायी नहीं गई तो वह ठहर नहीं सकता। हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस बात को समझा था। उन्होंने समाज को कैसा बनाया था? उन्होंने कहा था कि जो लोग दुर्बल न हों वे हमारे समाज में आ सकते हैं। हमारे यज्ञ में सम्मिलित हो सकते हैं। वे जानते थे कि जिन ईंटों को भट्टी में पकाया गया है उन्हीं से हम मकान बना सकते हैं। प्राचीन ऋषियों ने प्रजातन्त्र का कैसा वर्णन किया है। वे कहते हैं सब बराबर हो जाओ। परन्तु आज कल एक आदमी पैरों तले कुचला जाता है। एक अमेरिकन करोड़पति कहता है, "एक मज़दूर के घरमें पैदा होकर वह हमारे मोटर में कैसे बैठ सका है!" परंतु प्राचीन महर्षियों ने इस प्रजातन्त्र के रहस्य को समझा था। वे कहते हैं कि जैसे विद्या की शिक्षा देते हो उसी तरह से राजनैतिक प्रजातंत्र की शिक्षा दो। क्या आप इस बात पर विचार कर आश्चर्य नहीं करेंगे कि आज गुरुकुल में राजा और रङ्क के लड़के को एक समान कपड़ा दिया जाता है और २५ वर्षों तक वे समान रूप से खाते पीते हैं। जब वे बाहर जायँगे तो उनका समानता का आदर्श

रहेगा। वे जानेंगे कि यह भी हमारा भाई है। इसके साथ रहते थे, खाते पीते थे। यहा गुरुकुल का आदर्श था, समानताका आदर्श था। यह सुनकर हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। सुदामा कृष्ण के महलों में जाता है। चावल की पोटली पास में हैं। कृष्ण को ख़बर मिलती है! वे तुरन्त बाहर आते हैं और सुदामा को गले लगाते हैं क्योंकि वह गुरुकुल का साथी था। यह व्यवहारिक ज्ञान है। यह प्रजातंत्र का आदर्श है।

युरोप में बिना ब्रह्मचर्य को जीवन पालन किये प्रजातन्त्र का नाम लिया जा रहा है परन्तु वह वहां चरितार्थ नहीं हो सकता। रूसकी दशा को देखिये। यदि व्यक्ति के जीवन में सदाचार न हो तो बोलशेविज्म भी युरोप का उद्धार नहीं कर सकता। अतः ऋषियों ने बतलाया कि ब्रह्मचर्य ही प्रधान है। वर्ण व्यवस्था के जो सामाजिक नियम हैं उन्हीं पर गृहस्थाश्रम का आधार है। बहुत से लोग कहते हैं, 'हमारा वर्ण क्या है?' जाति क्या है? परंतु उनकी समझ में नहीं आता कि ब्रह्मचारी की वर्ण व्यवस्था हो ही नहीं सकती। प्राचीन काल में ब्रह्मचारी गण गुरुकुलों में तपस्या करने के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। गृहस्थाश्रम के ४ वर्ण थे। मैं आप से बतलाता हूं कि ब्रह्मा में अभी तक प्रजातंत्र का भाव फैला हुआ है। हमारे देश के राजा राममोहन राय ने पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करके जाति भेद हटाया है। ऋषि भी वर्षों तक पत्थरों से टकरा कर अन्त में कहता है, 'यह जाति पांति जन्म से नहीं प्रत्युत गुण कर्म से है।' पालरिचर्ड ने लिखा है, यूरोप, फ़िलासफ़ी को स्वीकार करता है परन्तु भारतवर्ष ने फ़िलासफ़ी को कार्य रूप में परिणत किया है। (Europe professed Philosophy, but India acted it) इस समय यहां यह विचार है कि चारों वेदों को जानने से ब्राह्मण हो सकता है। परंतु चारों वेदों के जानने से ही ब्राह्मण नहीं हो सकता। प्राचीन ऋषियों ने यह समझा था और यह बतलाया था कि यदि ब्राह्मण बनना हो तो बन सकते हैं परन्तु भोग विलास नहीं कर सकते हैं। क्षत्रिय बनो परन्तु आप के लिए धन नहीं है। प्राचीन लोगों ने वैश्य के विषय में कहा है, "ये लोग सारे सँसार को कमा कमा कर खिलाया करें।" ब्राह्मणों से कहा "तुम पढ़ाया करो।" क्षत्रियों से कहा "तुम रक्षा किया करो।" वैश्यों से कहा "तुम कमाया करो।" शूद्रों से कहा "तुम सेवा किया करो।" उस समय भारत में १६वां भाग काम करता था तिस पर भी सब सुखी थे। आज प्रायः सब ही काम करते हैं तब भी सब भूखे मरते हैं। देवियों और बालकों को भी कमाना पड़ता है। मैं आप से बतलाना चाहता हूं कि यह प्राचीन सभ्यता का गौरव है। भद्र पुरुषो! शूद्र वर्ण के विषय में कहा जाता है कि ये सब छोटे हैं। नहीं नहीं, ये तीनों वर्णों की सहायता करते हैं। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब का सहायक है वह छोटा नहीं हो सकता। प्राचीन ऋषियों ने शूद्रों को भी छोटा दर्जा नहीं दिया है।



ईश्वर, जीव और प्रकृति का अनादित्व

(ले०-श्रीयुत घासीराम जी एम० ए०)

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

देवियो और सज्जनो !

जिस विषय में आज आप की सेवा में कुछ निवेदन करने के लिये मैं उपस्थित हुआ हूं वह आर्य समाज का एक मौलिक सिद्धांत है अर्थात् यह कि ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों अनादि हैं। आर्य समाज का यह सिद्धांत भी उस के अन्य सिद्धांतों की भांति वेद मूलक है और इसकी पुष्टि में प्रबल वैदिक प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं परन्तु मेरे निबन्ध का उद्देश्य उन लोगों को सन्तुष्ट करना नहीं है जो इस के वेदमूलक होने से इनकार करते हों, बल्कि उन पुरुषों की शङ्काओं का समाधान करना है जो वेद को ईश्वर-प्रोक्त नहीं मानते और उसकी आज्ञाओं और शिक्षाओं के आगे सिर नहीं झुकाते। ऐसे लोगों की तृप्ति यदि की जा सकती है तो तर्क द्वारा ही की जा सकती है और इसीलिये मैं इस निबन्ध में तर्क का ही आश्रय लूंगा।

इस में तो कोई सन्देह नहीं कि कम से कम अब, इस समय, जब कि यह ब्रह्मांडचक्र चल रहा है, प्रायः सभी धर्म वाले ईश्वर, जीव और प्रकृति के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। हां, कुछ सम्प्रदाय ऐसे भी हैं जो ईश्वर को इस समय भी नहीं मानते। परन्तु यदि मैं यह सिद्ध करने लग जाऊँ कि ईश्वर हैं और अनीश्वरवाद युक्तिशून्य है तो निबन्ध का कलेवर बहुत बढ़ जायगा और विषयान्तर भी हो जायगा अतः मैं केवल उन्हीं भाइयों को सम्बोधित करने का निश्चय करता हूं जो ईश्वर-वादी हैं ।

ईश्वरवादियों में एक पक्ष तो आर्यसमाज का है, दूसरा सामी मतों के मानने वालों का अर्थात् यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों का। आर्यसमाज यह मानता है कि यह तीनों पदार्थ अनादि हैं अर्थात् यह सदा से हैं और सदा तक रहेंगे। सामी सम्प्रदायों का यह मत है कि केवल ईश्वर ही अनादि है, जीव और प्रकृति सादि हैं परन्तु सान्त नहीं हैं। इसलिये अब केवल यही विचारना है कि जीव और प्रकृति भी अनादि हैं वा नहीं।

सबसे पहिला आक्षेप प्रकृति और जीव के सादि होने में यह है कि जो असत् है वह सत् और जो सत् है वह असत् नहीं हो सकता। यह विज्ञान की आधार शिला है। वैज्ञानिकों ने परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि किसी प्रकार भी किसी पदार्थ के परमाणुओं का सर्वथा नाश नहीं किया जा सकता। एक पदार्थ दूसरा रूप ग्रहण कर सकता है और कर लेता है और हमें प्रतीत होने लगता है कि वह पदार्थ नष्ट होगया। जल अग्नि के संयोग से वाष्प बनकर वायु में मिल जाता है और हमें मालूम होता है कि जल का नाश हो गया। वास्तव में वह नष्ट नहीं हुआ उसने केवल दूसरे रूप को धारण कर लिया है और सर्दी पाकर आप फिर जल के रूप में आ जायगा। प्रकृति का नष्ट होना असम्भव है। ऐसे ही जीव भी नष्ट नहीं हो सकता। सामी मतों के अनुगामी भी यही मानते हैं कि जीव और प्रकृति सदा विद्यमान रहेंगे। अर्थात् वह यह तो स्वीकार करते हैं कि सत से असत नहीं होगा परन्तु यह नहीं स्वीकार करते कि असत् से सत् नहीं हो सकता। वर्त्तमान जगत् में तो असत्

से सत् होने का कोई उदाहरण मिलता नहीं इसलिए उनके इस विश्वास की भित्ति अनुभव-जन्य अनुमान पर तो हो नहीं सकती। उनकी धारणा प्रत्यक्षादि प्रमाण शून्य अवश्य है यह उन्हें मानना ही पड़ेगा। तो अब और कौन सा तर्क उनके पास है जिस से हमें इस मत को अङ्गीकार करने पर बाध्य होना पड़े? उनकी सब से प्रबल युक्ति यह है कि यद्यपि वर्तमान काल में जगत में असत से सत की उत्पत्ति नहीं हो सकती तथापि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है सृष्टि उत्पन्न करते समय उसने असत् को सत् कर दिया। इस पर मुझे यह कहना है कि ईश्वर के सर्वशक्तिमान् होने के यह अर्थ नहीं हैं कि वह असम्भव को सम्भव कर सके--कोई ऐसी बात कर सके जो स्वयं युक्ति और विचार के नियमों का विपर्य्यय करती हो। जैसे दो और दो चार होते हैं उन्हें पांच परमेश्वर भी नहीं कर सकता--यह सत्य त्रिकालाबाध्य है। परमेश्वर दो पहाड़ों को इस प्रकार एक दूसरे के बराबर नहीं रख सकता कि उनके बीच में घाटी न रहे। मैं पूछता हूं क्या परमेश्वर अपने समान दूसरा परमेश्वर बना सकता है? यदि कहो बना सकता है तो फिर वह सर्वशक्तिमान् नहीं रहेगा क्यों कि उस जैसा ही दूसरा परमेश्वर भी सर्वशक्तिमान विद्यमान होगा और दूसरा परमेश्वर उसके कार्य में बाधा डालेगा। यदि उसने भी सृष्टि रचना की ठहरा ली तो उसकी सृष्टि में पुराने परमेश्वर का शासन नहीं रह सकेगा और ऐसा करने से वह स्वयं अपनी सर्वशक्तिमत्ता के गुण को खो बैठेगा। सर्वशक्तिमान् के अर्थ यही हैं कि उसके कार्य बिना दूसरे की सहायता के होते हैं, जिसे अपने कार्यों के करने में दूसरे के ज्ञान और शक्ति की अपेक्षा नहीं होती।

इस पर प्रतिवादी कहते हैं कि यदि तुम प्रकृति और जीव को अनादि मानते हो तो परमेश्वर को केवल कुम्हार जैसा परिमित शक्ति वाला बना देते हो, जैसे कुम्हार बिना मिट्टी के घड़ा नहीं बना सकता ऐसे ही परमेश्वर भी बिना प्रकृति के जगत की रचना में असमर्थ है। मैं कहता हूं असमर्थ सही इसमें बाधा क्या पड़ती है? मैं पहिले दिखा चुका हूं कि परमेश्वर अन्य भी कई बातों के करने में असमर्थ है। यदि ईश्वर बुद्धि के नियमों के घातक कार्यों के कर सकने पर ही सर्वसामर्थ्य-सम्पन्न रह सकता है तो मैं कहूंगा ऐसे ईश्वर की हमें आवश्यकता नहीं और न ऐसे ईश्वर का अस्तित्व ही रह सकता है। कौन जाने कल को उसके मन में आत्म-हत्या करने की आ जाय और वह सारे संसार की नौका को मंझधार में छोड़कर चलता बने, या उसके जी में यही समा जाय कि पापियों को स्वर्ग और पुण्यात्माओं को नरक में भेज दे। यदि कहो कि नहीं, नहीं करेगा। मैं पूछता हूं आप के पास इसकी क्या गारंटी है? जब वह कर सकता है तो कौन कह सकता है कि वह नहीं करेगा? आई मौज फ़कीर की, दिया झोंपड़ा फूंक। न मालूम किस समय क्या मौज आ जाय?

दूसरे यह कि केवल इस बात से तो बिना प्रकृति के ईश्वर जगत को नहीं रच सकता कि आप उसे असमर्थ बतलाते हैं। परंतु जो अनन्त बुद्धिमत्ता और असीम कौशल और अपरिमित शक्ति उसने जगत् की रचना में दिखाई है उससे और पर उसकी सर्वशक्तिमत्ता प्रकट नहीं होती? अरबों मन भारी ग्रह आकाश में बिना किसी आधार के स्थित हैं और असंख्य ग्रह उपग्रह एक दूसरे के चारों ओर सैकड़ों मील प्रति घंटे के वेग से घूम रहे हैं क्या मजाल जो उनकी गति में कुछ भी भेद पड़ सके क्या यह उसकी अनन्तशक्ति का परिचायक नहीं है? इस छोटी सी पृथ्वी पर ही पग २ पर उसकी असीम बुद्धिमत्ता और कौशल के सुस्पष्ट प्रमाण मिलते हुए भी क्या हम उसकी महत्ता स्वीकार करने से इसलिए कतराएंगे कि यह पृथ्वी उसने प्रकृति से रची है और अतएव उसका कुछ गौरव नहीं? मनुष्य तो परमेश्वर प्रदत्त पदार्थों के

बहुत थोड़े से गुणों को जानकर उनसे उपयोग ले सकने पर हमारी महान् से महान् प्रशंसा का पात्र बने और परमेश्वर जिसने उन पदार्थों को बनाया केवल इसलिए कि उसने प्रकृति से उन्हें बनाया तुच्छ समझा जाय! अन्धेर है कि नहीं?

तीसरे ऐसे मन मौजी और बुद्धि के नियमों की परवाह न करने वाले परमेश्वर से कौन प्रेम कर सकता है, कौन उसे अपने हृदय मन्दिर में बिठा कर अपनी श्रद्धा और भक्ति की अञ्जलि उसकी भेंट कर सकता है? जिसे असत्‌को सत् करनेका सामर्थ्य है उसे सत् को असत् करने की भी शक्ति होनी चाहिये। फिर क्या पता है जो परमेश्वर इस सारे पसारे को समेट कर जैसे कुनसे उसने असत् से सृष्टि रची थी वैसे ही ला कुनसे उसे असत् करदे। मैं तो समझता हूं उसे ऐसा ही करना चाहिए--एक खेल था जो उसने सृष्टि रची--प्रलय होने पर वह खेल समाप्त होजाना चाहिये। क्या ज़रूरत है जो उसे अनन्त काल तक जारी रख कर असंख्य जीवों को नरक की आग में झुलसा और भुलसा जाय। इसमें ईश्वर की कौनसी कार्य सिद्धि होती है?

वादी फिर कहता है कि जिस प्रकृति को तुम अनादि कहते हो और जिस जीव को तुम अज बताते हो वह वास्तव में अब भी कुछ नहीं। प्रकृति के परमाणु न कभी किसी ने आंख से देखे, न कान से सुने, वह तो इन्द्रियातीत हैं। उनका ज्ञान भी अनुभवजन्य नहीं है। स्वयं प्रकृति पदार्थों का भी क्या अस्तित्व है--यही तो कि हमें उनका ज्ञान इतना ही तो होता है कि अमुक पदार्थ ऐसे रंग रूप का, ऐसे डील डौल का, ऐसे गन्ध, ऐसे स्वाद, ऐसे स्पर्श और ऐसे बोझ का होता है। कोई पदार्थ वास्तव में कैसा है इसका ज्ञान तो हमें होता ही नहीं और न हो सकता है फिर यह कहना कि इन पदार्थों की इन गुणों के अतिरिक्त कोई सत्ता है एक भूल है, एक भ्रम है, एक मृग तृष्णा या धोखे की टट्टी है। रंग रूप आदि आत्मा में रहते हैं। यदि यह कहो कि प्राकृतिक पदार्थोंके रंग रूपादि मनुष्यों के आत्माओं पर निर्भर नहीं है क्योंकि आम का रङ्ग रूप जैसा मुझे दीखता है वैसा ही यज्ञदत्त और देवदत्त को भी तो मानना पड़ेगा कि वह परमात्मा में है, अतः जिसे तुम प्रकृति या माद्दा कहते हो वह केवल परमात्मा का संकल्प है उसके अतिरिक्त कुछ नहीं। इसी प्रकार युक्ति से यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि जीव भी कोई अपनी सत्ता नहीं रखता क्योंकि जीव की सत्ता के विषय में भी हमें कोई अनुभव नहीं। जीव जिसका हमने नाम रक्खा है उसके सम्बन्ध में हमारा ज्ञान केवल इतना ही तो है कि हम यह जानते हैं कि हम सोचते हैं, सुख दुःख का अनुभव करते हैं, कोई निश्चय वा इरादा करते हैं। अतः जीव भी एक भ्रान्ति है और यहभी प्रकृतिकी तरह परमेश्वर का सङ्कल्प मात्र है।

मैं कहूंगा यदि ऐसा है तो छुट्टी हुई, ख़स कम जहां पाक। हम गये थे हकीम जी के पास दर्द सर का इलाज कराने। उन्होंने वह नुसख़ा तजवीज़ किया कि न दर्द ही रहा और न सर ही रहा, मरज़ गया और मरज़ के साथ मरीज़ भी गया। विवाद तो यह था कि जीव और प्रकृति अनादि हैं वा नहीं--हमें उत्तर यही मिला कि अनादि और सादि का विवाद कैसा वहां न तो जीव है न प्रकृति केवल है तो ईश्वर का नाम और उसके सङ्कल्प। परन्तु मेरी सम्मति में तो इतने से पीछा नहीं छूटता क्योंकि मुझे यह पूछने का अधिकार रहता है कि परमेश्वर के मनमें यह सङ्कल्प जिन्हें जीव और प्रकृति कहा जाता है एक हो बार क्यों उठे? पहिले से भी वह कुछ सोच विचार करता था वा नहीं? और जब उसने सङ्कल्प किया तो एक ही सङ्कल्प किया वा अनेक? कितने सङ्कल्प चेतन किये और कितने जड़? क्या नया संकल्प होना विकार का द्योतक नहीं है? ईश्वर जिसे निर्विकार और एकरस कहा जाता है उस में यह विकार कैसा? जितने उसने जड़ संकल्प किये थे

वह तो एकदम प्रादुर्भूत हो गये, कोई संकल्प सूर्य बना, कोई चांद, कोई ग्रह, कोई उपग्रह, कोई आसमान पर तारा बनकर चमका, तो कोई बिजली बन कर कौंदा और जब कड़क कर पृथ्वी पर गिरा तो अपने कई भाई संकल्पों को फ़ना फ़िल्लार कर गया, कोई संकल्प पहाड़ बना तो कोई उस पर पेड़ बन कर उगा और कोई आंधी का झोंका बन कर उस सहोदर पेड़ को उखेड़ कर ले गया। संकल्पों में तो भ्रातृभाव होना चाहिये था यह शत्रुता कैसी? पिता के होते हुए उनमें तो कोई दायभाग का भी झगड़ा नहीं हो सकता था, जो बहुधा भाइयों २ को लड़ा कर सरकार का ख़ज़ाना कोर्ट फ़ीस से और वकीलों की जेब फ़ीस से भरता है और जिस की बदौलत जजों, मुन्सिफों और अहलकारों की रोटियां चलती हैं और भाइयों की बोटियां नुचती हैं। और यह चेतन सङ्कल्प दुनिया में एकदम क्यों न भेज दिये गये? यदि सब के सब एकदम ही टपका दिये गये होते तो थोड़े से दिनों में ही यह नाटक समाप्त होकर ड्रापसीन गिर गया होता। अब न जाने वह कब समाप्त हो और जो चेतन, जीते जागते, चलते फिरते संकल्प अभी तक रङ्गभूमि पर नहीं आये वह कौन से ग्रीन रूम में बैठे हुए मञ्च पर आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं? जो दुनिया में आते भी हैं उन में भी ऐसे अन्तर क्यों किये गये कि कोई तो जन्म भर सुख भोगता और चैन करता है और कोई कष्ट झेलता २ मर जाता है? फिर इन चेतन सङ्कल्पों में यह शत्रुता कैसी जैसी कि हम रोज़ आंखों देखते हैं? क्यों फिर परमेश्वर उनके समझाने और उन्हें राह दिखाने को एक दूसरे सङ्कल्प को नबी बना कर भेजता है और साथ में ही दूसरे सङ्कल्प को शैतान बना कर अन्य बेगिनती संकल्पों को बहकाने की स्वतन्त्रता देता है और जो उस के बहकाने में आ जाते हैं उन्हें फिर नरक में डाल कर जलाता है? मैं पूछता हूं क्यों? उनका अपराध हो क्या था? उन्होंने तो सचमुच कुछ अपराध किया ही नहीं। धोखा खाने वाले को धोखा देने वाले पर तो हम ने फ़ौज़दारी में ताज़ीरात हिंद की दफ़ा ४२० के इस्तगासे करते और धोखा देने वाले को जेल में जाते हुए देखा है परन्तु ऐसा तो नहीं देखा कि धोखा खाने वाला बड़े घर भेजा जाता हो इस लिये कि उसने क्यों धोखा खाया? मनुष्य की अदालतों में तो किसी २ को जनम कैद होती है परन्तु यहां सब को अनन्त काल तक नरकवास का दण्ड मिलता है!

यह कहना भी ठीक नहीं कि प्रकृति और जीव भ्रममात्र हैं। आदि सृष्टि से अब तक सब मनुष्यों का अनुभव इस को झुठलाता चला आता है। हम सब वादी भी और प्रतिवादी भी अपने अन्तःकरण में जानते हैं कि हमारी भी सत्ता है और प्रकृति की भी। बड़े से बड़े वैज्ञानिक भी जड़ और चेतन के अस्तित्व को अलग २ मानने पर और यह कहने पर बाध्य होते हैं कि जड़ से चेतन की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यह माना है कि हमें प्रकृति के गुणों का ही अनुभव होता है परन्तु गुण गुणी में ही रहते हैं। गुणों के अस्तित्व के लिए द्रव्य का होना अनिवार्य है। रूप रंगादि गुणों का आधार अवश्य होना चाहिए, उसी आधार का नाम प्रकृति है। ऐसे ही आत्मिक शक्तियों का आधार जीवात्मा है। हरएक Molecule और Atom के गुण अलग अलग होते हैं और इसी पर रसायन विद्या की बुनियाद है। विशेष पदार्थ के विशेष संख्यक atoms दूसरे विशेष पदार्थ के विशेष संख्यक atoms से मिलने का गुण रखते हैं। Hydrogen का एक और Oxygen के आठ (?) atom झट आपस में मिल जाते हैं और जल को उत्पन्न कर देते हैं। atom अत्यन्त सूक्ष्म हैं और इन्द्रियातीत हैं परन्तु इस कारण हम यह नहीं कह सकते कि वह हैं नहीं। यह कैसे कहा जा सकता है कि प्रकृति एक भ्रम है जब कि विज्ञान के अनेक परीक्षणों से हमें उसके अस्तित्व का पता

लगता है ? यदि प्राकृतिक पदार्थ केवल गुणों के समुदाय मात्र ही हैं तो मैं पूछता हूं कि विशेष गुणों को एक ही समुदाय में बांधने वाला कौन सा वस्तु वा कारण है ? हमारे अनुभव में ऐसा क्यों होता कि हम विशेष प्रकार के गुणों को सदा इकट्ठा पाते हैं और एक गुण को अनुभव करके हम यह अनुमान कर लेते हैं कि इसके सहचारी गुण रखने वाला पदार्थ अवश्य विद्यमान होगा और वह अनुमान हमारा ठीक ही निकलता है । यदि प्रकृति वास्तव में कोई सत्ता नहीं रखती तो यह गुण परमेश्वर में मानने पड़ेंगे चाहे आप उन्हें उसका सङ्कल्प कहें वा कुछ और । और इस दशा में रूप रस, गंध आदि प्राकृतिक पदार्थों के गुण ईश्वर के गुण ठहरेंगे और फिर सब कुछ परमेश्वर ही है अर्थात वह अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, इस सिद्धांत को मानना पड़ेगा और तब न जीव रहेगा न प्रकृति, न कोई उपासक ही रहेगा और न उपास्य, न ध्याता रहेगा न ध्येय, न ज्ञाता रहेगा न ज्ञेय । कोरे नवीन वेदांत का आश्रय लेना पड़ेगा । इससे जो भयङ्कर परिणाम उत्पन्न होंगे वह स्पष्ट हैं । न पाप रहेगा न पुण्य, न कर्त्ता रहेगा न कर्म, न कर्मों का दण्ड विधान रहेगा और न उनका फल प्रदान । एक ही समुद्र के सब जल कण होंगे, एक ही ज्वाला के स्फुलिंग, एक ही सूर्य के प्रतिबिंब और एक ही आकाश के अंश-भेद । केवल नाम रूप का भेद रह जायगा सो रहा करो इससे क्या प्रयोजन ! यह कोरा नास्तिकवाद है । यह कहना कि सब कुछ परमेश्वर ही है और यह कहना कि परमेश्वर नहीं है वास्तव में एक ही अर्थ रखते हैं । यह एकत्ववाद अवश्य है परन्तु एकेश्वर-वाद नहीं जिसपर सामी मतों को इतना गर्व है । इसके अतिरिक्त एकत्व के जबतक कि उसके साथ अन्य पदार्थ न हों कोई अर्थ ही नहीं रहते । जीव और प्रकृति की सत्ता स्वीकार करते हुए तो हम कह सकते हैं कि परमेश्वर एक है और अन्य उस जैसा वा उससे अधिक कोई नहीं क्योंकि उसके साथ अनेक जीव हैं और प्रकृति है । जीवों में और प्रकृति में उसके तुल्य वा अधिक कोई नहीं और दूसरा परमेश्वर भी कोई नहीं । परन्तु जब न जीव की सत्ता हो और न प्रकृति की तब परमेश्वर ही परमेश्वर रहा । ऐसे परमेश्वर का होना न होना बराबर है ।

असत् से सत् न होने के विरुद्ध एक और भी युक्ति है । यदि असत् से सत् हुआ तो ऐसा तो हो नहीं सकता कि असत् धीरे २ सत् बना हो क्योंकि ज्यों ही असत् सत् की ओर बढ़ेगा वह किसी न किसी अंश में सत् बन जायगा इसलिए जब तक असत् सत् न बने वह असत् ही रहेगा । कोई भी उपाय ऐसा नहीं है जिससे असत् धीरे २ सत् बन जावे, असत और सत् के बीच में कोई तीसरी अवस्था नहीं हो सकती अतः यदि सत् असत् से उत्पन्न हुआ तो तत्क्षण ही हुआ होगा अर्थात् सत् और असत् एक ही क्षण में इकट्ठे हो जायगे और यह सर्वथा असम्भव है । यह कहना कि असत् और सत् एक ही क्षण में इकट्ठे नहीं होते बल्कि एक के नाश हो जाने पर दूसरा उत्पन्न होता है असंगत है क्योंकि जैसा अभी कहा गया है असत् धीरे २ सत् नहीं बन सकता वह यदि बना होगा तो एक दम बना होगा और उस दशा में दोनों एक ही समय में अवश्य इकट्ठे होने चाहियें ।

प्रकृति के सादि होने में एक यह युक्ति दी जाती है कि जो स्वतः विद्यमान है वह अवश्य ही सब प्रकार से पूर्ण होना चाहिए और अनन्त होना चाहिये अर्थात् अपरिमित चाहिए और माद्दा चूँकि परिमित है अपूर्णता युक्त है अतः वह उत्पन्न हुआ है और रचित है । मैं नहीं समझता कि प्रकृति को किस अर्थ में अपूर्ण कहा जाता है ? अपूर्ण तो वह है जो अपने गुणों में पूर्ण न हो । प्रकृति में सत्व, रज, तम गुण पूर्णतया विद्यमान हैं उनमें कोई अपूर्णता नहीं । हां, कार्य जगत की रचना में किसी पदार्थ में कोई गुण अधिक और न्यून होता है और

यदि ऐसा न हो तो पदार्थों की रचना ही नहीं हो सकती। अतः इस युक्ति से माद्दे का उत्पन्न होना सिद्ध नहीं हो सकता। रचित पदार्थ अवश्य सादि और सान्त होना चाहिये। यदि माद्दा उत्पन्न हुआ है तो अवश्य वह कभी न कभी नष्ट भी होगा परन्तु तुम मानते हो कि वह नष्ट नहीं होगा। यदि कहो कि हो जायगा तो मैं पूछता हूं कि नरक और स्वर्ग किस वस्तु से बनेंगे और जब क़यामत के दिन मुर्दे उठेंगे तो उनके शरीर कैसे होंगे और वह स्वर्ग के प्राकृतिक भोगों और नरक की प्राकृतिक अग्नि की यातनाओं को कैसे भोगेंगे? इससे स्पष्ट है कि वादी के मन में प्रकृति रचित पदार्थ होते हुए भी अन्त-रहित है। प्रकृति का परिमित होना भी उसके उत्पन्न होने की दलील नहीं। मैं दिखा चुका हूं कि ईश्वर भी कई अंशों में परिमित शक्ति वाला है क्यों कि वह कोई ऐसा काम नहीं कर सकता जो बुद्धि के नियमों वा स्वयं उसकी सत्ता और गुणों का घातक हो, परन्तु फिर भी ईश्वर के अनादि और स्वतः विद्यमान होने में कोई बाधा नहीं पड़ सकती, इसी प्रकार जीव की शक्ति और गुणों का परिमित होना इस बात को सिद्ध नहीं कर सकता कि वह एक समय विशेष में रचा गया और उत्पन्न हुआ।

वादी का एक आक्षेप यह भी है कि यदि जीव और प्रकृति अनादि मान लिये जावें तो एक के स्थान में तीन ईश्वरों का मानना लाज़िम आता है क्योंकि जीव और प्रकृति उसके अनादित्व में शरीक हो जाते हैं। मैं पूछता हूं कैसे? यदि ईश्वर, जीव और प्रकृति में केवल एक ही गुण होता अर्थात् वह तीनों केवल अनादि होने के सिवा और कुछ न होते तो यह कहना किसी प्रकार संगत भी हो जाता परन्तु अनादि होने के अतिरिक्त परमेश्वर में अनन्त गुण ऐसे हैं जिनका जीव और प्रकृति में लवलेश भी नहीं है। सत्ता मात्र ही तो तीनों में एकसी है परन्तु जीव सत भी है और चित भी और ईश्वर सत चित होने के अतिरिक्त आनन्द भी है। यदि केवल एक गुण के मुश्तरक होने से दो वस्तुओं का एकत्व सिद्ध होता हो तो दिक् और काल भी परमेश्वर होने चाहिएं क्योंकि वह भी अनादि हैं, उन के अनादित्वका न होना तो बुद्धि में आ ही नहीं सकता और उसको वादी को भी स्वीकार करना पड़ेगा। यदि वादी की युक्ति ठीक हो तो यज्ञदत्त और देवदत्त जो एक ही समय में उत्पन्न हुए हैं एक ही होने चाहियें।

यह तो वादी भी मानेगा कि ईश्वर और जीव में स्वामी और सेवक का सम्बन्ध है। जब जीव नहीं था तो ईश्वर किसका स्वामी था? कहना पड़ेगा कि किसी का भी नहीं। यदि उस समय वह स्वामी नहीं था और जीव के उत्पन्न करने के पीछे ही वह स्वामी बना तो उसके गुणों में वृद्धि हुई और वह विकारी हुआ और एकरस न रहा। इस प्रकार के निग्रह पर पहुंच कर वादी झट बोल उठेगा कि स्वामित्व उसका अधिगुण है जैसे अधिमास वा लौंद का महीना। इसी प्रकार उसमें कर्तृत्व, न्यायकारिता, दयालुता आदि भी अधिगुण ही रहेंगे क्योंकि सृष्टि रचना से पहिले वह कर्त्ता हो नहीं सकता, जब किसी का मुक़द्दमा ही उसकी अदालत में पेश नहीं था तो वह न्याय किसका करता? हां, यदि अपने ही साथ न्याय करता रहता हो तो हम नहीं सकते। जब कोई दया का पात्र ही न था तो दया दिखाता किस पर? शायद अपने ही ऊपर रहम खाता हो और अपनी ही हालत पर उसे तरस आता हो! मैं तो यह कहता हूं कि जीवों को उत्पन्न करके यह तो सिद्ध ही है कि उसने उनके साथ न्याय नहीं किया क्योंकि किसी को बिना कारण उसने अन्धा, किसी को बहरा बना दिया, किसी की बुद्धि बिना हेतु ऐसी पैनी करदी कि वह आसमान पर नसेनी लगा कर तारे तोड़ने लगा, और किसी को निरा मिट्टी का माधो और गोबर-गणेश बना कर रख दिया, किसी की प्रकृति और

प्रवृत्ति पाप की ओर करदी जैसे कोई ऊंटवाला अपने ऊंट की नकेल एक ओर को मोड़कर छोड दे और किसी की प्रवृत्ति पुण्य की ओर करदी। अब कहिए यदि ऊंट राजा गर्दन को लचकाता और बिलबिलाता उधर को सरपट भग जाय और फिर ऊंट वाला उस पर कोड़ा फटकाय तो उसे कोई क्या कहेगा और इसमें ऊंट बेचारे का अपराध ही क्या है। जो मनुष्य कुछ अधिक आयु पाकर मरते हैं उनके विषय में तो यह कहा भी जा सकता है कि उन्होंने समझ बूझ कर पाप किया और इस लिए अपने किये की सजा पाई परन्तु जो बच्चे बहुत ही छोटी आयु में मर जाते हैं जिन्हें पाप पुण्य की तमीज़ भी नहीं होती और वह जब तक जीते हैं दुःख भोगते हैं, उन्हें किस पाप की सजा दी जाती है? इसका उत्तर हमें कुछ नहीं मिलता सिवाय इसके कि परमेश्वर मालिक है और जीव उसकी वस्तु है उसे अधिकार है कि उनके साथ चाहे जो व्यवहार करे जीव शिकायत करने वाला कौन? यदि ऐसी बात है तो फिर ईश्वर को न्यायकारी क्यों कहा जाता है उसे तो एक समझदार मनुष्य भी कहना कठिन है! मनुष्य भी कुछ सोच विचार कर और बुद्धिपूर्वक ही अपनी वस्तुओं का प्रयोग करता है। यदि एक मनुष्य एक हजार रुपये के नोट का सिगरेट बना कर पी जाय तो उसे कौन बुद्धिमान कहेगा? उसने अपनी ही वस्तु का दुरुपयोग किया और इससे किसी दूसरे को हानि भी नहीं हुई परन्तु फिर भी उसकी गणना बुद्धिमान मनुष्यों में नहीं हो सकती। एक मनुष्य अपने चलते घोड़े के तो कोडा लगाए और मट्टू को दूध जलेबी खिलाए तो उसे कौन अच्छा कहेगा?

एक बात कही जाती है कि यह मन्तव्य कि यदि हम किसी प्राकृतिक पदार्थ के टुकड़े करते चले जावें तो एक समय ऐसा आवेगा कि फिर उसके टुकड़े न हो सकेंगे और यही अणु वा Atom हैं, वादी की दृष्टि में अग्राह्य है, क्यों कि छोटे से छोटा टुकड़ा भी यद्यपि वह हमारे किसी औज़ार से विभाजित न हो सके तो भी विचार में तो उसके टुकड़े हो ही सकते हैं। वह इससे यह परिणाम निकलता है कि न तो हम यह कह सकते हैं कि अनन्त टुकड़े हो सकते हैं क्योंकि इसके लिये अनन्त काल चाहिए जो समझ में नहीं आ सकता और न यह कह सकते हैं कि उसका कोई ऐसा टुकड़ा हो सकता है जिसका फिर कोई टुकड़ा न होसके। इस लिए माद्दा किसी प्रकार भी एक अनुभूत होने वाला पदार्थ नहीं कहा जा सकता। अनुभव विरुद्ध होने से यह बात प्रामाणिक नहीं। प्रकृति के स्वरूप के ज्ञान के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम उसे अपनी इंद्रियों द्वारा महसूस करते हों, यहां अनुमान से काम लेना चाहिये। हमें अब जो प्राकृतिक पदार्थ दीखते हैं उनमें प्रकृति गुणों का वैषम्य है। उसका स्वरूप वह है जब उसके तीनों गुणों की साम्यावस्था होगी। और अब तो Atom के तोड़ने फोड़ने की फ़िक्र हो रही है और कहा जाता है कि यदि इसमें सफलता हो गई तो मनुष्य के हाथ एक ऐसा हथियार आ जायगा कि वह सारी पृथ्वी को एक पल में भस्मसात् करके रख देगा।

एक बात और समझ में नहीं आती। यदि प्रकृति एक उत्पन्न पदार्थ है और वह केवल ईश्वर का संकल्प मात्र है तो कम से कम अपने चेतन संकल्प जीव को तो सृष्टि की आदि में ही उस जड़ संकल्प के समस्त गुण देने चाहिए थे, परंतु ऐसा नहीं किया गया बल्कि जो कुछ बताया भी गया वह भी अनुभव और विज्ञान विरुद्ध, इससे पाया जाता है कि वादी के ईश्वर को उनका पूर्ण ज्ञान ही न था।

अब आपने देखा कि न जीव उत्पन्न सिद्ध हो सकता है और न प्रकृति ही उत्पन्न सिद्ध हो सकती है, और दोनों को जात पदार्थ मानने से अनेक

प्रकार की कठिन समस्याएं हमारे सामने आकर खड़ी हो जाती हैं जिनका हम कोई उत्तर नहीं दे सकते। इसके अतिरिक्त ईश्वर में भी त्रुटियां आती हैं और वास्तव में वह कोई ऐसी व्यक्ति नहीं रहता जिसे कोई प्यार करे और जिस पर कोई भरोसा करे।

इसके सामने वैदिक सिद्धांत पूर्ण रूप से सारी कठिनाइयों और विकट प्रश्नों को दूर करके मानव हृदय को शांत और तुष्ट कर देता है। जीव अनादि है इसलिए वह अनादि काल से कर्म करता और फल भोगता चला आता है और जैसे वह कर्म करता है वैसे ही उसे फल मिलते हैं। प्रकृति अनादि है और सदा उससे सृष्टि रचना और रचना के पश्चात प्रलय होता रहता है। यह चक्र भी अनादि है। परमात्मा के सब गुण बने रहते हैं। एकरस रहने और न्यायकारी होने से हम उसके ऊपर भरोसा भी कर सकते हैं और प्यार भी। आहा कैसा सुन्दर कैसा शांतिप्रद सिद्धांत है, जब तक लोग ईश्वर और उसकी परम पुनीत वाणी की शरण नहीं लेंगे तब तक उनकी आधि व्याधि, व्यथा और चिन्ता दूर नहीं होंगे और वह शांति धाम पर न पहुंचेंगे।

---*---

षट्दर्शनों में समन्वय

(ले०—पं० रामसुख मिश्र)

वैदिक धर्म को तर्क द्वारा दृढ़ करने वाले दर्शनों के विषय में बहुत काल तक दार्शनिकों की भी यही धारणा रही है कि उनमें परस्पर विरोध है। सूत्रकारों के पवित्र आर्ष ज्ञान का नवीन भाष्यकारों ने बहुत ही दुरुपयोग किया, दर्शनशास्त्र के तर्कप्रधान होने के कारण उन्होंने अपने शास्त्रों में कुछ एक ऐसे भी विषय रख दिए, जिन पर विवाद करने से बुद्धि की स्फूर्ति हो और उनके द्वारा लक्ष्य में विरोध न हो, अर्थात् ऐसे पदार्थों की सत्ता या असत्ता शास्त्रीय सिद्धान्तों में किसी प्रकार पार्थक्य पैदा नहीं करती। जिस तरह समवाय के मानने या न मानने से वैदिक सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं आता। मोक्ष, ईश्वर, अदृष्ट, बाह्य पदार्थ और वेदों के अपौरुषेयत्ववाद में समवाय न कुछ सहायक हो सकता है और नहीं विरोधी हो सकता है, बस सूत्रकारों ने परस्पर वाद प्रवृत्त करने के लिए ही ऐसे पदार्थों की स्थापना की थी, इसी प्रकार के अंश उनमें खण्डनात्मक हैं जिनको लेकर नव्य भाष्यकारों ने और उनके अनुयायी निबन्धकारोंने बहुतही कलह मचाया और और नव्य नैयायिक तथा नव्य वेदान्तीने तो दुर्वचन तक प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया--जिस प्रकार पुराणों को ही वैदिक-धर्म-प्रतिपादक ग्रन्थ समझ कर विधर्मियों ने आक्रमण किया उसी प्रकार नव्य दार्शनिकों ने तर्क को ही दार्शनिक तत्व समझ कर आक्रमण किया, ठीक ऐसे ही समय योगज-प्रातिभ-ज्ञान-सम्पन्न वेद वेदांग के अनुपम ज्ञाता ऋषिवर के निम्न लिखित वचन सुनाई दिये। "जैसा एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एक दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है वसे ही सृष्टिविद्या के भिन्न २ छः अवयवों का शास्त्रों में प्रतिपादन करने से कोई विरोध नहीं, जैसे घड़े के बनानेमें कर्म, समय, मिट्टी, विचार, संयोग वियोगादि

का पुरुषार्थ प्रकृति के गुण और कुम्भार कारण हैं वैसेही सृष्टिका जो कर्मकारण है उसकी व्याख्या मीमांसामें समय की व्याख्या वैशेषिक में, उपादान की व्याख्या न्याय में, पुरुषार्थ की व्याख्या योग में, तत्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्या सांख्यमें और निमित्त कारण जो ईश्वर है उसकी व्याख्या वेदांत में है। इसमें कुछभी विरोध नहीं। जैसे वैद्यक शास्त्र में निदान, चिकित्सा, औषधि दान, और पथ्य के प्रकरण भिन्न २ हैं परंतु सबका सिद्धांत रोग निवृत्ति है वैसे ही सृष्टि के छः कारण हैं इन मेंसे एक २ कारण की व्याख्या एक २ शास्त्रकार ने की है इसलिए इन में कुछ भी विरोध नहीं।" इसी एक सत्य प्रकाश की सहायता से मैं अपना कार्य पूरा करने को समुद्यत हुआ हूं। सबसे प्रथम मैं सांख्य पर अपना विचार प्रकट करूंगा क्योंकि उसमें सृष्टि के तत्वों का वर्णन है जिसके आधार पर सृष्टि की मुख्य रचना है।

सांख्य शास्त्र में 'प्रकृति महत, अहङ्कार, पंच तन्मात्रा, पंचभूत, पंच ज्ञानेन्द्रियां, पंच कर्मेन्द्रियां, अन्तःकरण, पुरुष,' ये २१ तत्व गिनाए गए हैं, पर वह बहुत ही उदार है। २५ तत्वों का निश्चय करके भी अनियत पदार्थवादी है। युक्तियुक्त और वेद से जो विरुद्ध न हो उसे मान लेता है। आधुनिक दार्शनिक 'न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत्' इस सूत्र को देखकर बहुत हो चकित हो जाते हैं। वे समझते हैं यह महर्षि कणाद पर आक्रमण है, पर यह सूत्र महर्षि कणाद के ऊपर आक्रमण करने वाला नहीं है किंतु यह केवल यही सूचित करता है कि महर्षि कणाद नियत पदार्थवादी हैं और मैं अनियत पदार्थवादी हूं। यह बात आगे के सूत्र में स्पष्ट कर दी है। 'अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहो अन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम्।' टीकाकारों ने इस सूत्र का आशय बहुत ही विपरीत वर्णन किया है। वे लोग इस सूत्र का आशय यह वर्णन करते हैं कि हम अनियत पदार्थवादी हैं तौभी युक्ति से विरुद्ध वैशेषक के षट्पदार्थों को नहीं मान सकते क्योंकि उसका मानना बालक और उन्मत्त के कथन के मानने के समान है। इसी प्रकार के टीकाकारों ने दर्शन के विषय में अपक्व बुद्धियों में भ्रम फैला रक्खा है। टीकाओं पर बिना ध्यान दिए यदि दोनों सूत्रों पर विचार करें तो विरोध का लेश भी नहीं मालूम होता। इन दोनों सूत्रों का सम्मिलित अर्थ यही है कि वैशेषिक नियत पदार्थवादी हैं और मैं अनियत पदार्थ मानता हूं अतः जो कुछ युक्तियुक्त है वह सब मेरा पक्ष है परंतु अयुक्त पक्ष का मानना उन्मत्त प्रलाप के मानने के तुल्य है। मैं नहीं समझता इस कथन में आक्रमण की कौनसी बात है।

कपिल शास्त्र के ऊपर सब से बडा दोष यह दिया जाता है कि वह अनीश्वरवादी है। इस मत के प्रचारकों में सबके अग्रणी श्री शङ्कर स्वामी जी हैं। हम सांख्य के विषय में उनके विचारों का तथ्य वेदान्त निरूपण अवसर में करेंगे। यहां तो मुझे केवल यही सिद्ध करना है कि महर्षि कपिल आस्तिक थे। उपरोक्त सिद्धान्त के बारे में बड़े बड़े विद्वानों की भी दृढ़ धारणा इस बात में प्रमाण है कि विश्वास को गुरुता के सामने विद्वत्ता और विचार शक्ति कुण्ठित होजाती है अन्यथा क्या श्री शङ्कराचार्य जी ऐसे महा विद्वानों के हृदय में यह बात नहीं आनी चाहिए थी कि वेदों को अपौरुषेय स्वतःप्रमाण मानने वाले महर्षि कपिल नास्तिक कैसे हो सकते हैं। जिस वेद में सूक्त के सूक्त ईश्वरीय सत्ता के ज्वलन्त प्रमाण हैं उसे सर्वश्रेष्ठ प्रमाण मानने वाले महर्षि कपिल नास्तिक, यह बात कैसे विश्वास योग्य समझी जा सकती है! अन्य विषयों में विवाद हो सकता है पर वेद स्वतःप्रमाण अपौरुषेय हैं और उनमें ईश्वर का बहुत अधिक वर्णन है इस विषय में किसी को विवाद नहीं, फिर वैदिक को नास्तिक कहना स्वयं भ्रांत होकर लोगों में उसी रोग का प्रचार करना है। महर्षि कपिल वेद को मानने

वाले हैं इस विषय में प्रमाण देने की कोई आवश्यकता नहीं, यह तो कपिलसूत्रों के एक बार देख जाने से ही पता लग सकता है। इस में सूत्रों का प्रमाण दे कर अपने पक्ष को पुष्ट करने का प्रयत्न करना अपने कर्तव्य की गुरुता न समझ कर काल यापनमात्र है। श्री शंकर स्वामी जी का पद बहुत ही बड़ा उच्च है। उन की बातों का विद्वानों में बड़ा मूल्य है पर कुछ हो सत्य बात तो प्रकट करनी ही चाहिये। उपरोक्त भाव के दृढ़ मूल होने का कारण सांख्यदर्शनका 'ईश्वरासिद्धेः यह प्रसिद्ध सूत्र है। कापिल शास्त्र के विरोधियों का यह सूत्र बड़ा अस्त्र समझा जाता है। जिनके साथ मेरा सिद्धांत मिलता है उनमें भी बहुतों को इस सूत्र ने बेतरह दिक्क कर रक्खा है। एक सत्य सिद्धांत के पक्ष में उनको युद्ध की तैयारी से हृदय में बड़ी प्रसन्नता होती है पर उनकी दीनता से चित्त करुणार्द्र हो जाता है। अस्तु। सांख्यदर्शनकार ने प्रत्यक्ष का लक्षण लिखा है 'यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्'। जिस विषय के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाला ज्ञान उस विषय के आकार सहित हो वह प्रत्यक्ष है, ऐसा लक्षण करने पर शङ्का हुई कि विषय के साथ इन्द्रियों के सम्बन्ध से होने वाले लौकिक प्रत्यक्ष में यह लक्षण संघटित हुआ पर योगज धर्म से जो ज्ञान होता है वह भी प्रत्यक्ष है उसमें इस लक्षण की अव्याप्ति हुई, और ईश्वर प्रत्यक्ष में भी इस लक्षण के असंघटित होने से वहां भी उक्त दोष की प्राप्ति हुई, इस पर सूत्रकार ने उत्तर दिया कि हमारा प्रत्यक्षका लक्षण बाह्येन्द्रिय के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले प्रत्यक्ष के विषय में है और उक्त दोनों प्रकार के ज्ञान उससे भिन्न हैं, उनमें लक्षण के अप्रवेश से कोई दोष नहीं। उपरोक्त दोनों शङ्काओं का उत्तर 'योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः' 'ईश्वरासिद्धेः' इन दो सूत्रों से दिया गया है। इस युक्ति से 'ईश्वरासिद्धेः' इसका अर्थ हुआ कि उपरोक्त प्रत्यक्ष के लक्षण का विषय न होनेसे उस लक्षणसे ईश्वर के न सिद्ध होने से अव्याप्ति दोष नहीं। यदि सूत्रकार को ईश्वराभाव इष्ट होता तो 'योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः?' इस सूत्र के अनन्तर ही 'ईश्वरासिद्धेः इस सूत्र की रचना क्यों करते? और अनुमानादि अन्य प्रमाणों के निरूपण के अनन्तर भी यह सूत्र लिखा जा सकता था, तथा 'ईश्वराभावात्' ऐसी स्पष्ट सूत्र-रचना भी की जा सकती थी अतः सिद्ध हुआ 'ईश्वरासिद्धेः' इस सूत्र के अभिप्राय समझने में यदि बुद्धिहीनता नहीं हुई तो हठ तो अवश्य ही किया गया है। और हमारे प्रतिपक्षी तो 'अर्थी दोषं न पश्यति' इस लौकिकि के पूर्ण उदाहरण हैं क्यों कि वे अपने पक्ष के सिद्ध करने में ऐसे व्यग्र हो जाते हैं कि 'स हि सर्ववित सर्वकर्ता 'ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा' 'समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता' इन तीन सूत्रों से स्पष्ट शब्दों में सांख्यकार से स्वीकृत ईश्वर की तरफ दृष्टिपात भी नहीं करते। सांख्यदर्शन में एक जगह पूर्व-पक्ष किया गया कि जब कर्म ही से फल सिद्ध है तब फल का अधिष्ठाता ईश्वर मानने की क्या आवश्यकता? इस प्रकार के पूर्व-पक्ष को महर्षि कपिलने 'नेश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः' इन शब्दों में प्रकट किया है। इसका उत्तर तीन सूत्रों में दिया गया है। इस जगह उनका वर्णन आवश्यक समझ कर मैं आपके सामने उनको प्रकाशित करता हूं। 'स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत्', 'लौकिकेश्वरवदितरथा', 'पारिभाषिको वा'। क्रम से इनकाअर्थ यह है कि ईश्वर फलाधिष्ठाता सृष्टि रचना रूप उपकार से है। जिस तरह लोक में कोई पुरुष वाटिकादि की रचना कर के उपकार द्वारा फलदाता कहा जा सकता है। और लोक में स्वामी जिस तरह न्यून कर्म करने वाले भृत्य को न्यून फल देता है और अधिक कर्म करने से अधिक फल देता है उसी तरह ईश्वर भी जीवों के कर्मानुसार फल की व्यवस्था करने से फलाधिष्ठाता है। किञ्च 'क्लेशकर्मविपाकाशये-

रपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' इस प्रकार पारिभाषिक ईश्वर सिद्ध है। उपरोक्त दो सूत्रों में लोकवत् कथन से ईश्वर का दो प्रकार से फलाधिष्ठाता होना बतलाया और तीसरे में स्वयं किस प्रकार के लक्षण से युक्त ईश्वर मानते हैं यह बात दिखलाई। पारिभाषिक कथन से सिवा योगशास्त्र में प्रतिपादित ईश्वर के अन्य किसी में तात्पर्य ही नहीं हो सकता, क्योंकि किसी दर्शन में ईश्वर की सत्ता में युक्ति और वह किस प्रकार का कारण है इसका वर्णन, और किसी में ईश्वर वाद में दिये गए नास्तिकों के दोषों का उद्धार और किसी में अपना प्रतिपाद्य विषय न होने से न दोषों का उद्धार न उसकी प्राप्ति के उपाय का वर्णन और न गुणों का प्रतिपादन अथच न उसकी सत्ता की सिद्धि की है। तब पारिभाषिक कहने से सिवा योग शास्त्र के पारिभाषिक ईश्वर के और क्या गृहीत हो सकता है? सांख्य दर्शन में ईश्वर विषय के अनेक सूत्र हैं जिन सब का अपने पक्ष समर्थन में ग्रहण करने से एक स्वतन्त्र ग्रन्थ हो सकता है। अब मैं जिस दर्शन के साथ जिस विषय में सांख्य का विरोधाभास लोग दिखलाते हैं, वहीं उसका निराकरण करूंगा, क्योंकि सांख्य विषय में बहुत कहने से निबन्ध कलेवर बढ़ने का भय है और अवसर पर ही कहना उचित भी है।

अब मैं वैशेषिक दर्शन के विषय में अपना कथन प्रारम्भ करता हूं। सांख्य में सामान्य पदार्थों की गणना कारण-क्रम से की गई है, पर वैशेषिक में विशेष गुण और गुणियों का वर्णन है। विशेष शब्द सपेक्ष है। जब वैशेषिक दर्शन में विशेष धर्म और धर्मों का वर्णन है तब विशेष की अपेक्षा रखने वाला सामान्य धर्म धर्मी का कहीं अवश्य होना चाहिए और वह सांख्य में वर्णित है। पदार्थों के परीक्षण करने के लिए केवल विशेष ही धर्म का वर्णन नहीं है किन्तु सामान्य का भी है।

यदि केवल सामान्य ही वर्णन कर दिया जाय तो पदार्थों का भेद नहीं मालूम होता और केवल विशेष ही के वर्णन करने से यथार्थ भेदबुद्धि दृढ़ नहीं होती, अतः दोनों का वर्णन आवश्यक है और दोनों दर्शनों में पृथक २ सामान्य और विशेष पदार्थ वर्णित हैं। जिस तरह स्नेह जल का विशेष गुण है। अगर इसकी परीक्षा वैशेषिक नियमानुसार करते हैं तो इस प्रकार कर सकते हैं कि यदि स्नेह जलका गुण है तो तैल और घृतादि जो गन्ध विशेष गुण से पृथ्वी सिद्ध हैं उनमें स्नेह क्यों हैं, यदि जल ही का वह गुण है और वह पदार्थान्तर के सम्बन्ध से संक्रांत हो गया है तो फिर यह शंका होती है कि क्यों जलगत स्नेह अग्नि को शांत कर देता है और जब वह पदार्थान्तर तैलादि में संक्रांत हो जाता है तब अग्नि का उत्तेजक क्यों हो जाता है? इस पर यह उत्तर होगा कि स्नेह दो प्रकार का होता है, एक सांसिद्धिक अर्थात स्वाभाविक और दूसरा नैमित्तिक। स्वाभाविक स्नेह अ-घन होगा अतः वह अग्नि का उत्तेजक नहीं होगा, और पदार्थान्तर के योग से जो घनीभूत होगा वह अग्नि का उत्तेजक होगा। हम पदार्थों के स्वभाव को रोक नहीं सकते किन्तु यथादृष्ट की व्यवस्था कर सकते हैं। इसी प्रकार शब्द विशेष गुण की परीक्षा की जा सकती है। परीक्षा से मालूम हुआ कि सावयव पदार्थों का विशेष गुण जबतक गुणी रहता है तब तक वह रहता है और निरवयव पदार्थ के विशेष गुण गुणी के सत्ताकाल में उत्पन्न और विनष्ट होते रहते हैं। कल्पना कीजिए हम शब्द को वायु का विशेष गुण मानते हैं तो दोष आता है कि जिस तरह स्पर्श वायु का विशेष गुण है और वह जब तक वायु रहती है तभी तक रहता है उसी प्रकार शब्द को भी वायु के ही स्थिति काल में रहना चाहिये, पर शब्द वायु के रहते हुये भी नहीं रहता इसलिए उसका विशेष गुण नहीं। इसपर आधुनिक विद्वान् कहते हैं कि शब्द वायु का ही गुण है क्यों कि यदि किसी घंटे की वायु यंत्र से खींच लें तो

वह नहीं बजेगा इससे सिद्ध है कि वह वायु का हीं गुण है। इस का उत्तर यह है कि इन्द्रियां दो प्रकार की हैं। एक प्राप्यकारी दूसरी अप्राप्यकारी। प्राप्यकारी वह है जो कि विषय-देश में जाकर विषय को ग्रहण कराती हैं। जैसे चक्षु की किरणें जहां पर विषय होता है वहीं जाती हैं तब प्रत्यक्ष होता है और अन्य इंद्रियां अप्राप्यकारी हैं अर्थात विषय जब उनके पास जाता है तब प्रत्यक्ष होता है इसलिए घंटे से वायु निकाल देने पर श्रवणेन्द्रिय तक पहुंचाने का जब साधन ही न रहा तब उसका ज्ञान कैसे हो सकता है? शब्द की उत्पत्ति का उपादान कारण आकाश है और उसके वहन में निमित्त कारण वायु के न होने से उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। वायु के घंटे में न रहने से शब्द उत्पन्न तो होता है पर शब्द तरङ्गों के वहन होकर श्रोत्र देश में अप्राप्त होने के कारण उसका ज्ञान नहीं होता। वायु की तरफ मुंह करके जब दूर से भी बोलते हैं तब हमें शब्द सुनाई देता है. अतः मालूम होता है वायु शब्द को कर्णदेश तक केवल पहुंचाने वाली है, उसका समवायिकारण नहीं, उसके समवायि कारण न बन सकने के विषय में दोष दिया जा चुका है। वैशेषिक में केवल विशेष गुणों का ही वर्णन नहीं किंतु रचना या विनाश में समय की व्यवस्था भी अच्छी तरह की गई है। वह इस प्रकार है। वैशेषिक गुणी की रचना विना गुण की उत्पत्ति नहीं मानते। इसी प्रकार गुणी के विनाश के बिना गुण की उत्पत्ति नहीं होती। इस प्रकार उत्पत्ति और विनाश के मध्य में किस प्रकार काल की व्यवस्था होती है। पदार्थ में पहले क्रिया उत्पन्न होती है फिर उस क्रिया से अवयवों का परस्पर विभाग होता है। अनंतर विभाग से पदार्थ को आरम्भ करने वाले संयोग का नाश होता है, अनंतर पदार्थ नष्ट होता है बाद में उसका गुण विनष्ट होता है। यह गुणांत विनाश में क्षण की व्यवस्था हुई। इसी तरह गुणांत उत्पत्ति में क्षण-व्यवस्था है। पदार्थ जब उत्पन्न होने को होता है तब द्रव्य को आरम्भ करने वाली परमाणु में क्रिया उत्पन्न होती है। बाद अवयवों का अन्योन्य--विभाग, ततः पूर्वसंयोग का नाश तदनन्तर पदार्थ को आरम्भ करने वाला संयोग, अनन्तर गुणी की उत्पत्ति, फिर गुण की उत्पत्ति। यह पदार्थ के उत्पत्ति और विनाश में क्षण की व्यवस्था वैशेषिक करता है। वैशेषिक दर्शन के विषय में दार्शनिकों के मनमें प्रायः यह शंका उठती रहती है कि इस दर्शन में आत्मा का परिमाण महत् माना है जिस का विरोध 'उत्क्रान्तिगत्या गतीनाम्' इत्यादि सूत्रों से अणु परिमाण सिद्ध करने वाले वेदान्त के साथ आता है। इस पर विचार करने लायक है। लोगों के हृदय में इस शंका के उपस्थित होने का क्या कारण है? विचार करने से मालूम होता है 'ऐकात्म्यम्' इस शब्द ने ही यह भ्रम पैदा किया है। लोगों ने ख्याल किया कि यदि वैशेषिक को ऐकात्म्यवाद इष्ट है तो अवश्य ही उनको आत्मा का महत् परिमाण इष्ट होगा। मैंने पहले ही बतला दिया है कि वैशेषिक पदार्थों का वर्णन सामान्य और विशेष भाव से करता है।

इसी नियम के अनुसार आत्मा के अनेकत्व की परीक्षा करते समय पहले सामान्य धर्म दिखलाया, पश्चात् विशेष धर्म से भेद दिखलाया सुखदुःखज्ञाननिष्पत्यविशेषादैकात्म्यम्'। सुख दुःख ज्ञान की उत्पत्ति के समवायिकारणता—सामान्य से आत्मा का स्वरूप एक है और 'व्यवस्थातो नाना', सुखादि की उपलब्धि और उसके साधन भिन्न २ होने से आत्मा नाना है। 'शास्त्रसामर्थ्याच्च' शास्त्रों ने भिन्न २ विधियों से भिन्न २ फल वर्णन किया है। यदि एक ही आत्मा हो तो भोग--सांकर्य होगा इसलिए भी नाना है। 'ऐकात्म्यम्' इस शब्द से लोग यह भी अर्थ लगाते हैं कि आत्मा एक है और व्यापक न होने से एकता बन नहीं सकती। नव्य नैयायिक व्यापकत्व में यह युक्ति देते हैं कि 'पादे मे

सुखं शिरसि मे वेदना' पैर में सुख है और शिर में पीड़ा, यह अनुभव प्रत्येक को होता है, यदि आत्मा व्यापक न हो तो एक काल में भिन्न २ अवयवों में ज्ञान का ग्रहण नहीं हो सकता। शरीर परिमाण मानने से अनेक जन्मों में छोटे और बड़े शरीरों के ग्रहण से जीवको कहीं विकसित और कहीं संकुचित होना पड़ेगा और संकुचित विकसित होने वाला पदार्थ अनित्य होता है अतः जीव का परिमाण न शरीर परिणाम मानसकते हैं और न अणु, किंतुउसका महत् परिमाण ही मानना चाहिए। यह उनका कहना बहुत भ्रांत है क्योंकि एक कालमें असमान वेदनाएं तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि मन के अणु होने में यही प्रमाण है कि असमान ज्ञान एक काल मे होना ही नहीं और समान ज्ञान के विषय में वेदांत में उत्तर दिया गया है.'अविरोधश्चन्दनवत्, जैसे एक देश में स्थित चन्दन-बिन्दु समस्त शरीर के सुखोपलब्धि का कारण हो जाता है वैसे ही अणु भी आत्मा समस्त शरीर के समान ज्ञानों को उपलब्ध कर सकता है। कोई यह भी कहते हैं कि प्रत्यक्ष में महत् परिमाण कारण होता है इसीलिए परमाणु-गत रूपादि का प्रत्यक्ष नहीं होता। यदि आत्मा अणु हो तो उपरोक्त नियम के अनुसार ज्ञानादि का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। पर उनका यह कथन बाह्य प्रत्यक्ष के विषयमें लग सकता है मानस के विषय में नहीं, क्योंकि मानस प्रत्यक्ष में बाह्य की तरह पदार्थ के अवयवयोग से प्रत्यक्ष नहीं, किंतु सन्निधान मात्र से प्रत्यक्ष हो जाता है, यदि सब जगह विषय-योग ही नियम हो तो सर्वत्र उपरोक्त नियम लग सकता है पर स्मरणात्मक ज्ञान में विषययोग के बिना भी ज्ञानोत्पत्ति हो जाती है। अतः सिद्ध है आत्मा के अनेक होने के कारण वह अणु है। लोग कहते हैं 'विभवान्महाकाशस्तथा चात्मा'। इस सूत्र में कहा है विभु होने से आकाश महान् है वैसे ही आत्मा भी है। यहां तो स्पष्ट ही आत्मा के महत् परिमाण को अङ्गीकार किया गया है। इस पर मेरा कहना है यह नव्य नैयायिकों की लीला है जिन्होंने अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए ऐसी पाठ रचना की है। उपरोक्त सूत्र के आगे 'तदभावादणु मनः' यह सूत्र है। इसका अर्थ है विभु न होने से मन अणु है। यदि हम 'विभवान् महानाकाशस्तथा चात्मा' इस सूत्र के 'तथा चात्मा' इस अंश को अगले सूत्र में मिलाकर 'तदभावादणु मनस्तथा चात्मा' ऐसा पाठ कर देवें तो सब ठीक हो सकता है। ऐसा पाठ यदि न होता तो कैसे सूत्रकार नानात्मवाद को पहिले स्थापित करते, व्यापकत्व और नानात्व परस्पर विरोधी हैं। यदि कहो यह तो उपाधि भेद से कहा है तो उपाधिभेद से आकाश का नानात्व क्यों नहीं सिद्ध किया? धन्य मायावियो! उपाधि से आत्म-नानात्व मानकर सूत्रकार शास्त्र-सामर्थ्य दिखलाते? कल्पित में शास्त्र की सामर्थ्य दिखलाना अवश्य ही सूत्रकार के सामर्थ्य के बाहर की बात थी, नहीं तो औपाधिक घटाकाश मठाकाश में भी शास्त्र सामर्थ्य अवश्य कणाद भगवान् दिखलाते। अतः मेरे पाठ में तो पुष्ट प्रमाण है और नव्य नैयायिकों के कल्पित पाठ में कुछ प्रमाण नहीं। कुछ लोग कहेंगे निबन्धकार खूब धोखा देकर निकल जाता है। अच्छा, वैशेषिक असत् कार्य मानता है और सांख्यकार सत् कार्यवाद। देखें इसकी क्या व्यवस्था होती है? इस पर मेरा नम्र निवेदन है मैं धोखा नहीं देता किंतु जिन्होंने धोखा दिया है उनकी माया मात्र खोल देता हूं। अस्तु, सत्कार्यवाद और असत्कार्यवाद के विषय में दोनों ने एक ही प्रकार की व्यवस्था की है, दोनों ने कार्य को सत् माना है, दोनों ही के मत में अत्यन्तासत् कोई तत्त्व नहीं, केवल शब्दभेद से पदार्थ तत्व का वर्णन है। सांख्य का सूत्र है 'अभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ' व्यवहार और अव्यवहार यह अभिव्यक्तिनिबन्धन है अर्थात् कारण व्यापार से पदार्थ अभिव्यक्त होता है तब उस के

क्रिया और गुण के सम्बन्ध से सत्‌व्यवहार होता है और अन्यथा होने से अन्यथा सूत्र में व्यवहारा-व्यवहारों से अन्वय और व्यतिरेक दिखलाया है। कारण व्यापार की सत्ता से क्रियागुणात्मना व्यवहार होने से जिसका सत् व्यपदेश होता है उसी का कारण व्यापार से पूर्व क्रियागुणात्मना व्यवहार न होने से असत् व्यपदेश होता है। सांख्य में अन्वय को लेकर सत्कार्य कहा है और उसी का समर्थन किया है और वैशेषिक में व्यतिरेक से असत् कह कर उसी का वर्णन किया है। वैशेषिक सूत्र है 'क्रियागुणव्यपदेशाभावात् प्रागसत्'। सांख्य के 'अभिव्यक्तिनिबन्धनौ' इस से अन्वय और वैशेषिक के 'क्रियागुणव्यपदेशाभावात्' से व्यतिरेक स्पष्ट ज्ञात होता है। सांख्य ने व्यापार के सहित कारण का वर्णन करके उसको सत् कहा और वैशेषिक ने व्यापार रहित कारण को असत् शब्द से कहा। अत्यन्तासत् पदार्थ का उदाहरण दे कर सांख्य ने खंडन किया 'नासदुत्पादो नृशृङ्गवत्' असत् की उत्पत्ति नहीं होती। इसी प्रकार के अत्यन्तासत् का वैशेषिक ने भी प्रतिषेध किया 'यश्चान्यदसतस्तदसत्' जो असत् से अन्य है वह असत् है। यहाँ यदि सूत्र में नृशृङ्गवत् दृष्टांत दिया होता तो बिलकुल सांख्य के सूत्र से मिल जाता। वैशेषिक के कारणात्मना सत् कार्य में तो कुछ सन्देह ही नहीं रहता, जब वह कहता है घड़ा घर में नहीं है। इससे अन्यत्र विद्यमान घट के गृह में सम्बन्धमात्र का प्रतिषेध सिद्ध होता है। सुनिये भगवान् कणाद के शब्द 'नास्ति घटो गेहे इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः।'

यह सब होते हुए भी यह शंका हो सकती है कि जब सब का सिद्धांत एक ही है तब एक दूसरे का खंडन क्यों करते हैं? यह शंका करनी ठीक ता है पर वह विद्वानों की अपेक्षा अन्यों के ही मुख से शोभित होती है। दर्शनकारों की शैली है कि वे दृष्टिभेद से पदार्थों के तत्वपरीक्षार्थ दो पक्ष करके तर्क करते हैं, जिस से पूरी तरह तत्व निश्चय हो जाय। जैसे कार्य के सद्रूप होने के विषय में मतभेद नहीं है पर दोनों का तत्वनिर्णय करने के लिये व्यापार के सहित कारण और व्यापार से रहित कारण इन दोनों अंशों को छोड़ कर विशेषांश पर ही विचार करेंगे और एक पक्ष स्थापित करके उसके निश्चय का भार शिष्य की बुद्धि पर छोड़ देवेंगे, पर कहीं न कहीं अवश्य सिद्धांत की एकता की सूचना दे देवेंगे। इसको परशास्त्रवाद कहते हैं और जहां स्वयं शंकोद्भावना और उस का स्वयं उत्तर देते हैं उसे स्वशास्त्रवाद कहते हैं। जैसे मीमांसा और वेदांत में पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष, सन्देह, पूर्वपक्ष, युक्ति, उत्तरपक्ष युक्ति, आक्षेप और उसका निवारण केवल अपने ही शास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं। पदार्थ का निश्चय स्वशास्त्रवाद की शैली तथा परशास्त्रवाद की शैली से, दोनों तरह से होता है। स्वशास्त्रवाद शैली में उत्तर तथा पूर्वमीमांसा का समावेश और परशास्त्र शैली में न्याय वैशेषिक सांख्य का समावेश हो सकता है।

अब मैं वेदांतदर्शन पर कुछ कहना चाहता हूं। मुझे इस अवसर पर न्याय ही पर विचार करना आवश्यक था। फिर मीमांसा के बाद वेदांत का अवसर प्राप्त होता, पर यह श्री शङ्कर स्वामी की कृपा है, जिन्होंने बादरायण भगवान् के सूत्रों की ओट में सारे दर्शनों पर प्रहार किया है। दर्शनोंमें परस्पर विरोध है इस भाव का प्रचार उनके भाष्य के द्वारा बहुत हुआ है अतः प्रधानमल्लनिर्बहण न्याय से उनके निराकरण में मैं अपनी उत्सुकता अधिक समय तक रोक ही नहीं सकता। कुछ लोगों का विचार है कि अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैत इत्यादि सम्प्रदायों का भेद और उनके अनेकों उपभेद व्याससूत्र के कारण ही हुए हैं अतः साम्प्रदायिक विरोध का प्रवर्तक वेदान्त को ही कहना चाहिये।

उन का यह कहना बिलकुल यथार्थता के विपरीत है। असल में वेदान्त दर्शन के प्रामाण्य पर विद्वानों के हृदय में बहुत अधिक विश्वास था। बिना उसके सम्बन्ध के किसी के दार्शनिक विचार को लोग प्रामाणिक ही नहीं मानते थे अतः सभी ने अपने सम्प्रदाय की दृढ़ता के लिए उसका आश्रयण किया और हम लोगों को यह समय देखना था इस लिए वे लोग अपने कार्य में बहुत कुछ सफल भी हुए। अब तो श्री शङ्कर स्वामी के भाष्य ने इतना आतङ्क जमा रक्खा है कि वेदान्त शब्द मुख से निकलते ही श्री व्यास--सूत्रों का कुछ ध्यान ही नहीं उस जगह चट वेदान्त का स्वरूप धारण करके श्री शङ्कराचार्यजी के विचार सामने आ विराजते हैं। अस्तु! वेदान्त दर्शन में ईश्वर की शक्तियों का वर्णन तथा जड़ पदार्थों के विषय में शङ्का होने से विशेषण द्वारा उनका ब्रह्मपरक अर्थ करना तथा ईश्वर के ऊपर नास्तिकों द्वारा उठाए गए दोषों का उद्धार है। मैं केवल ऐसी बातों पर विचार करूंगा जिन पर बहुधा दोष प्रदर्शित किया जाता है। माया वाद, अभेद वाद, ब्रह्मोपादानत्व वाद, इन तीनों वादों के निराकरण कर देने से मुझे अपने प्रतिपाद्य विषय में बहुत सहायता मिलेगी। और बाद शङ्कराचार्य जी ने जो दर्शनों पर आक्रमण किया है उसका भी निराकरण आवश्यक होगा। शङ्कराचार्य तथा उनके पश्चात् के सभी भाष्यकारों ने वेदान्त सूत्रों से ब्रह्म उपादानकारण है इसकी सिद्धि की है, और यह ऐसा सिद्धान्त है जिससे, परमाणुवाद, प्रधानवाद, ईश्वरनिमित्तकारणत्व वाद, सब किसी का खंडन करना पड़ता है। अब विचार यह करना है कि पूर्वोक्त सिद्धान्त श्री व्यास सूत्रों से सिद्ध होता है या नहीं। न्याय दर्शन को छोड़ कर ईश्वर किस प्रकार का कारण है इस विषय में किसी दर्शन ने स्पष्ट कुछ नहीं कहा, इस लिए 'अप्रतिषिद्धं परमनुमतं भवति' इस सिद्धान्त के अनुसार जब किसी ने उसका निराकरण नहीं किया तब सबको यही सिद्धांत इष्ट है यह सिद्ध होगया, पर शङ्कर स्वामी जी को तो कहीं न कहीं से अपना सिद्धांत खोज निकलना ठहरा और मिल गया उन्हें बड़ा विचित्र सूत्र 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्'। इसका सरलार्थ जो कि सूत्र से निकलता है यह है कि ब्रह्म कारण है प्रतिज्ञा और दृष्टान्त के बन सकने से। यद्यपि यहां पर कारण कहने से उपादान और निमित्त कारण दोनों गृहीत हो सकते हैं तथापि संदिग्ध को परवाक्य से निर्णय कर सकते हैं और इसका निर्णय न्याय ने कर दिया है। श्री शङ्कर स्वामी जी कहते हैं कि 'एकेन विज्ञातेन सर्वं विज्ञातं भवति' यह प्रतिज्ञा और 'यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन मृण्मयं सर्वं विज्ञातं भवति' इस प्रकार का दृष्टान्त उपादान कारण ही के पक्ष में बन सकता है क्यों कि मिट्टी और उसके विकार के दृष्टांत से यह ज्ञात होता है कि निमित्त कारण का यहां ग्रहण नहीं। इस पर यह उत्तर है कि यहां दृष्टांत उपादान के विषय में नहीं किन्तु व्याप्य व्यापक भाव के विषय में है। जिस प्रकार व्यापक मृत्तिका के ज्ञान से व्याप्य घटादि का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार व्यापक ब्रह्म के ज्ञान से समस्त व्याप्यों का ज्ञान होजाता है। दृष्टांत सर्वांश में नहीं होता इस बात को खुद स्वामी शङ्कराचार्य जी ने 'द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्' इस सूत्र के भाष्य में 'अमृतस्यैष सेतुः' इस वाक्य में सेतु शब्द का निर्वचन करते हुए कहा है। 'न हि मृद्दारुमयो लोके सेतु इष्ट इत्यत्रापि मृद्दारुमय एव सेतुरभ्युपगम्यते' अर्थात् लोक में मिट्टी और लकड़ी का सेतु देख कर अमृत का यह सेतु है इस वाक्य में भी उसी प्रकार का सेतु ग्रहण नहीं कर सकते। यही बात यहां भी कही जा सकती है। श्री स्वामी जी ने यहां पर व्यर्थ ही पाणिनि महाराज को कष्ट पहुंचाया है। वे कहते हैं कि 'यतो वा इमानि भूतानि' इत्यादि विषय वाक्य में और 'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्र में 'यतः' यह पञ्चम्यर्थ में तसिल् प्रत्यय होने के कारण 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' इस सूत्र से अपादान

संज्ञा होकर ही पञ्चमी हुई है और प्रकृति का अथ है जायमान का कारण, लो यह विकार ही के कारण के विषय में हो सकता है निमित्त के नहीं। पर यह ठीक नहीं क्योंकि जायमान का कारण जिस प्रकार उपादान हो सकता है उसी प्रकार निमित्त भी हो सकता है। 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' सूत्र में प्रकृति शब्द किसी एक ही का नियमन नहीं करता और 'पुत्रात् प्रमोदो जायते' इत्यादि स्थलों में निमित्त में भी पञ्चमी दृष्ट है अतः कोई दोष नहीं। अब मैं उस विषय पर विचार करता हूं जिसने वेदांत सूत्रों के स्वरूप ही को बदल दिया है, अन्यों के खण्डन को सांख्यादि दर्शनों के पक्ष में लगाकर सूत्रों के तात्पर्य को विपरीत कर दिया है। सांख्य दर्शन पर स्वामी जी इतने रुष्ट हैं कि जहां देखो वहीं बस उसी के ऊपर तलवार लेकर खड़े रहते हैं। 'रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम्' इस सूत्र को लेकर बहुत दूर तक सांख्य का खण्डन किया है, पर इस खंडन का आधार चेतन ईश्वर तत्व को न मानकर है और मैंने सांख्य निरूपण में अच्छी तरह ईश्वरवाद सांख्याभिमत है यह सिद्ध कर दिया है इसलिए उपरोक्त सूत्र को लेकर कई सूत्रों में किसका खंडन सूत्रकार का अभिमत है इसका निर्णय होना आवश्यक है। यह तो निश्चित ही है कि बौद्धों का सिद्धांतखंडन सूत्रकार ने किया है और बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते अतः उन्हीं का यह खंडन है। बौद्धों की एक शाखा सौत्रान्तिक है वह बाह्य पदार्थों को भी मानता है पर उन्हें प्रत्यक्ष नहीं, किन्तु घटोऽयम्, पटोयम् इस ज्ञान वैचित्र्य से उसको अनुमेय मानता है। किसी विद्वान् ने कहा है 'योगाचारो जगदपलपत्यत्र, सौत्रान्तिकस्तद् धीवैचित्र्यादनुमितिपदं वक्ति' योगाचार जगत् का अपलाप करता है और सौत्रान्तिक जगत को ज्ञान वैचित्र्य से अनुमेय कहता है, इसी जगदनुमानवादी को लक्ष्य कर 'रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम्' इस सूत्र से प्रारम्भ कर खंडन किया है। इस सूत्र का अर्थ यह है कि रचना न बन सकने के कारण अनुमानयुक्त नहीं। इसका आशय यह है कि जो ईश्वर को नहीं मानता उसके पक्ष में परमाणु प्रेरक शक्ति विशेष के न होने से जगत् की रचना ही सम्भव नहीं तब उसका अनुमान कहना नहीं बन सकता इस अधिकरण के समस्त सूत्रों का अर्थ इसी पक्ष में विद्वानों को संघटित कर लेना चाहिए। 'एतेन योगः प्रत्युक्तः' इस सूत्र से स्वामी जी ने योग का भी खंडन कर डाला। पर यह भी खंडन योगाचार का है योग शास्त्र का नहीं। अन्यत्र भी योग कहने से योगशास्त्र नहीं लिया जाता। न्याय के 'समानतन्त्रसिद्धः परतन्त्रासिद्धः प्रतितन्त्र सिद्धांतः' इस सूत्र के वात्स्यायन भाष्य में योगों के सिद्धांत का निदर्शन है। 'स्वगुणविशिष्यश्चेतनः असदुत्पद्यते उत्पन्नं निरुध्यते' इति योगानाम्। चेतन स्वगुण विशिष्ट हैं अर्थात् कारण गुण पूर्वक उसका गुण होता है पूर्व काल में असत् उत्पन्न होता है और उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाता है। आत्मा के विषय में ऐसी सम्मति योग की तो है नहीं यह तो भूत चैतन्यवादी का मत है और योगाचार भूत चैतन्यवादी है। अतः सिद्ध है कहीं सूत्रकार ने जगदपलाप वादी का पक्ष और कहीं अनुमेयवादी का पक्ष, कहीं नित्य विज्ञानवादी का पक्ष, कहीं क्षणिक विज्ञानवादी के पक्ष का उन सूत्रों से निराकरण किया है। मायावाद, अभेदवाद, जगन्मिथ्यात्व वाद के विषय में अन्य २ प्राचीन ग्रंथकारों ने बहुत ही विस्तृत और युक्तिपूर्ण लिखा है वहीं देख लेना चाहिए। मुझे तो उसी विषय पर ध्यान देना है जिस पर अभी तक विद्वानों ने अपने विचार नहीं प्रकाशित किए हैं।

अब मैं न्याय पर कुछ कहना चाहता हूं। प्रमाणों से अर्थ की परीक्षा को न्याय कहते हैं, न्याय अनुमान का नाम है, अनुमान वाद में बहुत ही उपयोगी होता है, इसलिए अनुमान के पञ्चावयव वाक्य हेत्वाभास, निग्रहस्थान, जातियां, वादों का भेद ये विषय न्याय शास्त्र में विस्तृत

वर्णित हैं। इन पदार्थों का विस्तृत विवेचन करके न्याय ने दार्शनिकों को वाद कला का अपूर्व उपदेश दिया है और सब दर्शनकारों ने कारणावस्था मानी है। उसे न्याय ने सिद्ध किया है न केवल कारण ही को सिद्ध किया है किन्तु कार्यावस्था को भी सिद्ध किया है। दृष्टि भेद से सर्वानित्यत्व पक्ष से कारण मात्र में दोष प्रदर्शन करके उभय पक्ष की यथादृष्ट व्यवस्था की है। इसको परमाणु समर्थन और अवयवी समर्थन कहते हैं। दोनों अवस्थाओं का वैशेषिक में दिक् प्रदर्शन किया गया है और न्याय में दोष प्रदर्शन और दोनों पक्षों के अङ्गीकार में युक्तियां दी गई हैं। जिन्होंने दर्शनशास्त्र के मनन में अपना कुछ समय दिया है उनको अवश्य ही एकान्ततः नित्यत्ववाद, तथा एकन्ततः अनित्यत्ववाद पक्ष में दोष दिखलाकर दोनों को स्थापित करके यथादृष्टव्यवस्था करने से सारे दर्शनों के तत्वज्ञान में बहुत बड़ी सहायता मिल सकती है। विरोधी दोनों पक्षों में दोष दिखला देने से कह सकता था कि दोनों पक्षों में दोष होने से कोई भी पक्ष ठीक नहीं। पर यथादृष्ट व्यवस्था करदेने से किसी भी प्रकार सन्देह नहीं रहता इसी को दृष्टिभेद से पदार्थ विचार कहते हैं। दर्शनों में जहां कहीं एक विषय में विरोधी पक्ष लेकर परस्पर दोष प्रदर्शन किया गया है वहां सर्वत्र यथादृष्ट व्यवस्था है। सूत्रकारों ने स्वयं कहा हो या नहीं। जैसे न्याय में शब्द का अनित्यत्व पक्ष लेकर मीमांसा पर दोष दिए गए हैं और मीमाँसा में नित्यत्व पक्ष लेकर न्याय पर दोषोद्भावना की गई हैं। वहां भी सामान्य विशेष शब्दों के दृष्टिभेद से नित्यत्व अनित्यत्व पक्ष पर परस्पर दोष प्रदर्शन है। तीनों काल में ऐसा कोई अर्थ न होगा जिसका कोई वाचक शब्द न हो। अतः वाचकत्व सामान्य से शब्द को नित्य मानकर भगवान् जैमिनि ने विशेष की दृष्टि से दोष दिया है। अवश्य ही लोक में सांकेतिक शब्द विशेष होने से अनित्य हैं क्यों कि कुछ आदमी जिसको घट कहते हैं दूसरे उसे घड़ा कहते हैं। यदि विशेष भी नित्य हो तो किसी भी शब्द से सबको उसके अर्थ का ज्ञान होजाना चाहिए। रूढ़ शब्द विशेष होनेसे अनित्य हैं। यौगिक नित्य हैं इसी लिए महर्षियों ने वैदिक शब्दों को यौगिक कहा है। मीमांसा दर्शन में इसका विशेष विचार है। वहीं इसे देख लेना चाहिए। यह शब्द के संकेत विषय में व्यवस्था हुई, उसके ग्रहण के विषय में भी दृष्टिभेद से व्यवस्था कर लेनी चाहिए। इतिहास से यह बात सिद्ध है कि दर्शनों का काल भिन्न २ है तब क्यों एक ही विषय में एक जिस पूर्व पक्ष को वर्णन करता है दूसरे का वह सिद्धान्त हो जाता है। किसी के वाद का यदि दर्शनों में खण्डन होता तो प्रथम होने वाला दर्शनकार उत्तर काल में होने वाले दर्शनकार के सिद्धान्त पक्ष को अविकल रूप से कैसे पूर्वपक्ष में रख कर उसकी युक्तियों का निराकरण करता। और दृष्टिभेद से वर्णन करने के पक्ष में सब युक्तियुक्त है क्यों कि सिद्धान्त एक है, एक अंश को लेकर जिस पदार्थ का वर्णन करेंगे दूसरे अंश में अवश्य वही दोष आवेगा पूर्वकाल अथवा उत्तरकाल, जिस पक्ष में जो दोष होगा उसे रोक नहीं सकता और यदि किसी के मत का खंडन होगा तो भिन्न २ काल में होने वाले दो दर्शनों में एक दूसरे का पूर्वपक्षी होकर खंडन नहीं कर सकता। इसी प्रकार इन्द्रियोत्पत्ति विषय में लोग शंका करते हैं कि सांख्य अहङ्कार से इन्द्रिय की उत्पत्ति मानता है और न्याय भूतों से इन्द्रियों की उत्पत्ति मानता है। यहां तो स्पष्ट ही परस्पर दोनों दर्शनों का विरोध है यहां तो कोई उपाय ही नहीं। अवश्य ही इसी तरह की मूर्खताकी बातें मुझे भी पहले सूझती थीं जब तक दर्शनों के विषय में ऋषि दयानन्द के विचार नहीं पढ़े थे। यहां भी सामान्य विशेष रूप दृष्टिभेद से व्यवस्था है। सांख्यदर्शन में एक जगह ज्ञान को बुद्धि का धर्म दूसरी जगह अहङ्कार का धर्म कहा है। यहां तो परस्पर विरोध नहीं पूर्वापर

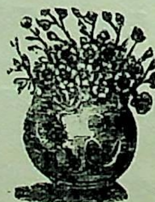
विरोध मालूम होता है। पर वहां सामान्यरूप से प्रकृति को छोड़ कर महत् सब का कारण होने से बुद्धि का भी कारण है और अहङ्कार के विशेष कारण होने से ज्ञान को उसका धर्म कहा। उसी प्रकार न्याय में। भूतों की कारणता अन्तिम विशेष के अभिप्राय से सिद्ध किया पर सामान्य से अहङ्कार की भी कारणता है। यही दर्शनों का भेद जो नहीं जानता है वह स्वयं भ्रान्त हो होकर दूसरों को भी भ्रान्त बना कर 'स्वयं नष्टः परान्नाशयति' इस लोकोक्ति को चरितार्थ करता है। यह तो ऋषियों की कृपा है कि कोई सामान्य को लेकर विशेष पर दोष देता है और दूसरा विशेष पक्ष को लेकर सामान्य पर दोष देता है पर दोनों को मान लेनेसे कोई दोष नहीं आता। जिस तरह न्याय के सर्वानित्यत्ववाद और सर्वनित्यत्ववाद पक्ष में पृथक् २ दोष हैं पर दोनों के मान लेने से व्यवस्था हो जाती है। और किसी विषय में दो पक्ष करके तर्क करना तो शैली है जिससे शिष्यों को पदार्थों का तत्व निश्चय स्पष्ट हो जावे। किसी शैली पर आक्षेप नहीं किया जा सकता कि यह शैली ठीक नहीं। दर्शनों में परस्पर समर्थन अवश्य है पर विरोध तो मुझे कहीं नहीं दिखलाई देता।

अच्छा आपको यदि विरोध नहीं दिखलाई देता तो मत दिखलाई दे हमें तो एक ऐसा विरोध दिखलाई देता है जिसका उद्धार आपसे अवश्य ही कठिन हो जावेगा। वह यह है कि न्यायदर्शन में ज्ञानादि गुण आत्मा के बतलाए गए और सांख्य में 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः' में गुण संसर्ग प्रतिषेध किया गया, इत्यादि जो कहे उससे यह कहे कि असङ्ग का अर्थ भोक्तृत्व धर्म से रहित होगा और भोग सुख-दुःख ज्ञानको कहते हैं और इस प्रकार का भोक्तृत्व सभी के मत से आत्मा, इन्द्रिय, अन्तःकरण, इस समूह में मानने से कोई विरोध नहीं आता। सांख्य का सूत्र है 'विशिष्टस्य जीवत्वं अन्वयव्यतरेकात्' इस सूत्र से उपरोक्त अर्थ सिद्ध होता है। तब जहां पुरुष में भोग निषेध है वहां समूह के भोक्तृत्व के तात्पर्य से एक में निषेध किया है और जहां एक २ में धर्म प्रतिपादन किया है वहां समूह का धर्म अवयव का भी होता है इस तात्पर्य से है अतः कोई दोष नहीं। अभी मेरे वक्तव्य का अंश बहुत शेष रह जाता है पर समयाभाव को देखते हुए मुझे अति संक्षेप करना होगा।

मीमांसा के विषय में थोड़ा कह के उपसंहार कर दूंगा। मुझे योग के विषय में कुछ नहीं कहना है क्योंकि उसके विषय में विरोध शंका हो ही नहीं सकती। मीमांसाशास्त्र के विषय में दो शंकाएं की गई हैं कि वह ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं करता और उसमें हिंसा प्रतिपादित है। प्रथम दोष के बारे में यही कहना है कि अपना प्रतिपाद्य विषय न होने से ईश्वर-विषयक वर्णन उसमें नहीं। किसी वस्तु के वर्णन न करने से यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि वह उसको नहीं मानता जब तक उसने उसका स्वयं निराकरण न किया हो। बहुत संभव है कि कुमारिल भट्टने श्री शङ्कर स्वामी के समकालिक होनेसे प्रतिस्पर्धाके भाव से प्रेरित होकर ही उनके विरोधी पक्ष को मंडित किया है क्योंकि भट्ट जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ श्लोकवार्तिक में सिवा ईश्वर विषय में दोष प्रदर्शन के महर्षि जैमिनि के सूत्रों से यह सिद्ध होता है यह कहीं नहीं कहा। श्री व्यास ने अपने एक सूत्र से यह अवश्य सिद्ध किया है कि ईश्वर के अंगीकार बिना धर्म निरूपण ही असंगत होता है। उन का पहला सूत्र है 'फलमत उपपत्तेः'। इष्टानिष्टादि फल की प्राप्ति बिना ईश्वर के बन नहीं सकती क्योंकि क्रिया क्षणिक है इसके लिए एक स्थायी धर्म अदृष्ट मानने पर भी उसके अचेतन होने से और जीवों के स्वकृत कर्म के विस्मरण होने से और अनिष्ट के लिए लोकमें प्रवृत्ति न देखने से कर्मानुसार

फल व्यवस्था करने वाला मान्य है। इसके आगे का सूत्र है 'धर्मं जैमिनिरत एव' इसीलिए जैमिनि मुनि ने धर्म को माना है। जैमिनि शासन में क्रिया और अदृष्टमें धर्म शब्द का व्यवहार होता है। ईश्वर साधक सूत्रके अनन्तर 'अतएव' इसीलिए यह शब्दोपादान ईश्वर वाद जैमिनि को अभिमत है यह प्रदर्शित करता है क्योंकि 'फल मत उपपत्तेः' से ईश्वर की फलदातृता सिद्ध की गई और क्रिया अथवा अदृष्ट के बिना व्यवस्था नहीं बन सकती। तब कहां क्रिया और अदृष्ट का वर्णन इसी लिए जैमिनि ने किया है। अतः 'फल मत उपपत्तेः' 'धर्मं जैमिनि रत एव' इन दो सूत्रों के एक प्रकरण में होने से एकवाक्यता होकर एकार्थ सिद्ध हुआ। 'धर्मं जैमिनि रत एव' इस सूत्र में अतएव यह शब्द सांकाक्ष है इस लिए वाक्य विभाग से जहां आकांक्षा यह एकार्थ होता है वहां एक वाक्यता होती है। 'फलमत उपपत्तेः' और 'धर्मं जैमिनि रत एव' इन दोनों सूत्रों की एक वाक्यता होनेसे पूर्वोक्त अर्थ सिद्ध हुआ। 'अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकांक्षश्चेद् विभागे स्यात्' यह एकवाक्यता का लक्षण सर्वतन्त्र संमत है। हिंसा मीमांसा के किसी भी सूत्र से सिद्ध नहीं होती। उपालम्भ का अर्थ मारण और स्पर्श दो है। पर जहां सन्देह हो वहां वाक्यशेष से अर्थ का निर्णय होता है यह बात जैमिनि के 'संदिग्धेषु वाक्यशेषात्' इस सूत्र से कही गयी है इसी सूत्र के अनुसार संदिग्ध 'आलम्भ' शब्द का अर्थ निर्णय हो सकता है। 'वत्स मालभेत' इस वाक्य का अर्थवाद वाक्य है 'वत्सनिकान्ताः पशवः'। पशु अपने बच्चे पर प्रेम करने वाले होते हैं। यह अर्थवाद वाक्य मारणा से हटा कर आलम्भ शब्द का स्पर्श अर्थ करने में समर्थ है। उपरोक्त वर्णनों से सिद्ध हुआ कि कहीं सामान्य विशेष के तात्पर्य से दृष्टिभेद के कारण, कहीं मन्तव्य विषयों में विरोध न आने के कारण स्फूर्ति सम्पादनार्थ पदार्थकल्पना के कारण परस्पर विरोध नहीं। दर्शनों में विरोध नहीं किन्तु उनके अभिप्राय न समझने के कारण विरोध मालूम होता है इस विरोध की कल्पना के कारण कई हैं, एक काल में होने वाले दो विद्वानों में प्रतिस्पर्धा के कारण एकने किसी दर्शन पर टीका बनाई। दूसरे ने दूसरे दर्शन पर टीका बनाकर उस का खण्डन किया और यह परम्परा बढ़ती गई। दर्शनों की आराधना के कारण भी उपरोक्त भ्रम फैला है। उनमें सूत्रों के अनेक प्रकार की रचना के कारण भी इस प्रकार भ्रमकी उत्पत्ति हुई है। कहीं पूर्व पक्ष से आरम्भ कर सिद्धांत पर समाप्ति, कहीं सिद्धांत पक्ष से प्रारम्भ कर पूर्व पक्ष पर समाप्ति, कहीं सिद्धांत लिख दिया पूर्वपक्ष की ऊहा, कहीं पूर्व पक्ष लिखकर सिद्धान्त की ऊहा, कहीं पूर्वपक्ष लिख कर साथ ही एकदेशी तथा सिद्धांतीका मत प्रदर्शन, कहीं पूर्व पक्ष के बाद बहुत दूर तक प्रसक्तानुप्रसक्त विचार फिर उत्तर, इन कारणों से दर्शनों का तत्व ज्ञान बहुत कठिन होगया है।

अन्त में मैं दो प्रार्थनाएं ईश्वर से करता हूं कि मेरी युक्तियों को खंडन करने के लिए वह मेरे बलवान् विरोधियों के हृदय में प्रेरणा करे और उसके समर्थन के लिए मुझे बल दे जिससे मेरे मार्ग के अनुसरण करने वालों का मैं अधिक सहायक हो सकूं। इति।



छठा परिच्छेद

आर्य्य-सम्मेलन

आर्य-सम्मेलन की तीन बैठकें क्रमशः ता० १५, १६, १७ फरवरी की रात्रि को मुख्य पंडाल में हुई थीं। स्वामी श्रद्धानन्दजी इसके सभापति थे। पहिली बैठक के आरम्भ में ही श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने सभापति की हैसियत से कहा:—

देवियो और भद्र पुरुषो! इस समय आर्य्य सम्मेलन की प्रथम बैठक आरम्भ होती है। बिना किसी भूमिका के आपके सामने मैं इसके नियम सुनाये देता हूं। आपके सन्मुख प्रत्येक प्रस्ताव कर्त्ता १० मिनट तक बोलेंगे एवं समर्थक को ५ मिनट मिलेंगे। समय समाप्ति के १ मिनट पहिले घंटी बज जाया करेगी। यह सम्मेलन ७ बजे के स्थान में ७॥ बजे आरम्भ हुआ है। हम इसको ६ बजे समाप्त कर देंगे। पहिला प्रस्ताव स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी उपस्थित करेंगे।

पहिला प्रस्ताव

"निश्चय हुआ कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के स्वीकारपत्र के अनुसार देश देशान्तरों और द्वीप द्वीपान्तरों में वैदिक धर्म का प्रचार किया जावे तथा एतदर्थ विदेश प्रचार निधि की स्थापना की जावे।"

इस प्रस्ताव पर स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने कहा कि जब तक हम इस प्रकार की प्रचार निधि न खोल लेंगे और विदेशों में प्रचार का कार्य आरम्भ न करेंगे तब तक कोई कार्य नहीं हो सकता। इसी कार्य के लिये महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने वसीयत की थी। इस कार्य की बड़ी आवश्यकता है। इस शताब्दी के अवसर पर इससे महान् और दूसरा कार्य क्या हो सकता है जिसको हम अमली कह सकें।

इस प्रस्ताव का समर्थन श्री स्वामी रामानन्द जी ने प्रभावशाली शब्दों में किया और कहा कि जिस समय महर्षि ने आर्य समाज की स्थापना की थी उस समय अपने सिद्धांतों की स्थापना तथा वेद-प्रचार का बोझ उस पर डाल दिया था। आज सिद्धांतों की स्थापना का कार्य तो सिद्ध हो गया है, परन्तु प्रचार का कार्य तनिक भी नहीं हुआ है। हमारी गर्दन झुक जाती है जब हम देखते हैं कि आर्यसमाज ने ५० वर्ष में उतना कार्य नहीं किया जितना कि इसे करना चाहिए था। यदि आप लोग ऋषि-ऋण को चुकाना चाहते हैं तो इसके चुकाने की यह रीति नहीं है कि आप लोग प्रतिनिधि सभाओं के चार उपदेशकों पर ही निर्भर रहें। इस महत्व-पूर्ण कार्य के सम्पादन के लिए प्रत्येक आर्य को उपदेशक बनना पड़ेगा। आप को अपने भीतर (Missionary Spirit) मिशनरी स्पिरिट भरनी पड़ेगी। आप लोग इस्लाम की ज़िन्दगी को देखें कि साधारण आदमियों ने किस प्रकार धर्म प्रचार किया है। लोग इस प्रस्ताव को

न केवल पास ही करें वरन् अपने जीवन में धारण करें।

इस प्रस्ताव का विरोध महाशय राजाराम सावर ने किया और कहा जो प्रस्ताव स्वामी जी ने आप के सामने रक्खा है उसका मैं विरोध करता हूं। स्वामी जी ने भी कोई ऐसी बात नहीं कही जिससे यह प्रगट होता हो कि देशान्तरों और द्वीपान्तरों में प्रचार होना चाहिए। देशान्तरों में उस समय तक प्रचार नहीं हो सकता जिस समय तक हम पर विदेशी लोग शासन करते रहेंगे और भारतवर्ष में आर्य स्वराज्य स्थापित न हो जायगा। मुझे इस प्रस्ताव का विरोध करने में स्वयं दुःख होता है। इसका कारण यह है कि यह इतना उपयोगी होते हुए भी कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकता। बौद्धधर्म, ईसाईधर्म तथा इस्लाम के इतिहास बतला रहे हैं कि शासन से ही प्रचार हुआ करता है। देशान्तरों में प्रचार करने के लिए राज्य से सहायता मिलती है। हम को चाहिए कि हम हिंदू--जाति को आर्य जाति बनाने में अपनी समस्त शक्ति लगा दें जिससे हिंदुस्थान फिर आर्य्यवर्त बन जाय। इससे स्वतन्त्रता प्राप्त होगी और देशान्तरों की ओर पैर बढ़ाने में आसानी होगी।

तदनन्तर महाशय तोताराम जी सनाढ्य ने कहा, आपको भली भांति ज्ञात है कि आपके २१ लाख भाई विदेश में हैं। जिनमें से ७ लाख विधवायें हैं। यदि आप चाहें तो उपदेशक भेजकर इन्हें अपना सकते हैं। आर्यसमाज में ही इस कार्य के करने का सामर्थ्य है, क्षमता है। मैं ही उनकी ओर से सन्देश लाया हूं। उनका सन्देश है, "हमें अपनाओ।" २० वर्ष तक मैंने इनकी दशा को देखा है। न उनके यज्ञोपवीत हैं न संस्कार। ये लोग ईसाई हो जायंगे। मटियाबुर्ज (कलकत्ता) में ३०० ऐसे आदमी हैं जिनको समुद्र-यात्रा करने के कारण बिरादरी से निकाल दिया गया है। इसी प्रकार की दुर्दशा सर्वत्र हो रही है। यदि आप लोग इनकी सहायता न करेंगे तो ये सब हाथ से निकल कर दूसरों में जा मिलेंगे।

इसके पश्चात् श्री० सेठ मदनमोहन जी ने कहा, स्वराज्य शब्द ऐसा प्यारा है कि यह सब को भाता है। पर स्वराज्य तो सबका सम्मिलित होगा केवल आर्यों का ही न होगा। इसलिए स्वराज्य होने तक विदेशों में वैदिक धर्म प्रचार का कार्य स्थगित रखना निरर्थक है। साथ ही साथ जो धर्म राज्य के बल से फैलता है वह चिरस्थायी नहीं होता। इसके ईसाई और बौद्ध इतिहास प्रमाण हैं। यदि हम यह निश्चय करलें कि पहिले हम हिन्दुस्तान को अपनायेंगे और फिर बाहर जायँगे तो इसका फल यह होगा कि हम लोग यहां के हो रहेंगे। यदि आप चाहते हैं कि अपना ज्ञान दूसरों को दें तो आपको अवश्य ही अन्य देशों में जाकर प्रचार कार्य करना चाहिये। आर्यसमाज का उद्देश्य संसार को उठाना है न कि केवल हिंदुस्थान को। युरोप आदि देशों में विज्ञान का प्रचार है अतएव वहां हमारी शिक्षा का अधिक प्रभाव पड़ेगा एवं अधिक कार्य होगा।

तदनन्तर श्री महेशप्रसाद मौलवी फ़ाज़िल ने कहाः "एक ज़बरदस्त मक़ूला है कि कोई नबी अपने मुल्क में कामयाब नहीं होता। इस्लाम और ईसाई मज़हब इस बात के शाहिद हैं। मुहम्मद साहिब ने पहिले मक्के को छोड़कर मदीने को मुसलमान बनाया। बौद्ध मज़हब की तवारीख़ भी यही कहती है। इसलिये ज़रूरत है कि देश देशान्तरों में प्रचार किया जाय। चूंकि हिन्दुस्थानी अर्से से ग़ुलाम रह चुके हैं इसीलिए उनके दिमाग़ फिरे हुए हैं। कई आर्य भाई तक इस ग़ुलामी के कारण सामाजिक नियमों का पालन भी नहीं कर सकते। अतः आज़ाद मुल्कों में प्रचार करना चाहिए, वे शायद वे हमसे बेहतर हो जायँ।'

इसके पश्चात् श्री वेदबन्धु जी ने एक संशोधन उपस्थित किया कि 'विदेश प्रचार निधि' की जगह "वैदिक धर्म प्रचार निधि" होना चाहिए। यह

संशोधन स्वीकृत होगया और प्रचार सम्बन्धी यह प्रस्ताव संशोधन सहित पास हुआ।

तदनन्तर **दूसरा प्रस्ताव** निम्न प्रकार से रक्खा गया कि—

"आर्य नर नारियों की दिनों दिन बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए और भारतवर्ष के भिन्न २ प्रांतों और विदेशों में वैदिक साहित्य को पहुंचाने के लिए वैदिक साहित्य-मण्डल की स्थापना की जाय, जिसके द्वारा आर्यभाषा में विशेषतया और अन्य भाषाओं में साधारणतया वैदिक साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थों को छापा जावे। और गुरुकुलों, महाविद्यालयों, कालिजों, स्कूलों पाठशालाओं, कन्या-पाठशालाओं आदि संस्थाओं के लिए प्रामाणिक (Standard) टेक्स्ट बुक्स छापने का कार्य सम्पादन किया जावे।"

इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए श्री० डाक्टर केशवदेव जी शास्त्री एम. डी. ने कहा कि जिस प्रकार नदी नालों की बढ़ती से फैलती है उसी प्रकार आर्यसमाज अपनी संस्थाओं से बढ़ रहा है। आवश्यक है कि इन संस्थाओं को, जिनमें हमारी संतान शिक्षा पारही हैं, सङ्गठित करके उनमें वैदिक सिद्धांतोंका पठन पाठन फैला दिया जाय। हम देखते हैं कि थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाएं अपने साथ एक बड़ा पब्लिशिंग हाउस (Publishing House) रखती हैं। इसी प्रकार के पब्लिशिंग हाउस की आर्य्यसमाज को आवश्यकता है। आर्य पुरुषों को आर्यभाषा में विशेष कर, और अन्यान्य भाषाओं में साधारणतया ऐसे उपयोगी ग्रन्थ लिखने चाहिएं जिनमें वैदिक सिद्धांत भरे हों। आशा है आप लोग इसकी आवश्यकता को समझते हुए इस प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे।

इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए बाबू श्यामसुन्दरलाल जी वकील ने कहा कि आप के दिल में इस प्रस्ताव के विरुद्ध कोई सन्देह न होगा। जबतक किसी उपदेश को साहित्य के रूप में न लाया जाये तब तक कोई लाभ नहीं होता क्योंकि लेक्चरों का जोश आरज़ी होता है। वैदिक साहित्य के द्वारा आप गली २ बाजार २ प्रचार करेंगे। यह हिंदी के अलावा अंग्रेजी में भी होना चाहिए।

तदनन्तर श्री मेहता रामचन्द्र जी शास्त्री ने कहा यदि हम आर्यसमाज एवं किसी अन्य संस्था की ओर दृष्टि डालें और परमात्मा के बताए हुए उद्देश्य पर विचार करें तो हमारा धर्म "संसार का उद्धार करना" ही जान पड़ेगा। वेद के मन्त्रों को अपने मुख में भर लो और समस्त संसार में वर्षा दो 'मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः। गायत्र मुक्थयम्।' हरएक वेद का भक्त ब्राह्मण झंडा लेकर खड़ा हो जावे। वेद में आया है कि हमारी सँतान वेद के वचनों को सुने और हमारा कल्याण करे। इसका यही अच्छा उपाय है कि वैदिक साहित्य का निर्माण किया जावे।

इसके पश्चात श्री घासीराम एम. ए. ने कहा "जिस समय मैं सहस्रों आर्यों को देखता हूं तो उनपर न्यौछावर होना चाहता हूं। परन्तु यह संख्या अभीतक बहुत कम है। इसका पता इसी से लगेगा कि सन् १९११ में २२ हजार, १९२१ में ६५ हजार, १९२४ में १ लाख २१ हजार और १९२५ में आर्यों की कुल संख्या यू० पी० में २ लाख थी। क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि हमारी गति-वृद्धि क्रम से मन्द होती जाती है। आपने वेद प्रचार निधि के प्रश्न को हल कर लिया। आपके सामने अब वैदिक साहित्य मंडल का प्रश्न है। जरा इसे पास करने से पहिले, अपनी जेबें टटोल लो तब बाद को इसको पास करना। रफ्तार को तेज करने में साहित्य का हाथ होता है। इसकी हमें बड़ी आवश्यकता है।"

अन्त में श्री लाला ज्ञानचन्द ने कहा, 'मौजूदा साहित्य (Literature) विश्वास करने के योग्य

नहीं है। इनके छापने में बुकसेलरों ने अपना स्वार्थ रक्खा है। वैदिक साहित्य मंडल का यह उद्देश्य न होगा, अतः इसका पास होना आवश्यक है।" प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इसपर सभापति जी ने प्रस्ताव किया कि उपयुक्त प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए ५ लाख रुपये की अपील का जावे। आपने बतलाया कि शताब्दी के नोट भी तैयार हो चुके हैं आर्य पुरुष उनको खरीद लें और उन्हीं को रसीदों के स्थान पर समझें। यह प्रस्ताव भी मंजूर हो गया।

बीच में मेहता रामचन्द्र जी शास्त्री ने कहा, "यह अपील सार्वदेशिक सभा की है। आर्य प्रादेशिक सभा इसके साथ नहीं है।"

स्वामी जी ने कहा कि सार्वदेशिक सभा, आर्य प्रादेशिक सभा पञ्जाब को मिलाने के लिए तैयार है। आपस में कोई झगड़े बखेड़े का बात नहीं है।

इस प्रकार आज की "आर्य सम्मेलन" की बैठक समाप्त हुई।

ता० १६-२-२५ की रात्रि का गत रात्रि की भांति श्री. स्वामी श्रद्धानन्द जी के सभापतित्व में आर्य सम्मेलन को दूसरी बैठक हुई। पहिले प्रधान जी ने आर्य्य समाजियों से ५ लाख की निधि पूर्ण करने के लिए शताब्दि नोट क्रय करने की प्रेरणा की। श्री हरविलास जी शारदा ने पहिला निम्न प्रस्ताव जो नम्बर शुमार में चतुर्थ प्रस्ताव है उपस्थित किया।

"आर्य्य जनता के पारस्परिक विवादों को निपटाने के लिए यह आर्य्य सम्मेलन निश्चय करता है कि प्रत्येक प्रतिनिधि सभा के द्वारा हर प्रान्तमें एक न्याय सभा स्थापित की जावे और और अखिल भारतवर्ष के लिए भारतवर्षीय न्याय सभा स्थिर की जावे जो प्रान्तिक विवादों को निपटावे। इन न्याय सभाओं के नियम और व्यवस्था सार्वदेशिकसभा द्वारा निर्धारित किए जावें। निर्वाचन हर पांचवें वर्ष किया जावे और प्रान्तिक तथा सार्वदेशिक न्याय सभाओं के पास नियमित रजिस्टर आदि छपे हुये फार्मों पर उपस्थित रहें।"

तदनन्तर श्री देशबन्धु गुप्त ने इसका समर्थन करते हुए पंचायतों की बड़ी आवश्यकता बतलाई।

इसके बाद पं० गयाप्रसाद जी वकील (बांदा) ने 'प्रस्ताव का विरोध' करते हुए कहा कि मुझे इसका विरोध करते हुए दुःख है, परन्तु यह कार्य्य में परिणत नहीं हो सकता। कांग्रेस ने भी पंचायतें स्थापित करके मुंह की खाई। इसका कारण यह था कि दण्डादि देने की हमारे पास कोई शक्ति नहीं हमको इससे दूर रहना चाहिए। पण्डित महेशप्रसाद जी ने भी इसका विरोध करते हुए कहा "हमको बजाय इसके कि हम झगड़े पैदा करें, उन्हें मिटाना चाहिए।" पं० रामगोपाल, मेहता रामचन्द्र जी, गंगाविष्णु जी, ला० शीनभूषण जी वकील डेरागाजी खां और महाशय भगवतीप्रसाद ने इसका विरोध किया।

म० कृष्ण बी ए. ने इसका समर्थन किया। इसके पश्चात् ला० मदनमोहन जी सेठ, पं० यमुनादास आर्य तथा लाला सुन्दरदास वकील ने इसके पक्ष में भाषण दिए और विरोधियों को उत्तर देते हुए कहा कि अदालतों को सम्मति के बिना पंचायतें फैसला भी नहीं कर सकती हैं। उन्होंने कानून की दृष्टि से बतलाया कि यदि दोनों फरीकैन की रज़ामन्दी हो तो फैसला हो सकता है। अतः पंचायतें स्थापित हो सकती हैं। अन्त में मत लिये जाने पर बहुमत से यह प्रस्ताव पास हो गया।

इसके पश्चात् द्वितीय एवं संख्या में पांचवां प्रस्ताव स्नातक देवेश्वर जी ने यह उपस्थित किया कि—

"यतः आर्य्य संस्कृति में उत्कृष्ट विवाह की विधि स्वयम्बर विवाह है और यतः वेदों में स्थान २ पर कुमार ब्रह्मचारी और कुमारी ब्रह्मचारिणी को ब्रह्मचर्य धारण करने, समग्र विद्याओं को प्राप्त करने और पूर्ण स्वस्थता और यौवन के अनन्तर गुण कर्म और स्वभावानुसार अपनी इच्छा और परीक्षा से अत्यन्त प्रीति से विवाह करने का आदेश दिया गया है, इसलिए यह सम्मेलन निश्चय करता है कि स्वयम्बर विवाहों की स्थापना की जावे और स्नातक व स्नातिकाओं को इस पद्धति के अनुसार विवाह करने के लिए प्रोत्साहित किया जावे।"

प० चन्द्रभानु जी ने इसका विरोध करते हुए कहा, "ऐसा होने से दोष उत्पन्न होने का भय है।" श्री पं० ठाकुरदत्त जी वैद्य ने संशोधन करते हुए कहा—इस प्रस्ताव में 'स्वयंवर विवाहों की स्थापना की जावे।' इन शब्दों के पहिले "स्वामी दयानन्द के उद्देश्यानुसार" जोड़ दिया जावे और अन्त में भी "की जावे" के पश्चात् "तथा पिता माता की सम्मति भी आवश्यक है" जोड़ दिया जावे।

श्रीमती कौशल्यादेवी स्नातिका ने इस प्रस्ताव के पक्षमें कहाः:-"गुरु लड़कों और लड़कियों के माता पिता की अपेक्षा अधिक ज्ञानवान् होता है। उसकी सम्मति लेना भी सर्वथा उचित है। परन्तु विवाह सम्बन्धी विषयों में माता पिता को कोई अधिकार नहीं क्यों कि जो लड़की १६ वर्ष गुरुकुल में पढ़ती रही है उसकी इच्छा को माता पिता जान ही कैसे सकते हैं। विवाह में लड़के की इच्छा की अपेक्षा लड़की की इच्छा प्रधान होनी चाहिये। लड़के तो आज कल अपनी इच्छा प्रगट कर देते हैं, परन्तु लड़की एक शब्द भी निकालने पर निर्लज्जा और बेहया समझी जाती है। इसके पश्चात् विश्वनाथ कपूर ने श्रीमती कौशल्या देवी का समर्थन करते हुए माता पिता की सम्मति को अनावश्यक बतलाया। और अपने जीवन को इसके लिए प्रमाण रूप से रखते हुए कहा कि माता पिता की इच्छा से विवाह दुःख का घर बन जाता है?

तदनन्तर महाशय खुशहालचन्द्र जी ने कहा कि अभी से माता पिता के अधिकारों पर पानी फेरा जाता है। 'इब्तदाये इश्क़ है रोता है क्या, आगे २ देखना होता है क्या?' श्री पं० बुद्धदेव जी ने पं० खुशहालचन्द्रजी का विरोध किया। मत लिये जाने पर संशोधन पास हो गया।

आर्य विवाह बिल

आर्य सम्मेलन की तीसरी बैठक ता० १७ फ़रवरी की रात्रि को फिर स्वामी श्रद्धानन्द जी के सभापतित्व में आरम्भ हुई। स्वामी जी ने आर्य विवाह बिल की भूमिका बांधते हुए कहा कि यह बिल मैं ने श्री घासाराम जी एम० ए०, एल एल० बी० और अन्य सज्जनों की सहायता से तैयार करके प्रकाशित करवाया था। अब तक इस पर भिन्न २ आर्य समाजों के १८४१ व्यक्ति हस्ताक्षर कर चुके हैं। बिल पर जो आलोचना प्रत्यालोचना की गई उसकी एक विशेषता यह थी कि बहुत से आर्य समाज से बाहर के आदमियों ने शिकायत की कि हमसे इस बिल पर दस्तख़त क्यों नहीं कराये गये। आर्य विवाह बिल निम्न लिखित है:—

१. इस बिल का नाम आर्य विवाह बिल होगा।

२. यह बिल तमाम ब्रिटिश भारतपर लागू होगा।

३. इस बिल के आधार पर आर्य समाजियों की कोई भी शादी नाजायज़ नहीं ठहराई जा सकती, चाहे स्त्री और पुरुष आर्य समाजी बनने से पहिले किसी भी धर्म से सम्बन्ध रखते हों और चाहे वे भिन्न २ धर्मों के ही क्यों न हों। और इस हालत में किसी के क़ानून या नियम उन पर लागू नहीं हो सकेंगे, बशर्ते कि उनका जन्म और विवाह का सम्बन्ध मनु के धर्मशास्त्र के विरुद्ध न हो।

४. इस बिल के अर्थों में आर्य समाजी वह होगा जो आर्य सार्वदेशिक सभा या किसी प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रांत में क़ायम आर्यसमाज का मेम्बर हो।

स्वामी जी ने कहा कि यह ऐसा विषय है जिसका कोई विरोधी नहीं है। इस बिल के पास हो जाने से गुण कर्माऽनुसार विवाह की सब कठिनाइयां दूर हो जायंगी। स्वामी जी के ग्रन्थों में इसका कई जगह ज़िक्र आता है परन्तु इस पर अमल करने में क़ानून की बड़ी रुकावट है, यद्यपि कहीं २ किसी किसी ने क़ानूनी रुकावट और सामाजिक कठिनाइयों की परवाह न करके ऐसे विवाह किये हैं।

तदनन्तर बाबू श्यामसुन्दर वकील (मैनपुरी) ने इस विषय पर निम्न प्रस्ताव उपस्थित किया।

'यह आर्यसम्मेलन निश्चय करता है कि शीघ्र ही लेजिसलेटिव असेम्बली में आर्य मैरिज एक्ट को उपस्थित कराया जावे ताकि आर्यसमाज के प्रचार में जो बाधायें उपस्थित होरही हैं उनका निवारण हो सके और आर्यजनता में गुण कर्म और स्वभावानुसार विवाहादि संस्कारों का प्रचार हो सके।"

डाक्टर केशवदेव शास्त्री ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए इसमें इतने शब्द बढ़ाने का संशोधन किया कि "यह बिल आर्य सार्वदेशिक सभा को सपुर्द किया जाये जो इसको बहुत जल्द असेम्बली में पेश कराने की कोशिश करे।'

बाबू हरबिलास शारदा ने प्रस्ताव के सिद्धांत का तो समर्थन किया परन्तु यह आपत्ति उपस्थित की कि अभी तक आर्यसमाजियों पर भी सम्पत्ति के उत्तराधिकार के विषय में हिंदू क़ानून ही लागू होते हैं, इस बिल के अनुसार जिन आर्यों का विवाह होगा उनकी सन्तान को सम्पत्ति प्राप्त करने में बहुत कठिनाई होगी, हिंदू रीति के अनुसार होने वाले विवाहों से उत्पन्न भाई बिरादर आर्यसमाजी सन्तानों के रास्ते में खूब रोड़े अटकावेंगे।

महाशय कृष्णकुमार एम० ए० प्रोफेसर दयानन्द कालिज कानपुर ने संशोधन पेश किया कि बिल में आर्यसमाजी शब्द की जगह वैदिकधर्मी शब्द रख दिया जाय। श्री राजाराम ने आप का अनुमोदन किया।

पण्डित भगवद्दत्त जी ने कहा कि बिल में कहा गया है कि मनु के धर्मशास्त्र के वह अर्थ स्वीकार किये जायंगे जो स्वामी दयानन्द ने किये हैं। ऐसा कहना ठीक नहीं। स्वामी दयानन्द ने कोई नये अर्थ नहीं लगाये। यदि हम ऐसा कहेंगे तो हम स्वामी दयानन्द को संसार के सामने एक वकील या अनुवादक के रूप में उपस्थित करेंगे।

स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने मूल प्रस्ताव का समर्थन करते हुए बतलाया कि केवल आर्यसमाजी ही नहीं बहुत से हिंदू भी इस प्रकार का क़ानून बनवाने के पक्षपाती हैं। परन्तु वे समाज के भय से स्पष्ट ऐसा नहीं कहते।

बाबू मदनमोहन सेठ ने विरोधियों की आपत्तियों का जवाब देते हुए कहा कि 'आर्यसमाजी' की जगह 'वैदिकधर्मी' शब्द रखने से क़ानून में बड़ी अड़चन पड़ेगी। यह बिल आर्यसमाजियों के लिये पास कराना अभीष्ट है। इस कारण 'आर्यसमाजी' शब्द ही रहने दीजिये। 'वैदिकधर्मी' तो आर्यसमाजियों के सिवाय भी बहुत से लोग अपने आप को कह सकेंगे। बाबू श्यामसुन्दर वकील ने भी क़ानूनी दृष्टि से बहुत आपत्तियों का जवाब दिया। श्री हरबिलास शारदा के जवाब में आपने कहा कि इस बिल में केवल विवाह का सवाल दरपेश है, उत्तराधिकार का नहीं। आख़िर मत लिये जाने पर प्रस्ताव और बिल दोनों पास हो गये।

सार्वदेशिक सभा का सँगठन।

अन्तिम प्रस्ताव सार्वदेशिक सभा के संगठन के विषय में था जिसको श्री नारायण स्वामी जी ने उपस्थित किया। प्रस्ताव यह था:—

"यह सम्मेलन स्थिर करता है कि सार्वदेशिक सभा की बनावट ऐसी कर दी जाय जिससे उसमें तीन प्रकार के सदस्य सम्मिलित हो सकें।

"१. आर्य प्रतिनिधि सभाओं के प्रतिनिधि।"

"२. आर्यसमाजों के प्रतिनिधि जिनका चुनाव सार्वदेशिक सभा के बनाये नियमानुसार हुआ करे।"

"३. प्रतिष्ठित सभासद।"

श्री नारायणस्वामी जी ने कहा कि सार्वदेशिक सभा आर्य समाजों के संगठन से बनाई गई है। प्रांतिक प्रतिनिधि सभायें बहुत से कामों में लगी रहती हैं। परंतु सार्वदेशिक सभा का काम बिल्कुल बंद है। वह बराय नाम रह गई है। इसका कारण यह है कि अभी तक अन्य देशों में प्रचार का काम नहीं हो सका, आर्यसमाजें सार्व-देशिक सभा में रुचि इस कारण नहीं लेतीं कि उनके प्रतिनिधि सार्व-देशिक सभा में नियमपूर्वक चुने जाकर नहीं आते। तीसरे जो सज्जन सार्व-देशिक सभा के काम में विशेष रुचि रखते हैं उनको भी मेम्बर बनाने की व्यवस्था की गई है और जब ये तीनों प्रकार के प्रतिनिधि इस सभा में रहेंगे तभी यह वास्तविक अर्थों में सार्व-देशिक सभा कहला सकेगी।

देहली के लाला ज्ञानचन्द्र जी ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। पं० भगवद्दत्त जी ने कहा कि इस सभा के संगठन का काम एक सब कमेटी के सुपुर्द किया जाय। ला० जमनादासजी आर्य द्वारा समाज सदर बाजार देहली ने कहा कि क्या स्वामी जी स्थापित परोपकारिणी सभा मर गई है जो एक नई सभा स्थापित करने की आवश्यकता है? वास्तव में आर्य समाज की दो पार्टियां आपस में टकरा रही हैं और उसी का यह परिणाम है।

महाशय जगन्नाथ जी ने कहा कि हमारा कर्तव्य है कि हम इस संस्था को जीवित बनायें और इसके लिए अपना तन मन धन अर्पण करदें। इस सभा में सभी पार्टियां शामिल हो सकती हैं। यह काम किसी प्रान्तिक सभा द्वारा नहीं हो सकता।

महाशय हंसराज जी ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि मैं सार्वदेशिक सभा के विषय में कुछ नहीं कहना चाहता। परंतु इतना ही बतलाना चाहता हूं कि जिस प्रकार ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में सब पार्टियों के प्रतिनिधि होते हैं उसी प्रकार इस सभा में भी सब के प्रतिनिधि होने चाहिये। पार्लीमेण्ट में यूनिवर्सिटी तक का प्रतिनिधि बैठता है। सार्वदेशिक सभा में उस परोपकारिणी सभा का भी प्रतिनिधि होना चाहिए जिसे स्वामी जी ने अपने ग्रन्थ प्रकाशित करने के लिए स्थापित किया था। एवं अन्य आर्य संस्थाओं के प्रतिनिधि भी उस सभा में सम्मिलित किए जांय।

एक देवी ने भी स्त्रियों के प्रतिनिधित्व पर भाषण करते हुए कहा कि अभी तक यह नहीं बतलाया गया कि इस सभा में स्त्रियों को भी कुछ अधिकार दिया जायगा या नहीं। लोग घबराते हैं कि यदि स्त्रियों को मताधिकार दे दिया गया तो न जाने किन कठिनाइयों का सामना करना पड़े। शायद तंदूरों पर रोटियां खानी पड़ें। परन्तु उन्हें घबराने की आवश्यकता नहीं, स्त्रियां मताधिकार प्राप्त करके भी घर का काम काज नहीं छोड़ेंगी।

श्री नारायण स्वामी जी ने महात्मा हंसराज जी के विचार को स्वीकार कर लिया और प्रस्ताव बहुमत से पास होगया।

अन्त में सभापति को धन्यवाद देकर यह सम्मेलन समाप्त हुआ।

———

———*———

सातवाँ परिच्छेद

आर्यविद्वत्परिषद्

ता० १५-२-२१ से मथुरा में शताब्दी महोत्सव का आरम्भ था। प्रातःकाल के महायज्ञ के पश्चात् जहां एक ओर बड़े पंडाल में कथा व्याख्यान आदि का प्रारम्भ हुआ, वहां दूसरे पंडाल में आर्यविद्वत्परिषद् का अधिवेशन शुरू हुआ। इस परिषद् के बुलाने का लक्ष्य यह था कि जिन विषयों पर आर्यजगत् में कोई सन्देह विद्यमान है, उनका निवारण किया जाय।

इस सभा का निर्माण करने के लिये शताब्दी कार्यकारिणी सभा ने अपनी एक विशेष बैठक में जो २३ अप्रैल १९२४ को देहली नगर में सङ्गठित हुई थी, निम्न महाशयों की एक उपसभा बनाई थीः—

(१) श्री नारायण स्वामी जी
(२) ,, बाबू पूर्णचन्द्र बी० ए० वकील
(३) ,, पं० धर्म्मेन्द्रनाथ शास्त्री तर्क शिरोमणि (संयोजक) आगरा

इस उपसभा ने शताब्दी सभा की आज्ञानुसार अपनी १०-६-२४ को सङ्गठित मीटिङ्ग में आर्यपरिषद् के निर्माण के लिए निम्न निश्चय किया कि:—

"आर्य परिषद् समस्त आर्यजगत् में से चुने हुए १०० ऐसे सभासदों की सङ्गठित की जावेजो आर्यसिद्धांतों के मर्मज्ञहों और जो आर्यसमाज के सञ्चालन सम्बन्ध में अनुभवी हों। जन्मशताब्दी सभाको अधिकार होगा कि विशेष आवश्यकता पड़ने पर इन में १० तक अन्य सभासद् भी बढ़ा सके उपर्युक्त १०० सभासदों का संगठन इस प्रकार होगाः—

(१) दो तिहाई (६६) भिन्न २ प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं तथा अन्य सभाओं द्वारा निर्वाचित
(२) एक तिहाई (३४) शताब्दी सभा द्वारा निर्दिष्ट

प्रतिनिधि सभाओं द्वारा ६६ सदस्य निम्न प्रकार से निर्वाचित होंगे।

(१) पञ्जाब, युक्तप्रदेश, प्रादेशिक प्रतिनिधि सभाएं प्रत्येक १० सदस्य कुल ३०
(२) बम्बई, बङ्गाल, राजपूताना प्रत्येक से सात सदस्य कुल २१
(३) मध्यदेश, ईस्टअफ्रीका, वर्मा प्रत्येक से ३ सदस्य ९
(४) जहां कोई प्रतिनिधि सभा नहीं उन समाजों के प्रतिनिधि ४
(५) परोपकारिणी सभाके प्रधान तथा मंत्री २

६६

इस निश्चयानुसार प्रांतीय प्रतिनिधि सभाओं से अपने २ प्रतिनिधि भेजने के लिये प्रार्थना की गई। परन्तु पीछे से सभापति जी की आज्ञा से और भी बहुत से सज्जन इस परिषद् में सम्मिलित

हो गये थे। परिषद् के विद्वानों की नामावली इस परिच्छेद के अन्तमें दी गयी है।

शताब्दी कमेटी की ओर से परिषद् की सहायता के लिये कई आवश्यक विषय प्रस्तावरूप में पहले से ही रख दिये गये थे।

परिषद् के अधिवेशन कई दिन तक होते रहे। प्रत्येक बैठक चार २ घण्टे लम्बी होती थी। प्रस्तुत विषयों पर खूब विस्तार के साथ विचार हुआ। सब प्रान्तों के विद्वानों और नेताओं ने वाद विवाद में आवश्यक भाग लिया। परिणाम क्या निकला इस पर सम्मति देना व्यर्थ है। आर्य पुरुष इस वृत्तान्त को पढ़ें और परिणाम निकालें।

प्रथम दिवस।

१५ फरवरी को प्रातःकाल दूसरे मण्डप में कार्यवाही आरम्भ हुई। लगभग ८० विद्वान् सम्मिलित हुए थे, पीछे से उपस्थित सभ्यों की संख्या बढ़ गई थी। राज्यरत्न मा० आत्माराम जी अमृतसरी के प्रस्ताव और डा० कल्याणदास देसाई के अनुमोदन पर पं० बालकृष्ण जी शास्त्री (बम्बई) ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

पं० बालकृष्ण जी ने अपना भाषण संस्कृत और आर्य भाषा में लिखा हुआ भी पढ़ा था, परन्तु यह रिपोर्ट हिन्दी में होने के कारण यहां केवल हिन्दी भाषण दिया गया है। संस्कृत का भाषण उन्हीं से प्राप्त हो सकता है।

सभापति का भाषण।

तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।

(भावार्थ) श्रीमन्महोदय आर्यसज्जनो! आज आप सभा में अनेक गुणरूपी मणियों से सुशोभित विद्यमान हैं। उनमें कई सर्वसंगपरित्यागी परोपकार-वृत्तिवाले संन्यासी महात्मा हैं, कई ने निखिलतन्त्र स्वतन्त्र शास्त्रीय सिद्धांतों को जान लिया है, कई धर्माधर्म का विवेचन करने में समर्थ धार्मिक हैं, कई इंग्लिश भाषा के विद्वान् होने से आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांतों के जानने वाले हैं और कई प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य के तत्व को समझने वाले व्यवहार कुशल हैं। ऐसे विद्वज्जन सभा में उपस्थित होते हुए भी आज आप मुझे ही प्रधान पद देने की इच्छा रखते हैं, इसलिए आज मेरी पुष्प और धागे की सी दशा है। जिस प्रकार धागा राजाओं के शिर वा कंठ आदि उत्तमांगों पर आरोहण करने के लिए असमर्थ होने पर भी माला के पुष्पों के समागम से उक्त उत्तमांगों पर पहुंच जाता है, उसी प्रकार पुष्पसदृश आप विद्वज्जनों के समागम से ही आज मुझ असमर्थ को इस प्रधानपद की प्राप्ति हुई है। इसलिए असमर्थ को समर्थ के स्थानपर पहुंचाने में आप का ही महत्त्व है न कि मेरा।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का महत्त्व

वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं, गुणाधिके वस्तुनि मौनिता चेत्।

एक संस्कृत का कवि कहता है कि, सभा आदि प्रसंग आने पर श्रीमद्दयानन्द सदृश अनेक गुणवाली वस्तु के विषय में यदि मनुष्य मौन धारण करलें, तो बोलने के लिए परमात्मा ने जो वाणी मनुष्य को दी है वह व्यर्थ ही हुई। और वाणी का व्यर्थ होना यह मनुष्य को असह्य शल्य के समान दुःख देने वाला है।

आज हम जिस महर्षि दयानन्द जी का शतसंवत्सरीय जन्मोत्सव मनाने के लिए उद्यत हैं, उस ने सौराष्ट्र (काठियावाड़) में कौन सा नगर वा ग्राम अपने जन्म से विभूषित किया है यह आज अनिश्चित है। परन्तु वे सम्पूर्ण आर्यावर्त्त के भूषण थे इसमें सन्देह नहीं। उस महात्मा का उसके जीवन में ऐसा कौन सा महत्त्व था कि जिसके लिए हम उसका शतसंवत्सरीय जन्मोत्सव मनावें ? संसार में श्रीमद्दयानन्द जी के जन्म समय अन्य भी लक्षों मनुष्य जन्मे थे, उनका भी शतसंवत्सरीय जन्मो-

त्सव क्यों न मनाया जावे? इसके उत्तर में कवि कालिदास ने रघुवंश में ठीक लिखा है।

'नक्षत्रतारोगणसंकुलापि, ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिर्वि।'

अर्थात् आकाशमंडल में लाखों की सँख्या में नक्षत्र और तारे होते हुए भी रात्रि तमिस्रा अर्थात् अँधेरी ही कहलाती है। परन्तु जब चन्द्र उदित हो कर अपने पूर्ण-प्रकाश से सँसार को धवलित कर देता है, तब उस रात्रि को ही जनता ज्योतिष्मती अर्थात चांदनी रात कहती है। आचार्य श्रीमद्दया-नन्द जी के जन्म के साथ लाखों मनुष्यों का जन्म हुआ होगा यह सत्य है। परन्तु अपने परोपकारादि अनेक गुणों से जिसने संसार को प्रकाशित कर दिया, वह महापुरुष श्री. स्वामी दयानन्द जी ही हुए हैं, दूसरा नहीं। इसलिए ही ऐसे महात्मा का शतसंवत्सरीय जन्मोत्सव मनाकर उस आचार्य के विषय में अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए उनके उत्तम गुणों का स्मरण करके उनसे लाभ लेना यह हमारा प्रथम कर्त्तव्य है।

बालपन से ही उस महात्मा ने जन्मांतरकृत उत्तम संस्कारों के कारण ज्ञान वैराग्यादि अमूल्य गुण किस प्रकार प्रकट कर दिखाये हैं, इस बात को उस ऋषि का जीवनचरित्र स्पष्ट कह रहा है। बालपन में एक दिन उनके पिता जी ने उनको रात्रि के समय शिवालय में पूजादि के निमित्त नियत किया। वहां शिवभक्तों के अर्पण किए हुए मोदकादि नैवेद्य को एक चूहा उठाकर ले भागा। इतना देखते ही आचार्य श्री दयानन्द जी को जन्मान्तरकृत सस्कार से ज्ञान हुआ कि जो शिव सर्वज्ञ, सर्वसामर्थ्यवान जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण है, उस अनन्त सामर्थ्य वाले शंकर की वस्तु को कौन हरण कर सकता है यह पाषाण की मूर्ति शिव नहीं, शिव कोई दूसरा ही होना चाहिए। यह मूर्ति तो जड़ अस्वतंत्र, कारीगर की बनाई हुई और नष्ट होने वाली है। ऐसा कहकर मूर्तिपूजा से पराङ्मुख हो सच्चे शिव की खोज में लगे। उसके बाद में थोड़े ही दिनों में उनकी बहिन और चाचा की मृत्यु हुई। उक्त दोनों के वियोग से ऋषि अत्यन्त दुःखित हो, यह संसार जलतरंग के समान अत्यन्त चञ्चल है, ऐसा जान सब परिवार के मोह को तोड़ कर दुर्जेय मृत्यु को योग से जीतने के लिए घर से निकल पड़े। सच्चे ब्रह्मनिष्ट श्रोत्रिय गुरु की खोज में फिरते हुए इस मथुरा नगरी में श्रीमद्गुरु विरजानन्द जी के समीप पहुंचे और उन से ऋषि ने वेदांग व्याकरण को पढ़ कर वेदादि शास्त्रों का अवलोकन किया तथा वैदिक धर्म प्रचारके लिए कटिबद्ध हुए। उन्होंने विचारा, वैदिक धर्म के विलोप होने से ही वर्णाश्रम धर्म की संकरता फैली है। आज वे इतिहास-प्रसिद्ध वनवासी ब्रह्मर्षि कहां हैं जो जिज्ञासुओं को धर्मामृतपान कराते हुए पर ब्रह्म चिन्तन में तत्पर वनों में प्रखर तपश्चर्या करते हुए ब्रह्म का साक्षात्कार करते थे? कहां गये वे नगर ग्रामादि में निवास करने वाले ब्राह्मण जो महाभाष्य के वचनानुसार साँगोपाङ्ग वेदों को अपना कर्तव्य समझ कर ही पढ़ते थे? उन संन्या-सियों का आज कहाँ पता है जो पुत्र धन एवं प्रतिष्ठा इन तीनों को त्यागकर स्वोपार्जित ज्ञान से अज्ञ जनों का उद्धार करने के लिए संसारमें विचरते थे? आज वे मनुष्य कहां दृष्टिगोचर होते हैं कि जो नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन कर चारसौ वर्ष की पूर्ण आयु का उपभोग करते थे। इस प्रकार मन में दुःखी हो, वैदिक धर्म्म के त्याग से ही इस समय जनता की ऐसी भयंकर दशा हुई है इस लिये वैदिक धर्म के प्रचार की आवश्यकता है, वदिका-चार्य ने इस बात का अनुभव किया। तदनुसार उन्होंने निश्चय किया वैदिक धर्म्म की रक्षा से ही ऐहिक तथा पारलौकिक सुख को देने वाले वर्णाश्रम धर्म्म का उद्धार होगा। इसलिए इस समय ब्रह्मानन्द से दया के आनन्द को ही श्रेष्ठ समझ कर परदुःख

से दुःखित होकर वैदिकाचार्य ने अपना दयानन्द यह नाम सार्थक किया।

यह तो आप महानुभावों को विदित ही है कि प्राचीन समय में परम्परागत सब आर्यों का एक ही धर्म्म था। पर वही इस वैष्णव शैव शाक्तादि अनेक मतभेदों से सैंकड़ों प्रकार का होगया। वैष्णव कहने लगे कि विष्णु ही शिव आदि देवों की तथा सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय का कारण है, शैव कहने लगे कि विष्णु आदि देवों तथा सर्व जगत की उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय का हेतु शिव ही है। शाक्तों ने भगवती ही को सबका आदि कारण बताया। विष्णु चतुर्भुजधारी श्रीवत्सलांछन शङ्खचक्रगदाधारी एवं लक्ष्मीपति है। कैलासनिवासी बैल पर चढ़ने वाले गङ्गाधर त्रिनेत्र पार्वतीपति शिवजी हैं। तोमरादि शस्त्रों को धारण करने वाली अष्टभुजा सिंहारूढ़ भगवती शक्ति है परन्तु परस्पर स्पर्धा से विवाद करते हुए भी वैष्णव शैवादि सभी वेदों को प्रमाण मानने में सहमत हैं। यह जानकर ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराण-रूप पङ्कमें फंसी हुई जनता का उद्धार करने की इच्छा एवं निस्वार्थ भाव से सत्योपदेशक होकर वादिवृन्द को दमन करने वाला वाक्य चातुर्य धारण कर भारतवर्ष में विचरने लगे। और उन्होंने अनुभव किया कि जनता त्याज्य का ग्रहण और ग्राह्य का त्याग कर रही है। उन्होंने यह भी सोचा कि "एकं सद्विप्राः" अर्थात् एक ही परमात्मा को विष्णु शिवादि नामों से पुकारते हैं ऐसा वेद वचन होने पर भी उससे विरुद्ध चलने वाले लोगों का वैदिकाचार्य ने धिक्कार कर विरोध किया। उसने देखा कि इस सबका मूल अज्ञान है और अज्ञान ही मनुष्य का प्रबल शत्रु है उसके नाश से ही वेद-प्रतिकूल बातों का नाश होगा इस लिये अज्ञान के नाश के लिए ही उन्होंने मरण-पर्यंत प्रयत्न किया।

वैदिकाचार्य के वैदिक सिद्धान्त

ईश्वर सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सनातन और संसार की उत्पत्ति आदि का निमित्त है। जीव अणु, अल्पज्ञ, इच्छादिलक्षण वाला और नित्य है। प्रकृति अचेतन, पराधीन, परिणामिनी और नित्य है। उक्त ईश्वरादि तीनों पदार्थ लक्षण और स्वरूप से सर्वदा ही भिन्न रहते हैं। यह कभी नहीं हो सकता कि, यह कभी एक दूसरे में लीन हो जायँ। गुरु और शास्त्र ही तीर्थ हैं। क्योंकि इनसे ही अज्ञान समुद्र से मनुष्य तर जाता है। सांप्रत जलमय को लोक तीर्थ कहते हैं परन्तु वे मनुष्य को तार नहीं सकते। ज्ञान वस्तु के अधीन होने से ब्रह्मज्ञान से ही ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्ष प्राप्त हो सकता है। श्राद्ध जीवित पितरों का ही हो सकता है मृतों का नहीं। कारण पुत्रादि से यहां मृत के निमित्त किया हुआ अन्यत्र मृतों का नहीं पहुंच सकता। यदि सुख के पहुंचाने के अभिप्राय से पुत्रादि से यहां किया हुआ कर्म मृतोंको पहुंच जावे, तो शास्त्रों के अनुसार कृतहान और अकृताभ्यागम यह दो दोष आते हैं। वर्णावस्था गुणकर्मादि के अनुसार ही हो सकती है जन्म से नहीं। ख्रिस्ति, मुसलमान आदि के धर्म में गया हुवा हिंदू मनुष्य प्रायश्चित्त से फिर हिंदू हो सकता है। इत्यादि सिद्धान्त सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थोंमें प्रश्नोत्तर पूर्वक सविस्तर वैदिकाचार्य ने लिख दिये हैं। जिज्ञासुओं को वहां देखना चाहिये। इस प्रकार परोपकार विद्वत्ता आदि गुणों से युक्त उनके समय में सबसे श्रेष्ठ गुरु आर्यों ने उनको माना और सत्कार तथा मान से उनका पूजन किया उनके समय के सब आचार्यों में सबसे श्रेष्ठ वैदिकाचार्य जनता ने महर्षि दयानन्द को ही माना। धर्माधर्म विवेचन करने में जिस प्रकार मनुस्मृति सब स्मृतियों में अग्रसर है इसी प्रकार वैदिकाचार्यकृत सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थ भी वेदानुकूलतया आर्यों को प्रमाण हैं। उनके निर्मित सत्यार्थप्रकाशादि ग्रंथों को

पढ़कर न्याय व्याकरणादि न पढा हुआ आर्य सभा में विद्वानों के साथ यदि विवाद कर सकता है तो. न्यायादिपठित आर्य विद्वानों के विषय में कहना ही क्या है ? इस प्रकार परदुःख से दुःखित होने के कारण संसार के हित के लिये तत्पर हुए महात्मा का यशोगान आर्यावर्तवासी और यूरोप निवासी भट्ट-मोक्ष मूलरादि कर रहे हैं। जिसने अपनी विमल कीर्ति से संसार को प्रकाशित कर दिया है उस महात्म्य में ही उसके शतसंवत्सरी जन्म महोत्सव करने में निमित्त है।

प्रासंगि की चर्चा

आर्यशील महाशयो ! प्रसंगानुसार यहां सभा में इस बातका भी विचार होना चाहिये कि, यास्का चार्यसे लेकर श्रीमद्दयानन्द जैसे परम विद्वानोंने जिन वेदों की रक्षा को फिर भी इस समय इनको रक्षा की आवश्यकता जनता को प्रतीत होती है । प्रायः यह नियम देखने में आता है कि, जिस वस्तु की रक्षा की गई है वह वस्तु निर्भय होती है। परन्तु वेदानुयायियों के रक्षा किए हुए वेदों की रक्षा करने की हमको आवश्यकता प्रतीत होती है तो, बालक के समान हमसे बारम्बार रक्षा किये जाने वाले वेद हमारी पूर्ण रक्षा करेंगे ? पूर्व के विद्वानों द्वारा रक्षा किये हुए वेद यदि आज सुरक्षित होते तो, अनेक प्रकार के उन पर वर्तमान समय में किये जाने वाले आक्षेपोंको सुनकर आर्य महानुभावों को उनकी रक्षा की चिन्ता न होती। उनकी रक्षा के लिये ही सुनते हैं कि कई आर्य महाशय, एक लक्ष रुपया इकट्ठा करना चाहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि, महान् विद्वानों ने जिनको रक्षा की वे वेद सुरक्षित नहीं हैं। यदि सुरक्षित होते तो सांप्रत वेदों पर इतने आक्षेप न होते । कई कहते हैं वे चार नहीं किन्तु तीन ही हैं। कई प्रतिष्ठित आर्य महाशय कहते हैं कि, वेद पौरुषेय हैं ईश्वरीय नहीं। वेदों के ईश्वरी-यत्व विषय में प्रायः आर्य समाज का शिक्षित वर्ग उदासीन ही देखा जाता है। यदि वेदों को ईश्वरीय वे मानते भी हों तो अन्तःकरण पूर्वक नहीं। यह औदासीन्य भविष्यत् में बड़ा भयङ्कर स्वरूप पकड़ेगा ऐसा अनुमान है। इस लिए इसका पूर्व से ही कोई निश्चय हो जाना अच्छा है। कई विद्वान कहते हैं कि, वेदों में पुनरुक्ति दोष बहुत है। कई कहते हैं कि हमारे शरीर के समान निराकार ब्रह्म का चेतन शरीर सूर्य है इस लिए वेदों में सूर्य की ही उपासना लिखी है। सूर्य पृथिवी आदि के समान जड़ नहीं किन्तु चेतन है । सूर्य न हो तो निराकार ब्रह्म की उपासना नहीं हो सकती । श्रीमद्दयानन्द जी के किए हुए वेद भाष्य से भी कई आर्यों के मन का समाधान नहीं होता। श्री स्वामी जी ने अपने भाष्य में जो वेद मन्त्रों का भावार्थ निकाला है वह अत्यन्त मनोहर नहीं है। वेदों के मन्त्र क्रम पूर्वक नहीं ऐसा भी कहते हैं। इत्यादि कई वेदों के विषय में वेदों पर होने वाले आक्षेप प्रति दिन सुनने में आते हैं। इस लिए आर्यविद्वत्व सभा इसका कुछ भी निश्चय करेगी, ऐसी आशा है, यदि इस समय भी इस महत्व के विषय पर विचार न किया जावे, भविष्यत् में बड़ी हानि होगी इसमें सन्देह नहीं।

इस समय दूसरा यह भी एक विचारणीय विषय है कि, जो सत्यार्थप्रकाश में श्री स्वामी जी ने वर्ण व्यवस्था विषय में लिखा है। अपना औरस पुत्र क्यों नहीं, यदि वह अपने वर्णानुसार गुणकर्मवाला न हो तो, उसके गुणकर्मानुसार उसको अन्य वर्ण को देदेना चाहिए और अपने वर्णानुसार दूसरे का औरस पुत्र लेलेना चाहिए। परंतु अपनी सन्तान का मोह कितना प्रवल होता है, यह प्रत्येक मनुष्य जानता है। अपना पुत्र चाहे अन्धा, लंगड़ा वा काणा क्यों न हो, परन्तु पिता उसको कभी छोड़ना नहीं चाहता। इसलिए यह भी विषय विचारणीय है। नियोग के विषय में विद्वान् कहते हैं कि, नियोग मन्वादिस्मृतियों मे विहत होने से स्मार्त है श्रुति में उसका विधान न होने से वह श्रौत नहीं। यद्यपि

'इमां त्वम्' 'उदीर्ष्व नारि०' इत्यादि मन्त्रों में श्री, स्वामी जी ने नियोग पर भाष्य किया है, परन्तु उनमें नियोग पर अर्थ के स्पष्ट न होने से शास्त्रार्थादि विवाह में नियोग वेद मन्त्रों से आर्य पण्डितों को दुःसाध्य होता है। कई दूरदर्शिता से यह भी कहते हैं अतिनिन्द्यादि दोषों के कारण वर्तमान समय में नियोग सर्वथैव त्याज्य है। इसी कारण आज तक समाज में कहीं नियोग हुवा और न आगे भी होने की सम्भावना है। हां, पुनर्विवाह प्रसंगानुसार प्रचलित हो सकता है यह उनका मत है। कई कहते हैं कि, विवाह विधि में देवों के उद्देश्य से सब दिशाओं में सिञ्चन किया हुवा मधुपर्क यदि उन देवों को पहुंच जाता हैं तो, यहां मृत पितरों के नाम से दिया हुआ पिंडादि अन्न भी उनको पहुंच जायगा! धर्म तर्क से अनुसन्धान करने योग्य होने से उपर्युक्त आक्षेपों का जब तक तर्क पूर्वक समाधान न किया जावे तब तक वैदिक सिद्धांतों का प्रचार नहीं हो सकता।

आक्षेपपरिहारोपायः

ऊपर कहे हुए आक्षेपों का परिहार करने के लिए भगवान मनु जी द्वारा कहा हुआ, "वेदों का तत्त्वार्थ" यही एक उपाय है। प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में जग कर मनुष्य ने वेद के तत्त्वार्थ का विचार करने की विधि मनुस्मृति में लिखी है। किसी नीति अथवा काव्य के श्लोक की टीका पढ़ने से उसका तत्त्वार्थ ध्यान में आजाता है, और अनेक पढ़ने वालों का एक मत होजाता है। परन्तु वेदार्थ के विषय में विद्वानों का भी एक मत नहीं होता। स्वदेश के तथा परदेश के विद्वान् जिन का यशोगान कर रहे हैं, उन वेदों के ईश्वरीय कहाने पर भी विद्वानों का उनके अर्थ में एकमत नहीं होता। इस में सबसे बड़ा कारण तो यही है कि, उनके कई पद व्याकरणनिरपेक्ष हैं और उनका लिङ्गवचनादि व्यत्यय तो जगत्प्रसिद्ध ही है इसलिये सभा को वेदों के तत्त्वार्थ की कुछ अवश्य व्यवस्था करनी चाहिये। अन्यथा नाम मात्र की ही उन पर आर्यों की श्रद्धा रह जायगी। कई आर्यविद्वान् तो कहते हैं कि, वेदों का अर्थ व्याकरणनिरपेक्ष ही करना चाहिए। ऐसा करने से रुचिवैचित्र्य के कारण कई परस्पर विरुद्ध अर्थ हो जायँगे। इस से वेदों में आर्यों की श्रद्धा न रहेगी।

यहां विचार करने से मालूम होता है कि, वैदिकाचार्य के लिखे अनुसार ऊपर की कई बातें तर्कसिद्ध नहीं होतीं, ऐसा सत्यासत्य का विवेचन करने वाले विद्वान् कहते हैं। परन्तु श्री० स्वामीजी के सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों को देखने वाले आप महाशय अच्छे प्रकार जानते हैं कि, श्री. स्वामी जी केवल सत्य पक्षपाती थे। इसलिये सत्य ग्रहण और असत्य के त्याग का ही उपदेश सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में किया है। जैसा देखा और जैसा सुना हो उसका उसी प्रकार अनुभव करके दूसरों को समझाने के लिये उसी प्रकार का कथन ही सत्य कहाता है। इसी प्रकार के लक्षण वाले सत्य को मानने के लिए श्री० स्वामी जी की भाष्य प्रतिज्ञा थी। उसीके अनुसार काशी, पूना आदि नगरों में प्रतिपक्षियों की संख्या अधिक होने से अज्ञानी लोगों ने यद्यपि उनका अनादर किया तथापि इस बात की परवाह न करके धैर्यपूर्वक वैदिक धर्म के प्रचार करने में हिमालयपर्वत के समान अचल रहे।

वैदिकधर्म की उन्नति।

महर्षि के उपदेश से आर्यसामाजिक महाशय तार्किक हो जाने के कारण तर्कशून्य किसी विषय को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। इस लिए जब तक आर्यसमाज का साहित्य तर्कसिद्ध न होगा, तब तक वैदिकधर्म की उन्नति शीघ्र नहीं हो सकती। उन्नति के शीघ्र न होने में बाह्य तथा आभ्यन्तर ऐसे दो कारण हैं। आभ्यन्तर कारण यह है कि इस समय वेदादि शास्त्रों के तत्त्वों को जानने वाले, आर्य सिद्धान्तों के प्रचार करने में कुशल,

शान्त, इन्द्रियों का सयम न करनेवाले, धैर्यवान्, प्रगल्भ परन्तु अनुद्धत, प्रतिभाशाली और प्रियवादी आर्योपदेशकों की न्यूनता तथा चतुर्थावस्था में सब प्रकार की एषणाओं का त्याग करनेवाले, वाक मन और शरीर इन तीनों के संयमरूप दण्ड को धारण करनेवाले त्रिदंडी विद्वान् संन्यासियोंकी कमी। इस प्रकार शास्त्रज्ञ, शास्त्रानुकूल तर्क से भ्रांत जनों के भ्रम का उच्छेद करने वाले, शास्त्रार्थ करने में कुशल, वाग्मी बहुश्रुत, प्रचलित सब धर्मों को जानने वाले सदाचारसम्पन्न, मधुरभाषी और न्यायोपार्जित धन से उपजीविका करने वाले पंडितों की आवश्यकता है। इस समय आर्यसमाज में अपरीक्षित संन्यासी और अपरीक्षित गृहस्थी पंडित प्रायः दीखते हैं। सार्वभौम सभा के आधीन ही उपदेशकों की व्यवस्था होनी चाहिए ऐसा मेरा मानना है। सार्वदेशिक सभा से प्रशंसापत्र प्राप्त किये हुए विद्वान् उपदेशक हों ऐसा नियम करना चाहिये।

अब आर्यसमाज की उन्नति में बहिरंग कारण दिखाया जाता है। मनुष्य वही है जो अपने हित और अहित को जाने। आज पचास वर्ष व्यतीत हुए आर्यसमाज हिंदु आदि की उन्नति के लिए उपदेश करता है, इस बातको जनता जानती है। तथापि आर्यसमाज को लोगनास्तिक तथा धर्मभ्रष्ट आदि गालियों से कोसा करते ही हैं। वास्तव में ऐसे मनुष्य अपने हित के ही वञ्चक हैं ऐसा हम मानते हैं। परन्तु इस समय आर्यसमाज की देशहित-चिन्तकता का अनुभव कर के कई गालियां देने वाले भी महाशय आर्य---समाज के अस्पृश्यता—निवारण तथा पतितपरावर्तनादि सिद्धान्तों के अनुकूल चलनेवाले देखे जाते हैं। इसी प्रकार आर्यों से भिन्न महाशय आग्रह को छोड़कर वेदादि शास्त्रों से ब्रह्म के स्वरूप का विचार करेंगे ता उनको स्वयं मालूम हो जायगा कि, ईश्वर का निराकारपन और साकारपन दोनों परस्पर विरुद्ध गुण एकत्र नहीं रह सकते, यह बात वे अच्छे प्रकार जान लेंगे। यदि ईश्वर शरीर वाला साकार बने तो, संसारी मनुष्यों के समान उसको सांसारिक सुख दुःख भोग भी भोगना पड़े। ऐसा स्वामी शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र में यह सिद्धान्त स्वीकार किया है। जैसा कि एक ही वस्तु स्वयं रूपवाली तथा रूपरहित भी यह परस्पर विरुद्ध होने से कदापि स्वीकार करने के योग्य नहीं यह शंकराचार्य जी का कथन है। तथा अन्यत्र भी उन्होंने लिखा है कि निराकार ही ब्रह्म हो सकता है। भगवद्गीता भाष्य में भी वे पूर्वपक्ष उठाकर लिखते हैं कि व्यर्थ ही पाण्डित्य का अभिमान करने वाले कई मनुष्य कहते हैं कि परमात्मा निराकार होने से वह बुद्धि से प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस लिये उसका ज्ञान होना दुःसाध्य है। शंकराचार्य जी इस पूर्वपक्ष का उत्तर देते हैं कि जो गुरुसम्प्रदाय से रहित है, जिन्होंने वेदान्त नहीं सुना है, बाह्य विषयों में जिनकी बुद्धि अत्यन्त आसक्त है और प्रत्यक्षादि प्रमाणों में जिन्होंने कुछ भी परिश्रम नहीं किया वे उक्त प्रकारसे कह सकते हैं। तैत्तरीय उपनिषद्भाष्य में भी उन्होंने लिखा है कि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस उपनिषद् वाक्य में ब्रह्म का विशेषण सत्य इसलिए किया है कि, जिसके जो लक्षण किए गए उन लक्षणों से जो कभी व्यभिचरित न हो उसको सत्य कहते हैं। तदनुसार जब ब्रह्म वेदांत में निराकार स्वीकार किया गया तो उस से विपरीत यदि ब्रह्म साकार सिद्ध हो तो वह असत्य हो जायगा। इसलिए अनृत का लक्षण उन्होंने किया है कि 'जिस रूप से निश्चित किया जाय' उस रूप से व्यभिचरित होने वाला अनृत कहाता है। इस प्रकार वेदादि शास्त्रों के अनेक प्रमाण होने से यदि मनुष्य ब्रह्म की निराकारता स्वीकार करले तो आज ही सब का ईश्वर के विषय में एकमत हो जाय और सब अवतार तथा प्रतिमापूजनादि अज्ञान से प्रचलित हुई बातों से पराङ्मुख हो जावें। इस संसार में बार २ जन्ममरण के बन्धन

में आन से ईश्वर के ज्ञान के बिना दुःख का अभाव कभी हो ही नहीं सकता। इस प्रकार जानकर वैदिकाचार्य ने बारंबार युक्ति प्रमाण से लोगों को सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया। तथापि लोग अवैदिक मार्ग से निवृत्त नहीं हुए, इसलिए आर्य समाजकी उन्नति देरीसे होने में यह बड़ा कारण है। चिरकाल से चला आया वैदिक मार्ग सब को सुख पहुंचाने वाला है ऐसा सुनते हुए भी अज्ञान से अन्धी हुई जनता ने उनको न देखा। पापों के प्रक्षालन करने के लिए शास्त्रों में कहीं यद्यपि गङ्गा आदि के जल से स्नान का विधान नहीं है तथापि उसके लिए पापों के नाश होने के लोभ से धनादि का व्यय करके अपने अमूल्य मनुष्य--जन्म को व्यर्थ खो रहे हैं। मनु के इस वचन का कि, पानी से केवल शरीर की शुद्धि होती है आत्मा की नहीं, वे नहीं जानते। भगवान् मनु जी ने तो विद्या और तप से आत्मा की शुद्धि कही है। श्राद्ध भी जीवित पितरों का ही होना सम्भव है मृतों का नहीं जैसा कि मनुजी कहते हैं।

'एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते। इत्यादि श्लोकों में कहते हैं कि एक ही जीव जन्म लेकर मरता है और एक ही अपने अच्छे अथवा बुरे कर्मों को भोगता है। पर जन्म में माता पिता पुत्र दारा और जातियें कोई भी सहायता नहीं पहुंचा सकते किंतु एक धर्म ही जीव के साथ सहायता करने के लिए रहता है। एक धर्म ही ऐसा सच्चा मित्र है कि जो मरने पर भी जीव के साथ जाता है। अन्य सब शरीर के साथ यहीं रह जाते हैं। इस मनु वचन से जीवात्मा किसी की सहायता के बिना ही अपने कर्मानुसार जाता है यही सिद्धांत है।

तीन, दो अथवा एक वेद का साङ्गोपाङ्ग--अध्ययन करने वाला ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य का खंडित न कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे यह मनुजी कहते हैं। इस मनुवचन से भी गुरु द्वारा पिलाये हुए विद्यामृत से अपनी आत्मा को पुष्ट करे और ब्रह्मचर्य से अपने शरीर दृढ़ करे इस प्रकार विद्या और ब्रह्मचर्यसे आत्मिक तथा शारीरिक बल वाला होकर गार्हस्थ्यधर्म को धारण करे। क्योंकि विद्या तथा ब्रह्मचर्य से युक्त मनुष्य के लिए ही मनुजी ने ब्रह्मचर्य का विधान किया है। इसी प्रकार 'ब्रह्मचर्य से कन्या युवा पति को प्राप्त होती है' ऐसे अथर्ववेद का वचन होने से ब्रह्मचारिणी कन्याओं का भी यौवनावस्था में विवाह का विधान है। इस लिए इससे विपरीत आचार रखने वाले बालपन में ही विवाह करने वाले स्त्री पुरुष थोड़ी आयु वाले देखे जाते हैं और श्रुति के प्रमाण से ही विद्वान् अपने धर्म में प्रवेश करें तथा धर्म जानने वालों के लिए परम प्रमाण श्रुति है? इत्यादि शास्त्र प्रमाण होने पर भी उससे विरुद्ध आचरण करने वाले लोगों की अवनति क्यों न हो? कोई २ आर्य मोक्ष के लिए कर्म-मार्ग से ज्ञान-मार्ग ही अच्छा है इस लिए कर्म मार्ग सब प्रकार से त्यागने योग्य है ऐसा कहते हैं और कई महाशय ज्ञान-मार्ग की अपेक्षा कर्म-मार्ग को ही सुख का मूल होने से ग्राह्य बताते हैं। इस प्रकार दोनों का मतभेद देखा जाता है। परन्तु वैदिकाचार्य तो ज्ञान तथा कर्म के समुच्चय से ही स्वर्ग तथा अपवर्ग को प्राप्त मानते थे। यह ही उनका पक्ष था। ज्ञान तथा कर्मकांड यदि अविरोधी हों तभी मनुष्य के लिए सुख के हेतु हैं। और आधुनिक विद्वानों को ज्ञानपूर्वक कर्मकांड ही रुचिकर है। ज्ञान विरुद्ध नहीं। एक शरीर में ज्ञान तथा कर्म के भेद से दो प्रकार की इन्द्रियों की जिस प्रकार काम करने में एकता देखने में आती है उसी प्रकार ज्ञान और कर्मकांड में भी एकता ही होनी चाहिए। जिस प्रकार कोई नौकर कानों से स्वामी की आज्ञा को सुन तो उसी समय उसके पैर दुकान पर जाने के लिए उत्सादित हो जाते हैं जहां ज्ञानेन्द्रिय कानों से प्रेरित कर्मेन्द्रिय दोनों पैर नौकर के शरीर को काम सिद्ध करने के लिए बाज़ार में ले जाते हैं उसी प्रकार ज्ञान प्रेरित ही कर्मकांड मनुष्यके

लिए हितकारी होता है अन्यथा श्रोतज्ञान से विहीन नौकर के व्यर्थ में इधर उधर दौड़ने के समान कर्म-कांड व्यर्थ हो जायगा। बिना एकता के हानि होना सर्वानुभवसिद्ध है। नाना प्रकार के मतभेद के कारण परस्पर विभिन्न हुए मनुष्यों में एकता पैदा करना ही वैदिकाचार्य का आशय था। सम्पूर्ण न्यायादि शास्त्रों में परस्पर विरोध है ऐसा आधुनिक विद्वान् मानते हैं परन्तु षडंगों में से प्रत्येक दर्शन एक २ विषय का प्रतिपादन करने वाला होने से उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है इस प्रकार महर्षि ने दर्शनों के अभेद को सिद्ध किया है। इसी बात को हाथी के अङ्गों के दृष्टांत से भी स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में स्पष्ट किया है। तथा कितने ही यह भी कहते हैं कि श्री स्वामी जी का प्रत्येक वचन हमारे लिए प्रमाण है और कोई यह कहते हैं कि वे ऋषि के वचन यदि वेद के अनुकूल हों तभी हमारे लिए प्रमाण हो सकते हैं अन्यथा नहीं। वास्तव में उनके वे ही वचन प्रमाण हो सकते हैं जो वेदानुकूल हों यह उन्हीं के लेखसे सिद्ध होता है। जो शांत हुए वैर को प्रदीप्त नहीं करता और न अभिमान करता और न अपने को सदैव दुर्बल समझता है तथा संकट को प्राप्त हुआ अयोग्य कर्म नहीं करता वही मनुष्य आर्यशीलहै। जो अपने सुख में ही सुख नहीं समझता है और दूसरे दुःख से अनान्दित नहीं होता और दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता वही मनुष्य आर्यशील हैं इस प्रकार महाभारत में कहे हुए लक्षणों से युक्त मनुष्य ही आर्य हो सकते हैं। ऐसे ही आर्यों की जब तक समाज में अधिकता न होगी तब तक आर्यसमाज की उन्नति होना दुःसाध्य है। आज इस आर्यावर्त में आर्यसमाज सबों का नेत्रवत् मार्ग दिखाने वाला है यह अब प्रसिद्ध हो चुका है। यदि नेत्रवत् आर्य-समाज में कुछ विकार हो तो सभी मनुष्य समाज अँधे के समान होकर अपने अभीष्ट को प्राप्त न कर सकेगा, इसमें कोई शंका नहीं। इसलिए देश का कल्याण चाहने वाले महाशयों को अपने नेत्र के समान आर्यसमाज का रक्षण करना चाहिए। इस समय स्वराज्य के लोभ से आकर्षित हुए कई आर्यसमाजिक आर्यसिद्धांतों में शिथिल प्रयत्न देखे जाते हैं। कईयों ने तो स्वराज्य प्राप्ति के लिए आर्य समाज का त्याग ही अच्छा है ऐसा समझकर उसको त्याग भी दिया है। उनका ऐसा करना न केवल आर्यसमाज की अवनति का ही कारण है आर्य देश की अवनति का भी है। आर्यसमाज का ऐसा कौनसा सिद्धांत है जो देश को हितकर न हो।

यद्यपि श्री शंकराचार्यादि आचार्य पारलौकिक सुखमार्ग के उपदेशक समयानुसार हुए हैं इसमें सन्देह नहीं तथापि पारलौकिक सुख के समान मनुष्यों के ऐहिक सुखमार्ग को दिखाने में वैदिका-चार्य श्रीमद्दयानन्द जी सबों से श्रेष्ठ हैं इसमें सन्देह नहीं। दोनों प्रकार के सुखों के साधन दिखाये बिना मनुष्य समाज की सांसारिक तथा पारमार्थिक उन्नति नहीं हो सकती। प्रवृत्ति और निवृत्ति लक्षण भेद से धर्म दो प्रकार का है। विद्या और ब्रह्मचर्य से प्रवृत्ति हुआ अपनी ऐहिक उन्नत्ति कर सकता है। उसके अनन्तर वानप्रस्थ और सन्यस्थ आश्रमों से निवृत्ति मार्ग से चलता हुआ मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

वैदिक सिद्धान्तों का औदार्य

कई महाशय आर्यसमाज पर यह आक्षेप करते हैं कि, उनके सिद्धांत अनुदार होने से सार्व-देशिक नहीं हो सकते। वास्तव में ऐसा कहने वाले महाशय आर्य साहित्य से अनभिज्ञ है। कारण कि यदि कथन अच्छा हो तो छोटे बालक से भी लेना चाहिए। स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, सफ़ाई (शौच) अच्छा कथन और अनेक प्रकार को कारी, गरी यह गुण हर किसी से भी ग्रहण करने चाहिए। नीच मनुष्यों से भी धर्म ग्रहण करना चाहिए।

इत्यादि मनुवचन से स्पष्ट ही आर्य सिद्धांतों का औदार्य प्रकट होता है। जब भगवान् मनुजी स्त्री रत्नादिकों के ग्रहण करने में जाति तथा देशकी कोई भी पर्वाह न करके केवल गुण ग्राहकता से स्पर्धा-रहित होकर कह रहे हैं, तब इससे बढ़ कर और औदार्य कौनसा हो सकता है?

वैदिकधर्म से ही देशोन्नति हो सकती है

जिस धर्म से देशोन्नति हो सकती है वह धर्म कौनसा अर्थात् उसके क्या लक्षण हैं? यह प्रश्न प्रत्येक के मनसे उठता है। धृति आदि दश लक्षण वाला धर्म है, वेद स्मृति सदाचार आदि चार लक्षण वाला धर्म है, ऐसा मनुजी कहते हैं। वेदों की प्रेरणा जिसमें हो वह धर्म है, ऐसा जैमिनी जी कहते हैं। जिससे ऐहिक और पारलौकिक सिद्धि हो वह धर्म है, ऐसा महर्षि कणादि कहते हैं। इस प्रकार धर्म के अनेक ऋषियों ने अनेक लक्षण दिए हैं परन्तु वे परस्पर विरुद्ध नहीं हैं। जिस प्रकार प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण गोतमऋषि के पूर्व विद्वानों ने माने हैं। प्रत्यक्षादि चारों प्रमाणों में ही अन्यों का अन्तर्भाव करके गोतमाचार्य ने अप्रत्यक्षादि चार ही प्रमाण माने हैं। उपमान का अनुमान में अन्तर्भाव करके भगवान् मनुजी ने प्रत्यक्षादि तीन ही प्रमाण माने हैं? इस लिए उक्त सभी धर्म के लक्षण हो सकते हैं और उनमें विरोध नहीं आता।

आधुनिक देशभक्त और आर्यसमाजिक देशोउन्नति के लिए क्या चाहते हैं, इस बातका विचार करना चाहिए। गत बेलगांव की नैशनल कांग्रेस में देशोन्नति के लिए सब से प्रथम सबों का एक मत होना चाहिए, इस बात में वहां किसी देशभक्त का मतभेद न था। उक्त देशभक्तों के उदय से पूर्व ही आर्यसमाज एकमत के लिये जो उपाय कर रहा है वह सब संसार के समक्ष है। एक भाषा, पतितपरावर्तन, अस्पृश्यतानिवारण आदि विषयोंके लिये आधुनिक देशभक्त प्रयत्न कर रहे हैं, उनके लिये आर्यसमाज आज पचास वर्ष से शिरतोड़ प्रयत्न कर रहा है, यह कौन नहीं जानता? परदेश का वस्तु से स्वदेश की वस्तु अच्छी वैदिकाचार्य अपने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में पूर्व से ही लिख गये हैं, परन्तु इस से भिन्न देश के हित के लिये क्या करना चाहिये उसका नाम भी आधुनिक देशभक्तों की सभा में सुनने में नहीं आता! सबसे प्रथम शरीर तथा आत्मा का बल करने के लिये ब्रह्मचर्य और उसके पालने तथा विद्या पढ़ने के लिये गुरुकुलों की आवश्यकता है जिससे कि आत्मिक बल प्राप्त हो। बालविवाह निषेध, देश को हित करने वाले प्रौढ़-विवाह का प्रचार, गुण कर्मानुसारिणी वर्णव्यवस्था गुणकर्म से ही बड़ा वा छोटा मानना केवल जन्मसे नहीं। समान आकृति होना ही जाति का लक्षण है ऐसा गोतमाचार्य का कथन जब तक भारतवर्ष में प्रचलित न होगा तब तक उसकी उन्नति होना असम्भव है क्या यह ऊपर कहे हुए देशोन्नति के लक्षण आधुनिक देशभक्तों में कहीं भी सुने जाते हैं? हम तो कहेंगे कि उक्त सिद्धान्तों का प्रचार हुए बिना देशोन्नति स्वप्नतुल्य ही है। इन सिद्धांतों का प्रचार न होना ही देश की अवनतिरूप रोग का निदान है और उक्त सिद्धांतों का प्रचार ही देश के रोग की चिकित्सा है यही श्रीमद्दयानन्द जी ने निश्चय किया था। रोग की निदानपूर्वक चिकित्सा करना शिष्टसंमत है। आधुनिक देशभक्त केवल चरखे से निर्माण किये हुए खादी के वस्त्र पहनने से ही देशोन्नति मानने वालों का क्या कहना यह हम नहीं जानते। काशी में मरने से मुक्ति, जगन्नाथ का उच्छिष्ट भात खाने से मुक्ति, गंगादि के जल में स्नान करने से सर्व पापों का क्षय, अपना पकाया हुआ ही खाना परम धर्म, मूर्खों से मन्त्रित किया हुआ धागा बांधनेमात्र से ही शरीर के रोग और मूढ़जनों के कल्पित भूत पिशाचादि की बाधा का दूर होना इत्यादि धार्मिक तथा सामाजिक अनेक प्रकारके भ्रमों से भ्रांत हुई भारतवर्ष की प्रजाकी

उन्नति किस प्रकार करना, इस बात का विचार किये बिना ही केवल स्वराज्य के लोभ से इधर उधर भागने वाले आधुनिक देशभक्त देखने में आते हैं। वास्तव में धर्म ज्ञान, विज्ञान आदि गुणों से ही देशोन्नति होता है ऐसा विद्वानों का मानना है। उक्त धर्मादि गुणों के बिना ही देशोन्नति होगी इस आधुनिक देशभक्तों के निश्चय का हम आदर नहीं करते। जाति, धर्म, भाषादि भेदों से छिन्न भिन्न भारतवर्षीयों की देशोन्नति होना कठिन है ऐसा वैदिकाचार्य श्री० स्वा० दयानन्द जी का निश्चय था समान प्रसव वाली ही जाति, तर्क से अनुसंधान किया हुआ ही सब प्राणियों को सुख देने वाला धर्म, ऐसा वैदिक सिद्धांत है।

वर्णव्यवस्था

एक ही घर में सब कुटुम्बी ब्राह्मणादि वर्ण गुणों के भेद से भिन्न होने पर भी एकत्र ही रह सकते हैं पृथक् नहीं। वर्णगुणों के भेद से कुटुम्बियों का अलग २ रहना फूट पैदा करने वाला होने से हानिकारक सिद्ध होगा। एक घर में चारों ही भाई भिन्न २ वर्णों के गुणों से युक्त होते हुए भी एकत्र रह सकते हैं। भाइयों में एक शमादि गुणसम्पन्न ब्राह्मण हो दूसरा शौर्यादि गुणसम्पन्न क्षत्रिय हो तीसरा कृषि व्यापारादि में रत रहने वाला वैश्य हो और चौथा तीनों वर्णों के गुणों से रहित केवल सेवामें तत्पर होने के कारण शूद्र हो। किसी व्यक्ति में गौण मुख्य भेद से तीनों वर्णों के गुणों का रहना भी सम्भव है। वहां प्रधान गुण के अनुसार उसका वर्ण माना जायगा। एकत्र हो रहने वाले चारों भाइयों में कोई न्यायाधीश कोई सेनाधिकारी, कोई व्यापारादि गुणों में रत और कोई भृत्य के समान सेवातत्पर रहे। इस प्रकार वर्ण के गुणानुसार पृथक्ता होने पर भी एकत्र रहते हुए सबका एक मत होने में कोई बाधा न आवेगी। वर्णगुणों को भिन्नता से भिन्न २ गृहों में रहना असम्भव है ऐसा मैं मानता हूं। जिसका जिसके साथ वर्ण गुणों के अनुसार साम्य होगा वह उसके साथ विवाह आदि करे।

आर्य सिद्धांत।

वेद पौरुषेय हैं अथवा अपौरुषेय हैं इस विषयमें भी आर्योंमें परस्पर मतभेद है। उसके निराकरणार्थ आर्यपरिषद् को अवश्य विचार कर कोई उभयपक्ष-सम्मत नियम बनाना चाहिए ताकि वेदप्रचार में हानि न हो। हमारे मत में धर्म और अधर्म के विवेचन करने में सब ग्रन्थों में वेद ही अग्रसर है ऐसा मानने वाले को ही आर्य कहना चाहिए, ऐसा वेद पौरुषेय-वादियों के लिए नियम होना चाहिए। इसी प्रकार यदि अन्य सिद्धांतों में भी मतभेद कहीं अनिवार्य हो तो उस सिद्धांत के विषय में भी प्रचार के लिए हमें औदार्य प्रकट करना चाहिए।

इसी प्रकार नियोग विषय में और वर्ण गुण कर्म के अनुसार औरस पुत्र के देन लेन में भी जो असभ्यता प्रतीत होती है उसमें भी हमें औदार्य दिखाना चाहिए, यह हमने पूर्व ही दिखा दिया।

गुरुकुलादि सँस्था सँबन्धी विचार

आर्यसमाज की गुरुकुल कालेज तथा पाठशाला आदि संस्थाओं का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रस्थान करना अच्छा नहीं। कारण कि उससे परस्पर नाना प्रकार का मतभेद बढ़कर हानि पहुंचा रहा है यह सब को विदित ही है। उन संस्थाओं के निर्वाहार्थ धन एकत्र करने में सञ्चालकों में क्वचित् मतभेद भी दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक कार्य करने में सब परतन्त्र हैं ऐसा समाज का दसवां नियम होने पर भी उक्त प्रकार से आर्यों का स्वतन्त्रता से संस्थाओं का स्थापन करना अवश्य विचारणीय है। इस स्थानपर उत्सव के लिए आए हुए आर्य महाशय सार्वदेशिक सभा के कोष के लिए एक लक्ष रुपया इकट्ठा करें। यहां आए हुए बहु संख्याक आर्यों के लिए यह कार्य दुष्कर नहीं हैं। यात्रा को गए हुए

मनुष्य पंडों के दानार्थ जितना धन का व्यय करते हैं उस दशवें भाग से हमारे लिए एक लक्ष रुपया एकत्रित करना कुछ कठिन बात नहीं है। यह भी तो आर्यों की यात्रा ही है इसमें किया हुआ धन व्यय बुरे मार्ग में न जाकर देश धर्म आदि के उद्धार के लिए ही खर्च होगा यह तो आप जानते ही हैं। इस प्रकार धन से पुष्ट हुई सार्व-देशिक सभा सब प्रकार के प्रबन्ध कर सकती है। उनमें कई इंग्लिश भाषा के, कई संस्कृत शास्त्र को जानने वाले विद्वान् देश काल के अनुसार कार्य करें और वे विद्वान जिस प्रकार आर्यों को आज्ञा करें उस प्रकार ही सब आर्य वर्तें। यह हमने नमूने के तौर पर कहा है। विशेष विचार करना आप सब उपस्थित सदस्यों के अधीन है।

उपसँहार

जिस प्रकार कोई सेनापति देशकालानुसार अपनी सेना का संचालन करता है उसी प्रकार सब का कल्याण करने के निमित्त वैदिकाचार्य श्री दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज को भी देशकालानुसार स्वसिद्धांतों का जगत् में प्रचार करने के लिए प्रेरणा की है। सब प्रकार की उन्नति का मार्ग दिखाने में आर्यसमाज संसार में प्रसिद्ध है जिस प्रकार एक माता जन्म से ही अपने बालक की उन्नति में चतुराई रखती है, उसी प्रकार अज्ञान रोग से पीड़ित मनुष्य मात्र की उन्नति में समाज को बड़ी चतुराई से काम लेना होगा। इसलिए धन प्रतिष्ठादि के लोभ से रहित बुद्धिमान समुद्र के समान अपनी आर्य-मर्यादा का उलङ्घन न करने वाले आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता होने चाहिए। इतना ही निवेदन कर हम यहां ही विश्राम करते हैं। मानुषिक निसर्गजात त्रुटियों के लिए आर्यबन्धु हमें अवश्य ही क्षमा करेंगे।

माघशुक्ला पौर्णिमा
सम्वत १९८१ वै.
ता. ९।२।२५

विद्वानों का अनुकम्पनीय
पण्डित बालकृष्णशर्मा,
बम्बई।

प्रारम्भिक भाषण के पश्चात् प्रस्तुत विषयों पर विचार आरम्भ हुआ। पहला प्रस्तुत विषय वर्ण सम्बन्धी था, परन्तु उसके प्रस्तावक डा० केशवदेव शास्त्री सभा में उपस्थित नहीं थे इस कारण निश्चय किया गया कि यह आवश्यक नहीं कि शताब्दि कमेटी ने प्रस्ताव जिस क्रम से लिख दिए हैं उसी क्रम से उन पर विचार किया जाय। परिषद् को जैसे सुविधा हो वैसे कार्वाही की जाय। तदनुसार वर्ण सम्बन्धी प्रस्ताव को छोड़कर तीन आर्य समाजियों की रचना विषयक प्रस्ताव पर विचार आरम्भ हुआ।

आज प्रस्ताव पर बहुत सा विचार हुआ, परन्तु समय अधिक हो गया था, और बहुत से सज्जन बोलना चाहते थे, इसलिए अगले दिन बोलने वालों के नाम ले लिए गए और उस दिन की बैठक समाप्त हुई। आगे की सारी रिपोर्ट में, पाठक यह याद रखें कि परिषद् के उपरोक्त निश्चयानुसार प्रस्तावों पर क्रमशः विचार नहीं हुआ, परन्तु रिपोर्ट में प्रत्येक प्रस्ताव की मूल संख्या ही लिखी गयी है। केवल इतना ही नहीं, समयाभाव के कारण कुछेक प्रस्ताव ऐसे भी रह गये थे जो परिषद में पेश ही नहीं हो सके।

आर्य परिषद की द्वितीय बैठक

१६। २ २५

आज परिषद् की बैठक प्रातःकाल ८॥ बजे प्रारम्भ हुई। निर्वाचित सभापति जी की अनुपस्थिति में श्रीयुत पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० ने सभापति का आसन सुशोभित किया। इसी अवसर पर निर्वाचित सभापति जी भी आगए और राज--धर्म और विद्या--सभा सम्बन्धी प्रस्ताव पर फिर विचार आरम्भ हुआ।

सभापति जी के भाषण के अनन्तर अधोलिखित तीसरा प्रस्ताव पेश हुआ—

"यह परिषद् निश्चय करता है कि विद्या, धर्म और राज्य सभाएँ बनाईजावें। सम्प्रति कर्त्तव्य इस प्रकार स्थिर किए जावें कि—

(१) विद्यार्य सभा

(क) संस्कृत और आर्य भाषाएं सम्बन्धी पाठशालाओं की, चाहे वे पुत्रों के लिए हों वा पुत्रियों के लिए पाठविधि बनाना उनकी परीक्षा लेना और सनद देना।

(ख) शिक्षा सम्बन्धी समान संस्थाओं को संगठित करना।

(२) धर्म्मार्य्य सभा

(क) समय २ पर अपनी बैठकें करके उन के मत भेदों पर विचार करना जो इस समय उत्पन्न होगए हैं अथवा भविष्यत् में उत्पन्न हों और इस प्रकार मत भेदों के दूर करने में यत्नवान रहना।

(ख) उन सन्देह और शंकाओं को दूर करते रहना जो समय २ पर आर्यों में उत्पन्न हों।

(ग) विवादास्पद विषयों पर व्यवस्था देना।

(३) राजार्य्य सभा—

"आर्यों के राजनैतिक अधिकारों की रक्षा करना और कौंसलों से आवश्यक कानून बनवाना।'

इस पर बहुत देर तक वाद विवाद होता रहा। तदनन्तर प० रामचन्द्र जी ने सभापति से इस प्रकार प्रश्न किया—

प्रश्न क्या म प्रधान जी से यह पूछ सकता हूं कि राज सभा का क्या अर्थ है? क्या वही अर्थ है जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है।

सभापति जी ने उत्तर देते हुए कहा कि "हां पहिले यह कहें कि तीसरी सभा बने या नहीं? उस का नाम पीछे निश्चित होगा। राज सभा का अर्थ राजकीय विषय सम्बन्धी सभा से है।

इसके अनन्तर सभापति महानुभाव ने सम्मति लेना प्रारम्भ किया और कहा कि जो सज्जन तीनों सभाओं के बनाने के पक्ष में हों वे अपनी सम्मति दें।"

इसी अवसर पर राजार्य सभा का एक संशोधित नाम "राज न्याय सभा" पेश किया गया। परन्तु सभापति जी द्वारा राजसभा का अर्थ स्पष्ट किये जाने पर संशोधन वापस ले लिया गया। तदनन्तर सम्मति लेने पर निश्चय हुआ कि तीन प्रकार की सभाएं विद्यार्य्य सभा, धर्म्मार्य सभा तथा राजार्य्य सभा बनाई जावे।

इसके बाद श्री प० गंगाप्रसाद जी ने प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा कि—

'मेरा प्रस्ताव है कि ये तीन सभाएँ कैसी हों इस पर विचार करने के लिए उपस्थित लोगों में से एक सब कमेटी बनाई जाय। वह कल की सभा में रिपोर्ट पेश करदें।'

इसी समय यह संशोधन उपस्थित हुआ कि तीनों सभाओं के लिये पृथक् २ उपसमितियां बनाई जांय इस प्रकार उपरोक्त संशोधन सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

बहुत देर तक इस बात पर वाद विवाद होता रहा कि ये उपसभाएं कितने २ सभ्यों की हों और उनके सभासद् किस प्रकार चुने जांय प्रांतवार वा किसी अन्य रीति से? प्रांतवार सभासदों का निर्वाचन बहुमत से अस्वीकृत हुआ तत्पश्चात् निश्चय हुआ कि प्रत्येक उपसभा में ७ सदस्य हों इतने विचार के बाद परिषद् की बैठक ११॥ बजे दिन के लिए स्थगित की गई।

तृतीय बैठक ता. १७-२-१६२५

आज परिषद की कार्यवाही आरम्भ करने के पूर्व श्रीसभापति महोदयने निम्न प्रकार भाषण किया।

"पूज्यपाद स्वामियो ! तथा अन्य विद्वानो !

आज सभा का प्रारम्भ करने से पूर्व एक दो आवश्यक सूचनाएँ देना उचित प्रतीत होता है। मैं ने परिषद् की कार्यवाही पर दो प्रकार के आक्षेप किये जाते हुए सुने हैं। एक तो यह कि "सभा पर कन्ट्रोल Control करनेके लिए गर्मी रखनी चाहिए" परन्तु मैं समझताहूं कि यह आर्यसमाजियों की सभा है अतः इस सभा में कार्य भी उसके अनुरूप होने चाहिएँ। मेरी इच्छा है कि जो महानुभाव बोलने के लिए उठें वे अपने समय तथा बोलने के प्रकार पर ध्यान रक्खें। परन्तु खेद है कि इन बातों पर ध्यान नहीं रक्खा जाता, वक्ता महोदय समय की परवाह नहीं करते। घंटी बजने पर भी नहीं बैठते। आर्य विद्वानों की सभा में इस प्रकार नियमों की उपेक्षा करना कहां तक समुचितहै यह आप लोग ही सोचें।

'दूसरी बात आउट आफ़ पॉइन्ट की (Out of point) है। विद्वानों की सभामें यह सर्वथा त्याज्य है। चार प्रकार के वाणी के दोष हैं इन्हें क्यों काम में लाया जावें। सब महानुभाव अपना भाषण नियत समय में ही समाप्त कर देवें।

अब मैं पं० गंगाप्रसाद जी से प्रार्थना करता हूं कि वे कल की अवशिष्ट कार्यवाही को पेश करें। उस पर विचार किया जावे।

श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी ने कहा, 'कल सभा में ३ सभाओं के लिए नाम पेश किये गये थे उन पर विचार नहीं हो सका। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि नामों में कई त्रुटियां हैं। जिन लोगों के नाम सभा में रखने उचित हैं उनको हमें अवश्य रखना चाहिए। यदि ७ से अधिक रक्खे जांय तो अच्छा हो हालांकि सभाने ७ नामों को स्वीकार किया है। राज सभा में ७ ही रक्खे जांय तो भी कुछ हानि नहीं परन्तु विद्या सभा में कुछ अधिक होना अच्छा है।"

पं० ज्वालाप्रसाद जी ने कहा कि राज सभा में गवर्नमेंट सरवेंट (Govt. Servants) मौडरेट्स (Modera es) एक्सट्रीमिस्ट (Extremists) सभी सम्मिलित होने चाहिएँ।

इस प्रकार कुछ तर्क वितर्क होने के पश्चात् निश्चय हुआ कि जितने नाम उप सभाओं के लिए पेश किये गये हैं। वे सबके सब सभा में रक्खें जांय ताकि विवाद न हो सर्व सम्मति से निम्न लिखित नाम अलग २ उपसभाओं के लिए स्वीकृत हुए।

विद्यार्य सभा	धर्मार्यसभा
१. डा० कल्याणदास जी	१. पं० भगवद्दत्त जी (कनवीर)
२. म० विश्वम्भरनाथ ,,	२. ,, बालकृष्ण ,,
३. प० आर्यमुनि ,,	३. स्वा० श्रद्धानन्द ,,
४. ,, घासीराम ,,	४. म० रामचन्द्र ,,
५. महा० हंसराज जी	५. पं० सातवलेकर ,,
६. ला० रलाराम ,,	६. स्वा० सत्यानन्द ,,
७. प्रिं० दीवानचंद्र ,,	७. पं० राजाराम ,,
८. म० विश्वबन्धुनाथ ,,	८. स्वा० नारायण ,,
९. ,, शङ्करनाथ ,,	९. पं० मधुसूदन ,,
१०. मा० आत्माराम ,,	१०. प्रो० धर्मेन्द्रनाथ,,
११. डा० श्यामस्वरूप ,,	११.पं० रामचन्द्र देहलवी
१२. पं० इन्द्रमणि ,,	१२. ,, ,, अजमेरी
१३. ,, शङ्करदेव ,,	१३. ,, मुक्तिराम ,,
१४. ,, नन्दकिशोर ,,	१४. स्वा०ब्रह्मानन्द ,,
१५. सत्यव्रत जी	१५. पं०क्षेमकरणदास ,,
१६. राय ठाकुरदत्त ,,	१६. ,, बुद्धदेव जी
१७. म० विश्वम्भरदयाल जी (कनवीर)	१७. ,, धर्म देव ,,
	१८. बालमुकुन्द देहलवी

आर्य सभा

१. महाशय कृष्ण जी
२. म० हरविलास सारदा
३. म० चांदकरण कारण सारदा (कनवीनर)
४. डा० केशवदेव शास्त्री
५. डा० सत्यपाल जी
६. स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी

७. पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए०
८. पं० इन्द्र जी
६. पं० रामगोपाल जी
१०. लाला रामप्रसाद जी
११. महा० अमीरचन्द जी
१२. म० दयाल जी (बम्बई)
१३. म० ज्वालाप्रसाद जी
१४. म० गंगाप्रसाद जी
१५. सेठ शिवदास जापसी
१६. लाला काशीराम वैद्य
१७. म० खुशहालचन्द खुरसंद
१८ म० शेरसिंह जी
१६. म० हरगोविंद जी गुप्त
२०. म० रामराव जी
२१. पं० भीमसेन जी
२२. पं० जानकीनाथ जी
२३. म० द्विजेन्द्रनाथ जी
२४. स्वा० सच्चिदानन्द जी
२५. पं० विष्णु भास्कर केलकर
२६. कुँवर हुकमसिंह

अनन्तर डा० कल्याणदास जी देसाई ने अपना प्रस्ताव इस प्रकार उपस्थित किया—

"यह परिषद् स्थिर करती है कि प्रत्येक आर्य नरनारी अपने गुण कर्मानुसार वर्णों का प्रयोग किया करें और गुण कर्मानुसार ही बिना लिहाज जाति बन्धन के बिवाह किया करें।

पं० राम बिहारीलाल जी ने अपना संशोधन पेश करते हुए कहा कि इस प्रस्ताव में इतना और बढ़ा दिया जाय 'और इसकी सुगमता के लिए सब आर्यों में परस्पर खानपान का व्यवहार हुआ करे।"

इसके पश्चात संशोधन को स्वीकार करते हुए प्रस्ताव महोदय डा० साहब ने भाषण किया—

"भद्र पुरुषो ! मैंने अपना पहिला प्रस्ताव आप के सम्मुख उपस्थित किया है। मेरा वक्तव्य यह है कि इस विषय पर बहुत उपदेश हो चुके तथा यहां पर उपस्थित लक्षों भद्रपुरुषों ने विवाह सम्बन्ध का गुण कर्मानुसार होना स्वीकार भी कर लिया है। परन्तु खेद है कि अभीतक यह बात कार्य में परिणत नहीं हुई। कठिनता यह है कि किस प्रकार यह कार्यारम्भ किया जावे। इसलिए उपस्थित प्रस्ताव को पास करके हम जगत् को दिखादें कि हम अपने कथनानुसार कार्य भी करते हैं। देखिए कितने ही पुरुष व्यापार और कृषि आदि अन्य वर्णोचित कार्य करते हुए भी ब्राह्मण कहलाते हैं। वही जन्मसिद्ध रूढ़ि प्रयोग चला आता है। जो विवाह करना चाहते हैं वे सोचते हैं कि "हमारी जाति का अच्छा लड़का मिले तो करें" किन्तु हम जाति से अपना मिलान नहीं चाहते अपितु किसी भी वर्ण में उत्पन्न हुए हम एक दूसरे के साथ विवाह सम्बंध कर दें यही विचारणीय है। आर्य परिषद् का कर्तव्य है कि वह विचार करके घोषणा करे कि लड़के लड़कियों के गुण कर्म देखकर विवाह सम्बंध स्थापित किए जावें। अतः प्रार्थना है कि इसके लिए नियम बनाइये। लाहौर में जातिपाति तोड़क सभा स्थापित हुई है। बम्बई में भी कुछ प्रयत्न हो रहा है। इधर यू० पी० भी इस विषय में पश्चात्पद नहीं है। इस प्रकार जब कि पृथक् प्रयत्न प्रारम्भ नहीं हैं तब हमारा कर्त्तव्य है कि सब मिलकर काम करें। इस सम्बंध में स्कीम आदि तब ही तैयार हो सकती है जब हम इस पर परिषद् में अच्छे प्रकार विचार करलें। अपने प्रस्ताव का संशोधन मुझे स्वीकार है। मैं आशा करता हूं कि आप लोग संशोधन प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे जो कि इस प्रकार है--

"यह परिषद् स्थिर करती है कि प्रत्येक आर्य नर नारी अपने गुण कर्म स्वभावानुसार वर्णों का प्रयोग किया करें और गुण कर्म

स्वाभावानुसार है बिना लिहाज जाति बन्धन के विवाह किया करें और इसकी सुगमता के लिए सब आर्यों में परस्पर खान पान का व्यवहार हुआ करे।"

प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए पं० जानकी नाथ शर्मा बोले कि "साहबान्! डा० साहब के द्वारा उपस्थित किए हुए प्रस्ताव का मैं समर्थन करता हूं और दो चार शब्द इसके सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। जिन सज्जनों को बड़े २ शहरों में काम करने का मौका मिला है उनको अच्छी तरह से ज्ञात है कि आज कल क्या दशा है। इसीलिए डा० साहब ने आपका ध्यान आकर्षित किया है। यदि आप काम करने के लिए तैयार हो जांय तो सभी कठिनाइयां दूर हो जाव। दूसरी बात यह कही जाती है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की संज्ञाएं बदलनी चाहिए। यदि हम अछूतों के ब्रह्मचारियों को ऊँची जगह नहीं देते तो स्वामी दयानन्द के आदर्श की हम अवहेलना करते हैं। चूंकि आर्य-समाज अपने आदर्श पर नहीं रहता इसलिए लोग हँसते हैं। वे कहते हैं कि देश देशान्तर में वेद का प्रचार करना चाहते हो पर आपके ही आदमी आपके साथ नहीं हैं। ऋषि ने जिस बात पर बल दिया है उसके पूर्ण करने के लिए बड़ी आवश्यकता है कि हम अपने विवाहादि व्यवहार गुण कर्मानुसार करें। जब तक यह नहीं होगा तब तक देश का कल्याण नहीं। हमारे कार्यों में बहुत से बन्धन आ उपस्थित होते हैं इसलिए यदि आप काम करना चाहते हैं तो जाति पांति तोड़क मंडल बनाइए। यदि सिद्धांत पर काम किया जाय तो कोई कठिनाई नहीं हो सकती अतः डा० साहब के प्रस्ताव का मैं हार्दिक अनुमोदन करता हूं।"

इसके अनन्तर श्री पं० आर्यमुनि जी ने ब्राह्मण शब्द की व्याख्या करते हुए कहा—

"जो वेद जानने वाले हैं वे ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण शब्द ३—४ प्रकार से आता है ब्रह्म के साथ सम्बन्ध रखने वाला ब्राह्मण है और ब्रह्म नाम वेद की आज्ञामी ब्राह्मण है। इसीलिए मेरा वक्तव्य है कि ब्राह्मण शब्द आदर्श रीति से गुणवाचक है। अंग्रेजी यूनीवर्सिटी में वर्षों तक खाक छानकर एम० ए० बी० ए० बनते हैं वे अपनी क़लम से औरों को ब्राह्मण बना देते हैं। एक नई जातिको आप बनाते हैं। उसके दोषका भागी कौन होगा? यदि वास्तविक ब्राह्मण बनाने के लिए अपनी क़लम काफ़ी नहीं है तो कुछ और की भी आवश्यकता है जैसा स्वामी जी ने लिखा है।"

इस प्रस्तावपर चौदह पन्द्रह संशोधन उपस्थित किये गए जिनमें से कुछ यहाँ दिये जाते हैं जिससे परिषद् के सदस्यों की विचार दिशा का ज्ञान हो सके।

१—और इसकी सुगमता के लिए सब वर्णों के आर्य परस्पर खानपान का व्यवहार करें। प्रस्तावक श्री पं० रामबिहारी लाल। इस संशोधन को प्रस्तावक महाशय ने स्वीकार कर लिया था।

२—प्रस्ताव में नर नारी शब्द के आगे—

"अपने २ वर्ण में रहने वाले पूर्ण यत्न करें जो गुण कर्म स्वभावानुसार पिता के वर्ण में नहीं रह सकते वे २४ वें (बालक) और १६ वें (कन्या) वर्ष में वर्ण नियत करावें परन्तु वे उस वर्ण में नहीं रहें विवाह भी अपने २ वर्ण में बिना लिहाज़ जाति बन्धन के होना आवश्यक है।

प्रस्ता०—(अज्ञात)

अनुमो०—पं० बालमुकुन्द

३—"यह परिषद् स्थिर करती है कि प्रत्येक आर्य बिना लिहाज़ आधुनिक जाति बंधन के परस्पर भोजन व्यवहार और गुण कर्म स्वभावानुसार विवाह किया करें। इस उद्देश्य को सफल करने के लिए सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रत्येक प्रांतीय प्रतिनिधि सभाओं में से निम्नलिखित आर्य महाशयों की एक ऐसी आर्य संगठन उपसभा बनाई जाय जो उस क्षेत्र में कार्य करने वाले मंडलों का निर्माण करे।"

प्र०—म० परदूभाई जी

अ०—म० भोलाशंकर जी

४—"और आश्रम व्यवस्था को स्थिर करके उसकी मर्यादा प्रचलित करें।

प्र०—म० लोकनाथ आर्योपदेशक

अ०—पं० मुनीराम

५—"आर्य समाज इस बातको अनुभव करता है कि गुण-कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि प्रचलित वर्ण बहुत मज़बूत बने हुए हैं और उन्हें तोड़े बिना गुणकर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था चलाना असम्भव है अतः यह परिषद् प्रस्ताव पास करती है कि कोई वर्ण न माना जाय, जब वर्तमान जातियां टूट जायं तब गुण कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था का आरम्भ किया जाय।"

प्र०—म० सत्यव्रत जी

अनु०—म० यशपाल जी

६—"यतः शास्त्रोक्त वर्ण व्यवस्था का इस समय अभाव सा ही है अतएव वर्ण-विचार छोड़ कर केवल यह प्रस्ताव उपस्थित है कि जाति बन्धन को तोड़कर होने वाले विवाहों का विरोध न किया जाय तथा परस्पर घृणाके भाव को दूर किया जाय"।

प्रस्तावक—पं० विश्वनाथ जी

अनुमोदक - पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय

७—"सब नरनारी जात पांत तोड कर आर्य वर्ण का प्रयोग किया करें।"

प्र०—म० विश्वबन्धु जी

अ०—पं० भगवद्दत्त जी

८—"सब नर नारी विद्या और धर्म सभा के निर्णयानुसार अपने २ वर्णोंका प्रयोग किया करें।"

प्र०—म० रामगोपाल

अ०—कोई नहीं

मत लिए जाने पर ये सब संशोधन गिर गये। और सभा की बैठक दूसरे दिन ले ११॥ बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

चतुर्थ बैठक ता० १८।२।२५

कार्यारम्भ होने पर कल के ही प्रस्ताव पर विचार शुरू हुआ। इस प्रस्ताव से सम्बन्ध रखने वाले सभी संशोधन अस्वीकृत हो चुके थे अतः मूल प्रस्ताव ही संशोधित रूप में बहु सम्मति से स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव के पक्षमें ४८ तथा विपक्ष में २० सम्मति प्राप्त हुई।

तदनन्तर निम्न लिखित तीसरे प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए स्नातक धर्मदेव जी ने कहा—

"यह परिषद् स्थिर करती है कि आर्यसमाज के प्रवेश के समय अछूतों को गायत्री मन्त्र के साथ यज्ञोपवीत दिया जा सकता है।"

मैंने आपके सन्मुख अपना प्रस्ताव उपस्थित कर दिया है अब आप लोग विचार करें। मैं समझता हूं कि इस पर अधिक भाषण करने की आवश्यकता नहीं है। हमारा विश्वास है कि वेद मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए है—मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है। मुझे इस विषय में प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि आप सब स्वयं विज्ञ हैं। चूंकि वेदों के पढ़ने का अधिकार सबको है अतः गायत्री मन्त्र का उपदेश भी सबको होना चाहिए। मेरी सम्मति में इस विषय में किसी को आपत्ति न होनी चाहिए। इसमें दो बातें हैं एक तो यह कि दलितों को गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया जाय इसमें तो किसी को एतराज़ न होगा। दूसरी बात यह है कि उनको यज्ञोपवीत दिया जाय। यही वेद पढ़ने का चिन्ह है। यह ३ ऋणों को घोषित करता है। प्रत्येक आर्य इन तीन ऋणों से सम्बद्ध है अतः यज्ञोपवीत पवित्र चिन्ह है। यतः यज्ञोपवीत देने में भी कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

इस प्रस्ताव का अनुमोदन पं० आत्माराम जी अमृतसरी ने किया। बहुत वाद विवाद के पश्चात् आज की बैठक दूसरे दिन के लिए स्थगित करदी गई।

पञ्चम बैठक ता० १६ । २ । २५ प्रातः

आज कार्यारम्भ होने पर गत दिवस के ही प्रस्ताव पर विचार प्रारम्भ हुआ। सबसे प्रथम प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी ने श्री बाबू घासीराम जी के निम्न लिखित संशोधन को उपस्थित किया—

"यह परिषद् स्थिर करती है कि प्रत्येक स्त्री पुरुष को चाहे वह किसी जाति वा मत का हो वैदिक धर्म में प्रवेश करते समय गायत्री मन्त्र का उपदेश किया जाय और यदि वह यज्ञोपवीत के योग्य हो तो उसी समय अन्यथा कुछ काल परीक्षा के बाद यज्ञोपवीत दिया जाय।"

यतः यह संशोधन एक स्वतन्त्र प्रस्ताव था अतः इसे संशोधन में सम्मिलित नहीं किया गया।

तदनन्तर श्री पं० परदूभाई जी ने कहा कि प्रस्ताव में 'आर्य समाज में प्रवेश करते समय' की जगह 'आर्य सभासद होने के बाद' लिखा जाय। पं० वंशीधर जी ने इसका अनुमोदन किया। लाला ज्ञानचन्द्र जी तथा प्रो० चन्द्रमणि जी ने संशोधन का विरोध करते हुए मूल प्रस्ताव का समर्थन किया। सम्मति लेने पर संशोधन के पक्ष में दो सम्मति आईं अतः यह संशोधन अस्वीकृत हुआ।

श्री प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी ने अधोनिर्दिष्ट संशोधन पेश किया— "यह परिषद् स्थिर करती है कि दलित जाति के भाइयों को यदि वे द्विजत्व के योग्य हों वैदिक धर्म में प्रवेश के समय गायत्री मन्त्र के साथ यज्ञोपवीत दिया जाना चाहिये।"

स्वामी मङ्गलानन्द जी ने इसका अनुमोदन तथा ला० ज्ञानचन्द्र जी और स्वामी परमानन्द जी ने विरोध किया। सम्मति लेने पर संशोधन के पक्ष में २८ सम्मति हुईं अतः यह संशोधन भी गिर गया।

इतनी कार्यवाही के अनन्तर परिषद् दूसरे दिन के लिए स्थगित करदी उई।

षष्ठ बैठक

आज का कार्यारम्भ होने पर गत दिवस के ही प्रस्ताव पर बहस प्रारम्भ हुई। पं० आत्मानन्द जी ने प्रस्ताव में आर्य शब्द के स्थान पर "आर्येतर" शब्द रखने का संशोधन पेश किया परन्तु अनुमोदन न होने के कारण गिर गया। सभापति जी की आज्ञा से पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने सम्मति लेना प्रारम्भ किया। केवल पं० जातिराम शर्म्मा ही प्रस्ताव के विरोध में थे अतः बहु सम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

इसके अनन्तर विद्यार्यसभा आदि ३ सभाओं का निर्माण विषय प्रविष्ट हुआ। तीनों सभाओं के लिए पृथक् २ तीन उपसमितियां बना दी गईं थीं उन्हीं की रिपोर्ट पर विचार निर्भर था। इस समय तक केवल राजार्यसभा की रिपोर्ट आई थी शेष दो की रिपोर्ट आना बाकी थी अतः निश्चय हुआ कि सब सभाओं की रिपोर्ट आने पर परिषद् विचार करे। इस समय यह विषय स्थगित कर दिया गया।

तत्पश्चात् पं० इन्द्र जी ने छठा प्रस्ताव उपस्थित किया। जो निम्न प्रकार था:-

"यह परिषद् स्थिर करती है कि प्रत्येक व्यक्ति को चाहे हिंदू हो या मुसलमान या अन्य कोई मतावलम्बी, आर्यसमाज में प्रवेश की पद्धति एक ही होनी चाहिए।"

इसपर स्वामी मङ्गलानन्द जी ने प्रश्न किया कि एक मुसलमान की शुद्धि करते हुए यह नियम किस प्रकार लागू हो सकता है ?

पं० इन्द्र जी ने उत्तर देते हुए कहा कि इस विषय में प्रस्ताव कुछ भी प्रकाश नहीं डालता। उसका केवल इतना ही आशय है कि "आर्यसमाज का मेम्बर बनाने में यह विधि काममें लानी चाहिए" पं० इन्द्र जी के उपरोक्त प्रस्ताव का समर्थन करते हुए पं० परदूभाई ने कहा कि अब तक आर्यसमाज में प्रवेश के समय केवल हस्ताक्षर कराये जाते थे जो कि बहुत ही कमी थी। इसीलिए वह विधि तैयार की गई है मेरी सम्मति में ठीक है अतः प्रस्ताव पास करना चाहिए।

प्रस्ताव के विरोध में लाला ज्ञानचन्द्र जी तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने भाषण किया।

इसके अनन्तर प्रो० रामबिहारी जी ने अपना संशोधन उपस्थित करते हुए कहा कि हिंदू सभा भी शुद्धि के प्रस्ताव पास कर रही है तब हमें क्या आवश्यकता है कि हम लोगों की शुद्धि करके उन्हें आर्यसमाज में शामिल करें। आर्यसमाज के लिए तो अपने १० नियम ही पर्याप्त हैं। इसलिए मैं यह संशोधन पेश करता हूं कि:—

"वैदिक धर्म में प्रवेश केवल दश नियमों पर हस्ताक्षर करने से हो परंतु अन्य धर्म वाले जिनका नाम आर्यों से भिन्न हो उनके लिए हस्ताक्षर के अतिरिक्त स्नानादि से शुद्ध होकर अपना नाम बदलना तथा शिखा रखना और हवन करने के पश्चात गायत्री मंत्र आदि का उपदेश लेना आवश्यक है। और हवन उसी विधि से हो जो प्रस्ताव में वर्णित है।"

इस संशोधन का अनुमोदन म० शंकरबख़्श जी ने किया तथा श्री रायठाकुरदत्त धवन ने इसका समर्थन किया।

प्रस्तावक ने इस संशोधन को स्वीकार कर लिया। तथापि वाद विवाद बहुत होता रहा और परिषद् बिना किसी निर्णय पर पहुंचे दो बजे दिन तक के लिए स्थगित हो गई।

सप्तम बैठक ता. २०-२-२५ मध्याह्नोत्तर

मध्याह्नोत्तर में परिषद् के पुनः आरम्भ होने पर निर्वाचित सभापति पं० बालकृष्ण शास्त्री की अनुपस्थिति में स्वामी सत्यानन्द जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया और शुद्धि सम्बन्धी प्रस्ताव पर फिर विचार आरम्भ हुआ।

बाबू वैद्यनाथ प्रसाद तिवारी (सिवान) ने प्रश्न किया कि "क्या जैन और बौद्ध मत के अनुयायियों की शुद्धि में भी यह नियम लागू होगा? प्रस्तावक ने जबाब दिया कि 'हां' हो सकता है।"

इतने में निर्वाचित सभापति महोदय आ गये और उनके आसन ग्रहण कर चुकने पर पं० बुद्धदेव विद्यालंकार न उनसे प्रश्न किया कि क्यों कल यह निश्चय किया गया था कि इस सभा में जो प्रस्ताव पास होंगे वे केवल (Suggestions) शिफ़ारिशी विचार के तौर पर समझे जायँगे। सभापति जी की ओर से पं० इन्द्र जी ने उत्तर दिया कि शताब्द कमेटी में यही प्रश्न किये जाने पर उन्होंने बतलाया है कि इस सभा के सब प्रस्ताव Suggestions के तौर पर समझे जायंगे और उनपर कमेटी पुनर्विचार करेगी।

प्रस्तावक द्वारा सब आक्षेपों का उत्तर दिया जा चुकने पर प्रस्ताव पर सम्मतियां ली गईं और ११ विरुद्ध २० के बहुमत से प्रस्ताव संशोधित रूप में पास हो गया, जो इस प्रकार है:—

"यह परिषद् स्थिर करती है कि प्रत्येक व्यक्ति के चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान या अन्य कोई मतावलम्बी, आर्यसमाज में प्रवेश की पद्धति एक ही होनी चाहिए और वह यह हो:—

"जब एक या एक से अधिक ऐसे सज्जनों का जो वैदिक धर्मी नहीं हैं आर्य समाज में प्रवेश संस्कार हो तो प्रारम्भ में सब लोग (जिनमें प्रवेशार्थी भी सम्मलित होंगे) एकत्रित होकर संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में विहित हवन करें। हवन में सबको स्नानादि से शुद्ध होकर बैठना चाहिए। जिनके शिर पर शिखा न हो उनको शिखा रखकर बैठना चाहिए। हवन की विधि समाप्त होने पर आचार्य प्रवेशार्थियों से उनकी लोक भाषा में निम्नलिखित दो प्रश्न करे:—

"१. क्या तुमने आर्यसमाज के दस नियम जान लिए हैं?

"२. क्या तुम वैदिक धर्म के अनुकूल आचरण करने की प्रतिज्ञा करते हो?

'प्रत्येक प्रश्न का पृथक् पृथक् स्वीकारात्मक उत्तर मिल जाने पर आचार्य अभिलाषी से गायत्री मंत्र का पाठ करावें और उसका अर्थ बतलावें।

"अन्त में 'अग्ने व्रतपते' इत्यादि और 'अग्ने यज्ञे तपः' इत्यादि मन्त्रों से आहुति डालकर पूर्णाहुति की जाय।"

राजार्य सभा पर विचार

इस प्रस्ताव के पास होने के पश्चात् राजार्य सभा की सब कमेटी की रिपोर्ट पर विचार आरम्भ हुआ और इस पर बहुत गरम बहस हुई। रिपोर्ट में लिखा था कि प्रांतिक प्रतिनिधि सभाओं, सार्वदेशिक सभा और स्थानिक आर्य समाजों के आधीन भिन्न भिन्न राजार्य सभाएं बनाई जायं। इस पर यह आशंका उठाई गयी कि ऐसा होने पर गवर्नमेंट और रियासतों के आधीन सेवक आर्यसमाज के मेम्बर न रह सकेंगे। दूसरी आशंका प्रस्ताव के प्रथम शब्द और भूमिका के सम्बन्ध में थी। उसमें यह लिखा था कि यद्यपि वैदिक सिद्धांत के अनुसार राजार्य सभा का काम प्रजा का शासन करना है परन्तु देश की वर्तमान अवस्थाओं में इस पर कार्य नहीं हो सकता इसलिए इसका कार्य आर्यों के राजनैतिक अधिकारों की रक्षा करना तथा वैदिक राजप्रणाली से सिद्धांतों का प्रचार करना है। इस पर बहुत वाद विवाद के पश्चात् महाशय कृष्ण जी के संशोधन से यह स्वीकार हुआ कि यह सभा आर्यसमाज से सर्वथा स्वतंत्र हो। इस पर प्रस्ताव पृथक् शब्दों में पेश किया गया और राजार्य सभा के नियम और संगठन स्वीकृत होगए जो निम्न प्रकार हैं।

नाम—इस सभा का नाम राजार्य सभा होगा।

उद्देश्य—यद्यपि राजार्य सभा का वास्तविक उद्देश्य वैदिक सिद्धांतों के अनुसार प्रजा का शासन करना है, तथापि देश की वर्तमान राजनैतिक दशा को देखते हुए इस समय इस सभा के निम्नलिखित परिमित उद्देश्य रक्खे जायं:—

१. संसार के सम्मुख वैदिक राजनैतिक आदर्शों का रखना।

२. समय तथा आवश्यकतानुसार आर्यों के राजनैतिक हितों के सँरक्षणार्थ यत्न करना।

३. स्वदेश के हित आर्यों के राष्ट्रीय कर्तव्यों का आदेश करना।

४. देश काल और अवस्था के अनुसार यथा सम्भव आर्यों के लिए न्याय विभाग (Arbitration Board) की स्थापना करना।

इस सभा का संगठन (Constitution) निम्न प्रकार होगा:--

१. यह राजार्य सभा आर्यसमाज से स्वतन्त्र होगी।

(२) इस राजार्य सभा के सभासद् तीन प्रकार के होंगे:—

(क) आर्यसमाज के सभासद्

(ख) आर्य संन्यासी

(ग) वे आर्य वैदिक-धर्मी जो आर्यसमाज के सिद्धांतों और राजार्य सभा के उद्देश्यों से सहानुभूति रखते हों। परन्तु ऐसे सभासदों की संख्या (क) और (ख) श्रेणी के सभ्यों के दशांश से ज्यादा न होगी।

(३) ये तीनों सभाएं भी परस्पर स्वतन्त्र रहेंगी।

विद्यार्य सभा पर विचार

इसके पश्चात् विद्यार्य सभा का प्रस्ताव उपस्थित हुआ। उस पर दो संशोधन पेश किए गए। एक तो यह कि प्रस्ताव गुरुकुलों के पास भेजा जावे और उनकी सम्मति मंगायी जावे। दूसरा संशोधन यह था कि ये सब सम्मतियाँ सार्वदेशिक सभा के

पास भेज दी जावें और वह तदनुकूल कार्य करे। दोनों संशोधन गिर गए और विचार जारी रहा।

रात्रि के आठ बजे फिर विचार शुरू हुआ। फिर यह संशोधन पेश हुआ कि यह प्रस्ताव उचित कार्य के लिए सार्वदेशिक सभा के पास भेज दिया जाय यह संशोधन सर्वसम्मति से स्वीकृत होगया।

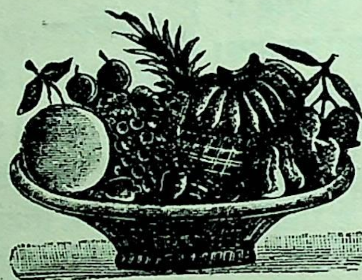
विधवा विवाह की अनुज्ञा

तदनन्तर सातवां प्रस्ताव पं० गङ्गाप्रसाद जी ने उपस्थित किया और मास्टर आत्माराम जी के अनुमोदन पर निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ।

"वर्तमान सामाजिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए यह परिषद् स्थिर करती है कि युवा स्त्री पुरुष आयु की समानता की दृष्टि से यदि पुनर्विवाह करना चाहें तो मना नहीं है।"

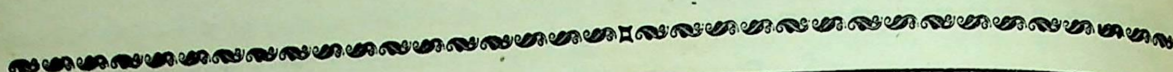
पं० मुनीराम जी ने संशोधन पेश किया कि विधुर का विधवा के साथ ही विवाह हो। नारायण दत्त जी ने संशोधन पेश किया कि विधुर की आयु ४० वर्ष से अधिक न हो। दोनों संशोधनों के साथ प्रस्ताव पास होगया।

सभापति को धन्यवाद देने के पश्चात परिषद् विसर्जित होगई।



आर्य-परिषद के सदस्यों की सूची।

संख्या	नाम सभा जिसके प्रतिनिधि हैं	नाम सदस्य व पता	
१	संयुक्त प्रान्त (२०)	१ पं० घासीराम जी	मेरठ
		२ पं० नन्दकिशोर देव शर्मा	आचार्य गु० वृन्दावन
		३ पं० मदनमोहन जी सेठ	मुन्सिफ काशी
		४ चौ० रामदुलारेलाल जी	वकील फतेहगढ़
		५ पं० गंगाप्रसाद जी एम.ए.	टेहरी गढ़वाल
		६ पं० गंगाप्रसाद जी एम.ए.	हे. मा. D. A. V. H. S. प्रयाग
		७ पं० नरदेव जी शास्त्री	मोहिनी भवन देहरादून
		८ पं० धर्मेन्द्रनाथ जी	मेरठ कालेज
		९ पं० पूर्णचन्द्र जी	वकील आगरा
		१० ,, विश्वम्भरदयाल जी	प्रधान सभा गु० ज्वालापुर
		११ ,, श्रीराम जी	आगरा माईथान
		१२ ,, श्यामसुन्दर लाल जी	वकील मैनपुरी
		१३ ,, गजाधर प्रसाद जी	Govt Auditor
		१४ ,, श्याम सुन्दर लाल जी	वकील मैनपुरी
		१५ ,, मुरारीलाल जी शर्मा	गुरुकुल सिकन्दराबाद
		१६ ,, डा० ज्वालाप्रसाद जी	उपमन्त्री सभा
		१७ म० कुं० हुक्मसिंह जी रईस	आँगई बलदेव मथुरा
		१८ ,, डा० बालकृष्ण जी एम. ए.	कोल्हापुर
		१९ ,, ज्वालाप्रसाद जी	वकील कानपुर
		२० ,, शिवशर्मा जी	उपदेशक यू० पी०
२	पञ्जाब प्रतिनिधि (२०)	२१ श्री०स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ	गुरुदत्त भवन लाहौर
		२२ पं० चमूपति जी	आर्यसेवक
		२३ ,, मुक्तिराम जी उपाध्याय	उपदेशक वि० रावलपिंडी शहर
		२४ ,, बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार	गुरुदत्त भवन लाहौर
		२५ ,, चन्द्रमणि जी ,,	गु० कांगड़ी
		२६ ,, देवशर्मा ,,	,,
		२७ ,, सत्यव्रत सिद्धांतालङ्कार	,,
		२८ प्रो० रामदेव आचार्य	,,



संख्या	नाम सभा जिसके प्रतिनिधि हैं	नाम सदस्य व पता
२	पञ्जाब प्रतिनिधि	२९ पं० विश्वम्भर नाथ जी गु० काँगड़ी
		३० ,, लोकनाथ जी आर्योपदेशक आ० स० मिडदादन खाँ जि० झेलम पञ्जाब
		३१ ,, इन्द्र जी विद्यावाचस्पति सम्पादक 'अर्जुन' देहली
		३२ ,, जगन्नाथ जी निरुक्त रत्न नमक-मण्डी अमृतसर
		३३ पं० परमानन्द जी बी. ए. आर्योपदेशक गु० भवन लाहौर
		३४ डा० केशवदेव शास्त्री M.D. देहली
		३५ पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा वैद्यभूषण अमृतधारा लाहौर
		३६ म० कृष्ण जी बी. ए. सम्पादक 'प्रकाश' लाहौर
		३७ प्रो० शिवदयाल जी एम. ए. मोहनलाल रोड ,,
		३८ ला० काशीराम जी वैद्यरत्न लोहा मंडी लाहौर
		३९ ,, गंगाराम जी I. S. S. 93 Cantt Road Raisina Delhi
		४० ,, रल्लाराम जी मैनेजर गुरु० गुजरांवाला
३	पञ्जाब प्रादेशिक (२०)	४१ म० हँसराज जी बी. ए. प्रधान आ० प्रा० अनारकली लाहौर
		४२ पं० राजाराम जी प्रो० डी. ए. वी. कालेज लाहौर
		४३ ,, भगवद्दत्त जी B. A. Research Scholar D.A.V.C. ,,
		४४ ,, रामगोपाल जी शास्त्री ब्राह्म म० विद्यालय लाहौर
		४५ ,, विश्वबन्धु जी M. A, M. O. L. Shastri आचार्य ,,
		४६ ,, प्रो० चरणदासजी M.A.M.O.L. D.A.V. College ,,
		४७ श्री० स्वामी नित्यानन्द जी तीर्थ ब्राह्म म० विद्यालय ,,
		४८ पं० उदयवीर जी शास्त्री अध्यापक ,, ,,
		४९ पं० रामचन्द्र जी उपदेशक आ० प्रा० सभा ,,
		५० मा० देवीचन्द्र जी M. A. आचार्य D.A.V.H.S. होशियारपुर
		५१ पं० दौलतराम जी शास्त्री संस्कृत अ० ,, ,,
		५२ ,, जातीराम जी सं० अध्यापक हरभगवान मेमोरियल H. S. फीरोजपुर शहर
		५३ ,, मेलाराम जी शास्त्री प्रो० डी.ए.वी. कालेज जालन्धर शहर
		५४ ,, रामचन्द्र जी बी. ए. हैडमास्टर A. S. H. S. अम्बाला शहर
		५५ ,, रामचन्द्र जी एम.ए. प्रो० डी.ए.वी. कालेज जालंधर शहर

संख्या	नाम सभा जिसके प्रतिनिधि हैं	नाम सदस्य व पता
		५६ पं० रंतराम जी वेदरत्न वैद्यभूषण मोगा फीरोज़पुर
		५७ ,, सदानन्द जी शास्त्री संस्कृत अ० डी. ए. वी. हा. स्कू. मुलतान शहर
		५८ ,, तुलसीराम जी शास्त्री अ० गोविन्दसहाय ए. सं. हा. स्कू. हाफ़िज़ाबाद
		५९ ला० रामप्रसाद जी बी.ए. शाहाबाद करनाल
		६० पं० अमीचन्द जी उपदेशक आ० स० हिसार
४	बम्बई	६१ डा० कल्याणदास जी देसाई भूलेश्वर बम्बई
		६२ पं० बालकृष्ण जी शास्त्री अब्राहम फत्तेभाई की चाल सिंधी मल्ली बम्बई
		६३ ,, द्विजेन्द्रनाथ शर्मा १३१ कालबादेवी रोड ,,
		६४ पं० पट्टूभाई शर्मा सम्पादक आर्यप्रकाश बम्बई
		६५ ,, मायाशंकर शर्मा
		६६ सेठ मनीशंकर प्रानशंकर शर्मा ,,
		६७ मिस्टर मोतीभाई लभोगीभाई
		६८ ,, मनीलाल घोबीलाल
		६९ ,, भोलाशंकर जगजीवन पंडित
		७० , नाथूभाई भानाभाई
		७१ ,, बी० डी० वैश्य
		७२ ,, विक्रमलाल हरीलाल
		७३ ,, मानूभाई पातूभाई
५	मध्य प्रदेश	७४ ,, गिरजाशंकर गोवरधन C/o डाह्माभाई फागूभाई
		७५ पं० प्रेमशंकर जी वकील सोहागपुर
		७६ बाबू घनश्यामसिंह जी गुप्त प्लीडर द्रुग
		७७ पं० बालमुकुन्द शर्मा आ० स० दमोह
		७८ म० रामधन जमुनादास जी अकोला
		७९ ,, रामेश्वरराव गायकवाड़ मंत्री आ० स० जबलपुर
		८० ब्र० ब्रह्मानन्द जी आ० हंसापुरी नागपुर
६	अफ्रीका	८१ भाई देवीदयाल जैकब, नैटाल
		८२ पं० ईश्वरदत्त बि० गा०

संख्या	नाम सभा जिसके प्रतिनिधि हैं	नाम सदस्य व पता
		८३ सी० वी० पिल्ले
		८४ जे० सी० धनुष्कोटि वर्मा, आर्यसमाज गुलबर्गा (हैदराबाद दक्षिण)
७	शताब्दी सभा	८५ पं० ठाकुरदत्त वैद्य शास्त्री गुमटी बाज़ार लाहौर
		८६ राय ठाकुरदत्त धवन डेराइस्माइलखां
		८७ ,, रोशनलाल बैरिस्टर लाहौर
		८८ भाई परमानन्द एम. ए. ,,
		८९ म० राममलाल जी बी० ए० लुधियाना
		९० ,, रामकृष्ण जी जालंधर
		९१ ला० देवराज जी जालंधर
		९२ ,, वज़ीरचन्द जी बी० ए० वकील रावलपिंडी
		९३ ,, गुरुदत्तामल प्लीडर लायलपुर
		९४ पं० गंगाराम मुजफ्फरगढ़
		९५ ला० गंगारामजी स्यालकोट
		९६ ,, शादीराम जी पानीपत
		९७ पं० रामचन्द्र अर्थोपदेशक देहली
		९८ ला० ज्ञानचन्द्र जी ठेकेदार ,,
		९९ प्रो० सुधाकर एम० ए० इण्डियन प्रिंटिंग वर्क्स लाहौर
		१०० राय मक्खनलाल जी जम्मू
		१०१ ला० सांईदास डी० ए० वी० कालेज लाहौर
		१०२ ,, दीवानचन्द ,, ,, कानपुर
		१०३ प्रो० देवीदयाल जी ,, ,, ,,
		१०४ भक्त ईश्वरदास जी एम० ए०
		१०५ बाबू व्रजनाथ जी मिश्थल बी० एस० सी० एल० एल० बी० मेरठ
		१०६ ,, गौरीशंकरप्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी० काशी
		१०७ पं० विष्णुभास्कर केलकर एम० ए० रायबरेली
		१०८ डा० श्यामस्वरूप सत्यव्रत बरेली
		१०९ बा० सीताराम जी बी० ए० लखीमपुर
		११० पं० भवानीप्रसाद इन्दौर
		१११ ,, शिवनारायण शुक्ल मु० वृन्दावन
		११२ ,, पद्मसिंह जी नायक नगला (बिजनौर)

संख्या	नाम सभा जिसके प्रतिनिधि हैं	नाम सदस्य व पता
		११३ पं० रामनारायण मिश्र बनारस
		११४ „ महेशप्रसाद हिंदी यूनिवर्सिटी काशी
		११५ „ रामबिहारी शास्त्री एम० ए० कानपुर
		११६ „ रासबिहारी तिवारी लखनऊ
		११७ बा० मेलाराम जी मुट्ठीगंज प्रयाग
		११८ राय आनन्दस्वरूप जी कानपुर
		११९ बा० द्वारिकाप्रसाद जी केम्प बलरामपुर
		१२० पं० शिवचरणलाल सारस्वत C/o आर्यसमाज कालपी
		१२१ पं० क्षेमकरणदास प्रयाग
		१२२ बा० गयाप्रसाद बी० ए० प्रधान आर्यसमाज बहराइच
		१२३ „ लक्ष्मणप्रसाद एम० ए० देहरादून
		१२४ पं० वंशीधर पाठक बरेली
		१२५ ठा० मशालसिंह सोमवंशी हर्दोई
		१२६ श्री अवधबिहारीलाल दीवान धमखां
		१२७ चौ० मुख्तारसिंह वकील मेरठ
		१२८ पं० नाथूराम शंकर हर्दुआगंज
		१२९ राय ज्वालाप्रसाद Supdt. Engineer C/o Secry. Irrigation Dept. प्रयाग
		१३० पं० बृहस्पति वेद शिरोमणि ठाकुरद्वारा
		१३१ „ रुद्रदेव वेद „
		१३२ बा० शिवप्रसाद गुप्त बनारस
		१३३ स्वा० श्रद्धानन्द जी नया बज़ार देहली
		१३४ „ अच्युतानन्द जी लाहौर
		१३५ „ सर्वदानन्द जी
		१३६ „ मुनीश्वरानन्द जी पटना
		१३७ „ सत्यानन्द जी लुधियाना
		१३८ „ स्वतन्त्रानन्द जी C/o कृष्ण बी० ए० लाहौर
		१३९ „ नारायण स्वामी
		१४० „ नरसिंहदेवजी अजमेर (जयपुर)
		१४१ „ परमानन्द जी
		१४२ „ चिदानन्द जी

संख्या	नाम सभा जिसके प्रतिनिधि हैं	नाम सदस्य व पता
		१४३ स्वा० रामानन्द जी नया बाज़ार देहली
		१४४ „ सत्यप्रकाश जी
		१४५ „ अनुभवानन्दजी
		१४६ „ मंगलानन्द पुरी कराची
		१४७ बा० अलखमुरारीलाल बी० ए० एल एल० बी० मुन्सिफ आगरा
		१४८ श्री प्रो० घीसूलाल „ „ „ अजमेर
८	राजस्थान सभा	१४९ पं० मिट्ठनलाल जी Advocate „
		१५० बा० सूरजकरण जी शारदा „
		१५१ „ गौरीशङ्कर जी बैरिस्टर „
		१५२ „ गुलराज जी गोपाल गुप्त „
		१५३ „ मथुराप्रसाद जी „
		१५४ „ जियालाल जी „
		१५५ „ चांदकरण जी शारदा „
		१५६ „ यज्ञदत्त जी „
		१५७ „ जीवाराम जी वकील कोटा
		१५८ „ दुर्गाप्रसाद जी अलवर
		१५९ „ वैजनाथ जी प्रधान आ. समाज बाड़मेर
		१६० रामचन्द्र जी इञ्जीनियर अजमेर
		१६१ प० रामसहाय जी
९	परोपकारिणी सभा	१६२ श्री राजाधिराज सर नाहरसिंह जी बहादुर शाहपुरा
		१६३ „ रायबहादुर मूलराज जी लाहौर
		१६४ „ राय साहब बा० रामबिलास जी शारदा अजमेर
		१६५ „ हरबिलास जी „ „
		१६६ स्वा० शुद्धबोधतीर्थ गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर
		१६७ ठाकुर खुशालीराम डिपुटी. इन्स्पेक्टर स्कूल प्रधान, आर्य समाज-बडवानी
		१६८ पं० भूदेव जी विद्यालङ्कार कानपुर
		१६९ पं० धुरेन्द्र शास्त्री शताब्दी केम्प मथुरा
		१७० पं० भगवान स्वरूप शर्म्मा न्यायभूषण आर्यसमाज धाहर
		१७१ पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
		१७२ „ धर्मदेव जी स्नातक उपदेशक मद्रास

संख्या	नाम सभा जिसके प्रतिनिधि हैं	नाम सदस्य व पता
		१७३ ,, विश्वनाथ जी स्नातक अजमेर
		१७४ प० प्रियरत्न जी विद्यार्थी काशी
		१७५ श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी महाराज काशी
		१७६ श्री० म० शेरसिंह जी मुजफ्फरनगर
		१७७ श्री स्वा० कृष्णानन्द जी मथुरा
		१७८ आर्य मुनि काशी
		१७९ श्री० प० चिदानन्द पाणिनीय गुरुकुल वृन्दावन
		१८०-१९६ बिहार उपप्रतिनिधि सभा के प्रतिनिधि
		१९७-१९८ आर्य स्वराज्य सभा लाहौर के प्रतिनिधि
		१९९ श्री स्वा० ब्रह्मानन्द जी
		२०० श्री० पं० विश्वनाथ जी आ० प्र० सभा पञ्जाब
		२०१ श्री मा० आत्माराम जी अमृतसरी
		२०२ श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी
		२०३ ,, पं० सुरेन्द्रनाथ मिश्र
		२०४ ,, म० कामताप्रसाद जी } हैदराबाद दक्खिन के प्रतिनिधि
		२०५ ,, गयाप्रसाद जी
		२०६ ,, ,, चन्दूलाल जी
		२०७ पं० शंकरदेव जी
		२०८ ,, ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु
		२०९ ,, यशपाल जी
		२१० श्री डाक्टर श्यामस्वरूप जी
		२११ श्री रामचन्द्र त्रिपाठी बस्ती
		२१२ श्री कोठारी जालिमसिंह उदयपुर
		२१३ श्री पं० युधिष्ठिर जी
		२१४ श्री म० दयालजी भीमभाई देसाई गुरुकुल सूपा बम्बई
		२१५ श्री० पं० बंशीधर पाठक
		२१६ श्री० म० रामचन्द्र जी
		२१७ ,, म० गुलाबचन्द जी चौधरी
		२१८ ,, म० आत्मानन्द जी

संख्या	नाम सभा जिसके प्रतिनिधि हैं	नाम सदस्य व पता
		२१९ ,, पं० युधिष्ठिर जी
१०	सिंध प्रदेश	२२० ,, म० ताराचन्द गज्जर
		२२१ ,, स्वामी कृष्णानन्द जी
		२२२ ,, पं० बृहस्पति जी
		२२३ ,, ,, जीवतराम जी
		२२४ ,, म० ज़ालिमसिंह जी
११	मद्रास प्रांत	२२५ ,, म० जम्बूनाथ जी
		२२६ ,, म० सोमयाजुल जी
		२२७ ,, स्वा० ओंकार सच्चिदानन्द जी
		२२८ ,, स्वा० विश्वेश्वरानन्द जी
		२२९ ,, प० जानकीनाथ शर्मा जी
		२३० ,, प० रामचन्दर जी
		२३१ ,, प० देवेन्द्र जी
		२३२ ,, म० पी० वी० गुप्ता जी बम्बई प्रांत
		२३३ ,, म० कामताप्रसाद जी हैदराबाद दखिन
		२३४ ,, म० सुरेन्द्रनाथ जी
		२३५ ,, प० विश्वनाथ जी उपदेशक
		२३६ ,, प० आर्यमुनि जी
		२३७ ,, प० शेरसिंह जी उपदेशक
		२३८ ,, म० देवीदयाल जी नैटाल
		२३९ ,, म० बेचनदेव जी मारीशस
		२४० ,, म० नारायणदत्त जी देहली
		२४१ ,, प० भगवान स्वरूप शर्मा जी धारूर हैदराबाद, दखिन
		२४२ ,, म० ईश्वरदास जी इंस्पेक्टर मांडले
		२४३ ,, म० लक्ष्मण दास जी ,,
		२४४ ,, पं० वीरेश्वर स्नातक जी ,,

संख्या	नाम सभा जिसके प्रतिनिधि हैं	नाम सदस्य व पता
१२	बिहार बंगाल प्रतिनिधि सभा	२४५ श्री० डा० गणेशदास जी मांडले
		२४६ ,, प० धर्मदेव जी स्नातक
		२४७ ,, म० ईश्वरदास जी पिंडदादनखान
		२४८ म० वैद्यनाथ जी B. A. प्रधान बिहार प्र० नि० स०
		२४९ म० रामरक्ष जी सांख्यरत्न
		२५० बा० देवधारीसिंह जी उ० प्र० बिहार प्रान्त
		२५१ पं० रामचन्द्र जी द्विवेदी वैद्यनाथ
		२५२ पं० हरिनारायण जी शर्मा मंत्री बिहार प्रांत
		२५३ बा० शङ्करबक्षप्रसादसिंह तालुकेदार
		२५४ पं० वेदव्रत जी वानप्रस्थी
		२५५ पं० गंगादत्त जी शर्मा
		२५६ ,, बन्शीधर जी विद्यालङ्कार
		२५७ ,, शङ्करनाथ जी
		२५८ ,, सुधन्वा जी विद्यालङ्कार
		२५९ ,, जयदेव जी शर्मा विद्यालङ्कार
		२६० ,, नन्दकिशोर जी विद्यालङ्कार
		२६१ ,, अयोध्याप्रसाद जी
		२६२ बा० हरगोविन्द जी गुप्त
		२६३ पं० मधुसुदन जी वन्द्योपाध्याय
		२६४ बा० तुलसीदास जी



आठवाँ परिच्छेद

शताब्दि महोत्सव के मुख्य २ व्याख्यानादि

धर्म सम्मेलन धर्म परिषद्, आर्य सम्मेलन आदि के अतिरिक्त शताब्दि महोत्सव में आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेताओं, व्याख्याताओं, उपदेशकों और सन्यासियों के व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया था। ये व्याख्यान प्रायः प्रातःकाल मुख्य पण्डाल में हुआ करते थे। इस परिच्छेद में इन्हीं व्याख्यानों की संक्षिप्त रिपोर्ट उस क्रम से दी जायगी जिस क्रम से वे महोत्सव में दिए गए थे।

शताब्दि महोत्सव के प्रथम दिन (१५।२।२५) ही यज्ञ प्रार्थना भजन आदि के पश्चात् सब से पहिला व्याख्यान मुख्य पंडाल में स्वामी अच्युतानंद जी का हुआ था। उस दिन उत्सव का आरम्भ ही होने के कारण मुख्य पंडाल में उपस्थिति खूब थी और श्रोताओं में उत्साह भी विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता था। स्वामी अच्युतानन्द जी का व्याख्यान प्रातःकाल आठ बजे शुरू हुआ।

स्वामी अच्युतानन्द जी का वेदोपदेश

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्।
अर्जः पुत्रं भरतं सुपृदानुं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्॥ ऋ० १।७।३।३

यह मंत्र पढ़ने के बाद स्वामी जी ने कहा कि ये कैसे प्रिय शब्द हैं! ये सिखाते हैं कि परस्पर प्रेम करो, वैर विरोध मत करो। आपस में मित्रता का व्यवहार करो एवं शांति से, भगवान् जो सबको उत्पन्न करने वाला है, जिसने हमारा पालन पोषण किया है और जितने जीव उत्पन्न होते जायंगे उन सब का पालन पोषण करेगा, ऐसा जो परमात्मा है, उसका गुणानुवाद करो। वही परमात्मा धन वैभव, एवं आरोग्यता का देने वाला है। "आप के धर्म की रक्षा हो और वृद्धि हो" ऐसा ऋग्वेद, संहिता का मन्त्र बतलाता है। यह कहता है कि हज़ारों मिलकर परमात्मा की स्तुति करें। हमारे ऋषि मुनि एकान्त में बैठकर विचार किया करते थे तथा वन में बैठकर शांति पूर्वक ईश-चिन्तन किया करते थे। इसीलिए वेद में लिखा है कि १००-५० भी इकट्ठे होकर परमात्मा का भजन किया करें! निष्क व्यापक भगवान का नाम है आप उसके कर्मों को देखें। जिस भगवान् ने चन्द्र सूर्य को स्थिर किया उसकी आराधना अवश्य होनी चाहिए जब हमारा परमात्मा से प्रेम हो जाय तब ही हमारा कल्याण है। सामवेद में लिखा है कि यदि सच्चा लीडर है तो केवल परमात्मा है और वही प्रभु सच्चा अर्थ बतलाने वाला है। इस युग में यदि कोई ऋषि हुआ तो वह स्वामी दयानन्द था (हर्षध्वनि) सच्चे वेद का प्रकाश करने वाला दयानन्द है। वही हमारा लीडर है कुछ वर्ष पहिले वेदों का अर्थ समझना कठिन था परन्तु स्वामी दयानन्द वेद का अर्थ जानने वाला था और उसी ने प्रकाश डाला है कि आज हम वेदों के अर्थ को धड़ाधड़ समझ रहे हैं। मनुष्य कैसा ही संयमी हो, परन्तु वह चलायमान हो जाता है। बौम्बे मेल (Bombay Mail)

भी १० मिनट लेट हो जाती है परन्तु परमात्मा की घड़ी कभी लेट नहीं हो सकती है। वेदों को पढ़कर परमात्मा की भक्ति किया करो। सारे कष्टों को दूर करने वाला वही एक मात्र परमात्मा है। हम इतने दुःखी हैं तो अवश्य ही स्वदुःख-निवारणार्थ हमें परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए। यदि हम सुखी हैं तब भी परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए।

अतः वेद भगवान् ने लिखा है कि उस भगवान के मित्र बन जाओ। जिस प्रकार मित्र रक्षा करता है उसी प्रकार वह परमात्मा भी तुम्हारी रक्षा करेगा।

धर्म और धन क्या है? ज्ञान धर्म है। आचरण धन है। इसलिए यदि आप सब प्रकार के धन चाहते हैं तो स्वामी जी के आदेश का पालन करें। ब्रह्मचर्य्य पालन करें जिससे आपके शरीर में बल आये और आप अपनी रक्षा कर सकें। यह न हो कि हमारे भाइयों और बहिनों का अपमान होता रहे और हम उसे देखते रहें। ब्रह्मचर्य के साधन से परमात्मा भी प्राप्त हो सकता है। भगवान ने कहा है "तुम ब्रह्मचारी बनो जिससे यदि घर में मृत्यु भी आए तो तुम उसको बाहर निकालने में समर्थ हो।" इसलिए बल के लिए परमात्मा की प्रार्थना करो। वह परमात्मा सर्वशक्तिमान् है। वही सब कुछ देने वाला है। वेद में लिखा है कि वेद को सुनकर परमात्मा बड़ा प्रसन्न होता है। यदि आप दुष्कर्म करेंगे तो वह अप्रसन्न होगा। आप जानते हैं कि यदि पुत्र, पुत्री सुकर्म्म करते हैं तो माता पिता प्रसन्न होते हैं। विपरीत इसके कुकर्म करने पर उन्हें दुःख होता है। उसी प्रकार माता पिता परमात्मा है। हमारे यहां लिखा है कि परमात्मा ही माता और पिता है। ईसाइयों के यहां परमात्मा को माता नहीं मानते हैं। परमात्मा के ज्ञान से हमारा लाभ हो सकता है। इसलिए भगवान की भक्ति करके उसको प्राप्त करो। इसीलिए हमारे पूज्यपाद स्वामी जी ने कहा है कि वेद पढ़ना और पढ़ाना हमारा धर्म है। समस्त संसार में वेदों का प्रचार करने के लिए हमको भरसक प्रयत्न करना चाहिए। हम समस्त संसार के रक्षक हों न कि भक्षक। सज्जनो! इसलिए नित्य प्रति वेद पाठ किया करो। मनुष्य प्रार्थना करता है कि उसके सब संताप दूर हो जाँय। असली तापों को दूर करने वाला वेद है। अतः वेद मन्त्रों को पढो तथा दूसरों को पढ़ाओ, यही हमारा मुख्य धर्म है। यह आप का धर्म है कि वेदों को पढ़कर, उन्हीं के अनुकूल अपना वैदिक जीवन बनावें इसी में आप का हित है। वेद का कभी भी परित्याग न करो। यदि ऐसा करोगे तो अशुद्ध हो जाओगे। लिखा है कि यज्ञ, तप, दान आदि जितने कर्म हैं उनमें वेद का ज्ञान सब से प्रधान है। अतः वेद का प्रचार करो। सब से मुख्य बात यह है कि इसका अर्थ हमको ज्ञात हो जाना चाहिए। ज्ञान सर्वोत्तम है। अतः ज्ञान की अधिक महिमा लिखी है। ऐसा न हो कि कर्म करते २ ज्ञानहीन हो जाँय। भाइयो! जो वेद जानेगा वही परमात्मा को समझ सकेगा। इसलिए महर्षि ने कहा है कि वेद का पढ़ना पढ़ाना आर्यों का मुख्य धर्म है। इस पर उन्होंने अधिक ज़ोर दिया है। सच्चा धर्मात्मा वही है जो वेद का पठन पाठन करता है।

हिंदू जाति मर रही है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं हो रहा, कभी पुत्र तो कभी पुत्रियों को कष्ट होता है। आप चाहें तो संयम से १०० वर्ष तक जी सकते हैं। परन्तु आज सब ६०-७० की आयु के बाद ही खटियों पर पड़ जाते हैं। बाल विवाह हो रहा है। वृद्ध विवाह हो रहा है। बहुत सी बातें हैं। मैं क्या कहूं? इसलिए आप सच्चे आर्यसमाजी बन कर समाज की महिमा बढ़ाते हुए इन सब बातों पर अमल करें।

यह शताब्दी स्वामी दयानन्द का स्मारक है। उनका स्मारक क्या हो सकता है? सन्यासी लोग बैठकर काम करें। कन्या पाठशालाएं स्थापित की जाँय। वेद पढें तथा दूसरों को पढावें। सन्यासा-

धर्मों को स्थापित करना सन्यासियों का धर्म है। इसलिए लिखा है कि वेद का धर्म परम धर्म है। स्वामी जी ने कहा है कि कोई आश्रम बुरा नहीं है। अत: भाइयो! प्रतिदिन वेदाध्ययन किया करो। आर्यसमाज में प्रतिदिवस वेद का पाठ होता रहे। जिस प्रकार भोजन करने की प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार वेद पाठ करने की भी प्रतिदिन आवश्यकता पड़नी चाहिए। जहां २ इस प्रकार की सँस्थाएं विद्यमान हैं वहां २ वेद पढने वाले नियुक्त किए जांय। वेद में लिखा है "हे परमात्मा! हमारे समीप जो महात्मा रहें उनको धैर्य प्रदान करो। उनका दैनिक सत्संग परमावश्यक है, नित्य प्रति वेद पाठ होना चाहिए।" सांसारिक काय सम्पादन करते हुए भी आप लोग इसके लिए १ घंटा प्रति दिन निकाल लें। मैं अन्त में कहूंगा कि जितने आर्य पुरुष एवं आर्य ललनाएं इस समय यहां उपस्थित हैं वे सब प्रतिज्ञा करें कि हम वेद पढा करेंगे तथा अपने जीवन को वैदिक जीवन बनाएंगे। अपना जीवन पवित्र बनायेंगे और आर्य जाति की रक्षा करेंगे। मैं उस परम शक्तिशाली परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि हे परमात्मन्! आप इन आर्य पुत्र पुत्रियों को शक्ति दें, बल दें, एवं सब को सुखी करें। ओ३म् शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

(स्वामी दयानन्द की जय! ऋषि दयानन्द की जय)

स्वामी जी के व्याख्यान के बाद सामवेद गायन होकर पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार का निम्न प्रकार भाषण हुआ।

पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार का भाषण

सभ्य महोदयो, देवियो तथा भद्र पुरुषो!

मैं आज अपने हृदय के अन्दर उठने वाले भावों का वर्णन नहीं कर सकता। जिस विषय पर मुझे कहना है उसे ही कहूंगा। आज एक बृहत् यज्ञ का आरम्भ होता है। इस लिए यज्ञ पर महर्षि ने जो उपकार किया है उसे ही मुझे वर्णन करना है। आज सभाओं में विचार किया जाता है कि स्कूलों और कालिजों की शिक्षा-प्रणाली को बदल दिया जाय क्योंकि इसने हमारी सन्तानों को ईसाई बना दिया। परन्तु यह हमाराही दोष है कि हमने उनको शिक्षा नहीं दी और फिर उनको दूसरों ने जैसा सिखाया वे उसे ही मान गये। यदि झूठ बातको भी सब चिल्लाकर दोहराने लग जांय तो सब उस पर विश्वास करने लग जाते हैं। यदि चार आदमी बैठकर किसीको पागल बनाना चाहते हैं तो वे चार कोनों पर बैठ जाते हैं और उसे पागल बना देते हैं। कहते हैं कि एक बार लडकों ने सलाह की कि स्कूल से छुट्टी ले लेवें। जब मास्टर साहिब आये, उन्होंने कहा, "क्यों मास्टर साहिब! आज चेहरा क्यों उदासहै?" दूसरे ने कहा, "घरमें कुशल तो है न?" इसी प्रकार तीसरे चौथे ने कहा और मास्टर साहिब ने तङ्ग आकर छुट्टी देदी। इसी तरह यदि हम लोग किसी को पागल बनाना चाहें तो उसे पागल बना सकते हैं। भारतवर्ष के नव-युवकों के साथ ऐसा ही व्यवहार हुआ। पहिले ही दिन उन्होंने पढ़ा कि प्राचीन लोग यज्ञ किया करते थे और उनमें पशुओं की बलि देते थे। और वही भाव लेकर वे कहते हैं कि हम अपराधी कैसे? तो क्या युरोप के विद्वान् इनके अपराधी थे जिन्होंने वेद के आशय को पढ़ाया? युरोपियन विद्वानों ने वेद का अनुसन्धान करके पढ़ा था। उन्होंने वेद का उल्टा अर्थ लगाया कैसे? आप अपने भाष्यों को देखिये। उनका अँग्रेजों ने अनुवाद किया और हमारे बच्चों ने उसे पढ़ा। परंतु ऋषि ने कैसा परिवर्तन किया है? वह हमको कैसी स्वच्छ अवस्था में लाया है? आज मैं उसी का वर्णन करता हूं।

कैसी घोर अवस्था हो गई थी! युरोपियन विद्वानों का क्या दोष है? ब्रह्मवैवर्त पुराण को उठा कर देखिये, कहने में सङ्कोच होता है, परन्तु सङ्कोच करना गुरु ने सिखाया नहीं। एक राजा

के यज्ञ में करोड़ गौएं मारी गईं। यह ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है। यह तो यज्ञ के नाम पर होता था। इस लिए आज कहते हैं कि हरिद्वार में गङ्गा पलट गई। अधर्म की जो घटायें घिरी थीं उनको महर्षि ने छिन्न भिन्न कर दिया। आज मैं बतलाऊंगा कि वेदों का जो अर्थ किया गया है वह अशुद्ध है। उनके ठीक अर्थों को समयाभाव के कारण मैं नहीं बतला सकूंगा।

सबसे पहले मैं यह बतलाना चाहता हूं कि वेद का अर्थ कुछ का कुछ हुआ। आज वेद की मीमांसा करने का दिन है। इस लिए ऋषि दयानन्द ने यज्ञ की क्या विधि बतलाई है उसका वर्णन किये बिना नहीं रहा जा सकता। मैं जब छोटा बालक था तब मैं गुरुकुल में पढ़ने गया। मैं यू० पी० का रहने वाला था और मेरे सङ्गी साथी पञ्जाब के रहने वाले थे। मैं ने कहा, 'भाइयो! आज तो कुकड़ी चबाने को मन करता है'' । जितने पञ्जाबी साथी थे सब के सब यह सुनकर मुझे लिपट गये और कहने लगे, ये क्या अनर्थ है? तुम कहां पैदा हुए हो कि यह भ्रष्ट शब्द मुख से निकाल रहे हो। मैं ने कहा-"आज कल कुकड़ी का मौसम है। इसमें आश्चर्य ही क्या है?" पञ्जाबी भाई बड़े रुष्ट हुए। परन्तु जब मैंने यह बतलाया कि यह कुकड़ी का मौसम है उसमें दाने होते हैं इत्यादि। तब वे समझे कि छल्ली को कुकड़ा कहते हैं। इसी तरह एक यू० पी० वाला पञ्जाब में चला गया। कोई बैंगन बेचता था। यू० पी० वाले ने पूछा यह क्या है? पञ्जाबी ने उत्तर दिया 'बताऊँ' । इस पर यू० पी० वाले ने कहा "बताओ भाई बताओ। ऐसे हो ३, ४ बार होता रहा। एक शब्द के कई अर्थ होते हैं। वही "कुकड़ी और बताऊँ" का मसला वेदों के साथ हुआ है। और उस अनर्थ को लोगों ने बढ़ाया। ऋग्वेद में लिखा है "गौओं के चमड़े को अलग किया और सब को उसमें पीसा और सारा अन्न पीसा, एवं उसके भीतर उसके बच्चों को मिला दिया और धनुषबाण लेकर रखवाली की और बड़े मज़बूत हो गये।" यह मन्त्र पढ़ा गया और कहा गया कि प्राचीन लोग शिकार करते थे। भाइयो! जब तक कुकड़ी का अर्थ नहीं समझे थे वह मुर्गी था, परन्तु जब उसका भेद बतलाया गया तो उसका अर्थ कुछ और हो गया। गो शब्द का अर्थ वाणी, पृथ्वी और गाय होता है। अच्छा भाई यहां गाय के स्थान में पृथ्वी रखिये। वर्षा ऋतु में जल पड़ने से मिट्टी जम गई। हल लाकर उसे जोता तो उसके ढेले ढेले अलग हो गए। खेती पैदा हुई। उसे खाया पिया तो हट्टे कट्टे हो गये। यह एक नमूना है। एक दूसरा नमूना आप को बतलाता हूं। दूसरे नमूने में रन्तिदेव के नाम पर दो हजार गौओं का वध हुआ था। अब ज़रा इतिहास की ओर चलें। जैसे गो शब्द के साथ अनर्थ हुआ वैसे ही बहुत से शब्दों के साथ हुआ है। अब 'मांस' शब्द को ले लीजिये। संस्कृत में मांस शब्द के भी अनेक अर्थ हैं। उदाहरणार्थ, फल के छिलके को त्वचा कहते हैं। हड्डी को गुठली कहते हैं और गुदे को मज्जा कहते हैं। आम का फल देखने से उसमें केसर, मांस, मज्जा और गुठली सब अलग २ दिखलाई पड़ते हैं। अथर्ववेद में रोहिन औषधि का वर्णन किया गया है। हमारी चर्बी से तुम्हारी चर्बी ठीक हो, माँस से मांस ठीक हो और रुधिर से रुधिर ठीक हो। इसने बड़ा भ्रम डाला है। यदि आप किसी देशी रियासत में चले जांय और किसी व्यक्ति से चार आने का गोश्त मोल लाने के लिए कहें तो प्रश्न होगा कि किस पशु का गोश्त लाना चाहिए, परंतु उससे गो मांस नहीं समझा जायगा। यदि बृटिश राज्य में चले जायँ तो गो मांस भी समझा जायगा। वहां (देशी राज्य में) गोहत्या क़ानून की दृष्टि से निषिद्ध है। इसी प्रकार वेद की आज्ञा है कि जो मनुष्य, मनुष्य को मारकर अपना शरीर पुष्ट करे अथवा घोड़े को वा किसी अन्य पशु को वा गौ को जिसे वह 'गौमाता' के नाम से पुकारता है, मार कर व्य-

वहार करे, यहाँ तक कि वह गौ दूध को अनुचित रूपेण प्रयोग में लाये तो राजा को अधिकार है कि उसे प्राण दंड दे दे। जिस प्रकार देशी राज्यों में 'मांस' शब्द से गोमांस का बोध नहीं होता उसी प्रकार वेद में 'मांस' शब्द का अर्थ गोश्त नहीं समझा जा सकता। हमारे भाइयों का कथन है कि वेद मांस खाने का निषेध करते हैं परंतु यज्ञ कार्यों में उसका विधान करते हैं।

अब मैं यह दिखलाता हूं कि यज्ञ में भी मांस की आज्ञा नहीं दी गई है। अथर्व वेद में एक मंत्र आता है जिसका अर्थ है, कि वह यजमान बडा मूर्ख है जो के आशय को न समझ कर गो, कुत्ते आदि पशुओं के अङ्ग काट कर यज्ञ में डालता है। इसी मन्त्र का अनुवाद ग्रीफिथ साहिब ने अंग्रेजी में किया है। वे कहते हैं कि इस मंत्र ने बड़ा गड़-बड़ मचाया है। और इसी लिए उन्होंने टिप्पणी में लिख दिया है कि यहां वेद का अर्थ अस्पष्ट है।

मनु महाराज भी मांस का निषेध करते हैं। वस्तुतः हिंसा की कहीं भी आज्ञा नहीं दी गयी है। वेद में यह किसी स्थान पर नहीं बतलाया गया है कि मछली के मांस को पका कर यज्ञ में डालो। प्रत्युत यह कहा गया है कि उसमें उत्तमोत्तम अन्न डाला करो। आज ऋषि दयानन्द पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि ऋषि ने यह नई लहर कहाँ से चला दी?

अब मैं उन वेदमन्त्रों को बतलाना चाहता हूं जिनके आधार पर लोगों ने पशु-हिंसा करना आरम्भ किया। वेद में लिखा है कि गौ को यज्ञ में आहुति दो। इस से यज्ञ में गो-हिंसा का प्रतिपादन मान लिया गया। परन्तु जिस मन्त्र को पढ़ कर आहुति दी जाती है उसपर किसी ने ध्यान नहीं दिया। उस मन्त्र में बतलाया गया है कि वह गाय शत्रुओं का नाश करने वाली है। उससे अन्न भी उत्पन्न होता है। वह वरुण की जिह्वा भी है। भाइयो! जब कुकड़ों का प्रभाव बतलाया गया था तो वह साफ़ ज्ञात हो गया था। उसी प्रकार जब आपने इस गाय का बयान पढ लिया कि इस में शत्रुओं के मुंह बन्द करने की शक्ति है, यह वरुण की जिह्वा है एवं वरुण के पेट में घुसी हुई है यही नहीं इसकी महिमा पृथ्वी और आकाश में व्याप्त है, इस से सब प्रकार के पौदे उत्पन्न होते हैं, तब इन सब बातों से प्रकट है कि इस प्रकार की गाय कोई साधारण गाय नहीं है। मुझे लम्बी यात्रा अल्प समय में ही समाप्त करनी है, नहीं तो मैं इस सूक्त की पूरी व्याख्या सुनाता जिसको सुन कर आप का अश्रुपात हो जाता।

यह गाय वन्ध्या गाय है। फिर वेद ने किस प्रयोजन से यह कहा कि वन्ध्या गाय राजा का ख़ज़ाना है? इस गौ में शक्ति नहीं कि शत्रुओं का मुख बन्द कर सके, परन्तु राजा के ख़ज़ाने में मुख बन्द करने की शक्ति है। इस गौ के पेट में वरुण घुसे हुए हैं तथा राजा के ख़ज़ाने का अध्यक्ष भी ब्राह्मण ही हो सकता है। अब प्रश्न यह है कि उसे राजा का कोष न कह कर वन्ध्या गौ क्यों कहते हैं? आइये, वेद के गौरव को देखिये कि उस में कैसा विलक्षण, कितना गहरा उपदेश भरा हुआ है। वेद कहता है "हे राजन्! तुम्हारे हाथ में प्रजा का ख़ज़ाना है परन्तु यह तुम्हारे पास धरोहर रूप में है। तुम इसके स्वामी नहीं।" देखिये, वह गाय कैसी है? लिखा है वह गाय वन्ध्या है। दूध नहीं देती है परन्तु सहस्रों दुहने वाले खड़े हैं। कैसी सुन्दर बातें हैं! हे राजन्! तुम सहस्रों प्रजाओं से टैक्स ले कर ख़ज़ाना बनाते हो, परन्तु तुम्हारे लिये तो वह वन्ध्या गौ है। यदि तुम इसमें से हिस्सा लोगे तो तुम्हें वैसा ही पाप होगा जैसा गौ का अङ्ग काटने से होता है (हर्षध्वनि और तालियां)। इस से उत्तम क्या उपदेश दिया जा सकता है? यह गौ राजा का ख़ज़ाना है परन्तु हे राजन्! तुम्हारे लिये नहीं। तुम्हारे लिये तो गौ वन्ध्या है।

बन्ध्या गाय के अन्दर से दूध लेने का धर्म भी नहीं होता। अतः प्रजा का जो धन है, वह प्रजा के लिये है।

आप को एक और छोटी सी बात सुना दूं। उसी सूक्त में एक मन्त्र आता है और उसी मन्त्र के आधार पर कहा जाता है कि गो-हत्या करनी चाहिए यह सिद्ध हो गया। इस मन्त्र में लिखा है कि "हे गौ, जो तेरा पकाने वाला है" इत्यादि। अब यहाँ 'पकाने' का शब्द आ गया तो यही शब्द पकड़ लिया। परन्तु इसी मन्त्र में आगे लिखा है. "डरो मत, हिफ़ाज़त करो।" ये सब ऐसी ही बातें हैं जैसे कोई मिरासी बैठा था; उस से मौलवी साहिब ने कहा—"नेमाज़ पढ़ो"। उस ने उत्तर दिया, कुरान शरीफ़ में नहीं लिखा है और उसने निकाल कर भी दिखला दिया। उसमें लिखा था—"मत पढ़ो कुरान शरीफ़"। जब मौलवी साहिब ने सारे वाक्य को पढ़ कर सुनाया—'मत पढ़ो कुरान शरीफ़ जब नापाक हो," तब मिरासी ने कहा—"तो क्या सम्पूर्ण कुरान मेरे ही लिये है?" ये लोग यह नहीं आगे पढ़ते कि हे देवि! डरो मत! तुम्हारी रक्षा करें!

वेद में यह बतलाया गया है कि राजा की रक्षा के लिये तीन प्रकार के अफ़सर होने चाहियें। सबसे पहिला 'समीता' वह है जो ख़जाने की आय को देखता है। वह देखता है कि राज्य के ख़ज़ाने में जो आता है उसमें एक पैसा भी छोटे को सता कर तो नहीं आता। अतः उसका नाम है 'समीता'। दूसरा 'पकीता'। वह रुपये का हिसाब रखता है। अब "पकाने" का शब्द आया। उनसे पूछना चाहिए कि किसी दिन गुरु जी आप से प्रसन्न हो जायँ और कहें कि तुम बड़े पक्के हो, तो क्या आप हांडी में पक गये? तो 'पकीता' देखता है कि जो कुछ आया, वह हिसाब में आया कि नहीं? यह देखना उसका धर्म है। तीसरा है 'नेता' जो गाइड करता है। मन्त्र में लिखा है कि वे तीनों ब्राह्मण हैं। जब यह बन्ध्या गौ उत्पन्न हुई तब संसार थर २ कांप उठा परन्तु ब्राह्मण लोग नहीं कांपे। उन्होंने इस दौलत को चकनाचूर कर दिया। इस के दो लातें होती हैं। एक लात आने के समय कमर में देती है और एक लात विदा होते समय गुद्दी पर मारती है। इसीलिये इसका नाम दौलत है। अरे लोगो! अपने को लक्ष्मीपात्र मत कहो। मदांध हाथियों को कमल की नाल से नहीं बांध सकते।

संसार में कोई बन्धन ऐसा नहीं था जिस ने ऋषियों पर आक्रमण न किया हो। परन्तु ऋषि ब्राह्मणों की शक्ति की समानता कोई नहीं कर सका। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की शक्तियों को देखिये। क्षत्रियों ने ऐसी शक्ति दिखलाई जिसको संसार याद करेगा। यह बिखरा हुआ भारतवर्ष, सहस्रों टुकड़ों में बिखरा हुआ भारत, कृष्ण का चतुर नीति से एक सूत्रमें बँधा हुआ दीख पड़ता है। (हर्षध्वनि) क्षत्रियों की शक्ति का यही नियम है। क्षत्रिय इस सिद्धांत पर चलते हैं कि 'जैसा राजा होगा वैसी ही प्रजा होगी।" परन्तु ब्राह्मणों का मन्त्र इस से भिन्न है। "यदि राजा पापात्मा होगा तो धर्मात्मा प्रजा धर्म कर सकती है। पापी राजा, प्रजा पर एक क्षण भी राज्य नहीं कर सकता है।' यह है ब्राह्मणशक्ति! वे कहते हैं कि जिस दिन प्रजा धर्मात्मा होगी, उसी दिन राजा को धर्मात्मा हो कर चलना पड़ेगा। ५ हजार वर्ष पहले मुरली के अन्दर वह बात नहीं थी, जो आज हजारों वर्षों के बाद उस ऋषि-वीणा में थी, जिस ने भारत को गुञ्जायमान कर दिया। बोलो ऋषि दयानन्द की जय!

कुंवर चांदकरण शारदा का भाषण

इसके पश्चात् अजमेर के कुंवर चांदकरणजी शारदा का निम्न प्रकार भाषण हुआः-

माननीय उपस्थित सज्जनो! मेरी माताओ बहिनो और प्यारे भाइयो!

मेरे व्याख्यान का विषय 'महर्षि दयानन्द का सन्देश' वा Message of Maharishi Dayananda है। आज देश देशान्तर से आर्य भाई यहां योगीश्वर कृष्ण की जन्मभूमि (मथुरा) में दयानन्द भगवान की जन्मशताब्दी मनाने के लिए एकत्रित हुए हैं। सारे मत मतान्तरों के अन्धकार को मिटाने वाला एवं वेद की ज्योति को जगाने वाला वही ऋषि दयानन्द था जिसने भारत को उठाया है। आप में से प्रत्येक जानता है कि महर्षि के सन्देश ने कितना काम किया है। आप में से प्रत्येक सज्जन और प्रत्येक माता जानती है कि महर्षि ने वह ज्योति जगाई है जिस ज्योति से लाखों आदमी अपने जीवन में नवीन जीवन धारण कर रहे हैं। उसी महर्षि की जन्म-शताब्दी मनाने के लिए आप सब एकत्रित हुए हैं और चाहते हैं कि यहां से एक ऐसी वस्तु लेकर अपने साथ जायँ जिससे हमारा आगामी प्रोग्राम और जीवन सुख, शांति तथा आनन्द से व्यतीत हो सके, साथ ही साथ महर्षि विरजानन्द जी द्वारा महर्षि दयानन्द को इसी नगरी मथुरा में दिये हुए उपदेश को कार्य में परिणत कर सकें। इस पाश्चात्य सभ्यता के युग में अब से १०० वर्ष पूर्व जब बालक दयानन्द गुजरात में ब्रह्मानन्द-प्राप्ति के लिए अपने हृदय के उद्गारों को निकाल रहा था उसी समय इंग्लैण्ड में स्टीफेन्सन ने दूर २ की वस्तुओं को निकट लाने के लिए एक नई कल का अविष्कार किया था। आज जितने रेल तार और जहाज दीख पड़ते हैं वे सब इसी प्रसिद्ध पुरुष के आविष्कार के फल हैं। उसी प्रकार महर्षि दयानन्द ने (Spiritualism) अध्यात्म-वाद की जो नवीन ज्योति सँसार में प्रज्वलित की उसीका फल है कि आज हम अन्य बहुतसी ज्योतियां संसार में देख रहे हैं। प्रिय भाइयो! उस नवीन ज्योति से क्या असर पड़ा है? महर्षि दयानन्द तीन पदार्थों को अनादि बतला गए हैं ईश्वर जीव, और तत्त्व (God, Soul & Matter)। इन्हें बड़े २ तत्त्ववेत्ता भी अनादि मानते हैं। उन तीन बातों को हरबर्ट स्पेन्सर ने तीन नामों से पुकारा है:- 1. Revolution 2. Evolution 3. Destruction. यह संसार कैसे बना? मनुष्य इस संसार में क्या करता है? इत्यादि जिन प्रश्नों को आर्य मुनियों ने हल किया था उसको आज पाश्चात्य विद्वान समझने का यत्न कर रहे हैं एमर्सन (Emerson) गीता को पढता है और पाल रिचर्ड (Paul Richard) जैसे विद्वान् यहां आते हैं। वे आपके सामने बतलाते हैं कि अब आप ने ही जीवन बदल लिया है। अब नवयुग आ गया है। अन्धकार दूर हो गया। अब इस २०वीं शताब्दी में वह युग आयेगा जो प्राचीन अन्धकार में फँसे हुए लोगों पर अध्यात्मवाद (Spiritualism) का प्रभाव डालेगा। भारतवर्ष के अन्दर भी जितने धर्म हैं वे सब धार्मिक पक्षपातों से रहित हो रहे हैं। चाहे आप कृष्ण के प्लेटफारम पर चलें, चाहे बौद्धों के, आप को पक्षपात-शून्यता ही दृष्टि आयेगी। आज "सनातन धर्म सभा" भी पक्षपात नहीं करती। यदि कुछ करती है तो यह करती है कि किस प्रकार से बाल-विवाह रोका जाय किस प्रकार से वृद्ध-विवाह रोका जाय। आज यही प्रश्न उठ रहा है कि किस प्रकार से लोगों के हृदय-मन्दिरों को वेद की ज्योति से जगमगा दें। इसी प्रकार राजनीति धर्म के अन्दर खद्दर के गीत गाए जाते हैं और महर्षि दयानन्द का गुणानुवाद होता है। जितने राजनैतिक धर्म हैं सामजिक धर्म हैं उन सबों के अन्दर आज महर्षि दयानन्द का काम दृष्टि-गोचर हो रहा है। युरोप के अन्दर जितनी सोसाइटियां है, जितने कुरान के अर्थ लगाने वाले पंथ हैं उनके अन्दर आर्यसमाज की बुद्धि से काम लिया गया है। अभी संसार के अन्दर बड़ा अधर्म फैला हुआ है। ५० वर्षों से आर्यसमाज के स्थापित होने पर भी भारतवर्ष में आज करोड़ों आदमी भूखे मर रहे हैं। लाखा विधवाएं विलाप कर रही हैं। बाल-विवाह का दुःख दूर नहीं हुआ। अभी तक हम

आश्रमों का प्रचार नहीं कर सके। अभी हमारे हज़ारों भाई एक वर्ष में ही मर जाते हैं। उनमें से २। करोड़ आदमी इस प्लेग में मर गये। भारत में २३) की औसत आय है। आपकी ७८ फी सदी सन्तान दुर्बल हैं। आपके यहां इसका विचार तक भी नहीं है कि हमारी मातायें और बहिनें भूखी मर रही हैं। अभी लाखों, करोड़ों आदमियों की दवा दारू का समुचित प्रबन्ध नहीं है। इस काम को कौन करेगा? आपके सिवा सेवा-संघ खोलकर उनके दुःख को दूर करने वाला कौन है? वह है "आर्य समाज"। यदि उन्हें प्लेग, हैज़ा से बचाने वाली कोई शक्ति है तो आर्य्य-समाज है। इसी लिये महर्षि ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' के भीतर सबसे पहिले जो सन्देश दिया है वह आर्य्य-संगठन है।

मित्र, इन्द्र वरुण और अग्नि को अलग २ मानना गलत है। वे सब एक ही हैं। इस जगत का सब कुछ 'ओंकार' के अन्दर आजाता है। जैन, बौद्ध, सनातनी सब ही "ओम्" को मानते हैं। अतएव संसार की समस्त जातियों, मतों और पन्थों में ओ३म् है। आज ईसाई लोग भी कहते हैं कि यहजो गिर्जा है, मिशन है वह ओंकार का अपभ्रंश है। उसी ओंकार की सर्वत्र महिमा गाने के लिये यदि कोई धर्मोपदेश देता है तो वह "आर्यसमाज" है। "सत्यार्थ-प्रकाश" के प्रथम समुल्लास में लिखा है कि इस संगठन के लिए आपके अन्ददर प्रेम उठना है। जब आपके अन्दर प्रेम हो जायगा तब उस ब्रह्मानन्द से भी प्रेम हो जायगा। जिस समय आप यह जान लेंगे कि इसी ब्रह्म का असर सारे हृदय में है, उस समय मृत्यु शोक नहीं होंगे।

यह गलत कहा जाता है कि आर्यसमाज मुसलमानों से विरोध करता है और इसीलिए यह शुद्धि करता है। मैं कहता हूं कि आर्यसमाज का धर्म है प्रेम करना। यदि वह मुसलमानों और ईसाइयों को अपने अन्दर लेना चाहता है तो केवल इसलिए कि हमारा उनके साथ प्रेम है। यदि सत्य-मार्ग पर लाने के लिये हम ८ करोड़ मुसलमान और ईसाइयों को मिलाने के लिए कहते हैं तो यह हमारा प्रेम है। अतः शुद्धि आन्दोलन गिराने का आन्दोलन नहीं है। महर्षि ने बतलाया है कि समस्त संसार एक 'ओ३म्' के झण्डे के नीचे है। आप लोग बड़े शक्तिशाली थे तब ही तो भगीरथ चीन में राज्य करता था। वर्मा, आसाम और जर्मनी में आपके 'ओ३म्' का झंडा फहराता था।

एक दूसरा सन्देश, महर्षि ने प्रीति और प्रेम का दिया है जिससे समस्त संसार में एक 'ओ३म्' के झंडे के नीचे एकता हो। उसने आप ज़हर का प्याला पीकर आत्म-बलिदान का उदाहरण दिया है। इसी वास्ते हमारे प्राचीन ऋषियों, सुर और असुरों में बराबर युद्ध चला आता है।

हमारे पूर्व पुरुषों ने भी आत्म—बलिदान किया है, हम गुलाम इस बात को सोच नहीं सकते। जिस ज़माने में राम रावण से लड़ता है, भगवान् कृष्ण सुदर्शनचक्र से शिशुपाल का वध करते हैं, हिरण्यकशिपु की आज्ञा न मान कर प्रहलाद चिता में खड़ा होता है, उस ज़माने में दिशायें रक्तवर्णा हो जाती थीं। उस समय एक ओर राजपूत खड़े होते थे और दूसरी ओर मुसलमान आते थे। राजपूत केसरिया जामा पहिन कर खड़े होते हैं। उनका सिंहनाद सुन कर कायर पुरुष भी एक बार वीर हो जाते हैं। हा हन्त! आज उनकी ऐसी दशा! क्षत्रियों की प्रार्थना थी, हे भगवन्! हमें नीचों के सामने शिर नीचा न करना पड़े।" जिस समय चित्तौर के किले की मूर्त्तियां नष्ट हो गईं और स्त्रियां चिल्लाने लगीं, उस समय एक राजपूत, जयमल से कहता है, कि क्षत्रियों के लिए खड़ा रहना अनुचित है। मेरे लिए रणभूमि, स्वर्ग है।' वहां वह जयमल को कन्धे पर लेकर जाता है और रण में मर जाता है। आज तक मेवाड़ में उसका चित्र बना है जिससे जोश उत्पन्न होता है।

जसवन्तसिंह के सेनापति ने औरङ्गजेब को सलाम नहीं किया अतः औरङ्गजेब ने उसे घोर दण्ड दिया। वह औरङ्गजेब के सन्मुख कहता है, 'मेरा सिर तुम्हारे हाथ में नहीं है।' वह फिर कहता है 'जसवन्तसिंह के सन्मुख झुकने वाले सिर, तुम औरङ्गजेब के सामने मत झुको। तुम इसके सन्मुख झुक कर मर्यादा को कम न करो।' मुकुन्ददास कहता है कि राजपूतों का यह धर्म नहीं है कि शत्रु को पीठ दिखादें। अहा! ऐसे २ वीर क्षत्रिय आपकी मर्यादा को स्थिर रखने वाले थे।

जिस समय गुरु गोविंदसिंह रण में जाने लगे उस समय उनके किसी लड़के को प्यास लगी। गुरु गोविंदसिंह कहते हैं, 'हे कायरो। तुम जल पीने के लिए आते हो। वीरों की प्यास ख़ून से बुझा करती है।' आप की आन और सभ्यता की रक्षा करने के लिए गुरु तेग़ बहादुर और अर्जुन कैसे २ अनुकरणीय उदाहरण दिखला गये।

आर्य ब्राह्मणों में से मतिदास कैसे हुए। उनको आरे से चीरे जाने की आज्ञा हुई। परंतु वह ब्राह्मण मतिदास ओम् ओम् कहता हुआ चीरा जाता है।

वल्लजी चम्पावत थोड़े से लोगों को लेकर युद्ध में जाता है उसकी धर्मपत्नी भी साथ है। सहस्रों मुसलमानी फौजों से सामना होता है। वल्लजी मारा जाता है और धर्मपत्नी पतिदेव से मिलने के लिए सती होकर स्वर्ग यात्रा करती है। वह वीर पत्नी पवन को अपने पति का शव नहीं छूने देती। किस प्रकार देवरदे अल्हारूदर को प्रोत्साहित करता है और रण में जाता है। जिस समय हाड़ाजी मारा गया और उसकी वृद्ध माता को सूचना दी गई उस समय वह रोने नहीं लगी। वह पूछने लगी, मेरा पुत्र मार कर मरा वा मार खाकर मरा है? सिपाही ने उत्तर दिया, 'माता जी! तुम्हारा पुत्र मार कर मरा है।' सिपाही के ये शब्द सुनकर वह बड़ी प्रसन्न हुई। कर्नल टाड साहिब लिखते हैं कि उस के स्तनों से दूध बह चला। उस समय माता कहती है, 'बेटा जाओ! तुमने मेरे दूध को नहीं लजाया।"

जिस समय जसवन्तसिंह रणभूमि से लौट आये उनकी स्त्री ने घर के सब दर्वाज़े बन्द कर दिये और कहने लगी "मैं ऐसी नहीं हूं कि भागे हुए पति का स्वागत करूँ। जब तक जियो, तब तक रणभूमि में पीठ न दिखाओ। जब मर जाओगे, मैं भी सती हो जाऊँगी।"

एक बात सुनकर वीर बिहुला अपने पुत्र को क्या उपदेश देती है? जिस समय गोरखा से मुंह मोड़ कर कुंवर लौट कर आ गया था, उस समय उसकी पत्नी ने घर का दर्वाज़ा नहीं खोला। उसने कहा कि मरने से पहिले अपनी प्राणप्यारी का मुख देख लूं। तब उस पत्नी ने अपनी गर्दन काट थाली में रख दर्वाज़े पर रख दी। उसने अपने पति को रणभूमि से लौटता हुआ देख कर घर में नहीं आने दिया।

जब १२ वर्ष का बालक शलुमनराव जी युद्ध में जाने लगा तो लोगों ने उसे वहां जाने से रोका। लोगों ने कहा "शलुमन! तुम्हारी अवस्था कम है, तुम युद्ध में नहीं लड़ सकते। तुम युद्ध में मत जाओ।" इस पर उस वीर बालक ने कहा "भले हो मैं १२ वर्ष का हूं, परन्तु मेरी आत्मा तो १२ वर्ष की नहीं है।'

हम उस वाक्य को भूल गए जो वीर प्रताप ने कहा था। उसने कहा था, "आप लोग धर्म के लिए बलिदान हो जाओ। जिस जाति ने यह कहा था, (This world is not meant for beggars. It is for the conquerors.) 'यह संसार भिखारियों के लिए नहीं है, वरन् विजयी पुरुषों के लिए है।' आज वही जाति पद पद पर दुःखी हो रही है।

मैक्समूलर ने भी इस जाति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। प्रिय भाइयो! यदि आप को यह

अभिमान है कि हमारे प्राचीन लोग बड़े शूरवीर हुए तो महर्षि की शताब्दी को याद करो। आज आप का मुख मलीन और तन क्षीण हो रहा है। आप लोगों का जगह जगह पर धर्म नष्ट किया जा रहा है, आज हम ने अपना राज्य खोया, अपना गौरव खोया। अब उस वैदिक धर्म की ज्योति को जगा दो! वैदिक उपदेश को मान लो, और आपस में प्रेम बढ़ाओ। हम दयानन्द जन्म शताब्दी के उपलक्ष में धन नहीं मांगते। केवल प्रार्थना यही है कि इस वैदिक धर्म की ज्योति को जगाने की आप लोग चेष्टा करें। यह न समझ लें कि वकालत कर के समय मिलेगा तो आर्यसमाज की सेवा करेंगे। ऋषि का उपदेश है कि जो कुछ हो भगवान् को अर्पण करो।

एक समय भगवान् बुद्ध ने एक भिक्षु को एक राजा के पास भेजा। राजा ने बहुत धन दिया, परन्तु भिक्षु ने कहा कि "मैं इसका इच्छुक नहीं हूं।" राजा के यहां उसने अन्न भी ग्रहण नहीं किया, और बिना भिक्षा के चल दिया। एक बुढ़िया के फटे कपड़े को लेकर उसे हृदय से लगाया, और बुद्ध जी के अर्पण कर दिया क्योंकि वह वस्त्र बुढ़िया का सर्वस्व था।

अतएव आप भी धर्म्म को (Surplus) उपयोग से अधिक न समझें। उत्तम से उत्तम वस्तु को धर्म के लिये देने को तैयार रहो। तब ही आपके धर्म की उन्नति होगी।

प्यारे भाइयो! मैं आप से पूछता हूं कि महाराज अश्वकेतु ने देश से क्या कहा था? "ऐसा राज्य स्थापित करो, स्वराज्य का ऐसा सरल मार्ग बनाओ कि इस संसार में कोई चोर न रहे, कोई दुर्बल न रहे, कोई ऐसा आदमी न रहे, जो अग्निहोत्री न हो।" उस वैदिक समय को लाने के लिए आज से हम कटिबद्ध हो जांय। यदि आप महर्षि की शताब्दी को सफल बनाना चाहते हैं तो अपने "आत्म-बलिदान" से उस महर्षि के सन्देश (Message) को पूरा करें।

बोलो महर्षि दयानन्द की जय!

इसके पश्चात् आज प्रातःकाल की कार्यवाही समाप्त की गई।

श्री गंगागिरी का भाषण

इसी दिन (ता० १५-२-२५) रात्रि को मुख्य मण्डप में 'आर्य सम्मेलन' की पहिली बैठक हुई और उसके बाद स्वामी गङ्गागिरि जी का निम्न आशय का भाषण हुआ।

स्वामी जी ने कहा कि गीता में आता है कि जब धर्म की ग्लानि होती है तब कोई न कोई पुरुष ऐसा आता है जो उसको उठाता है। धार्मिक भाव भारत से उठ चुके थे, धर्म का पहला साधन वेद-प्रचार भारतसे दूर हो चुका था, धर्म का दूसरा मूल-कारण आश्रम-व्यवस्था एक प्रकार से भारत से उठ गई थी, इसी प्रकार वर्ण-व्यवस्था भी नष्ट हो चुकी थी। देव पूजन, ईश्वरोपासन के भाव भी मिट चुके थे। लोगों के मनगढ़न्त ईश्वर क़ायम हो चुके थे। इन्हीं समस्त बुराइयों को दूर करने के लिए महर्षि दयानन्द का जन्म हुआ था।

मनुजी महाराज ने धर्म की चार कसौटियां बतलाई हैं। जो व्यक्ति इन चारों पर ठीक उतरे उसी को धार्मिक व्यक्ति समझना चाहिए। विद्या धार्मिक पुरुष में ही पाई जाती है। विद्वान् होने के साथ ही साथ वह सदाचारी भी होता है। जो व्यक्ति मन, बचन और कर्म में समान हो उसी को सदाचारी समझना चाहिए। स्वामी दयानन्द इस कसौटी पर पूरे उतरे। आज हम १० पुरुषों के विरुद्ध बोलने का साहस नहीं कर सकते परन्तु स्वामी जी को पद २ पर शत्रुओं का सामना करना पड़ा और उन सब पर वे विजयी ही रहे। वे सचाई पर दृढ़ थे। उनमें अभिमान का लेश मात्र भी भाव न था। अमृतसर में संस्कृत बोल रहे थे, मुख से एक अशुद्ध शब्द निकल गया। एक लड़के ने कहाः—

"महाराज! आपने इस शब्द का अशुद्ध प्रयोग किया है।" इस पर स्वामी जी उत्तर देते हैं, "भद्र! हां, यह मुझसे भूल हुई है।" अहा! तनिक भी अभिमान नहीं! यह शताब्दी ऐसे ऋषि की है जिसका भारत को बड़ी आवश्यकता थी। यह उसी का पुण्य, तप और तेज है कि लोग खिंचे चले आ रहे हैं। हमें समस्त संसार में इस ऋषि का सन्देश पहुंचाना है। यह ऋषि सब कसौटियों पर पक्का उतरा हुआ ऋषि था। आपका और हमारा कर्तव्य है कि इस महान् आत्मा के दिये हुए उपदेशों को देश २ दिशा २ में ले जावें। स्वामी जी ने हमें एक ईश्वर का पूजन बताया। माता पिता, गुरु और विद्वानों को देव बता कर उनके पूजन का उपदेश किया। वेद के सच्चे अर्थों का प्रकाश किया। धर्म के सच्चे अङ्ग वर्णाश्रमों की उचित व्यवस्था की। अनाथों और विधवाओं की पुकार सुनी। अतः आप लोग उनके मन्तव्य को देश २ में ले जायें।

द्वितीय दिवस ता० १६। २। १९२५
स्वामी श्रद्धानन्द जी का वेदोपदेश।

१६ फर्वरी के प्रातःकाल नित्य नियमानुसार मुख्य मण्डप में प्रथम वेदोपदेश तत्पश्चात् व्याख्यानादि हुए। वेदोपदेशदाता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने, "व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।" मंत्र का पाठ कर इसी के आधार पर व्रत की महिमा बतलायी एवं ऋषि दयानन्द को आदर्श व्रती, दीक्षित, श्रद्धालु तथा सत्यनिष्ठ बतलाया। आपने कहा कि "जो व्यक्ति परमात्मा पर विश्वास करके और उसकी सहायता मांग कर कि, "अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि'। हे भगवन्! हमें व्रतों के पालन की शक्ति दो इसी व्रत का अनुष्ठान ही सत्य पथ है' कार्य करता है वही व्यक्ति धन्य है और उसी को गुरु दीक्षित करता है।

सच्चा व्रती हमारा आदर्श गुरु दयानन्द, स्वा० विरजानन्द जी से दीक्षित हुआ। भाग्य से जब मनुष्य उत्तम दीक्षा प्राप्त कर लेता है तब ही सच्चे पथ-प्रदर्शक को पा लेता है। उसको परमात्मा की सहायता मिल जाती है और तब वह दाक्षण हो जाता है। उसे कौशल प्राप्त हो जाता है और वह बड़ा प्रवीण हो जाता है। अपनी कुशलता से सब कुछ सुखकर बना लेता है। जिस व्यक्ति को दक्षता प्राप्त हो जाती है उसी को श्रद्धा मिला करती है। आत्मविश्वास तब ही होता है, जब मनुष्य दक्ष होता है। दक्षिणा से उस श्रद्धा के मिलने पर जिसकी महिमा उपनिषदों और गीता में सर्वत्र गाई है, "श्रद्धया वै लभते ज्ञानम्", श्रद्धालु ही ज्ञान प्राप्त करता है, ज्ञान ही अमृतत्व है, उस ज्ञान को प्राप्त करता है। वही उस परमतत्व सत्य स्वरूप अखिल जगन्नियन्ता के ज्ञान का अधिकारी होता है जो श्रद्धावान् होता है। अतः इस श्रद्धा द्वारा वह सत्य को प्राप्त कर लेता है। इस को प्राप्त करके सर्वदा उसकी विजय होती रहती है। कभी पराजय नहीं होती। आत्मविश्वासी जीवन-संग्राम में कभी पराजित नहीं होता। ऋषि का दृढ़ आत्मविश्वास उसको 'सत्यमेव जयते नानृतम्' के सिद्धांत पर लगाये हुए था। जिस के बल से वह कभी भयभीत न हुआ। लाख विरोध हुए। यह आत्मविश्वास, यह श्रद्धा उस अद्भुत कुशलता और योग्यता का फल थी जिसे ऋषि ने वीतराग विरजानन्द की दीक्षा से प्राप्त किया था और उस दीक्षा की योग्यता उस समय आई जब ऋषि का जीवन तपश्चर्या का और व्रतों का जीवन बन गया था।

हे आर्य पुरुषो! इस व्रत की महिमा को समझो और इसपर आचरण करो, व्रती बनो, दीक्षा प्राप्त करो, दक्षिणा प्राप्त करो। श्रद्धा प्राप्त करके सत्य लाभ करो।

पं० भगवद्दत्त जी का व्याख्यान

तदनन्तर साम गान और फिर श्रीयुत प० भग

वत दत्त जी रिसर्च स्कालर लाहौर का " संस्कार विधि में पठित संस्कारों " के ऊपर एक व्याख्यान हुआ। आप ने बतलाया कि स्वामी जी ने संस्कार-विधि में प्रायः गृह्य सूत्रों का प्रमाण उद्धृत किया है। प्रत्येक वेद के साथ कितने ही गृह्यसूत्र हैं। परन्तु स्वामी जी ने अपने आप को प्रत्येक गृह्य सूत्र की प्रत्येक पंक्ति से बाध्य नहीं किया। जहां सिद्धांत विरुद्ध कोई बात मिली आपने उसको छोड़ दिया। प्रक्षिप्त मान लिया। उन्होंने अपनी दिव्य ज्ञानज्योति से उस सच्चाई को देख लिया जो उस समय लुप्त हो गई थी, और इसी से निर्भयतापूर्वक उसका परित्याग किया था। स्वामी जी बिना भली भांति सोचे विचारे न कुछ लिखते थे और न कहते थे। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि यों ही इस को प्रक्षिप्त कर दिया। माना, उनसे मुक्ति के विषय में बहुत बार प्रश्न हुए, किन्तु उन्होंने कहाः—" इस विषय में मैं अपना मुंह अभी नहीं खोलूंगा। विचार करने के उपरांत ही कुछ कहूंगा।" पन्द्रह वर्ष के विचार के बाद उन्होंने इस विषय पर अपने विचार प्रकट किए थे। उनकी कोई बात उस समय निरर्थक न होती थी। आज लोग सभी शब्दों को लेकर उनकी संगति लगाते चलते हैं। उनमें से वैदिक सिद्धांत सिद्ध करते हैं। स्वामी जी ने कभी इसकी चेष्टा नहीं की। जो अनर्गल जान पड़ा उसे निर्भय होकर प्रक्षिप्त कर दिया एवं छोड़ दिया। आज लोग यह भी कहते हैं कि स्वामी जी के ग्रन्थों का संशोधन होना चाहिए। मैं कहता हूं कि यह क्यों? आप को इतना भ्रम क्यों लगा है? यदि आप ऋषि के बतलाए हुए सिद्धांतों और सूत्रों पर विचार करें तो आप को संशोधन की आवश्यकता न पड़ेगी। कहीं २ स्वामी जी ने कुछ प्रमाणों का अनुवाद मात्र ही कर दिया है। उदाहरणार्थ, कन्या के यज्ञोपवीत का विधान स-प्रमाण नहीं है, वरन् गृह्यसूत्र का अनुवाद मात्र है। आप इसे वहां देख सकते हैं। उन्होंने आपस्तम्ब गृह्यसूत्र अधिकता से उद्धृत किया है। विधवा विवाह के लिए उन्होंने मनु-प्रतिपादित अक्षत-योनि विधवा विवाह की आज्ञा दी है, अन्य को नहीं। अन्यथा करने वाले को शूद्र-कोटि में डाला है। परन्तु अब तो लोग मन-गढ़न्त करने लगे हैं। कहीं २ यज्ञ हवन के अन्त में 'ओं वसोः पवित्रमसि शतधारम्, वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्......" इत्यादि के उच्चारण के अन्त में घृत छोड़ने की परिपाटी प्रचलित हो पड़ी है। इसका प्रमाण कहीं नहीं। ऋषि ने कहीं नहीं लिखा। यों ही मनमाना कर रक्खा है। तब इस प्रकार की परिपाटी डालकर संशोधन के प्रश्न को उठाना महाभूल है। ऋषि के सिद्धांतों का मनन कीजिए। संस्कारों का महत्व समझिये।

पं० अयोध्याप्रसाद (कलकत्ता) का व्याख्यान

इसके पश्चात् श्री० पण्डित अयोध्याप्रसाद जी रिसर्च स्कालर कलकत्ता ने कहाः—

आर्य्य पुरुषो एवं आर्य देवियो !

हमारे वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं। कितनी ही पुस्तकें इलहामी (ख़ुदाई) वा ईश्वरीय बतलाई जाती हैं परन्तु यह मिथ्या कल्पना अपने मत के फैलाने के लिए ही है। सच्चे ईश्वरीय ज्ञान के भंडार हमारे वेद ही हैं।

जिस प्रकार दयालु परम पिता परमेश्वर ने हमारे लिए इस नाना-भोग-विचित्रा धरित्री और विश्व का निर्माण किया है, जिस प्रकार जगदीश्वर ने इस भौतिक सृष्टि की रचना की है उसी प्रकार उसने ज्ञान की भी रचना की है। यदि हमारे पास पीने के लिये पानी और खाने के लिए अन्न न होता तो हम इतनी सृष्टि न कर पाते। इसी प्रकार यदि ज्ञान ईश्वर दत्त न होता तो हम ज्ञानी नहीं बन सकते थे। ज्ञान की निरवच्छिन्न धारा सर्वत्र बह रही है। प्रत्येक भूत के साथ ज्ञान उपस्थित है। सृष्टि में

सर्वत्र ज्ञान विद्यमान है तथा वही परमेश्वरीय ज्ञान है। भौतिक जगत को रचकर उसका ज्ञान रूप से अनुवाद स्वरूप ही तो हमारे वेद हैं। वेद कहते ही हैं ज्ञान को। सारा विश्व, प्लेटो (Plato) बार्कले (Barkley) और ह्यूम (Hume) के मत से विचार ही रूप है। विचार न हो तो विश्व कहां हो ?

पदार्थों के गुणों का ज्ञान-भंडार ही हमारा ऋग्वेद है एवं उनसे कार्य सिद्ध करने के लिए कर्म का प्रतिपादक हमारा यजुर्वेद है। और फिर उस परमात्म-तत्व का गुणानुवाद जिसने विश्व बनाया, साम में किया गया है। ये तीनों संश्लेषणात्मक ज्ञान हैं, सिन्थेटिक (Synthetic) ज्ञान हैं, तथा अथर्ववेद इन्हीं का विश्लेषणात्मक ज्ञान है, एनेलिटिक (Analytic) ज्ञान रूप है। इसी लिये ऋग्वेद का आरम्भिक मंत्र "अग्नि मीळे पुरोहितं ......" अग्नि इत्यादि द्रव्यों का ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा करता हुआ. अन्त में कर्म की याद दिलाता है, क्योंकि ज्ञान के पश्चात् कर्म आता है। इसी प्रकार यजुर्वेद "इषे त्वोर्जे त्वा ......" से, जो कर्मपरक है, आरंभ करके, "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" में ही समाप्त होता है। इसी प्रकार सामवेद कर्मों में सर्वश्रेष्ठ उपासना रूप कर्म के लिये 'अग्न आयाहि वीतये......' से आरम्भ करता है। इस प्रकार देखने से इस सूक्त के आगे यही क्यों आया, अग्नि सूक्त के आगे वायु सूक्त ही क्यों आया, इसके भी कारण मिलेंगे। अतः इस प्रकार संश्लेषणात्मक विश्लेषणात्मक वा सिंथेटिक एवं एनेलिटिक ज्ञान अथर्ववेद में वर्णित हैं। हमारे वेद ही ईश्वरीय-ज्ञान-ग्रन्थमाला हैं इसमें कोई सन्देह नहीं कर सकता है।

इसके पश्चात् आज प्रातःकाल की कार्यवाही समाप्त हुई। दोपहर को द्वितीय मंडप में श्री० टी० सी० धनुष्कोटी वर्मा (आर्यसमाज गुलबर्गा) का अंग्रेजी में (The Religion of Mankind) विषय पर व्याख्यान हुआ था जिसको अंग्रेज़ी समझने वाली जनता ने पसंद किया।

स्वामी मुनीश्वरानन्द जी का व्याख्यान

दूसरे दिन (ता० १६--२--१९२५) रात्रि को मुख्य मंडप में 'आर्यसम्मेलन' की दूसरी बैठक में स्वयंवर के विषय पर विचार किया गया था। उसके समाप्त होने पर स्वामी मुनीश्वरानन्द जी का नीचे लिखे आशय का व्याख्यान हुआ:—

सज्जनो! आप लोग छोटी २ बातों के लिए इतने परेशान हैं। उस ऋषि की महत्ता एवं दूरदर्शिता पर तो विचार करें कि वह कैसा स्पष्ट प्रश्न हमारे सामने रखता है, "विवाह माता पिताके आधीन हो वा वर वधू के ?" उत्तर-"वर वधूके, परन्तु माता पिता की सम्मति से"। इसी प्रकार ऋषि ने समस्त शुभ बातों का विधान हमारे सन्मुख रख दिया है। दयानन्द के उपकारों और सुधारोंका अनुमान इससे ही हो सकता है कि आप लोग उस सुधारक से पहिले की गिरी हुई दशा का विचार करें। स्थान २ पर बलिदान दिए जाते थे, देखिये विचारिये! ये कैसे भयानक होते थे। परंतु उस वीर ने निर्भयता पूर्वक इनका खंडन किया। उनका पहिला शास्त्रार्थ घर पर अपने पूज्य पिता जी से ही होता है। उसमें पिता जी निरुत्तर हो गये और उनकी हार हुई। वे पिता जी के समान सब को हराते हुए चले गये। उन्हों ने आर्य्यों से विशेष रूपेण कहा, "मांस न खाओ। मद्य मांस का त्याग करो। वेदों की शिक्षा को घर२ फैलाओ।" वेदोपदेशमें हिंसा की बू नहीं। स्वयं ऋषि का जीवन एक आदर्श जीवन था। वह मरते २ भी पाठ पढ़ा गये। उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार जीना चाहिए और किस प्रकार मरना चाहिए। पहिला वीर जिसने इनकी शिक्षा को ग्रहण किया तथा कार्य में परिणत किया लेखराम था। वह आर्यवीरों की मौत मरा। एक वह मरना है। मरते २ कहते हैं "अल्ला बचाओ!" एक वह मरना है। वह मरते २ कहता है "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

शोक का स्थान है कि उसी के शिष्य आपस में लड़ते और उसकी शिक्षा के विरुद्ध आचरण करते हैं। बाल ब्रह्मचारी पाखंड का खंडन करने वाले दयानन्द बतला गये हैं, "जो संन्यासी होकर भी पाखंड का खंडन और सत्य का मंडन न करे वह संन्यासी ही नहीं है बल्कि पृथ्वी के लिए भार-रूप है।" सच्चे सन्यासी ने ऐसा कहा ही नहीं बल्कि किया भी था।

महाराज जोधपुर के दर्बार में उसने बेधड़क होकर कहा "शेर, शेरनी से समागम करके शेर पैदा किया करते हैं, अब शेर, कुतिया से कुत्ते पैदा करेंगे।" यही एक शब्द पीछे उनका घातक बना परंतु वह जान बूझकर एक पग भी पीछे न हटा। आज स्वामी दयानन्द का नाम लेने वाले वेश्याओं का नाच देखते हैं, ऐसा भविष्य में कोई न करे। और स्वामी दयानन्दकी जय के साथ आप के मुखसे समस्त दोष निकल जावें।

स्वयंवर के विषय में बोलते समय म० राजेन्द्र पाल की इस आपत्ति पर "स्वामी जी पहिले उस समय को तो लाइये जब माता पिता की आज्ञा की आवश्यकता न रहे।" स्वामी जी ने कहा "वह शुभ समय आ गया है।"

रात्रि बहुत हो गई थी इस कारण लोगोंके सुनने के लिए तैयार होते हुए भी स्वामी जी ने जय-ध्वनि के बीच अपना व्याख्यान समाप्त किया।

तीसरा दिन १७–२–२५ (प्रातःकाल)

स्वामी सत्यानन्दजी का धर्मोपदेश

आज यथारीत्या आरम्भ में वेदोपदेश और फिर व्याख्यानादि हुए। आज के वेदोपदेश-कर्त्ता श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने कहा।

देवियो व आर्य सज्जनो!

अपने अन्तःकरण की शुद्धि के लिए भगवान् की भक्ति की आवश्यकता है। जब तक मन पवित्र नहीं होता तब तक इसमें बल नहीं आता! जीवन संग्राम में विजय पाने के लिए शारीरिक बल ही नहीं, मानसिक बल की भी परमावश्यता है। भगवान दयानन्द ने मानसिक बलका ही उपार्जन किया था। आज ४ लाख के लगभग नर-नारी दयानन्द के शारीरिक बल के द्वारा ही नहीं प्रत्युत उसके अलौकिक मानसिक बल और दिव्य ज्ञान-ज्योति के द्वारा भी यहां आकर्षित हो रहे हैं उसने ईश-भक्ति के द्वारा अपने अन्तःकरण को बली बना लिया था। उसका मन पवित्र था।

मनुष्यको मनोबल-प्राप्त्यर्थ और विचारोंकी निर्मलताके लिए सदैव यत्न-शील होना चाहिए। विचार-शक्ति से पारस्परिक ऐक्य एवं व्यक्तिगत आन्तरिक सौहार्द का जन्म होता है। हृदय-तन्त्री एक सुरीला राग गाती है। आनन्द का उद्वेग होता है। धारणा के द्वारा मनुष्य को इस आनन्द को प्राप्त करना होगा। धारणा अपने भीतर ही होती है। धारणा की प्राप्ति चित्त-वृत्तियों की एकाग्रता पर निर्भर होती है। इससे नीति एवं विनय शीलता की प्राप्ति होती है। ये ही दोनों जय के साधन हैं। आज आप 'दयानन्द की जय" के नारे लगाते हैं, परन्तु जय के लिए इन दोनों की प्राप्ति परमावश्यक है। दयानन्द की वास्तविक "जय" वेद-रक्षा और आर्य संस्कृति रक्षा के अन्तर्गत है।

हमारे जीवन का लक्ष्य सदा उच्च होना चाहिये। हमारा जीवन प्रभु की उपासना द्वारा बुद्धि की शुद्धि के लिए है। हमारी सभ्यता में बुद्धि का स्थान उच्चतम है। इसी से जय होती है। गायत्री मन्त्र में बुद्धि की शुद्धि और पवित्रता ही मांगी गई है इसी के द्वारा दयानन्द ने विजय पाई थी। पूजा वा उपासना का दूसरा फल सत्क्रियाओं का विकास है। मनुष्य शुभ कर्म करनेके लिए ही उत्पन्न हुआ है। इसका तीसरा फल श्रुति-रक्षा है। वेद के गूढ़ातिगूढ़ तत्वों का उसे ही ज्ञान होता है जो विषयों से परे भगवद्-भक्ति में लवलीन है। इसका चतुर्थ

फल दृष्टि की रक्षा है। नेत्र शक्ति का इससे विकास होता है। "श्रुनाय च दृशाय च" के मूल सिद्धांतों को जो भगवान् का उपासना से प्राप्त करता है वही सफल होता है। इस उच्च लक्ष्य की पूर्ति करो और अपने जीवन को पवित्र बनाओ।

डा० केशवदेव शास्त्री का व्याख्यान

तदुपरान्त गुरुकुल ऋषिया के ब्रह्मचारियों ने सुमधुर साम गान किया। इसके पश्चात् श्री युत डाक्टर केशवदेव जी शास्त्री एम० डी० ने अपना व्याख्यान आरम्भ करते हुए कहा:—

देवियो एवं आर्य सज्जनो!

जो कार्य कोलम्बस ने अमेरिका की खोज करके पूर्ण किया था, वही वेद की खोज करके महर्षि दयानन्द ने किया है। वेद पहिले विद्यमान थे, परन्तु उनके यथार्थ अर्थ लुप्तप्राय हो चुके थे। उन्हें प्रगट करके ऋषि ने स्वाधीन "विकासवाद" का उज्वल आदर्श हमारे सन्मुख रक्खा। ऋषि की धारणा थी कि आदित्य ब्रह्मचारी ४०० वर्ष पर्यन्त जीवित रह सकता है। डा० नवर ने फिलाडलफ़िया (Philadalphia) में व्याख्यान देते हुए कहा था कि समय आ रहा है जब लोग १०००० वर्ष तक जियेंगे। १८५९ ई० में डार्विन ने विकासवाद चलाया था। १९१५ ई० में पनामा की रेसवेटरिङ्ग कांफ्रेन्स में मेरे एक प्रश्न का उत्तर देते हुए डा० लूथर ने, जो एक बड़ा आविष्कारक है, और जो बिना खेती के अन्न उत्पन्न करने वाला है, कहा था कि हम चार पुश्तों में मनुष्य को बदल सकते हैं। परंतु ऋषि दयानन्द ने स्वरचित संस्कारविधि के २३ वें पृष्ठ के नोट में लिखा है कि संस्कारों से क्या प्रभाव पड़ता है। हमारी वैदिक सभ्यता इस विकास को बड़ी सुन्दर रीति से बतलाती है। योग दर्शन की फ़िलासफ़ी में आयु की वृद्धि होती है इसके अनेकानेक प्रमाण पाये जाते हैं। जम्मू में चम्पाराज योगी ८५ वर्ष की अवस्था का है परन्तु उसके शरीर की कान्ति से युवावस्था ही टपकती है। ४० वर्ष से लोगों ने उनको समान (एकसा) ही देखा है। वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है कि च्यवन ऋषि वृद्ध से युवा हुआ था, इससे आप स्वयं देख सकते हैं कि हमारा विकासवाद कितना आगे है।

ऋग्वेद में लिखा है कि प्रत्येक परमाणु को नवीन कर लो और शतायु बनो। एक वर्ष में सारा शरीर बदल जाता है यह भी वैद्यक का सिद्धांत है।

१५ वीं शताब्दी में कारनैरो जिसने वेनिस (Venice) की नहर बनायी थी, ४२ वर्ष की अवस्था में बीमार हुआ। लोगों ने कहा इसके बचने की आशा नहीं। परन्तु उसने अपना जीवन नियमानुसार बनाया, खान-पान का संयम किया और उत्तरोत्तर उसकी दशा सुधर गयी। ६५ वर्ष की अवस्था में एक दिन १२ औंस नियत खुराक़ से १४ औंस कर दी। उसी दिन बीमार हुआ। तदनन्तर उसी संयम पर चला। ९५ वर्ष की अवस्था में एक पुस्तक लिखी और १०३ वर्ष तक जीता रहा। उसका कथन है कि मनुष्य की मृत्यु पके फल समान होनी चाहिये। कोई पीड़ा नहीं होनी चाहिये। बहुत सी स्त्रियों को प्रसव-वेदना अधिक होती है। इसका कारण उनके स्वास्थ्य का दोष तथा अजीर्ण है। नियमानुसार रहने वाली स्त्री को कभी कोई पीड़ा नहीं होती। न्यूयार्क में डा० कैरल तजुर्बे (Experiment) कर रहे हैं। उनके यहां एक प्रकार के रस में रक्खा हुआ मुर्गी का दिल १२ वर्ष से गति कर रहा है। इसी प्रकार मनुष्य का मस्तिष्क १० वर्ष से गति शील है।

छोटी आंत वालों का जीवन अधिक होता है। जैसे तोता १५० वर्ष जीता है। डा० एण्डर्सन ने दिखाया है कि मनकी प्रवृत्ति से शरीर का भार बढ़ जाता है। तराजू पर लिटा कर तजुर्बा किया गया है कि मनोबल शिर की ओर होनेसे भारी हो जाता है। इस प्रकार मन की शक्ति की प्रधानता दिखाई गयी है जो हमारा प्राचीन वैदिक सिद्धांत है और योग की जबरदस्त फ़िलासफ़ी है।

इन वैज्ञानिक और विकास सम्बन्धी सिद्धांतों को वेद की खोज से ऋषि ने हमारे सामने रक्खा है। इन से आगे बढ़ कर ऋषि ने हमें स्वतन्त्र विकासवाद का सिद्धांत दिया है। कोलम्बस को जब स्पेन के राजदर्बार में मान मिला था तो लोगों ने पूछा था कि तुम ने क्या किया है? कोलम्बस ने उन्हें बड़ा अच्छा उत्तर दिया था। इसी प्रकार ऋषि ने वेदों से कोई नई बात तो नहीं निकाली परन्तु उन्हीं सिद्धांतों को जो वहाँ थे परन्तु लुप्त से थे बताया और हमारी सभ्यता का सच्चा आदर्श हमारे सामने रक्खा।

प्रिं० बालकृष्ण का भाषण

तदनन्तर कन्या महाविद्यालय की बालिकाओं का गान हुआ और अन्त में श्री बालकृष्ण जी एम. ए. प्रिंसिपल राजाराम कालेज (कोल्हापुर) का इस प्रकार से भाषण हुआ—

सज्जनो !

आज संसार में विकास चल रहा है। सब उन्नति कर रहे हैं। सब तरफ 'आगे बढ़ो' की ध्वनि गूंज रही है। परन्तु हमारी हिंदू जाति मरती जा रही है। इसकी वृद्धि किसी प्रकार भी होती नहीं दीखती। यह हिसाब द्वारा मालूम किया जा सकता है कि जिस क्रम से यह पहले घट रही थी उससे ५०० वर्ष में इसका पता न रह जाता। परन्तु अब जिस क्रम से घट रही है उसके हिसाब से तो यह और भी जल्द अपना नामोनिशान खो बैठेगी। ५० वा ६० वर्ष में ईसाई मत और इस्लाम की बढ़ती हुई आग में यह भस्म हो जायगी। यह सब प्रकार घट रही है। कुछ लोग आपस के दुर्व्यवहार से जो अछूत हैं या समुद्र यात्राकर चुके हैं, वे बिरादरी और दूसरे पचड़ा से धर्म त्याग रहे हैं। कुछ विधवाएं पड़ी हैं जो १ वर्ष से लेकर ५० वर्ष की आयु तक की हैं। इसके अतिरिक्त कितने ही लाख साधु हैं। ये सब सन्तान उत्पन्न नहीं करते इन सब को विवाह करके प्रजावृद्धि करनी चाहिए। १ करोड़ वा १॥ करोड़ तो इनके विवाह से बढ़ सकते हैं। हम को चाहिए कि अपने अन्दर की कुरीतियों का परित्याग करके पुष्ट बनें और तब जीवित रहने वाली सन्तान उत्पन्न करें, क्योंकि आज दो में से एक बच्चा तो अवश्य ही मर जाता है। इसको रोकना चाहिए। साथ ही विधवाओं और साधुओं को—मेरा आशय तमाम से नहीं है, किन्तु बने हुओं से है—विवाह करने चाहिए। यह तो भीतर वृद्धि रही। इसके अतिरिक्त बाहर से भी अपनी वृद्धि करनी पड़ेगी और उसका तरीका है शुद्धि।

शुद्धि सर्वदा शास्त्र-विहित है। ६५ लाख विधवाएं, जो कैनाडा की आबादी के बराबर हैं, और २५ लाख साधु एक ओर वृद्धि कर सकते हैं और दूसरी ओर शुद्ध कर सकता है। 'सत्यार्थ-प्रकाश' के दूसरे और तीसरे समुल्लास के अनुसार हमें शुद्धि करनी चाहिए। अर्थशास्त्र की दृष्टि से हमारे लिए यह परमावश्यक है कि हम साधुओं और विधवाओं की सुव्यवस्था करें। बाल-मृत्यु को यत्नपूर्वक रोकें और शुद्धि द्वारा गये हुओं को वापस लें और यदि दूसरे भी आना चाहें तो उन्हें भी लाने का यत्न करें।

इस व्याख्यान के पश्चात आज प्रातः की कार्यवाही समाप्त हुई।

चौथा दिन ता० १८-२-२५ (प्रातःकाल)

स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी का धर्मोपदेश

१८ ता० के प्रातःकाल यथारीति आरम्भ में श्री० स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी का धर्मोपदेश हुआ।

उन्होंने कहा कि 'मोक्ष के दो ही मार्ग हैं। एक ज्ञान का, दूसरा कर्म का। वेदानुसार दोनों समन्वित साधन हैं। काशी के अजामेध यज्ञ में बाल शास्त्री भी सम्मिलित थे, भले ही उन्होंने मांस नहीं

खाया, परन्तु लोग इसे ही उनकी मृत्यु का कारण ठहराते हैं। इसी प्रकार यदि कोई मन्तव्य तो रखता हो परंतु कर्त्तव्य न करता हो तो फलभागी नहीं हो सकता है। मनु ने पांच प्रकार के चांडाल बतलाये हैं। हिंसक, मद्यप, चोर, व्यभिचारी तथा इनसे सम्बंध रखने वाला। भाइयो, केवल प्रार्थना करने वाला और तदनुसार कर्म न करने वाला भांड होता है। अतः कर्मशील होना चाहिये।'

प्रिंसिपल दीवानचन्द का भाषण

सामगान होने के पश्चात् श्री प्रो० दीवानचंद्र जी एम. ए. प्रिंसिपल (डी. ए. वी. कालेज कानपुर) का इस प्रकार से प्रभावशाली व्याख्यान आरम्भ हुआ।

सज्जनो, पिछले दिनों महात्मा गांधी ने अपने पत्र 'यंग इंडिया' (Young India) में आर्य समाज के प्रवर्तक के सम्बंध में कुछ लिखकर आर्यों की शक्ति को भली भांति जान लिया और तमाम भारतवर्ष ने भी प्रत्यक्ष रूप से यह जान लिया कि यह समाज भी कुछ मूल्य रखता है। म० गांधी ने एक अन्य स्थान पर लिखा है, 'आर्यसमाज की यह शक्ति स्वा० दयानन्द के सुन्दर आचार व्यवहार के कारण ही है'। इन्हीं दिनों ला० लाजपतराय जी ने भी एक लेख में इस बात का समर्थन किया था कि आर्यसमाज की शक्ति उस निष्काम त्याग और कष्ट सहन पर निर्भर है जो कि उसके अनुयायियों ने हिंदू जाति और हिंदुस्तान की सेवा में किये। इस समय हमारे सामने ३ प्रकार के प्रश्न हैं—

(१) क्या आर्यसमाज की शक्ति दयानन्द के व्यक्तिगत आचरण पर आश्रित है?

(२) क्या यह उनकी उच्च कोटि की शिक्षा और अटल सिद्धांतों पर निर्भर है?

(३) क्या यह शक्ति उनके त्याग-भाव से की हुई सेवाओं पर अवलम्बित है?

आओ, हम इन प्रश्नों की विस्तृत परीक्षा करें और देखें कि ये कहाँ तक ठीक हैं। यही उत्तम शिक्षा थी जिसने स्वा० दयानन्द को एक साधारण मनुष्य से ऐसा महान् पुरुष बनाया। यह वैदिक शिक्षा ही थी। आज हरेक सच्चे आर्यसमाजी का हृदय इस वैदिक शिक्षा से जीता जा चुका है। स्वा० दयानन्द से पहिले भी वेद मौजूद थे, परन्तु लोग उनकी प्रतिष्ठा नहीं करते थे। हाँ, संस्कृत का इतना मान करते थे कि नाविल (उपन्यास) जैसी निरर्थक पोथी भी पूजी जाती थी। गुरु विरजानन्द ने इस अन्धकार को मिटाया जिसकी शिक्षा ने आगे चल कर हिंदू जाति में जागृति उत्पन्न की और लोगों को सिखाया कि परमात्मा को छोड़ अन्य दूसरे के आगे सिर न झुकाओ।

पुराने तीर्थों में, कुम्भों के अवसर पर इस शताब्दी की अपेक्षा कई गुणा अधिक लोग इकट्ठे हो जाते हैं जहाँ पर एक समाज दूसरे समाज का साधारण विषयों पर गला काटने पर उतारू हो जाता है। स्वामी जी ने इन कुरीतियों को दूर किया और ईसाइयों की नरपूजा भी कोई कम नहीं। आर्य समाज मनुष्य मात्र को एक दृष्टि से देखता और सब को समान अधिकार देता है।

फिर एक स्थान पर म० गांधी ने कहा है, 'आर्य समाजियों में सहनशीलता नहीं और कभी २ स्वा० दयानन्द भी सहन न कर सकते थे।' यह बात किसी अंश तक ठीक है परंतु इसकी तह में एक गहरी फिलासफी है। आर्यसमाजी और स्वा० दयानन्द अन्त को मनुष्य ही हैं पूर्ण तो नहीं हैं। असहिष्णुता के उदाहरण तो आर्यसमाज और हिंदू जाति में खोजने पर भी नहीं मिलते। अलबत्ता मुलतान, अमृतसर, कोहाट और अफ़गानिस्तान के उदाहरणों को याद कीजिये। इन स्थानों पर स्वतंत्रता और वीरता के पवित्र भावों को एक ओर भुलाकर सहिष्णुता के नाम पर धब्बा लगाया गया। आरम्भ में मुसलमानों ने वे निर्दयतापूर्ण अत्या-

चार किये कि उनका वाणीसे वर्णन नहीं हो सकता। इटली (Italy) के बादशाहों ने ईसाइयों का वह खून किया कि उसको ईश्वर ही जानता है। भारतीय इतिहास में कहीं एक तो ऐसा उदाहरण उपस्थित कीजिये !

स्वामी जी की असहिष्णुता वास्तविक और यथार्थ थी। वे लोगों से क्रुद्ध नहीं होते थे वरन् उनके आचरणोंपर होते थे। इसी प्रकार आर्यसमाज भी अन्य मतों पर आपत्ति नहीं करता किंतु उनके आन्तरिक दुर्व्यवहारों पर करता है।

अब म० गांधी के कथन को लीजिये। स्वामी दयानन्द के जीवन (चाल चलन) में वे बहुमूल्य बातें थीं जिन्हें आप को अपने जीवन में घटाना चाहिए। शिवरात्रि में उनके हृदय में शङ्का उत्पन्न होती है जब तक निर्णय नहीं होता आत्मसन्तुष्टि नहीं होती। मूर्ति एक जड़ पदार्थ है और चूहा एक चैतन्य जीव। इस सचाई की खोज में स्वा० जी आत्मत्याग के लिए तैयार हो गये और अपना सारा जीवन वेदों की शिक्षा के उपार्जन तथा प्रचार में लगा दिया। यह एक गुण था।

स्वामी जी अपने गुरु का वह सम्मान करते थे जिसका कि हम स्वप्न में भी ध्यान नहीं ला सकते। एक दिन गुरु विरजानन्द के बहुत पीटने पर, अपने गुरु के दुर्बल शरीर और क्रोधी स्वभाव पर दया कर, हाथ जोड़ निवेदन किया, 'स्वामिन्, आप जब मुझसे नाराज़ हुआ करें तब किसी से मुझे पीटने के लिए कह दिया करें, आप स्वयं कष्ट न करें, मुझे पीटते हुए आपके कोमल हाथों में कष्ट होता होगा।'

तीसरी बात जो हम उनके जीवन में देखते हैं वह "निर्भयता" है। आप कुम्भ के मेले पर जाते हैं। करोड़ों यात्री पहिले स्नान करने के लिए लड़ रहे हैं। आप एक कोने में जाकर अपनी "पाखंड-खंडिनी पताका" गाड़ देते हैं। क्या इससे अधिक निर्भयता कोई हो सकती है? उनके जीवन में सैकड़ों ऐसी मिसालें मिलती हैं जिनको पढ़ कर हम दंग हो जाते हैं कि ऐसे समय में भी भारत माता ऐसे सुपुत्र उत्पन्न कर सकती है।

एक बात और थी कि सच्ची बात कहने तथा धर्म के प्रचार करने में वे किसी राजा तक से भी न डरते थे। आप जयपुर गये। वहां के राजा ने कहा, 'आप पुराणों के विरुद्ध न बोलें।' स्वामी जी ने कहा, मैं आपके राज्य को तो छोड़कर दो दिन में बाहर हो जाऊँगा परन्तु परमेश्वर के राज्य से किस प्रकार बाहर हो सकता हूं।'

जोधपुर के राजा भी एक बाज़ारी औरत के हाथ में थे। आपने एक दिन यह बात देखी और डाँटकर बोले, "क्या शेर राजा इन कुतियों से सिंह पैदा कर सकते हैं"? यदि आज दयानन्द होते तो भारतीय राजाओं का अपमान इस प्रकार न होता जैसा कि अब हो रहा है।

इन्हीं बातों पर आर्यसमाज की शक्ति स्थिर है। कल एक भाई ने कहा, "समय पर समाजियों में जोश तो अवश्य आ जाता है, पर अच्छा हो कि यह उत्साह सदा बना रहे।" इस समय तक आर्य समाज ब्राह्मणों का काम करती रही है। अब वह काम समाप्त हो गया। अब क्षत्रियों के काम की बारी आई है। क्षत्रिय बनो और क्षत्रिय पैदा करो। अपनी तथा अपने देश की रक्षा करो। वेदों में शस्त्र विद्या वर्णित है। इस दृष्टि से तो योरोप वाले ही अधिक वैदिक धर्मी हैं। आप नहीं हैं। यह सेवा आपके सुपुर्द है। खेद की बात है कि ऐसे देश के रहने वाले जिसके चारों ओर रूस, चीन, जापान और अफ़गानिस्तान जैसी शक्तियां विद्यमान हों समुद्र का मार्ग खुला हो, अपनी भी रक्षा न कर सकें।

आर्यवीरो आओ ! हथियार उठाओ ! यदि आज आप क्षत्रिय होते तो मुलतान, मलाबार और कोहाट की हृदय-विदारक घटनाएं न होतीं।

ख़लीफ़ाओं का समय गया। कमालपाशाओं का समय आ पहुंचा है। यदि आप वीर न बनोगे तो अन्य कौमों की खुराक बन जाओगे। अपनी स्त्रियों की रक्षा करो। Self-defence, आत्मरक्षा पहला कर्त्तव्य है। सिक्खों में यह बात वर्तमान है और आज दुनियां में उनकी बहादुरी का डंका बज रहा है।

वे आप की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं। आप के हाथों में कमजोर कलम है। उनके हाथों में तलवार की शक्ति है। अतः मैं आप से यही निवेदन करना चाहता हूं कि यदि आप हिन्दू जाति की रक्षा करना चाहते हैं तो आप हिन्दू जाति को बहुत जल्द वीर बनाइये।

भाई परमानन्दजी का व्याख्यान

प्रिंसिपल दीवानचन्द्र जी के पश्चात् रात्रि को भाई परमानन्द जी ने एक हृदयस्पर्शी व्याख्यान दिया जिसका सार निम्न लिखित है:—

भाइयो और बहनो! बहुत दिनों से मेरी व्याख्यान देने की श्रद्धा नहीं बढ़ी, मैं सोचता था कि मुझे आपके सामने खड़ा होना चाहिये या नहीं। मगर मेरी आत्मा के ऊपर एक बोझ था जिसका उतारना आवश्यक था। अगर मैं न बोलता तो पाप का भागी बनता। जितने भाई और बहन इस उत्सव में सम्मिलित हुए हैं वह विविध उद्देशों से आये हैं। कोई खेल के लिए, कोई सैर के लिए, कोई व्याख्यान सुनने के लिये। परन्तु आये हम सब उसी ऋषि की शताब्दी मनाने के लए हैं, अब हम धर्म पर कुछ विचार करेंगे। प्राचीन काल के इतिहास को देखए जब देश का अधःपतन आरम्भ हुआ तब सब वेद के मानने वाले थे। फिर यज्ञ का युग प्रारम्भ हुआ लोगों की यज्ञ में श्रद्धा बढ़ी उसका बहुत प्रभाव बढा। इसके बाद बौद्ध मत का बहुत दौर-दौरा हुआ। महात्मा बुद्ध ने एक प्रकार से यज्ञों के विरुद्ध युद्ध किया और लोगों को शुभ कर्मों के साधनों से भी मुक्ति दिलायी, महात्मा बुद्ध ने अपने प्रचारके लिए संघ स्थापित किये। ये भिक्षुक बनकर जंगल में बसते और धर्म प्रचार करते थे। बौद्ध धर्म के पश्चात दार्शनिकता प्रारम्भ हुई, शङ्कराचार्य ने दार्शनिकता पर धर्म की स्थापना की और बौद्ध धर्म को निकालने की कोशिश की। फिर तलवार का ज़ोर हुआ और मुसलमान बनाने के लिये तलवारें चलीं। इन दिनों बहुत से आदमी निकले। तुकाराम,भक्त तुलसीदास आदि ने हिन्दू धर्म की जड़ों को सुदृढ़ बनाया। उन दिनों हज़ारों हिंदू मारे जाते परन्तु इसलाम स्वीकार न करते। अन्त में एक ऐसी लहर उठी जिसने हवा और सूर्य के झगड़े की तरह काम किया। हवा कुछ न कर सकी और सूर्य ने धीरे २ सब कुछ कराया, अर्थात इसलाम जिस हिंदू जाति को दूर न कर सका उसे ईसाइयों ने पश्चिमी सभ्यता से दूर करना प्रारम्भ किया। जनऊ टूट गए, चोटियां कट गयीं स्वामी दयानन्दने इनका इलाज किया। बहुत से इलाजों में से एक इलाज यह था कि आर्यसमाज की स्थापना की, इन सब प्रयत्नों के अन्तर्गत एक भाव था वह यह कि देश धर्म का उद्धार कैसे हो। उन्होंने संस्कार और तर्क पर ज़ोर दिया। इस समय मेरे हृदय में एक विशेष बात है जिसे निवेदन करता हूं। कोहाट में आर्य, सनातनी आदि सब रहते थे, हिंदुओं की चार पांच हज़ार की आबादी थी, वह आज सब अपने शहर को छोड़कर दूसरे शहर में हैं। इस समस्या की पूर्ति करनी है और सोचना है कि हम देश धर्म को कैसे स्थिर रख सकते हैं। महात्मा गांधी अभी इस घटना के सम्बन्ध में रावलपिंडी गए थे वहां के मुसलमानों को भी निमन्त्रित किया था, मगर वह मुसलमान जो सरकार के साथ बात चीत करते थे न आए, परन्तु जो उपद्रव के कारण समझे जाते थे वे आये। महात्माजी के साथ बात चीत करने से मालूम हुआ कि लड़ाई का मूल कारण 'कृष्णसन्देश' नामक पुस्तक न थी—

अपितु यह बात थी कि हिंदू लोग मुसलमान हुए लोगोंको वापिस लेनके लिए उन्हें शुद्ध करते हैं। वहां पर उन्होंने बतलाया कि डेढ़ सौ नर नारी प्रतिवर्ष मुसलमान बनते थे। महात्मा जी ने पूछा कि स्त्रियों को किस प्रकार मुसलमान बनाया जाता है। उत्तर मिला कि जो विवाहिता होती हैं मुसलमान होने के बाद उनकी पहली शादी मसूख हो जाती है। महात्मा जी ने रात भर सोचकर बतलाया कि इस बात चोत से उनके आत्मा में एक परिवर्तन पैदा होगया है। उपद्रव के पूर्व मुसलमानों ने हिंदुओं का इसी कारण बहिष्कार कर दिया था। मैं कहता हूं कि मेल मिलाप हो, स्वराज्य हो, अवश्य हो। परंतु मैं देखता हूं कि एक बात मुसलमानों के हृदय में काम करती है कि सबको मुसलमान बनालें। लाहौर में कई मुहल्ले ऐसे हैं जहां कि कई बार मुसलमानों ने हिंदू स्त्रियों को छिपाए रक्खा। एक जगह पता लगा तो दूसरी जगह ले गए। आर्यसमाज का गौरव तभी बढ़ सकता है जब वह हिंदू जाति की रक्षा का भार अपने ऊपर ले। आर्यसमाज हिंदू जाति की रक्षा के लिए बना है। स्वामी दयानन्द ने इसी डूबती नैया को बचाया था। इस बात के लिए उन्होंने सब कुछ बलिदान कर दिया। अगर आर्य-समाजी ऐसा करेंगे तो इससे स्वामी दयानन्द और स्वामी विरजानन्द जी की आत्मा का मिशन पूरा होगा। आप इससे सहमत न हों परन्तु मैंने अपने हृदय का भाव आपके सम्मुख रख दिया है। अगर कप्तान अच्छा हो तो वह जहाज को तूफान से निकाल लेगा। अगर न निकाल सकेगा तो जहाज़ के दूसरे यात्रियों के साथ वह भी डूब जायगा। यही हाल आर्यसमाज का है। ऋषि दयानन्द का मिशन तब पूरा होगा जब कि सच्चे क्षत्रिय, सच्चे ब्राह्मण और सच्चे देशभक्त पैदा होंगे। कोहाट के उपद्रव में कई आदमियों ने सच्चे क्षत्रियों की भांति काम किया। एक काहनसिंह ने चार पांच घंटे अकेले सारे मुहल्ले को बचाये रक्खा बाद को पकड़ कर मार दिया गया। एक स्त्री ने अपने घायल पति की रक्षा की और तब तक जान से इन्कार किया जब तक उसे लाया न जा सका। इसी तरह आज हमारा प्रधान कर्तव्य आत्मरक्षा होगा, अगर आर्यसमाज कर्तव्य सिखलायगा तो वह हिंदू जाति का प्रधान अंग बन जायगा। शताब्दी के पवित्र अवसर पर धर्म को बचाओ। धर्म को बचाइये वह आपकी रक्षा करेगा। अन्त में भाई जी ने स्त्रियों से प्रार्थना की कि वे अपने आपको और अपनी पुत्रियों को इस काम के लिये तैयार करें।

पांचवां दिन १६-२-२५ प्रातःकाल

महात्मा हंसराज जी का भाषण।

आज प्रातःकाल प्रथम मुख्य मण्डप में श्री स्वामी सर्वदानन्द का वेदोपदेश तथा साम गान होने के पश्चात् महात्मा हंसराज जी का एक मनोहर व्याख्यान हुआ। महात्मा जी ने अपने भाषण में कहा:--

देवियो तथा प्यारे भाइयो!

आज का दिन बड़ा शुभ है। आज जो प्रसन्नता मुझे हो रही है उसे मैं छिपा नहीं सकता। यद्यपि यह बड़ा कठिन काम है तथापि हमारा कर्तव्य है कि हम आर्यसमाज के आन्दोलनों को देखें, उनपर विचार करें और भविष्य के कार्यक्रम के विषय में अपने विचार स्थिर करें।

आर्यसमाज की आधारशिला एक बड़े व्यक्तित्व पर रखी गई है। मुझ से कहा गया था कि मैं समाचारपत्रों द्वारा स्वामी जी विषयक अपने विचारों को जनता के समक्ष रक्खूं, परन्तु यह सम्भव न था, अतः न हो सका। लोग अब तक स्वामी जी तथा उनके मिशन को नहीं समझे। बहुत से तो कहेंगे कि स्वामी जी में कोई चमत्कार नहीं था अतः वे बड़े आदमी नहीं थे। परन्तु आर्यसमाज तो स्वयं उनको मानवता से ऊपर अवतारादि

कुछ नहीं मानता, न उन्हें किसी धर्म का प्रवर्तक समझता है। वह तो उस महान् पुरुष को वैदिक धर्म का एक सच्चा उपदेशक समझता है और समझता रहेगा। उन्होंने वेदोंका पठन पाठन किया और निश्चय किया कि वे ईश्वरीय ज्ञान के भण्डार हैं। उनके अर्थ लोगों के सामने रक्खे। लोगों ने पूछा, "ऋषियों में आपका कौनसा स्थान होना चाहिए"? वे इसका उत्तर देते हुए कहते हैं, कि ऋषि काल में तो शायद कोई मुझे ऋषि भी न कहता! आर्यसमाज ऋषि को रसूल वा पैग़म्बर नहीं मानता, न यह कि उनके द्वारा मुक्ति मिलेगी। यह भाव तो केवल हमारे मुसलमान और ईसाई भाइयों में है।

दयानन्द हमारे धर्म के सच्चे रक्षक थे। उन्होंने धर्म को बचाया। उनके नाम की जय बोलने और समाज का सभासद बनने से ही कार्य सिद्ध न होगा। इस के लिये स्वयं सदाचारी और संयमी बनना पड़ेगा। हमें स्वार्थत्याग, देशसेवा, समाजसेवा और जातिसेवा के भावों का अपने में समावेश करना पड़ेगा जैसे कि ऋषि ने किया। गद्दी पर लात मारी, धन को परवाह न की, वेद का प्रचार किया, ईंटें खायीं, गाली खायीं परन्तु दृढ़ रहे। उन्होंने जाति-सुधार, देश-सुधार, धर्मोद्धार और आप सब के लिये ही सब कुछ किया। स्वामी जी से उन के कुल कुटम्ब का नाम पूछा गया परन्तु उन्होंने केवल रियासत का ही नाम बतलाया। उन्हें इसका भय था कि मेरी मृत्यु के बाद घर वाले मठधारी न बन जायँ और पूजा न होने लगे। उन्होंने मान मर्यादा की बलि चढ़ा दी और इन्हीं त्यागों का फल आज आपके सामने है। राव राजा तेजसिंह जी के कथनानुसार उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों का प्रचार और मान किया।

उन में अपूर्व शक्ति थी। वे बड़े बलवान थे। उनका यह विचार नहीं था कि योगी को पतला दुबला और निकम्मा होना चाहिए और साधुओं की नाईं उनकी यह धारणा नहीं थी कि परमात्मा के मार्ग में लगे हुए योगी का संसार से कोई सम्बन्ध नहीं। वे समझते थे कि योगी का, देश जाति और संसार के हित के लिये, सत्पथ का उपदेश करना परम कर्तव्य है।

सज्जनो! आर्यसमाज की तह में उसी का व्यक्तित्व है। उस के आदेशानुसार चलने से आर्यसमाज सदा फलता फूलता रहेगा। उसी व्यक्ति के महत्व के कारण आर्यसमाज में और कई विशेषताएं हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपना आदर्श बुद्धिवाद पर रखता है। उसने बतलाया कि परमात्मा ने वेद और संसार को रचा है। वैदिक ज्ञान परमेश्वरीय ज्ञान है। उस ज्ञान और सृष्टि क्रम में कोई भेद नहीं है और यही धर्म की बड़ी कसौटी है। इसलाम और ईसाई धर्म इस कसौटी पर ठीक नहीं उतरते। मज़हब के नाम पर उन्होंने बड़े २ अत्याचार किये। उन्होंने पृथ्वी को गोल और सूर्य की परिक्रमा करने वाली बताने वालों पर जुल्म किये। उन्हें जेलखाने भेजा। इसलाम का यक़ीदा है कि मज़हब में अक्ल को दख़ल नहीं। वह मौअजज़े, आदि मानता है। चन्द्रमा के अंगुली से टुकड़े २ हो सकने पर उसे विश्वास है। यह बात विज्ञान से सर्वथा असम्भव है। परन्तु वेद के सृष्टिक्रम और विज्ञान में कोई भेद नहीं है।

आर्य समाज का जहां धर्म-प्रचार और वेद-प्रचार कार्य है वहां विज्ञान को भले प्रकार समझना, सृष्टि क्रम का जानना और विद्या-प्रचार भी उसका मुख्य कर्तव्य है। हमारा सिद्धांत है कि विद्या का प्रचार और अविद्या का नाश करना चाहिये। इसी सिद्धांत पर स्कूल, कालिज, पाठशालाएं और गुरुकुल भी खोले गये हैं। इनमें अकेला पञ्जाब ३५ हज़ार छात्रों को शिक्षा दे रहा है। यदि आप 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ेंगे तो इन सब विषयों को विशद रूप से जान लेंगे।

गीता में लिखा है कि क्षत्रिय युद्ध से न भागे परन्तु स्वामी जी ने बतलाया कि क्षत्रिय का धर्म युद्ध से न भागना है परन्तु यदि भागे बिना प्राण रक्षा सम्भव न हो तो भाग कर प्राण संरक्षण भी क्षात्र धर्म है। ऋषि प्रत्येक बातको शास्त्रोक्त प्रमाणों से सिद्ध करके मानते थे। उन्हें अधूरी बात पर विश्वास न था। उनका सच्चा विचार बुद्धिवाद पर अवलम्बित होकर सार्वभौम भी था। उन्होंने कहा है कि प्रत्येक प्राणी को उचित है कि अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न होकर सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझें। इसके लिये उन्होंने जनता को बलिदान का उपदेश दिया। और फलतः स्वयं सेवक के रूप में आर्य समाज कांगड़े के भूचाल में और मलाबार में पीड़ितों की सहायता करने के लिए गया और जानको जोखिम में डाल कर काम किया जिस समय मलाबार में मुसलमान हिन्दुओं के शिर काट कर कुओं में डालते थे उस समय म० खुशहालचन्द्र जी ने तथा अन्य पुरुषों ने कैसा आश्चर्यपूर्ण कार्य किया। पीड़ितों को भोजन पहुंचाया। एक हज़ार मुसलमान हुए हिन्दुओं को फिर से वापस लिया। कांगड़े में कालेज के विद्यार्थियों ने दबी हुई स्त्रियों को निकाला। कोहाट में की हुई सहायता भी किसी से छिपी हुई नहीं है। इन चालीस वर्षों में अभी एक कार्य नहीं हुआ और वह है कोढ़ीख़ाना खोलना। वह भी आपके त्याग से होना चाहिये। ऋषि ने प्राणिमात्र को वेद पाठ का अधिकार दिया। समाज को उच्च और विशाल बनाया। वेद प्रचार का भार आप को सौंप गया। आपका धर्म है कि आप उसके आदर्श को पूरा करें।

रात्रि समय मुख्यमंडप में ७॥ बजे कार्यारम्भ हुआ। कुछ बालिकाओं द्वारा संगीत होने के पश्चात् डा० दमयन्तिदेवी का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ।

डा० दमयन्तिदेवी का व्याख्यान

पूज्य माताओ एवं पूज्य भाइयो!

इस समय आवश्यक न था कि मैं खड़ी होकर आप के सम्मुख अपने विचारों को प्रगट करूं। मेरे एक भाई ने अभी आप लोगों से आज के खेल तमाशों के स्थगित होने के विषय में कहा है तथा साथ ही साथ स्त्रियों से प्रार्थना की गई है कि वे भी आज कुछ काम करें। अतः मैंने भी आप के कानों तक कुछ शब्द पहुंचाने का साहस किया है। मेरा तात्पर्य मेरी माताओं से है। आप जानते हैं कि जब संसार में कोई राष्ट्र उन्नति करने के लिए लालायित होता है उस समय वह अपनी कमजोरियोंपर विचार किया करता है। उस समय विचार उत्पन्न होता है, कि हमारे पतन का क्या कारण है? वैद्यक शास्त्र में किसी व्यक्ति के रुग्ण हो जाने पर रोग का निदान ही प्रधान माना जाता है। आज कल लोग निदान किए बिना ही चिकित्सा करना आरम्भ कर देते हैं जिसका फल स्वरूप रोग-वृद्धि हो जाती है और अन्त में जिस समय वे डाक्टरों के पास पहुंचते हैं उस समय डाक्टर लिख देते हैं Remove the cause कारण को दूर करो। आप लोग व्याकुल न हों, मैं डाक्टरी के विषय में व्याख्यान देने नहीं खड़ी हुई हूं। जब मनुष्य-रक्षा के लिए एवं शरीर को सुख देने लिये कारण खोजना परमावश्यक है, तब क्या उस देश की रक्षा के लिए जो चिरकाल से रुग्ण है, उसके रोगका निदान जानकर उपाय सोचना आवश्यक नहीं है? यदि इसके रोग ग्रसित हो जाने पर कोई योग्य डाक्टर इसके रोग का कारण ढूंढने के लिए तन, मन और धन से कटिबद्ध हो जाता और उसके दूर करने में अपनी बलि दे देता, तो आज इसकी ऐसी बुरी अवस्था न होती और हम लोग इस पाखंड नगरी मथुरा में न आते।

हमारी हिंदू जाति का नाम मिट रहा था। उस समय ऐसा डाक्टर आता है जो हमारी नाडी देखकर

हमारे मुर्दा पड़े रहने का कारण जान लेता है। वह आते ही दवाई देने का प्रयत्न नहीं करता है। बहुत से डाक्टर रोग को न जानकर दवाई देने में मूर्खता करते हैं। वह डाक्टर महर्षि दयानन्द था। उन्होंने रोग का कारण ढूंढा और उसे हमारे सामने रख दिया। उन्होंने अपने आत्मिक बल द्वारा रोग के समस्त कारणों को ढूंढ कर हमारा इलाज किया और हमारे दुःखों को दूर कर दिया। परंतु हमारे दुर्भाग्य से वे अधिक काल तक यहां न रह सके।

हमने अछूतों के साथ दुर्व्यवहार किया और हमारे इस प्रकार के दुर्व्यवहार ने भारत का विनाश किया। हम लोग वैदिक धर्मावलम्बी होते हुए भी दुःखी हैं। देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी के हृदयवेधी व्याख्यान को सुनकर आप लोगों को ज्ञात हो गया होगा कि हिंदू जाति पर कितने अत्याचार किए जा रहे हैं। मैं आप की सेवा में निवेदन करती हूं कि हमें कारण ज्ञात है परंतु हम उसका उपाय नहीं कर सकते। इसमें हमारे पूज्य गुरुजनों माताओं एवं भाइयों का दोष नहीं हो सकता, इसमें तो हमारा ही दोष है हमारी कुरीतियां ही हमारे दोष हैं। सब से भयंकर कुरीति बाल--विवाह है। हमारी इच्छा है कि हमारी पुत्रियां और बहिनें मिशनरी स्त्रियों के समान हों। मैंने देखा है कि पिता की इच्छा होती है कि हमारा पुत्र देश और जाति की सेवा करे, परन्तु माता सभा सोसाइटियों में न जानेके कारण उसे शिक्षा नहीं दे सकती। अतः पिता की इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती। अब संसार बदल गया। हमारे यहां के दुर्गुणों के कारण हमारे दिमाग़ कमज़ोर हैं। लोग कहते हैं कि भाइयों! तुम बड़ों का कहना न मानकर बालकों का कहना क्यों मानते हो? आप एक हज़ार वर्ष पहिले के बूढ़ों की आज्ञाओं पर ध्यान दें।

मैं पञ्जाबी भाइयों और बहिनोंका इस विषयपर विशेष ध्यान आकर्षण करना चाहती हूं। यहां पर बड़ी २ कांग्रेसें और कान्फ्रेंसें हुईं और जनता को अछूतों को मिलाने के लिए उपाय बतलाये गए। क्या आपने उन उपायों पर अमल किया? पञ्जाब में स्यापा की बड़ी बुरी प्रथा वर्तमान है। इसमें बड़े दोष हैं। बदन को उघाड़ कर बाजारों में रोते हुए फिरना कहां की सभ्यता है। हाय २ कर नाचना कहां की बुद्धिमत्ता है। ये वैदिक नियम का खंडन करती हैं। वेद की शिक्षा है जो ईश्वर ने किया है उसी पर सन्तुष्ट रहो। मैं अपनी पञ्जाबी माताओं और बहनों से निवेदन करती हूं कि वे इस कुप्रथा का परित्याग कर दें, नहीं तो सी० पी० और यू० पी० की स्त्रियां हमपर हँसेंगी।

यदि दयानन्द डाक्टर के रूप में न आते तो हमारी जाति और देश का नाम कभी का मिट गया होता। मिशनरी स्त्रियां आतीं और हमारे बच्चों को मिशनरी बना देतीं। हमारे यहां शफाखानों में चार आने में बालक बेचा जाता है। जबतक हम इन बच्चों की रक्षा न करेंगे तबतक हमारी रक्षा भी नहीं हो सकती। ऋषि दयानन्द के अन्तःकरण में बड़ी दया थी। वे इस बात को नहीं देख सकते थे कि हमारे हृदय के टुकड़े दूसरी जातियों में चले जावें। मेरी अन्तिम प्रार्थना है कि हमारी माताएं और बहनें वैदिक धर्म एवं ऋषि दयानन्द की आज्ञाओं का पालन करती हुई देशोद्धार में संलग्न रहें!

श्री० चमूपति का व्याख्यान

तत्पश्चात श्री चमूपति जी एम. ए. (पञ्जाब) का निम्नलिखित व्याख्यान हुआ।

देवियो और भद्र पुरुषो!

मैं तो मथुरा नगरी में शिष्य रूप से आया था न कि इस वेदी पर खड़ा होकर व्याख्यान देने के लिए। मैं तो यह विचार मन में रखकर आया था कि अब गुरु की नगरी में चलता हूं। वहां पद पद पर शिक्षा ग्रहण करूंगा और उन शिक्षाओं को

अपने जीवन का आधार बनाकर घर को लौटूंगा। परन्तु अब यह कार्य सौंपा गया है कि इस वेदी पर खड़ा होऊँ। मैं लिखने का प्रयत्न कर अपने को उपदेशक नहीं बना सकता। मेरे हृदय का इस समय वही भाव है जो इधर उधर प्रचार करके अपने माता पिता के घर पर पहुंचने वाले व्यक्ति का होता है। मैं लाखों बार उपदेशक बनने का विचार करता हूँ परन्तु बन नहीं पाता। यह वही स्थान है जहां मैंने उपदेश धारण किया और हमारे गुरु ने उपदेश दिया था। यह स्थान कृष्ण का मक़सूद समझा जाता है। जब यहां कंस राजा था तब यहां की प्रजा दुखी थी और प्रजा के कष्ट निवारणार्थ एक तंग कोठरी में कृष्ण ने जन्म लिया था। वे व्रजपाल थे। लोगों के ऊपर होने वाले बलात्कारों और अत्याचारों को दूर करने के लिए उनका जन्म हुआ था। मुरली द्वारा स्वाधीनता के सन्देश को सुमधुर ध्वनि में गुञ्जायमान करने के लिए उनका जन्म हुआ था। वह ध्वनि कुरुक्षेत्र में गूंजी थी। उसने रुद्र रूप धारण किया और पापों का नाश किया। कृष्ण को व्रजपाल कहा जाता है और इसलिए कहा जाता है कि उन्होंने मथुरा में जन्म लिया था। आज का समय इसलिए नहीं है कि कृष्ण पर कुछ विचार किया जाय क्योंकि यह पुराना स्वप्न हो गया और इसे कई प्रकार से लाञ्छित किया जा चुका है। लोगों ने प्यार करते करते अपने प्यारे को प्यार के योग्य नहीं रक्खा।

श्री कृष्ण ने पहला जन्म लिया तो स्वामी दयानन्द ने दूसरा जन्म लिया और संसार में दूसरा जन्म ही असली जन्म है। कृष्ण ने अपनी माता के गर्भ से जन्म लिया तो स्वामी दयानन्द ने अपने गुरु से जन्म लिया। शास्त्र में लिखा है कि जब लड़का गुरुकुल में प्रवेश करता है तब आचार्य उस को उसी प्रकार लेता है जिस प्रकार माता अपनी गोद में लेती है। यदि श्रीकृष्ण ने जेल में जन्म लिया तो स्वा० दयानन्द छोटी सी कोठरी में पैदा हुए। अन्धेरे से रोशनी का जन्म होता है। रात में से दिन का उदय होता है। उसी प्रकार तंग कोठरी से प्रकाश होता है। वेद में लिखा है कि आत्मशक्ति का जन्म आग की भट्टी में से होता है।

जब स्वामी जी पाठशाला में थे तब उन्हें झाड़ू देने का काम सौंपा गया था। उन्होंने गुरु की कोठरी में झाड़ू दी और संसार को शिक्षा दी कि वह भी झाड़ू दे। गुरु विरजानन्द समझते थे कि यही झाड़ू संसार की कुरीतियों को बुहार देगी। यह वही स्थान है जहां ऋषि दयानन्द पानी भरकर लाते थे और गुरु को स्नान कराते थे। आज उनकी बहाई हुई यमुना में समस्त संसार स्नान करता हुआ दीख पड़ता है। आज हम को यह दिखाना है कि यह स्थान एक समुद्र है और लोग इसमें बहे चले जाते हैं। कृष्ण ने अपना जीवन लीला में बिताया था। ऋषि दयानन्द ने अपना समय भट्टी में बिताया था।

स्वामी दयानन्द के आने के पूर्व सब ऋषियों ने समझा था कि हमें काम नहीं करना है। स्वामी दयानन्द ने कहा कि वेद में लिखा है कि आत्मा कर्म करने के लिए है और वह कर्म करते २ जायगा। स्वामी दयानन्द के जीवन से यदि कोई शिक्षा मिलती है तो वह यह है कि आत्मा कर्म करते २ जाता है। स्वामी दयानन्द का जीवन कर्ममय जीवन है।

प्रोफेफर मैक्समूलर एक स्थान पर धर्मों व मतों का विभाग करते हुए कहते हैं, धर्म के दो रूप हैं एक प्रचारक धर्म और दूसरा अप्रचारक धर्म। मिश्नरी का धर्म प्रचारक धर्म है? संसार में जो फिर जन्म लेता है वह समझता है कि संसार पर अपने धर्म की ज्योति डालदे। अप्रचारक धर्म वह है जिसके अनुयायी यह चाहें कि हमारे धर्म का ससार में प्रचार न हो। प्रोफेसर मैक्समूलर लिखता है 'ईसाई और इस्लाम ही प्रचारक धर्म

हैं। बौद्ध और हिन्दू धर्म अप्रचारक धर्म हैं। वैदिक धर्म भी अप्रचारक है।

यदि स्वा० दयानन्द के उपदेशों को हम छोड़ देते तो सचमुच हमारा धर्म अप्रचारक धर्म था। हम कहते थे, हम दया करते हैं, परन्तु दया का स्वरूप नहीं जानते थे। आज आर्य जाति का बच्चा २ जानता है कि जो हिन्दू मुसलमान हो गया हो उसे हम अपनी जाति में पुनः ले सकते हैं। बात यह है कि लोगों ने धर्म के स्वरूप को शुद्धि के स्वरूप में नहीं पहिचाना। इसका स्वरूप समझा है मौलाना मुहम्मदअली ने। कोकोनाडा कांग्रेस में उन्होंने कहा था कि हिंदू और मुसलमानों में केवल इतना ही भेद है कि 'मुसलमान एक हंडिया पकाते हैं। वे बड़े से बड़े आदमी को इसमें से खिलाना चाहते हैं। वे सब इस विषय में एक हैं। विपरीत इसके हिंदू समझता है कि उसने एक बड़ा चौका तैयार कर लिया है और उस के भोजन पर हरेक की दृष्टि नहीं पड़ सकती है।'' हम यह समझते हैं कि मुसलमान को मुसलमान रहने दें। ईसाई को ईसाई रहने दें। असल में हम आलसी थे हम Struggle में आन से डरते थे। स्वा० दयानन्द आया। उसने अपने नाम को सार्थक किया। दया को क्रिया का रूप दिया।

बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ राजकुमार चीन में गया था, बर्मा में गया था, परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि आज बौद्ध धर्म को भी अप्रचारक धर्म कहा जाता है। स्वा० दयानन्द आये और उन्होंने वेद के शब्दों में नाद बजाया और कहा कि हमें सब को आर्य बनाना है। ऐसे नहीं जैसे कि मौ० ख्वाजा हसन निज़ामी चहते हैं। आज स्वामी दयानन्द का नाम लेते हैं तो उनके जीवन की क्रिया मालूम हो जाती है कि किस प्रकार उन्होंने अपने मत को फैलाया था।

जिस दिन मैं लाहौर से रावलपिंडी आया उस दिन लोगों ने मुझसे कहा, कि यह वही स्थान है जहां स्वामी दयानन्द भटकता था और लोग उसे बैठने नहीं देते थे। यह वही स्थान है जिस पर लोगों ने ईंट पत्थरों से स्वामी का स्वागत किया था। अब लोग उसे खोजते हैं परन्तु वह नहीं मिलता है। आज वह दिन है कि जिस दिन संसार बदला है। जमीन आसमान बन गई है और आस्मान् जमीन बन गया है। आज लोग कहते हैं, "स्वामी दयानन्द! आओ और अपने चरणों से हमारी आँखों को तृप्त करो।'' लाहौर में जगह नहीं मिलती थी। एक मुसल्मान भाई ने जगह दी थी। जिस समय मैं लाहौर के मुसलमानों का विचार करता हूं तो सब से पहले रहनुमाखां का ध्यान आता है। सब लोग कहते हैं कि यह वही मुसलमान है जिसने स्वामी जी से अपने मकान के पास ठहरने को कहा था। उस समय मैं मुहम्मदअली का नजारा भूल जाता हूं। मैं उसका बड़ा कृतज्ञ हूं। स्वा० दयानन्द उस मुसलमान के कोठे पर जा उतरे। रात्रि में लैक्चर होता है विषय है '.कुरान का खंडन'' । आवाज उठती है "विचित्र प्रकार का आदमी है।'' पौराणिक अपने घर में स्थान नहीं देते हैं, ब्रह्मसमाजियों ने उसे अपनी वेदी से नीचे उतार दिया है, बड़ी कृपा से रहनुमा ने स्थान दिया है पर उस उपकार का बदला यह है कि स्वामी कुरान का खंडन करता है।'' स्वा० दयानन्द कहता है, " इसमें सन्देह नहीं कि जब मुझे कहीं स्थान न मिला तब रहनुमाखां ने अपने घर में बसाया और सहायता के लिए आसन बिछाया। मैं भी उसे मानता हूं। परन्तु मैंने तो घर बार छोड दिया है, आकाश की छत के नीचे बसेरा करता हूं, समस्त पृथ्वी मेरा घर है। कुछ दे नहीं सकता हूं। रुपया नहीं, मान नहीं, राज्य नहीं। मैं क्या दे सकता हूं? एक चीज है जिसके लिए माता की तपश्चर्या को पीछे छोड़ा। पिता के प्रेम को छोड आया हूं। मित्रों की मित्रता को त्याग आया हूं। अनाथ हो गया हूं। अकिंचन हो गया हूं। जंगलों

में फिरता हूं। पहाड़ों में फिरता हूं। झाड़ियों के अन्दर कांटों को लांघकर फिरता हूं। किसलिए? एक सत्य की खोज के लिए। किसी ऋषि के विषय में सुनता हूं कि जंगलों में रहते हैं और वहीं पहुंचता हूं।"

एक स्थान पर एक पादरी स्वामी जी का भक्त बन गया है। वह गिर्जा में उनकी प्रार्थना किया करता है। एक ईसाई पादरी स्वा० दयानन्द के चरणों में गिरता है और उसका नाम पड़ता है भक्त स्कौट। वह प्रति दिन आता है। एक दिन स्कौट भक्त नहीं आया। क्यों नहीं आया? आज रविवार है। एक दिन ऋषि दयानन्द गिर्जा में जाता है और वहां उपदेश बन्द हो जाता है। स्वामी जी को उपदेश देन के लिए खड़ा किया जाता है। वह उपदेश देते हैं। वह उपदेश क्या है? वेद कहता है कि सारे संसार को आर्य बनाओ।

दूसरे धर्मों ने अपना२ प्रचार किया। किसी ने तलवार से और किसी ने धन से। स्वामी दयानंद ने धर्म के मार्ग से किया। वह अधर्म के मार्ग से नहीं कर सकते थे। यह क्रियात्मक उपदेश है। आज तो राजनैतिक क्षेत्र में उपदेश दिया जाता है कि यदि धर्मोपदेश होगा तो मतभेद उत्पन्न होगा। आप विचार करें कि इतना झगड़ा बढ़ गया है, अतः हमें उदार बनना आवश्यक है। स्वा० दयानंद के आने से पहिले आर्यों की आंखें नीची थीं। स्वामी ने उन्हें ऊँचा कर दिया।

हम आज मथुरा नगरी में शिष्य भाव से आये हुए हैं। अतः यह विचार लेकर जांय कि ऋषि सारे सँसार के लिए था। हम भी समस्त सँसार के हो जाँय। भारत के लिए ही नहीं, एशिया के लिए ही नहीं।

एण्ड्रयूज़ लिखता है कि फ़िज़ी, मौरिशस और इंग्लैण्डादि द्वीपों में स्वामी का नाम रौशन है। इस से मैं समझता हूं कि उसका नाम सार्वभौम होने वाला है। अब आर्यों का यह कर्त्तव्य होगया है कि वे अपने जीवन को प्रचार के अर्पण कर दें और जियें तो इस लिए जियें कि वेदों के सन्देश का प्रचार करना है। जब मुसलमान मेरी आँखों के सामने आते हैं तब मुझे उनके अगुआ रहनुमाओं की याद आती है और जब ईसाई सामने आते हैं तब भक्त स्कौट की याद आती है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि लोग इसी प्रकार लोगों का उपकार करते हुए ईश्वर के भक्त बनें।

इस व्याख्यान के पश्चात् स्वामी सत्यानन्द जी का निम्न प्रकार धर्मोपदेश हुआ।

स्वामी सत्यानन्द जी का धर्मोपदेश

देवियो और भद्र पुरुषो!

आज आप यहां शताब्दी मनाने की ख़ातिर जमा हुए हैं और यहां से आपको कोई प्रसाद लेकर जाना चाहिए. स्वामी जी शिक्षा का भाव प्रबल रूप से धारण करके जाना चाहिए। महापुरुष जातियों को पैदा करने की ख़ातिर आया करते हैं। महाराज ने हम पर बड़ा उपकार किया है जो हमारे सामने एक उद्देश्य रखा है। आर्य समाज का हिंदू-धर्म में जो सगठन हुआ है उसकी एक विशेषता यह है कि उसमें क्रिया को धर्म रूप में माना गया है। कोई कह सकता है कि वैष्णव आचार्य भी ऐसी ही शिक्षा देते हैं। परन्तु उनकी शिक्षा में वह पवित्रता न रही। अगर प्रीति विलास का रूप धारण कर ले तो वह अपवित्र हो जाती है। उन्होंने जिस प्रेम का प्रचार किया है वह विलास के कीचड़ में पड़कर गन्दा होगया है। ऐसे प्रेम ने हिंदू जाति को क्या शिक्षा देनी थी, हिंदुओं को इसने क्या जीवन देना था? ऐतिहासिक सज्जन इस बात को जानते हैं कि यह प्रेम हिंदू जाति को हर तरह गिराने वाला साबित हुआ है। क्षात्र धर्म क्यों गिरा? क्यों कि क्षत्रियों में से कर्म धर्म मिटते चले गये। मैं समझता हूं कि बौद्ध फ़िलासफ़ी ने भी हिंदू जाति

को बहुत कुछ नुकसान पहुंचाया है। स्वामी जी ने बतलाया है कि इहलोक और परलोक दोनों को बनाने वाला धर्म ही है। वेद जो प्रेरणा करता है वही धर्म है और उसी से मुक्ति मिलती है। महाराज के उपदेशों और शिक्षाओं में यह विशेषता है कि उन्होंने पुराने धर्म को पुनर्जीवित कर दिया है। वेद मुक्ति, कल्याण सब कर्मों को मानता है और वेद के मानने से ही आर्य जाति का कल्याण है।

छठा दिन २०।२।२५ प्रातःकाल

२० ता० के प्रातःकाल मुख्य मण्डप में पहिले श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी का वेदोपदेश तथा सामगान हुआ। तदनन्तर मा० आत्माराम जी ने स्वरचित 'दिग्विज्ञान' नामक पुस्तक के मुख्य २ भाग पढ़कर सुनाये एवं लोगों को स्वाध्यायशील बनने का उपदेश दिया। आपने अपने व्याख्यान में सद्ग्रन्थों वेदों और शास्त्रों का मनन करने के लिए जनता से अनुरोध किया।

अन्त में श्री नारायणस्वामी जी कार्य्यकर्ता प्रधान शताब्दी सभा का व्याख्यान हुआ।

श्री नारायण स्वामी का व्याख्यान

आपने कहा, "मुझे प्रसन्नता है कि आप लोग प्रेम-सूत्र में बँधे हुए यहां पर शताब्दि मना रहे हैं। क्या आपको स्वामी जी के कार्यारम्भ करने से पहले भारत की दशा का पता है? योरोप के लोग हिन्दुओं को ईसाई बनाने की चेष्टा करते थे। सन् १६१६ ई० के लगभग एक पोर्चगीज़ पादरी आया था। वह ईसाईयत का प्रचार करने के अभिप्राय से आया था। यदि तब लोगों के अन्तःकरणों में वेदों के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम होते तो सम्भव नहीं था कि वह अपने कार्य में सफलीभूत होता। उसने एक यजुर्वेद नामक पुस्तक बनाई और ब्रह्मचारी के वेष में प्रचार करना आरम्भ कर दिया। चूंकि लोग वेद की महिमा से अनभिज्ञ थे इस कारण उसे इस प्रकार से सहज ही में सफलता प्राप्त हो गई। लोग वेद के नाम पर अन्धे हो गये। ५०० आदमी बलात्कार ईसाई बनाये गये और बाद में इनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। ईसाई लोग कई प्रकार से उन्नति करते रहे हैं। हिन्दू स्त्रियां ईसाइयों के पास जाती थीं और उन्हें नवजात बालक अर्पण करने की उनसे प्रतिज्ञा कर आती थीं। दयानन्द की शिक्षा ने जमाने की लहर को पलट दिया।

स्वामी दयानन्द ने बतलाया कि धर्म और विज्ञान एक दूसरे के विरोधी नहीं प्रत्युत सहायक हैं। इनमें "किस प्रकार" और "क्यों" का मार्ग है। साइन्स "किस प्रकार?" का उत्तर देती है और धर्म 'क्यों?' का उत्तर देता है। जब तक ये दोनों न मिलें इन प्रश्नों का उत्तर देना असम्भव है। दयानन्द ने समस्त योरोप में यह अन्दोलन चलाया कि विज्ञान और धर्म भिन्न वस्तुएं नहीं हैं।

एक धार्मिक कान्फ्रेन्स में प्रश्न उपस्थित किया गया और एक लेख पढ़ा गया, जिनका आशय यह था कि ऐसा धर्म वा मत वाञ्छनीय है जो ईश्वर और मनुष्य के बीच सीधा सम्बन्ध कराये, और मार्फत की अवश्यकता न पड़े। हारवर्ड यूनिवर्सिटी के चैन्सलर ने कहा कि समस्त मतों में एक ऐसे व्यक्ति की सत्ता है जो ईश्वर और मनुष्य के बीच होता है। दयानन्द ने यह बतलाया कि आत्मा का परमात्मा के साथ सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। यही वेदों में लिखा है। बाहर से अन्दर आओ न कि अन्दर से बाहर जाओ। नारहोन जो कि अमेरिका का एक बड़ा दार्शनिक था नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर कहा करता था 'मैं गीतारूप नदी में प्रतिदिन स्नान किया करता हूं।' जब यह जंगल में रहता था तब किसी प्रकार का भय नहीं था। इसने अहिंसा का साधन किया। इसकी वैलडन नामक पुस्तक पढ़िये, इसमें लिखा है कि वेद ही पढ़ने योग्य पुस्तक है। वस्तुतः दयानन्द के विचारों का संसार में साम्राज्य है। दयानन्द की

शिक्षा का प्रभाव भारत के बाहर के देशों पर भी पड़ा। विदेशों में आर्यसमाजों की स्थापना हो गई है। स्वामी जी ने बाइबिल की त्रुटियों को दर्शाया। अमेरिका के पादरियों ने सन् १८९४ में निर्णय करके कहा कि बाइबिल ईश्वरीय नहीं है। न्यूयार्क के लार्ड कैशन ने लिखा है कि मसीह खुदा का बेटा नहीं था। आज ईसाई लोग बाईबल का भिन्न २ प्रकार से उलथा करते हैं। दयानन्द के किए हुए काम का यह प्रत्यक्ष फल है।

अमेरिका में संस्कृतके चार बड़े प्रेस खुले हैं। दुनियां वेग के साथ आपकी ओर बढ़ रही है। आप को उनका सहर्ष स्वागत करना चाहिये। यहां से अधिक संख्या में इंग्लैंड और अन्य देशों में उपदेशक भेजने चाहियें। स्वराज्य-प्राप्ति के लिये प्रयत्न इतना फलवान् नहीं हो सकता जितना कि विदेशियों की पब्लिक आपीनियन बनाने के लिये। लाखों रुपया भारत के विरुद्ध अनजानके किम्वदन्तियां उड़ाने में व्यय किया जाता है। अच्छा हो कि हम वैदिक धर्म के कार्यको शीघ्रातिशीघ्र हाथ में लेलेवें। सभायें करें और लाखों पुस्तकें प्रकाशित की जावें। पुस्तकें ऐसी हों जिनमें प्रत्येक विषय पर सविस्तर बहस की गई हो। आप के पास 'सत्यार्थप्रकाश" के अतिरिक्त विदेश में भेजने योग्य अन्य कोई पुस्तक नहीं है। आप ने स्वामीजी की सेवा के लिये क्या त्याग किया है? ज़रा विचारिये तो सही। हे राम और कृष्ण की सन्तान! वेदों के मानने वालो! जागो। आज ४० वर्ष व्यतीत हो गये हैं। आपने कुछ भी नहीं किया। योंही जय २ की ध्वनि करने का क्या अर्थ है? अपने जीवन इस मिशन पर बलिदान कर दो। देखना, एक संन्यासी के शब्द योंही न जायँ।

इस व्याख्यान की समाप्ति के साथ ही इस समय की कार्यवाही भी समाप्त हुई।

सातवां दिन ता० २१-२-२५

श्री नारायणस्वामी को मानपत्र

आज सम्मिलित प्रार्थना तथा श्री स्वामी सर्वदानन्दजी के धर्मोपदेश के अनन्तर श्री नारायणस्वामी जी को समस्त भारतवर्ष और उपनिवेशों की आर्य जनता की ओर से निम्न मानपत्र अर्पित किया गया। मानपत्र श्री शाहपुराधीश सर नाहरसिंह ने पढ़ा थाः—

श्रद्धेय स्वामी जी,

हम भिन्न २ प्रांतों तथा उपनिवेशों के आर्य नर नारी जो कि भगवान् दयानन्द की शतसांवत्सरिक स्मृति मनाने के लिये एकत्रित हुए हैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने के लिये श्रद्धासमेत आप की सेवा में यह मानपत्र अर्पण करते हैं। जो अनथक पुरुषार्थ, जो निःस्पृह तपस्या आप ने इस दयानन्द महायज्ञ को पूर्ण करने के लिये की है, उससे हमारा हृदय कृतज्ञता के सच्चे भावों से गद्गद हो रहा है और हमें निश्चय है कि आपकी आदर्श निस्वार्थ सेवा अगली पीढ़ी के लिये दृष्टांत बनेगी और उस की विद्युत् से न जाने कितने युवक हृदय प्रभावित होंगे।

आर्यसमाज का गौरव है कि उस में आप जैसे दयानन्द के सच्चे भिक्षु विद्यमान हैं, आपने आर्यसमाज और उस के प्रवर्तक महर्षि के काम पर सर्वस्व न्योछावर किया है, आपका विशुद्ध उन्नत चारित्र्य विद्वत्त, दृढ़ अध्यवसाय, आत्मस्वाध्याय, शांतियुक्त कर्मण्यता ये ऐसे गुण हैं जिन्हें हम सब अनुभव कर रहे हैं।

उस दयामय प्रभु के अचिन्त्य चरणों में हम सारे नर नारी अपनी यह हृदय-कामना पहुंचाते हैं कि वह आपको दीर्घायु और नवोत्साह प्रदान करे जिस से आप वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द

के विजय-नाद को दिगन्तव्यापी बनाने में अधिक और अधिक सफल हो सकें।

हम हैं
आपके प्रति कृतज्ञतापूर्ण
भारत और उपनिवेशों के
आर्य नर नारी।

मानपत्र पढ़ा जा चुकने पर निम्नलिखित महानुभावों के व्याख्यान श्री नारायणस्वामी जी के कार्य की प्रशंसा में हुए:-

स्वा० सत्यानन्द जी महाराज

भद्र पुरुषो!

यह जो स्वामी जी की पवित्र स्मृति में यज्ञ रचा गया है उसके ब्रह्मा श्री नारायणस्वामी हैं। अभी उन्हें एक अभिनन्दनपत्र भेंट किया गया है। मैं कहना चाहता हूं कि श्रेष्ठ पुरुषों की श्रेष्ठता इसी बात में होती है कि वे अपने तप से, अपने विशिष्ट प्रेम से, जाति और धर्म में आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान पैदा कर दें। हम दूसरे मुल्कों को देखते थे और विचार किया करते थे कि हे ईश्वर! हम में ऐसी शक्ति नहीं कि ४०--५० हज़ार आदमियों को ५--६ दिन में इकट्ठा कर सकें। सिक्खों का मिलाप देखकर हमें यह विचार होता था कि कोई दिन ऐसा आयगा कि जिस दिन आर्यसमाज इतने पुरुषों को इकट्ठा कर सकेगा। मैं कहना चाहता हूं कि यह धार्मिक महोत्सव अभूतपूर्व है। आज तक ४ लाख के लगभग स्त्रियाँ और पुरुष कदाचित ही किसी धार्मिक उत्सव में सम्मिलित हुए हों। यहां ऐसा उत्तम प्रबन्ध इतने दिनों तक रहा, यह स्वामी जी महाराज के तप का परिणाम है। अतः मैं आपकी एवं अपनी ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

म० मधुसूदन जी (कलकत्ता)

प्यारे भाइयो तथा बहिनो!

अर्वाचीन इतिहास में इस प्रकार के बृहद् यज्ञ का उल्लेख नहीं किया गया। भारत का वर्तमान इतिहास बतलाता है कि दो लाख आर्य पुरुष एवं देवियां केवल इस भाव के साथ यहां एकत्रित हुए हैं कि उस महर्षि को याद करें जिसने सच्चे मार्ग का अनुसरण किया था। आप लोग इस बात पर विचार करने के अभिप्राय से कि उसके बताये हुए धर्म की किस प्रकार उन्नति होगी, इकट्ठे हुए हैं। हमारे इस असीम आनन्द के दाता कौन हैं? वे हैं हमारे पूज्य नारायणस्वामी जी। उनकी कृपा से हमारा जन्म सफल हो गया। मेरा विचार यहां आने का न था, परन्तु जब बँगाल और बिहार के भाइयों ने बलपूर्वक कहा कि यदि मैं मथुरा न जाऊँगा तो मेरा जन्म सफल न होगा.तब मैं तुरन्त ही यहां आने के लिए तैयार हो गया। मैं बँगाल और बिहार की ओर से श्री स्वामी जी का हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

श्रीमती सत्यवती जी कन्या महाविद्यालय जालन्धर

भाइयो!

आज महर्षि दयानन्द की जन्म शताब्दी के उपलक्षमें अपनी श्रद्धा एवं भक्ति के पुष्प रखने के अभिप्राय से मैं इस सभा में उपस्थित हुई हूं। आज प्रत्येक स्त्री और प्रत्येक पुरुषको मैं ऋषि चरणोंकी ओर उमड़ते हुए देख रही हूं। वस्तुतः इस उल्लास एवं इस प्रोत्साहन का श्रेय इस यज्ञ के पुजारी श्री नारायणस्वामी जी को है। अतः इस महिला मंडल की ओर से मैं उन्हें कोटिशः धन्यवाद देती हूं।

म० खुशहालचन्द जी (पञ्जाब)

माताओ तथा सज्जनो!

एक बड़ा फूला फला वृक्ष देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। परन्तु इस वृक्ष की उत्पत्ति के लिए जिस बीज ने अपने आप को पृथ्वी में गला सड़ा दिया है उसकी ओर शायद ही आप की दृष्टि जाये।

परन्तु यह निर्विवाद बात है कि यदि बीज अपने को गला न देता तो सम्भव नहीं था कि वृक्ष उगे। यह शताब्दी महोत्सव आर्यों का इतना बड़ा विभव है कि सब कहते हैं कि इस जीवन में इस प्रकार का उत्साह नहीं देखा। कल मथुरा निवासी एक पौराणिक भाई को कहते हुए सुना कि आर्यसमाज ने सतयुग की एक झलक दिखादी। यह सब श्री नारायणस्वामी के तप का फल है। उनके हृदय में स्वा० दयानन्द जी के प्रति अचल प्रेम कूट कूट कर भरा है। उनके अन्दर वैदिक भाव विद्यमान है। आप उनकी मूर्ति देखकर यह न समझें कि वे अपना जीवन सुखपूर्वक बिता रहे हैं। उन्हें देखकर निम्न लिखित शेर याद आ जाता है:—

एक टीस जिगर में उठती है,
एक दर्द सा दिल में होता है।
हम रात को उठकर रोते हैं,
जब चैन से आलम सोता है॥

श्री वेचनदेव (मौरिशस)

देवियो तथा भद्र पुरुषो !

मैं अपना अहोभाग्य समझता हूं कि आज मुझे विद्वानों के सन्मुख इस उत्साह से खड़ा होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं इससे पहिले समझता था कि "नारायण" शब्द का प्रयोग करने से लोग तृप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार मौरिशस में जब मैंने शताब्दी का नाम सुना तो विचार किया कि अवश्य ही इसमें सम्मलित होऊं। ३ हज़ार मील आने पर मैंने परमात्मा को धन्यवाद दिया और विचार करने लगा कि मैं स्वर्ग की ओर जा रहा हूं। मेरा तात्पर्य यह है कि हम इस शताब्दी में आये तो अवश्य, परन्तु आने का मुख्य कारण क्या है? आओ इसके विषय में भी कुछ सुना दूं। मौरिशस एक ऐसा स्थान है जहां पज आदि जंगली लोग गये थे और हमारे भारतवासी लोग कुली बना कर भेजे गये थे। वहां आज तक कोई ऐसी संस्था स्थापित नहीं हुई है जिसमें शिक्षा एवं धर्म-ग्रन्थों के पठन पाठन की योजना की गई हो। जिस समय आर्यसमाज का प्रचार हुआ उस समय मुझे एक स्थान पर ज्ञात हुआ कि वहां के लोग मुझे क्रिश्चियन करेंगे। मैं वहां से भाग निकला। उस समय मुझे यह ध्यान नहीं था कि स्वा० दयानन्द की इस जन्म शताब्दि के अवसर पर अपने ३००० भाइयों की ओर से मुझे यहां आने का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं मौरिशस की ओर से यहां आया हूं। अतः ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे बल दे जिससे वहां जाकर शताब्दी उत्सव के भावों को आपके सन्देश के सहित अपने अन्य भाइयों के समक्ष रख सकूँ।

म० देवीदयाल जी (दक्षिण अफ्रिका)

प्यारे देशबन्धुओ और बहिनो !

मैं स्वामी जी के प्रति जो आदर भाव प्रगट करने के लिए खड़ा हुआ हूं वह अभी का नहीं, प्रत्युत ३-४ मास पहिले जिस समय से यह आयोजना आरम्भ हुई थी उस समय से ही उपनवेश के अन्य भाई आदरपूर्वक आपके चरणों में सर झुकाने के लिए तय्यार हो रहे थे। आज मैं भिन्न २ प्रान्तों के भाइयों को इकट्ठा हुआ देखता हूं और विचार करता हूं कि इसका श्रेय पूज्य नारायणस्वामी जी को है। अफ्रीका में मुझे ऐसा विचार स्वप्न में भी नहीं आया था। मैंने यूरोप के भी बड़े २ जलूस देखे हैं, परन्तु इस जलूस के वर्णन करने की मुझ में क्षमता नहीं है। तिस पर भी भक्ति की अञ्जलि के साथ मैं दक्षिण आफ्रिका की ओर से स्वामी जी को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

श्रीमती चन्द्रावती (इन्द्रप्रस्थ)

पूज्य सभापति महोदय, पूज्या बहिनो तथा प्यारे भाइयो !

इस समय सबके सन्मुख जो अभिनन्दनपत्र श्री पूज्यपाद नारायणस्वामी जी को दिया गया है उसके ग्रहण करने के लिए आप सर्वथा अधिकारी हैं। उसमें आपके जिन २ विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया गया है वह भी आपमें वर्तमान हैं। यदि हम एक एक गुण पर विचार करें और स्वामी जी के इस अदम्य उत्साह, साहस और निष्काम सेवा भाव को देखें तो ज्ञात होगा कि वे गुण पूर्ण रूपेण आपके जीवन पर घटित होते हैं। मैं विचार किया करती थी कि जन्म शताब्दी का इतना कार्य कैसे सम्पादित होना होगा और बहुसंख्यक आर्य पुरुषों और देवियों का प्रबन्ध कौन महापुरुष कर सकेगा? मथुरा में प्रवेश करते ही इस प्रकार की शङ्काओं का समाधान हो गया। प्रत्येक सुभीते को देख कर मैं आनन्दित हो गई। जहां हमने व्याख्यान सुने हैं जहां हमने बड़े २ विद्वानों के उपदेश श्रवण किये है यदि वहां हम इस बाहरी दृश्य की ओर दृष्टिगत करें तो अवश्य ही हम परेशान हो जायंगे। न केवल हो जायंगे अपितु हो रहे हैं। दिल के अन्दर यह विचार उत्पन्न होता है कि इतना बड़ा काम किस समय किया गया होगा और किसके दिल और दिमाग़ ने इसे सम्भाला होगा। यह कार्य पूज्यपाद नारायण स्वामी जी के दिल और दिमाग़ ने सम्भाला था। पूज्य स्वामी जी को किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। न मान की परवाह है और न धनकी। ऐसे निस्पृह स्वामी के लिए यदि हम कुछ अर्पण कर सकती हैं तो वह केवल भावना का फूल है जिसे अपनी समस्त बहिनों और माताओं की ओर से भेंट करने के लिये मैं उपस्थित हुई हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि श्री स्वामी जी महाराज हमारे तुच्छ भाव और भावना रूपी पुष्प को सहर्ष स्वीकार करेंगे।

जम्बुनाथम (मद्रास प्राँतके अछूतोंके प्रतिनिधि)

पूज्यपाद स्वामी जी महाराज!

मैं मद्रास से आया हूं। हिन्दी में मैं बातचीत नहीं कर सकता। अतः अशुद्धि के लिए क्षमाप्रार्थी हूं। मैं पूज्यपाद नारायणस्वामी जी को हृदय में ध्यान करता हुआ प्राचीन इतिहास के महान सिकन्दर की ओर जाता हूं। एक दण्डी स्वामी के पास सिकन्दर जाता है, परन्तु वह उनकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता। वह ध्यान में तल्लीन है। सिकन्दर बोल रहा है।

इतना कहने के पश्चात उपस्थित जनता के आग्रह से तामील भाषा में बोलते हुए आपने नारायणस्वामी जी को धन्यवाद दिया।

श्रीमती सुमित्रादेवी (गुजरात)

बहनो तथा भाइयो!

धन्यवाद अधिक दिया जा चुका है। परन्तु मुझे विशेष आवश्यकता इसलिए हुई है कि कोई कितना ही उपकारी क्यों न हो जबतक वह स्वयं किसी पर उपकार नहीं करता है तबतक उसे उपकार की मात्रा का परिज्ञान नहीं होता। आज तक भारतवर्ष में बहुत से मेले हुए और होते हैं परन्तु यदि मैं इस मेले को सतयुगी मेला कहूं तो मैं विचार करती हूं, अतिशयोक्ति न होगी। इस महोत्सव में स्त्री जाति पर अधिक उपकार किया गया है। बहुत से मेलों पर बहुत अत्याचार होते हैं, परन्तु इस जन्म शताब्दी के महोत्सव पर स्त्री जाति की ओर से कोई शिकायत नहीं रही। सब प्रकार की सुविधाएं रहीं। जहां मैं स्वामी जी को श्रद्धा और प्रेम पुष्पांजलि भेंट करूंगी, वहां मैं यह अवश्य कहूंगी कि जिस समय शताब्दिमहोत्सव की शुभ सूचना महाविद्यालय में पहुंची उस समय मैंने यहां आने का संकल्प कर लिया और अपने गुरुजनों से चलने के लिए प्रेरणा करना आरम्भ किया। उनमें से मेरे एक पौराणिक गुरु भी हैं। मैं उनके पास हाथ जोड़ कर जाती थी और चलने के लिए प्रार्थना करती थी। उन्होंने आर्यसमाज को कागजी घोड़ा बता कर चलने से निषेध किया। परन्तु अब यहां से लौटकर

उनसे कहूंगी कि आर्यसमाज एक कागज़ी घोडा नहीं है प्रत्युत इसमें जीवन है। मैं अधिक न कहूंगी। स्वामी जी महाराज को उनकी उस कृपा के लिए जो सदैव स्त्री जाति पर रही है मैं अपने विद्यालय और गुजरात की ओरसे हार्दिक धन्यवाद देती हूं।

गुलराज गोपाल गुप्त (राजस्थान)

देवियो तथा भद्र पुरुषो !

मैं राजस्थान और मालवा की ओर से श्री० नारायणस्वामी जी को धन्यवाद देता हूं। आप ने देखा होगा कि कितना अच्छा प्रबन्ध रहा। मैं इस समय एक रेलवे कर्मचारी के मत को प्रगट करना चाहता हूं। दो दिन हुए वे यहां आये थे और उन की मुझ से बातचीत हुई थी। मैंने उनसे इस सम्बंध में विचार प्रकट करने के लिए निवेदन किया। उत्तर में उन्होंने कहा कि "यह बड़ा भारी प्रबन्ध है। हमने ही नहीं, हमारे विदेशी भाइयों ने भी इसकी प्रशंसा की है। हम विलायत में भी ऐसा अच्छा प्रबन्ध और लीला नहीं देखते।" अतः राजस्थान और मालवा की ओर से आपको धन्यवाद देकर बैठ जाता हूं।

इसी बीच में उपस्थित जनता को यह सूचना दी गई कि विश्राम घाट पर लाहौर डी. ए. वी. कालेज के छात्रों तथा पंडों में मारपीट हो गई। कुछ समय तक सभामंडप में खलबली रही परन्तु शीघ्र ही नारायणस्वामी जी ने यथोचित रूपेण जनता को शांत किया और सभा का कार्य पूर्ववत होता रहा।

पूजनीय नारायण स्वामी का उत्तर

भाइयो, देवियो और सज्जनो !

मैंने थोड़ी देर तक यहां बैठकर सब भाइयों की वक्तृतायें सुनीं। महाराजा ने कृपा करके जो अभिनन्दनपत्र सुनाया उसे भी सुना। परन्तु यह सब समझते हुए मेरा शिर लज्जा से जितना नीचा है उसको सज्जनो आपके सामने वर्णन नहीं कर सकता हूं। मैं जानता हूं कि जो कार्य मैंने यहां अपनी तुच्छ शक्ति से किया वह बड़ा कार्य नहीं। इसमें अनेक त्रुटियां हैं। आपको सम्भव है, उन त्रुटियों का ज्ञान न हो परन्तु मैं अच्छी तरह से जानता हूं कि इन त्रुटियों के होते हुए भी आपने यहां के प्रबन्ध की इतनी बढ़ाकर प्रशंसा की है कि इसको मैं केवल आपका प्रेम ही समझता हूं और आपकी इन वक्तृताओं और प्रशंसाओं को उसी प्रेम के रूप में स्वीकार करता हूं। मैं आप सब बहिनों और भाइयों को हृदय से धन्यवाद देता हूं। मैने जो कुछ किया उसे अपना धर्म समझकर किया। सन्यासियों का अपना कोई काम नहीं। केवल दूसरों की सेवा ही उनका काम हुआ करता है। इस सेवा धर्म के पालनार्थ ही मैंने भी एक तुच्छ प्रयत्न किया और वह अनेक त्रुटियां रखने वाला है। मैं आप के प्रेम के लिए आप को एक बार फिर धन्यवाद देना चाहता हूं। एक बात और कहना चाहता हूँ। डा० केशवदेव जी शास्त्री एम. डी. ने आपको ध्यान दिलाया है कि आप यह न समझें कि कि इस शताब्दी में यहां आये और मनोरञ्जन करके चले गए। स्वा० दयानन्द ने अपने स्वीकारपत्र के अन्दर लिखा था कि देश देशान्तरों में प्रचार का काम करना चाहिये जिससे वास्तविक प्रचार का काम हो। उन सब वसीयतों को पूरा करने के लिये जो अपील की गई थी उसका उत्तर आप कल दे चुके हैं। इसी सम्बन्ध में शताब्दी के स्वय सेवक काम कर रहे हैं और आप भी सहयोग दे रहे हैं। इस समय धनसंग्रह के लिए बहुत सी पार्टियां कैंपों में भेजी जा रही हैं। मैं आशा करता हूं कि आप डाक्टर साहिब की इस उद्योग में सहायता करेंगे। हरेक प्रांत के जितने भी आदमी इस काम में सहायता दे सकें वे दें। आप जानते हैं कि सफलता के बहुत से साधन हुआ करते हैं। उनमें से एक धन भी हुआ करता

है। इस उपलक्ष में इसके लिए यदि थोड़ा धन हुआ तो इस अंश में हमारा उत्साह पूरा नहीं हुआ। मैं यह समझता हूं कि यदि कोई भी भाई यह नहीं चाहते हैं कि स्वामी दयानन्द का उत्साह असफल सुनाई दे तो आपको इसके यत्न के लिए तैयार होना होना चाहिए। इसका उपाय यह है कि डाक्टर साहिब कैम्पों में जाने के लिए जो पार्टियां बना रहे हैं उनमें आप आकर प्रयत्न करें। मुझको पेशावर के एक भाई ने बतलाया था कि शताब्दी के जो स्वयं-सेवक कैम्पों में जाते हैं, उनका वहां प्रभाव नहीं पड़ता। इस कारण जो लोग अधिक धन दे सकते हैं, वे थोड़ा देकर टाल दिया करते हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि जिन भाइयों का प्रभाव अधिक है वे लोग अयोग्य भाइयों के स्थान पर इन पार्टियों में अधिक संख्या में सम्मिलित हों जिससे आरम्भ किये हुए कार्य में सफलता प्राप्त हो।

इस के पश्चात् इस समय की बैठक का कार्य समाप्त हुआ।

(मध्यान्होत्तर काल)

इस समय का कार्यारम्भ करते हुए ओङ्कार सच्चिदानन्द जी ने अपने भाषण में आज के दिन के शिवरात्रि होने, स्त्री जाति का अधिकार, उपस्थित जनता के प्रमुख कर्तव्यों का दिग्दर्शन, समाज की बुराइयां, मादक वस्तुओं का निषेध आदि विषयों की आवश्यकता बतलाई।

प्रवासी भारतीयोंकी अवस्थापर विचार

इसके उपरांत प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव उपस्थित करते हुए सत्याग्रहाश्रम अहमदाबाद के पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने कहा:—

श्रीमान् सभापति जी!

आज मैं आप की सेवा में निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित करने के अभिप्राय से यहां खड़ा हुआ हूं।

"यह शताब्दी सभा निश्चय करती है कि:—

"(क) प्रत्येक आर्यसामाजिक शिक्षा सम्बन्धिनी संस्था यथाशक्ति एक अथवा एक से अधिक प्रवासी विद्यार्थी को निःशुल्क भर्ती करने और पूर्णरूपेण उसका व्यय सहन करने की आयोजना करे।

"(ख) उपनिवेशों में शिक्षा प्रचारार्थ एवं धर्म प्रचारार्थ एक कार्यक्रम तैयार करने के लिये एक कमेटी नियत की जावे जिसमें औपनिवेशिक भारतीयों के प्रतिनिधि भी विशेषतः सम्मिलित हों।

"(ग) विदेशों में अब तक आर्यसमाज द्वारा जो जो कार्य हुए हैं उनका सार्वदेशिक सभा द्वारा पूर्ण विवरण शीघ्र ही प्रकाशित किया जाय।

"(घ) जो आर्यसामाजिक संस्थाएं अथवा समाचारपत्र उपनिवेशों में धर्मप्रचार हिन्दी प्रचार और शिक्षा प्रचार कर रहे हैं उन्हें समुचित साहाय्य प्रदान किया जावे।

"(च) भारतवर्ष का प्रत्येक आर्यसमाज उपनिवेशों से लौटे हुए प्रवासी भाइयों को अपने यहां स्थान दिलाने में भरसक प्रयत्न करे।"

आप ने कहा:—

सज्जनो! प्रवासी भाइयों की ओर से मैं यह कहना चाहता हूं कि हम लोग निर्धन हैं और हम किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकते। परंतु जिन भाइयों को ज्ञात नहीं है, उनसे मेरा निवेदन है कि पं० ईश्वरदत्त जी ईस्ट (पूर्वी) अफ्रीका से ३० हजार रुपए लाये थे। मैं नम्रतापूर्वक आर्य-समाज के नेताओं से पूछता हूं कि उन्होंने उनके लिए क्या किया है? रामदेव जी एक लाख रुपया लाने वाले हैं। २१ लाख भारतीय फ़िज़ी और मोरीशस में बसे हुए हैं उनकी सामाजिक दशा अच्छी नहीं है। वे लोग आप का ही काम कर रहे हैं। मै ईस्ट अफ्रीका में गया था। वहां के आर्यसमाज के एक प्रधान ने कहा, "सब स्थानों से पत्र व्यवहार किया था परन्तु कन्या पाठशाला के लिए कुछ भी न प्राप्त हुआ।" यह क्या लज्जा की बात नहीं है? मैं कहूंगा कि आप सगठनपूर्वक प्रयत्न करें। मैं श्री० एण्ड्रूज़ के भेजे हुए सन्देश को सक्षेप में आप को सुनाता हूं।

"जो कुछ काम पूर्वी अफ्रिका (East Africa) मौरिशस आदि में आर्यसमाज ने किया है उससे मेरा हृदय अत्यन्त आकर्षित हुआ है। वह काम उन्नतिशील रहा है और लोगों को प्रोत्साहन देता रहा है। अतः मैं आशा करता हूं कि इसका भविष्य उज्वल है। विशेष कर दक्षिण अफ्रिका में पं० भवानी-दयालु और उनकी धर्मपत्नी ने जो काम किया है वह वस्तुतः प्रशंसनीय है।"

अन्त में मैं यह कहूंगा कि मि० एण्ड्रूज़ ने जो उपदेश दिया है उस पर आप लोग अमल करें तथा झगड़ालू पुरुषों को प्रवासी भाइयों के पास न भेजें।

प्रस्ताव का समर्थन करते हुए श्रीयुत देवी-दयालु जी ने कहा--

अभी चतुर्वेदी जी ने जो प्रस्ताव पेश किया है उसका मैं हृदय से समर्थन करता हूं। प्रत्येक शिक्षित पुरुष को ज्ञात होगा कि प्रवासी भारतीयों में मातृभाषा के प्रचार की कितनी आवश्यकता है। अतः मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं। विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देने के प्रस्ताव का भी मैं समर्थन करता हूं और आर्य समाजियों से प्रवासी भाइयों को अपनी २ संस्थाओं में लेने के लिए निवेदन करूंगा। काशी में ४ विद्यार्थी आये हुए हैं। वे आर्य समाजी हैं। उन्हें जगह न मिलने के कारण वे अपने आपको सनातनधर्मी कहते हैं। यह बड़ी आत्महानि है। ऐसी दशा में उनका उपकार करना परमावश्यक है। आप लोग जानते हैं कि सरकार, उपनिवेशों से वापिस आये हुओं को ५ पौंड बख़शीस देती है, इस लिए कि वे भारत में चले जायं। ऐसी दशा में यहां आने पर भारतवासी उन्हें अपने पास बैठने भी नहीं देते। इस समय आर्यसमाज का कर्त्तव्य है कि वह उन्हें स्थान दे। अब अधिक कहने को आवश्यकता नहीं है मेरी इच्छा है कि समस्त उपस्थित भारतवासी मेरे इस प्रस्ताव का समर्थन करें। इतना कहकर मैं बैठता हूं।

म० वेचनदेव जी मौरिशस

माताओ, बहिनो और भद्र पुरुषो!

मैं आप लोगों से मौरिशस द्वीप की ओर से इस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए प्रार्थना करता हूं। मौरिशस में ३ लाख भारतीय गये हैं। आओ उनके कार्यों और उनकी दशाओं पर विचार करें। मेरे दादा बिहार प्रांत से गये थे। मैं प्रश्न करता हूं कि आपने मौरिशस के २¾ लाख मनुष्यों के लिए क्या किया है? ३ वर्ष से ये लोग उपदेशक के लिए चिल्ला रहे हैं परन्तु शोक है वहां अभी तक कोई उपदेशक नहीं भेजा गया। आप लोग इस पर ध्यान दें। जब तक आप लोग मौरिशस वासियों पर ध्यान न देंगे तब तक हम लोग भी आपको न सोने ही देंगे और न खाने। क्या पतित भाइयों एवं ९० प्रति सैकड़ा कुली बनाकर भेजे हुए देशवासियों की रक्षा के लिए ध्यान नहीं देना चाहिए? मौरिशस के इतिहास को देखें। उसमें लिखा है कि यदि लघुशंका भी करो तो ब्राह्मणों की आज्ञा से करो। हम लोगों का भाव है कि हम लोगों को अवश्य ही आर्यसमाजी बनना चाहिए नहीं तो भारतवर्ष में हमें कोई स्थान नहीं देगा। अब आप लोगों से इस पर पुनः विचार करने की प्रार्थना करके मैं बैठता हूं।

पं० तोताराम जी सनाढ्य

श्री सभापति महोदय तथा भाइयो और बहिनो!

आप ने मेरे भाई के शब्दों को ध्यानपूर्वक सुना होगा ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। सुन्दर शब्दों से अलंकृत यह प्रस्ताव आप के सन्मुख प्रस्तुत किया गया है। इस प्रस्ताव के पाँच अंग हैं। मैं सब से प्रथम आप लोगों का ध्यान उपनिवेशों से यहां लौटे हुए भाइयों की दशा की ओर आकर्षित करता हुआ संक्षेप में आप से कुछ निवेदन करूँगा। दश वर्षों के भीतर अर्थात् १९१४ से १९२४ ई० तक गोंडा, गोरखपुर और छपरादि जिलों के ग्रामों में भ्रमण करते हुए मैंने प्रवासी भारतीयों की दशा का भली भांति

अनुशीलन किया है। मुझे एक ग्राम में जाने का अवसर हुआ। वहां ३० वर्षों तक उपनिवेशोंमें रहने वाले एक भाई से मिला। घर वापिस आने पर उस के भाई एवं अन्य पुरुषों ने बड़े प्रेम से उसे हृदय से लगाया। एक दो दिन बीत जाने पर यह चर्चा फैली कि अमुक का पुत्र अमुक टापू से घर लौट कर आया है। उसके सम्बन्ध में व्यवस्था देने के लिये पुरोहित जी घर में आये और जो बातें उन से हुईं उन्हें भी सुन लीजियेगा।

पुरोहितः-कह टपुहा भाई! कुछ ले अइलहा? गंगा नहैब या ना?

टापूका भाई:-हे महाराज, बहुत दिनोंमें लौटकर आया, बीमार पड़ा, इसलिए वहाँ निठल्ला रहा। रुपये पैसे नहीं हैं।

पुरोहित जी यह बातें सुन कर बड़े दुःखी हुए और बोले जब तक यह प्रायश्चित्त न करेगा तब तक इस के हाथका जल न पियेंगे।

वह भाई १८ दिन तक घरमें रहा तथा इसके पश्चात् एक दूसरे भाईके घरमें रहा। प्रायश्चित्त करने के लिये पैसा पास न होने के कारण वह एक दूसरे व्यक्ति के पास, जो उपनिवेश से लौटा था, गया। उसकी भी यही दशा थी। दोनों भाई एक ही नाव में सवार थे। दोनों ने मिल कर निश्चय किया कि इस देश को छोड़ दें। तदनुसार कलकत्ता में जहाज़ पर सवार हो, वहां से उपनिवेशों की ओर चले गये। उन लोगों के साथ का दुर्व्यवहार ही उनके देश-परित्याग का कारण हुआ। मैं इस प्रस्ताव के इस अङ्क का कि इस देश से वहाँ प्रचारार्थ उपदेशक जायें एवं वहां के लोग यहां आयें और शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् प्रचारार्थ अपने २ देशों को लौट जायें, पूर्ण रूप से समर्थन करता हूं।

इन भाषणों के पश्चात् मत लिए गये तथा यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ।

आर्य नेताओं के सन्देश।

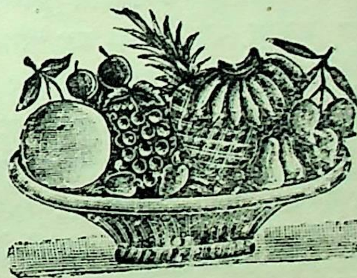
प्रवासी भारतीयों की स्थिति और उनमें वैदिक धर्म-प्रचार के विषय में उपरोक्त प्रस्ताव पास हो चुकने पर श्रीमान स्वामी श्रद्धानन्द जी और श्री नारायणस्वामी जी आदि आर्यसमाज के नेताओं के अन्तिम व्याख्यान हुए। ये व्याख्यान क्या थे आर्य जनता के लिए ऐसे सन्देश थे जो हृदय पर अंकित करने योग्य थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी का सन्देश उनके शिष्य गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी के स्नातक पं० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार ने पढ़कर सुनाया था। इस में स्वामी जी ने बतलाया था कि स्वामी दयानन्द के तमाम कार्य का मुख्य उद्देश्य क्या था। आपने चरित्र-निर्माण और वर्णाश्रम-व्यवस्था के सुधारने पर बहुत बल दिया और कहा कि इसी से भारतवर्ष तथा संसार का कल्याण हो सकता है।

श्री० नारायणस्वामी जी ने अपने सन्देश में प्रचार के कार्य का महत्व दर्शाया और कहा कि जब हम ने भारतवर्ष की सब प्रांतिक सरकारों से जन्म-शताब्दी के निमित्त अपने २ दफ्तरों में छुट्टी कर देने की प्रार्थना की तब आसाम और मद्रास प्रांतों की सरकारों ने जवाब दिया कि हमारे प्रांतों में एक भी आर्यसमाजी नहीं हैं, इस कारण हम छुट्टी नहीं दे सकते। इन सरकारों का उत्तर बतला रहा है कि आर्यसमाज ने गत ४० वर्षों में अपने कार्य का क्षेत्र बहुत कम बढ़ाया है। आर्य संन्यासियों को चाहिए कि वे बौद्ध प्रचारकों की भांति इन प्रांतों में पहुंच कर वैदिकधर्म के प्रचार पर अपने जीवनों को न्योछावर कर दें। जिन प्रांतों में पहिले से आर्यसमाजों की स्थापना हो चुकी है उन्हीं में उपदेशकों के दौरा लगाते रहने से कोई लाभ न होगा। भारतवर्ष के प्रत्येक ग्राम व नगर में आर्य-समाजें स्थापित होनी चाहियें। केवल आर्य संन्यासी ही नहीं, आर्य नवयुवकों को भी प्रचार के लिए कटिबद्ध हो कर दयानन्द सेवासंघ की सेना में

सम्मिलित हो जाना चाहिए। जो युवक इस प्रकार अपनी कमाई छोड़ कर सेवा-कार्य में दीक्षित हो जायंगे उनकी और उनके परिवारों की वृत्ति का प्रबन्ध सेवा-संघ स्वयं करेगा।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी और नारायणस्वामी जी के अतिरिक्त महाशय रामचन्द्र देहलवी आदि अन्य भी कई महानुभावों ने अपने २ सन्देश सुनाये। जालन्धर कन्या महाविद्यालय की श्रीमती सत्यवती का सन्देश बहुत सुन्दर और आलंकारिक भाषा में रखा गया था। उसे श्रोतृ-मण्डल ने बहुत पसंद किया और तालियों से उसका स्वागत किया। कई आर्य पुरुषों ने अपनी अपनी प्रतिज्ञायें भी सुनायीं। महाशय बेचीराम जी ने प्रतिज्ञा की कि मैं सलाम जय राम जी की आदि का प्रयोग छोड़ कर हमेशा हरेक के साथ नमस्ते का ही व्यवहार करूंगा।

रात्रि समय (शिवरात्रि को) तमाम शताब्दी कैम्प में दीपमालिका मनायी गई। इस समय सब कैम्पों में स्वयंसेवकों के पहरे का खास तौर पर बन्दोबस्त था। दीपमालिका के बाद शताब्दी उत्सव के आर्य यात्री मुख्य मण्डप में एकत्रित हुए और भजन प्रार्थना आदि के अनन्तर उत्सव अत्यन्त अधिक उत्साह के साथ आरती शांतिपाठ और जयनाद से समाप्त किया गया।



नौवाँ परिच्छेद

स्वामी जी के समकालीन पुरुषों के दर्शन और भाषण।

तारीख १८ फ़रवरी के प्रातःकाल उपदेशों और व्याख्यानों के अनन्तर उन सज्जनों का परिचय कराया गया जिन्होंने स्वामी दयानन्द के दर्शन व संगति का सौभाग्य प्राप्त किया था। इन सज्जनों ने उपस्थित आर्य जनता के सम्मुख आकर स्वामी जी के विषय में अपने अनुभवों का वर्णन भी किया। सबसे प्रथम

शाहपुराधीश सर नाहरसिंह जी

ने दर्शन दिये और कहा कि: –

बहिनो और भाइयो,

मैं जो कुछ आपके सामने निवेदन करूंगा वह मेरे जीवन की दो चार घटनायें हैं। मैं बचपन में एक छोटे से गांव में रहा करता था। जब शाहपुराधीश का स्वर्गवास हुआ तब मैं १४ बरस की उम्र में गद्दी पर बैठाया गया। गवर्नमेंट ने मेरा एक शिक्षक नियुक्त किया जो छुटा हुआ ईसाई था। उसकी संगति से मैं ईसाई तो नहीं, पर नास्तिक हो गया। बहुत दिनों तक नास्तिक रहा। और तब स्वामी दयानन्द जी से चित्तौड़ में भेंट हुई। मेरा ख्याल हुआ कि स्वामी जी मेरी शंका का समाधान कर सकते हैं। और वस्तुतः उनकी सेवा में शंकायें प्रकट करने पर उन्होंने सबका उचित समाधान कर दिया। ब्रह्मा जी अपनी बेटी से फंस गये, इसका अभिप्राय स्वामी जी ने यह बतलाया कि विद्या ब्रह्मा के बेटी है और वह विद्या में लीन हो गये। इसके बाद मेरी श्रद्धा स्वामी जी में हो गयी। फिर स्वामी जी के दर्शन मुझे उदयपुर में हुए। और वहां कई बार प्रार्थना करने पर वह शाहपुरा पधारे। मैंने उनसे शाहपुर में पातंजल योगसूत्र पढ़ना शुरू किया। प्रातःकाल मैं उनके साथ वायु-सेवनार्थ जंगल में जाया करता था। वहां वह स्वयं प्राणायाम करते तथा मुझे भी सिखलाया करते थे।

स्वामी जी अपने लिए रसोई बनाने वाला आदमी मुझ से ले गये थे। स्वामीजी को विष दिया गया यह बात ग़लत है। स्वामी जी जोधपुर में बीमार होकर आबू चले गए थे और आबू से वह अजमेर आकर रहे थे। मैं ख्याल भी नहीं कर सकता कि उनको विष दिया गया था। जो लोग उनके पास रोटी बनाने वाले थे वे अभी तक मेरे यहां नौकरी करते हैं। उनका नाम श्रीकृष्ण और कल्लू है। स्वामी जी के देहांत पर चंदे की अपील हुई थी। तब मैंने अपना अजमेर वाला बाग़ अर्पण कर दिया था। स्वामी जी से मेरे वैयक्तिक सम्बन्ध की कहानी इतनी ही है। मेरा सब सज्जनों से निवेदन है कि मेरे पास न बुद्धि है और न विद्या; मेरे पास सिर्फ़ स्वामी जी के उपदेश हैं जिनकी ओर मैं आप सब का ध्यान आकर्षित करता हूं।

रावराजा तेजसिंह जी (जोधपुर)

शाहपुराधीश के बाद रावराजा तेजसिंह जी वेदी पर आये और उन्होंने स्वामी दयानन्द का एक चित्र सभा को दिखला कर कहा कि यह स्वामी जी का चित्र मैंने अपने हाथ से उनकी आज्ञा प्राप्त करके लिया था। स्वामी जी जब जोधपुर में थे तब रात्रि को पांच बजे प्राणायाम के लिए जंगल में चले जाया करते थे, जहां कि बहुत से जंगली जानवर रहते थे। इस पर महाराजा स्वामी जी के साथ रिसाला भेजने का प्रबन्ध करने लगे परंतु स्वामी जी ने निषेध कर दिया।

रावराजा साहब ने एक चित्र दिखलाकर कहा कि यह स्वामीजी का चित्र मैंने स्वयंउनकी आज्ञासे लिया था यह हर समय महाराजाके सोने के कमरेमें लगा रहता था। वह अपने सब अफसरों से कहा करते थे कि यह मेरे गुरू हैं। जब तक जोधपुर का नाम रहेगा तब तक हम इस चित्र के दर्शन करते रहेंगे। मैंने एक पुस्तक में पढ़ा है कि स्वामी जी नसवार (हुलास) सूंघा और पान खाया करते थे। यह ठीक नहीं है। स्वामी जी जब जोधपुर आये तब उन्होंने लोगों को कई बार ऐसा करने से यह कहकर मना किया कि तुम्हारी नाक गंदी नाली की तरह चल रही है। यह बात उस पुस्तक से तुरंत निकाल दी जानी चाहिए। स्वामी जी पान नहीं खाते थे। हां, पान पर रखकर ब्रह्मी बूटी खाते थे। हम को भी कई बार खिलायी थी यह बड़ी गुणकारी औषधि है। इस औषधि को ही पान बताया जा रहा है। हमने कभी स्वामी जी को पान खाते नहीं देखा। तम्बाकू की तो बात ही क्या? तम्बाकू को तो वह राज्य से ही निकलवा देना चाहते थे। बीमारी के समय डाक्टर सूरजबल ने कहा कि मैं आप को क्लोरोडाइन देना चाहता हूं और बताया कि उसमें अफीम पड़ती है। तब आप ने कहा कदापि नहीं, प्राण चले जायँ पर मादक द्रव्य का सेवन कभी न करूंगा। इसके बाद रावराजा तेजसिंह जी ने स्वामी जी के लिखे पांच पत्र पढ़कर सुनाये, जिनमें प्रजापालन, देशभक्ति और सदाचार आदि का उपदेश दिया हुआ था। पत्रों में भारतीय राजाओंको अपने देश की उन्नति का सदा ध्यान रखने की विशेषतः प्रेरणा की गई थी। पत्र सुना चुकने पर रावराजा साहब ने कहा कि वह भी दिनथा जब कि स्वामीजी महाराज जोधपुर आरहे थे पाली से घोड़ा वगैरह उनकी सवारी के लिए न मिला और पैदल चल कर आये। महाराज जोधपुर ने मुझे आज्ञा दी कि तुम जाओ। महाराज की मुझ पर बड़ी कृपा थी, यह सब स्वामी जी का प्रताप था। मैं जिस समय जारहा था कि एक दिव्य मूर्ति, जिसे मैंने पहले कभी न देखा था,सामने अकेली आ-रही थी। मैंने अपने भाई से पूछा कि यह कौन है यह तो पहाड़ का पहाड़ चला आ रहा है! जब यह समीप आये तो मेरे पांव जमीन पर चिपट गए। उनकी साठ बासठ साल की आयु का यह हाल था कि उनका चहरा सुर्ख था और इस प्रकार चमकता था कि उसकी ओर देखने की हिम्मत न होती थी। जब महाराज स्वामी जी से मिले तो स्वामी जी इस तपाक से मिले कि घर जाकर मेरे भाई ने मुझे अपनी भुजायें दिखाईं जिन पर स्वामी जी के हाथ घिस गये थे और निशान पड़ गए थे। मुझे अपने भाई के समान बलिष्ठ उस समय कोई न दिखाई देता था। मैं जिस पदक को धारण किए हुए हूं यह स्वामी जी का चित्र है और हाथी दाँत के ऊपर बनाया गया है। महाराज जोधपुर ने तीन सौ रुपये व्यय करके यह पदक तय्यार कराया था जो मुझे मेरी सेवाओं के उपलक्ष्य में दिया गया है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी

मैं नहीं चाहता था कि मेरा नाम इस सम्बन्ध में लिखा जाता। मैंने ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में सुना और उनके दर्शन भी किए हैं। परन्तु

मैं यह सब कुछ प्रकाशित कर चुका हूं। पहली बात जो मुझे इस समय याद आई है वह यह है कि काशी में मेरे पिता पुलिस अफसर थे म वहां पढ़ता था. ऋषि जी वहां पधारे हुए थे। प्रसिद्ध था कि एक नास्तिक जादूगर आया हुआ है। वह दिन में दो मशालें रोशन किए रखता है। मेरी माता ने हम बच्चों का घर से निकलना बन्द कर दिया कि कहीं मेरे बच्चे इस जादुगर के कब्जे में न आजायें। परन्तु उन्हें क्या मालूम था कि उनका बच्चा एक दिन जादूगर के कब्जे में हो जायगा। १८७६ ई० में बरेली में पण्डित दयानन्द सरस्वती का आना प्रसिद्ध हुआ। वह आकर खजानची लक्ष्मीनारायण की कोठी में ठहरे। मैं उन दिनों कट्टर नास्तिक था, पिता जी ने कहा कि एक दंडी स्वामी आये हैं, तुम चलो। मैंने समझा कि दंडी स्वामी संस्कृत पढ़ा हुआ है। सिवाय मूर्खता के और क्या बातें करना होगा। मैं पिता जी के साथ गया। स्वामी जी कुर्सी पर बैठे थे। मैं पहले उनकी मूर्ति को देख कर आश्चर्य में पड़ गया। परन्तु दो पादरियों को देख कुछ शांति हुई। भाव जो मन में आया वह यह था कि यह केवल संस्कृत पढ़कर ऐसी बुद्धि की बातें करता है, आश्चर्य है? मैंने उनसे कहा कि अब टाऊनहाल में व्याख्यानका प्रवन्ध होगया है। स्वामीजी वहांगये और ईश्वर स्तुति पर व्याख्यान दिया। फिर ओ३म् नमस्ते और मूर्त्तिखण्डन पर लेक्चर हुआ। इससे मेरे पिता बहुत अप्रसन्न हुए। पिता की श्रद्धा घटी और नास्तिक की श्रद्धा बढ़ी। ऋषि दयानन्द का दो घंटे दरबार हुआ करता था। इसमें सब लोग आया करते थे और प्रश्नोत्तर हुआ करते थे। मैंने लोगों से पूछा कि स्वामी जी ईश्वरोपासना किस समय करते हैं तो मालूम हुआ कि वे तड़के ४ बजे कहीं चले जाते हैं और प्रातःकाल ६॥ बजे वापिस आते हैं और उसी समय सन्ध्योपासना कर आते हैं। एक दिन मैंने स्वामी जी से कहा कि आप बड़े हाजिर जवाब हैं जो आप लोगों का मुंह बन्द कर देते हैं परन्तु मुझे ईश्वर पर विश्वास आपने नहीं दिलाया। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जब प्रभु की कृपा होगी तो आपको ईश्वर पर विश्वास होगा। उस दिन मैं चुप होगया। १५ बरस बीतने पर समय आया कि उसी प्रभु ने अपने ऊपर मेरा विश्वास दृढ़ किया।

ता० १८ फरवरी को इन्हीं तीन महानुभावों ने स्वामी जी के विषय में अपने अनुभवों का वर्णन किया। दूसरे दिन अर्थात ता० १९ फ़रवरी को स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, स्वामी अच्युतानन्द जी, रायसाहब हरविलास शारदा और म० अलखधारी जी आदि ने अपने अनुभवों का वर्णन किया जो क्रमशः संक्षेप में यहां दिया जाता है।

स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने दर्शन देते हुए कहा, कि स्वामी दयानन्द जी का हरिद्वार में काली कम्बली वाले महात्मा विशुद्धानन्द के साथ विवाद हुआ था। उसका मुझ पर अधिक प्रभाव पड़ा। मैंने तभी से अपना जीवन उनके उपदेशानुसार ढालना आरम्भ कर दिया। मैंने महर्षि से बहुत सी शङ्काओं का समाधान भी किया था। उनमें वस्तुतः वर्णनातीत विद्युतशक्ति विद्यमानथी।

स्वामी अच्युतानन्द जी स्वयं उनसे टक्कर लेने वालों में से एक थे परन्तु अब वे अपनी महन्त की गद्दी का परित्याग किये हुए आर्य सन्यासी हैं। स्वामी जी ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" पर शास्त्रार्थ किया था। जिस पर महर्षि ने इसकी व्याख्या की थी कि यह वाक्य अद्वैतपरक नहीं है वरन् 'अद्वितीयः पंडितः' के समान ब्रह्म की अद्वितीयता मात्र का द्योतक है। ब्रह्म के समान दूसरा कोई महान् शक्ति वाला प्रभु नहीं है यही इसका अर्थ है।

पं० आर्य मुनि जी ने उठकर कहा कि जब महर्षि से शास्त्रार्थ करने के लिए नैयायिक वेदान्ती

आते थे, तब वे बराबर नवीन न्याय की अवच्छेद्-कता-प्रकारता की लम्बी २ पंक्तियां बोलकर स्वामी जी को परास्त करना चाहते थे। परन्तु महर्षि उन से पूछते थे कि यह किस वेद में लिखा है ? बस, इस पर पण्डितों के मुख पर ताले लग जाया करते थे।

रायसाहिब हरविलास शारदा, मन्त्री परोपकारिणी सभा, ने एक कहानी सुनाई कि व्याख्यान देने के उपरान्त एक बार हाल का विशाल दरवाज़ा ऐसा बन्द होगया कि बहुत ज़ोर लगाने पर भी न खुला। अन्त में स्वा० दयानन्द जी ने बड़ी सुगमता से खोल दिया।

लाला देवराज जी ने कहा कि मैं हिंदू धर्म को बहुत कच्चा समझता था। मेरे उस्ताद मुझे मुसल्मानी धर्म सिखाते थे। स्वामी जी का व्याख्यान सुनकर मैं अपने धर्म पर पक्का होगया। मैंने अपने गुरु से प्रश्न करने शुरू कर दिये। वह गुर साथ गया।

ला० लक्ष्मणानन्द जी ने कहा कि स्वामी जी सम्वत १९३४ में गुरुदासपुर में आये थे। उनके व्याख्यानों को सुनकर सब पंडित दंग थे। गावों तक में यह फैल गया था कि इस साधु को पवनी सिद्ध है, इससे इसकी आवाज़ मीलों तक जाती है। स्वामी जी कहा करते थे कि एक स्त्री ही एक पुरुष के लिए है।

प० अलखधारी जी (अम्बाला) ने स्वामी जी के दर्शन लार्ड लिटन की गवनरशिप में किये थे उन्होंने कहा कि मैं सोरों में ईसाई होने वाला था मेरे भाई मर चुके थे। मेरे चाचा मुझे स्वामी जी के पास ले गये। मैं ईसाई न बना। सन १८७४ के साल में स्वामी जी के विषय की चर्चा पार्लियामेंट में भी हुई थी। उस समय के विवरण निकाल कर देख लेने चाहियें। एक वायसराय ने भी स्वामी जी के बाबत अपने डिस्पेच में लिखा था।

प० गणेशप्रसाद जलालपुर ने कहा मैं शिव के ११ लिङ्ग पूजता था, परन्तु स्वामी जी के सत्योपदेश को श्रवण कर के मैंने सब बट्टे बट्टे फेंक दिये।

लाला गंगाराम जी लाहौर वालों ने बतलाया कि मैं मुसलमान होने लगा था। साथ ही लाला लाजपतराय भी मुसलमान होने वाले थे। स्वामी जी के प्रभाव और उपदेशों ने हमें बचा लिया।

स्वामी जी के समकालीन निम्न महाशयों ने भी शताब्दी उत्सव के मुख्य पंडाल में दर्शन दिए थे, और इनका परिचय उपस्थित जनता से कराया गया था—

१. लाला रलाराम जी गुजरानवाला
२. श्री नारायणस्वामी जी
३. लाला रामकृष्ण जी वकील
४. लाला मिट्ठनलाल जी
५. रामविलास जी अजमेर
६. स्वामी सर्वदानन्द जी मैनपुरी
७. लाला लखपतराय वकील हिसार
८. पं० भूमित्र शर्मा मेरठ
९. डॉ० ज्वालाप्रसाद जी (अमरोहा)
१०. लाला चन्दूलाल अजमेर
११. पं० गणेशप्रसाद जी फर्रुखाबाद
१२. पं० लालजी भाई इन्दौर शहर
१३. श्रीमती हीरादेवी जी (माता पं० भगवद्दत्त जी पञ्जाब)
१४. बाबू निहालसिंह जी वकील मेरठ
१५. म० चिम्मनलालजी तिलहर (शाहजहांपुर)
१६. स्वामी स्वरूपानन्द जी मैनपुरी
१७. बाबू प्यारेमोहन जी खत्री झांसी
१८. पं० बालकराम जी भरतपुर
१९. प० बलखसहाय जी व्यास मेरठ
२०. म० श्रीराम जी पेन्शनर देहली
२१. पं० गुलजारीलाल जी आगरा
२२. पं० राजनाथ शर्मा पटना

२३. पं० जानकीनाथ मुरादाबाद
२४. पं० धन्नाराम जी झेलम
२५. म० बाबूराम जी वाहन (आगरा)
२६. लाला जयसीराम जी मेरठ
२७. पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी इलाहाबाद
२८. म० गोबिन्दसहाय जी लाहौर
२९. स्वामी सच्चिदानन्द जी
३०. प० बसतीराम जी रोहतक
३१. स्वामी प्रकाशानन्द जी
३२. लाला लक्ष्मणदास जी अमृतसर
३३. दौलतराम जी मेरठ
३४. म० जगरूप जी अजमेर



दसवां परिच्छेद

मथुरा का विशाल नगर-कीर्तन

दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव के तमाम कार्यक्रम का सब से प्रभावशाली अंग यदि कोई कहा जा सकता है तो वह ता० १७ फरवरी का विशाल नगर-कीर्तन था। यद्यपि इस नगर-कीर्तन की सूचना पहिले से निश्चित समय-विभाग में नहीं दी गयी थी और इसी कारण मथुरा के अधिकारियों ने इसके निकाले जाने पर कुछ आपत्ति भी उठाई, तथापि पीछेसे शांति-रक्षा का विश्वास दिलाये जाने पर उन्होंने जलूस ले जाने की अनुज्ञा दे दी और जिस शान से जलूस निकला वह मथुरा-निवासी कभी नहीं भूल सकते।

१७ फ़रवरी की शाम को मथुरा के जर्जर शरीर में एक बार नवजीवन की लहर दिखायी दे गयी। श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के यात्रियों ने सोई हुई मथुरा नगरी को एक बार फिर जगा दिया और खूब चैतन्य कर दिया। जलूस के लिये आर्यों का उत्साह इतना अधिक था कि १७ फ़रवरी की दुपहर को १ बजे से ही पण्डाल के पास कैम्प के मुख्य द्वार पर आर्य वीर अपनी मंडलियां बनाकर जुटने लगे। अपने २ झंडे लेकर, भजन गाते हुए आर्यवीर जोश में भरे हुए इकट्ठे होने लगे। मुख्य द्वार के सामने, मथुरा की तरफ, साधु मंडप के पास, आगे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय तथा उसकी शाखाओं के ब्रह्मचारी पीली धोतियां पहने, पीला दुपट्टा धारण करने वाले मथुरा के 'बालक' कृष्ण की, याद्गार रहे थे। सबसे आगे आगे आर्यकुमारों का मारू बाजा बजता जाता था। बाजे के पीछे श्री नारायण स्वामी, स्वा० श्रद्धानन्द, स्वा० सत्यानन्द, स्वा० सर्वदानन्द और स्वा० अच्युतानन्द आदि आर्य सन्यासियों की मण्डली अपना भगवां झंडा

लिये थी। सन्यासियों में स्वा० श्रद्धानन्द जी की विशालकाय मूर्ति का प्रभावशालित्व देखते ही बनता था। आप अपनी स्वाभाविक गम्भीरता में चलते थे। साधु मण्डली के बाद कांगड़ी गुरुकुल का स्नातक समूह संकीर्तन करता चलता था। सब स्नातक अपना गौन पहन हुए सुन्दर दिखाई देते थे। इनके बाद लगभग ६०सभाओं और संस्थाओं के ब्रह्मचारी और विद्यार्थी थे जिनमें से केवल गुरुकुलों के ब्रह्मचारियों की संख्या १२०० थी। सारे जलूस में लगभग दो लाख नर नारी सम्मिलित हुए होंगे। जलूस दो मील लम्बा था। इसमें भिन्न २ ८५ मंडलियां दयानन्द, ईश्वर और राष्ट्र का गुण-संकीर्तन कर रही थीं। जलूस डेढ बजे चलकर मथुरा के बाज़ारों में से होता हुआ शाम के ७ बजे शताब्दी कैम्प में वापिस आया था।

सबसे प्रथम गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों की अलंकार संकीर्तन मंडली ने, "संगच्छध्वं संवदध्व सं वो मनांसि जानताम्।", "आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।" इन दो वेदमंत्रों के साथ संकीर्तन आरम्भ किया। इनके पीछे सब दल अपने अपने भजन गाते हुए चले।

इन भजन गाने वालों में साधारण स्थिति के विद्वान्, धनी, सौदागर, वकील बैरिस्टर, डाक्टर भी सम्मिलित थे। सब निःसंकोच रूप से भजन गाते थे। पञ्जाबी भाइयों के उत्साह का ठिकाना न था। वे अपनी पञ्जाबी भाषा में बड़े प्रभावशाली गीत गा गा कर मुर्दा दिलों में भी उत्साह पैदा कर रहे थे। उनका 'स्वामी दयानन्द साडे सारे कष्ट निवार गया" बड़ा अच्छा मालूम पड़ता था। ब्रह्मचारी वेद गान करते चलते थे और "दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे' की घोषणा करते जाते थे। अयोध्या दल के आगे 'पाखंड खण्डिनी' पताका थी। राजस्थान दल बड़े जोश से गा रहा था। कितने ही दलों के एक से साफ़े और कितनों ही की एक सी वरदी थीं। गुजरात आर्यदल खद्दर में था। आगे २ बम्बई का बैंड बजता जाता था। दलितोद्धार मंडली मधुर भजन गान द्वारा अपना असीम उत्साह दिखलाती चलती थी।

पञ्जाब, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश संयुक्त प्रांत, राजस्थान आदि प्रदेशों से आई हुई आर्य देवियां भी जुलूस के साथ थीं। इनकी संख्या तीस हज़ार से कम न होगी। देवियां भक्ति के भाव-पूर्ण गीत बड़े प्रेम से गाती जाती थीं। मालूम होता था कि एक बार फिर देश में सतयुग की लहर चल रही है। बड़े २ प्रतिष्ठित घरों की हज़ारों देवियों ने इस इतने लम्बे जलूस के साथ मैदान में चल कर अपने धर्म-भाव का परिचय दिया। पच्चीस तीस हज़ार स्त्रियों की रक्षा का प्रबन्ध बड़ा ही प्रशंसनीय था। कतार के दोनों ओर स्वयंसेवकगण हाथों में हाथ मिलाये हुए पंक्तिबद्ध चलते थे। बीच में देवियां थीं। आगे पीछे आर्य पुरुषों का दल था। इस सुप्रबन्ध को देख कर मथुरानिवासी बड़े प्रभावित थे। जिस मथुरा को एक दिन आर्यसमाजियों पर ईंट बरसाने में आनन्द आता था आज वह बड़े भक्ति भाव से जुलूस पर पुष्प तथा खीलों की वर्षा कर रहा था। जो मथुरा श्रावण और फागुन के मेलों में स्त्रियों के प्रति सद्भाव प्रदर्शित करने में फेल हो जाता है वही आज आर्यदल को देख कर आदर और श्रद्धा के भार से दबा जाता था। उसकी आंखों से वह पूज्य भाव झलक रहा था जो अपनी माता और बहिनों के दर्शन करते समय झलकता है। सारे मथुरा नगर पर आर्य सभ्यता और शिष्टता का आतङ्क छाया हुआ था। रसिक मथुरा में इस फाल्गुन मास में ऐसी गम्भीरता उत्पन्न करने वाली यह शताब्दी ही हो सकती थी।

इतनी स्त्रियों के साथ होते हुए भी जलूस के सारे रास्ते में कोई दुर्घटना नहीं हुई। होली दरवाजे के पास केवल एक स्त्री (मेरठ की रहने वाली) शायद मार्ग की थकावट से मूर्छित सी हो गई थी, जिसे

तुरन्त चारपाई पर डालकर कैम्प में पहुंचा दिया गया।

धीरे २ मस्तानी तथा उमंग भरी चाल से चलता हुआ जलूस ३॥ बजे मथुरा नगरी के दरवाजे पर पहुंचा। मथुरा का मुख्य द्वार 'बोलो गुरु विरजानन्द की जय,' 'बोलो ऋषि दयानन्द की जय,' 'बोलो स्वामी श्रद्धानन्द की जय' कारों से गूंज उठा। इस गूंज को सुनकर ऋषि-भक्तों के हृदय आनन्द से भर गये। गुरु की नगरी में प्रवेश करते समय शिष्यों ने अपने हृदयों को उसके चरणों में नवाया। मथुरा नगरी के बाजारों की दूकानों, अट्टालिकाओं, बुर्जों, कंगूरों सब जगह आदमी ही आदमी दिखाई देते थे। अटारियों पर बैठी हुई माताएं ऋषि के जयकारों को सुन सुन कर पुष्प-वर्षा कर रही थीं। मथुरा निवासी गुरु विरजानन्द की जय को मथुरा नगरी की जय समझ कर, वीरों से यह वीरनाद करने का अनुनय करते। मथुरा के बाज़ार जयकारों से प्रतिध्वनित होकर आकाश पाताल को एक कर रहे थे। धीरे २ जलूस उस स्थान पर पहुंचा जहां ऋषि दयानन्द गुरु विरजानन्द से शिक्षा पाते थे। उस मकान पर ओ३म् का झंडा खड़ा हुआ था। मकान ६ मंजिला था। सबसे नीचेकी मंजिलके दरवाजे कालिखसे पुते थे। दूसरी मंजिलका सेहन सड़क के उतार पर था दरवाजे आधे बन्द थे आधे खुले थे। आती हुई जनताको स्थान की परिचित कराने के लिए स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी उस कुटिया पर खड़े थे। उस कुटिया के सामने आते ही सारी मथुरा फिर से जयकारों से गूंज उठी। अलंकार संकीर्तन मंडली के इन तीन चार पदों ने इस स्थान पर धूम मचा दी।

वही प्रेम जमुना यहां फिर बहेगी,
जो संसार की ताप ज्वाला हरेगी।
कहेगा जगत मिल के इक स्वर से सारा,
दयानन्द स्वामी गुरू है हमारा॥

इस कुटी पर खड़े होकर महात्मा हँसराज जी बहुत देर तक जलूस के पुरुषों को स्थान का महत्व समझाते रहे। जलूस आगे बढ़ता जाता था और क्रमशः कुटियाके सामने आती जाने वाली मंडलियां महात्मा जी के मुख से इस स्थान का परिचय पाती जाती थीं। यह कुटी इस समय बिलकुल टूटे फूटे खंडहर के रूप में पड़ी थी। इसका किसी मथुरावासी महानुभाव ने जीर्णोद्धार भी नहीं कराया। इसे देखकर सब ही के दो आंसू अवश्य बहे।

सारे जलूस ने बराबर अपने कीर्तन में दयानन्द, विरजानन्द, वैदिक धर्म आदि के नारों तथा जयकारों से नगर को जहां तहाँ गुंजा दिया था। महर्षि दयानन्द की गुरु-भूमि का स्मरण कर के हृदय गद्गद् हो जाता था। योगिराज कृष्ण की सम्पूर्ण मथुरा नगरी अपने इस युग के योगिराज महर्षि की शताब्दी के अवसर पर इस समय पुलकित हो २ फूली न समाती थी।

सचमुच महिला मण्डल के जलूस को देख कर नगरवासियों ने मातृभाव को पवित्र स्थान देने का अवसर पाया। मथुरा के अन्य मेलों की तुलना में इस महोत्सव ने आदर्श स्थान पा लिया। आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक ने जिस प्रकार अन्य आदर्श सिद्धांत रख कर हिंदू जनता को मार्ग दिखाया है उसी प्रकार उत्सवों को शांति और प्रेम से मना लेने का पाठ भी सिखा दिया है।

इस जलूस में निम्न लिखित दल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दयानन्द ब्राह्म विद्यालय लाहौर, विरजानन्द ब्रह्मचर्याश्रम कालीनदी (हरदुआगंज), डी. ए. बी. कालेज लाहौर और उसका आयुर्वेदिक विभाग, डी० ए० वी० कालेज कानपुर, गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल कुरुक्षेत्र गुरुकुल रायकोट, गुरुकुल पोठोहार, गुरुकुल वृन्दावन, महाविद्यालय ज्वालापुर, गुरुकुल बदायूं, गुरुकुल सिकन्दराबाद, गुरुकुल होशङ्गाबाद, गुरुकुल बिहार बङ्गाल, डी० ए० वी० हाई स्कूल रावलपिंडी, डी० ए० वी० हाई स्कूल

आगरा, कन्या महाविद्यालय जालन्धर, अनाथालय आगरा, अनाथालय लखनऊ, अनाथालय फ़ीरोज़पुर, अनाथालय लाहौर, अनाथालय अजमेर, अनाथाश्रम देहली, कन्या गुरुकुल देहली, भारतीय हिंदू-शुद्धि सभा आगरा, दलितोद्धार मंडल देहली, आर्यसमाज लायलपुर, सर्गोधा, कोटा, आर्य प्रतिनिधि सभा इन्द्रप्रस्थ, वैदिक अनाथ सुधार आश्रम देहली, आर्य समाज सदर बाजार देहली, बिजनौर यात्रीदल, आर्य दल इटावा, आर्यसमाज हापुड़, आर्य समाज ग़ाज़ियाबाद, आर्य समाज अयोध्या, आर्य समाज काशीपुर, अनाथाश्रम लखनऊ, आर्यदल राजस्थान, आर्यसमाज ग्वालियर, आर्य समाज मैनपुरी, आर्य समाज इन्दौर, आर्य समाज काशी, आर्य समाज कटरा (इलाहाबाद) आदि २ लगभग सब ही आर्य संस्थाओं ने जलूस में भाग लिया था।



ग्यारहवां परिच्छेद

विविध सम्मेलन और कानफरेंसें

श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव में लाखों लोगों की उपस्थिति का लाभ उठाने के लिए जहां आर्यकुमार सभा, आर्य स्वराज्य सभा, जात पांत तोड़क मंडल आदि आर्य समाज की संस्थाओं ने अपने सम्मेलन इस समय किये थे, वहां गौ कानफरेंस, साधु सम्मेलन, नाई ब्राह्मण सम्मेलन आदि कई सभा सम्मेलन और कानफ्रेंसें ऐसी भी हुई थीं जिनका आर्य समाज से सीधा कोई सम्बन्ध न था। इन सब सम्मेलनों और कानफ्रेंसों की कार्यवाही यदि पूरी २ प्रकाशित की जाय तो वही एक स्वतन्त्र पुस्तक का आकार धारण कर लेगी, इस कारण यहां पर इन सम्मेलनों आदि का केवल संक्षिप्त समाचार दिया जायगा।

(१) आर्य स्वराज्य सम्मेलन

'आर्य स्वराज्य सभा' लाहौर के संचालकों ने मथुरा में, श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव के समय, भारत भर में स्वराज्य सभाओं की संस्थापना किया जा सके इस उद्देश्य से आर्य स्वराज्य सम्मेलन की आयोजना की थी। इसकी बैठकें भारतीय हिंदू शुद्धि सभा और साधुओं के पंडालों में क्रमशः तारीख १९ और २० फरवरी को हुई थीं। आर्य स्वराज्य सभा लाहौर ही इसकी स्वागतकारिणी समिति थी, अतः उसके प्रधान व मन्त्री ने ही स्वागताध्यक्ष व स्वागत मन्त्री का काम किया।

सम्मेलन के प्रधान के लिए कराची के सन्त ब्रह्मचारी श्री टी० एल० वसवानी जी से प्रार्थना की

गई थी जो उन्होंने अत्यन्त कृपापूर्वक स्वीकार कर ली थी। परंतु दुर्भाग्यवश उन्हें दैवयोग से कुछ चोटें आगईं और वह मथुरा पधारने में असमर्थ रहे। अतः श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी सभापति बने। १७ फरवरी २५ को, 'स्वराज्यवादी आर्यों के संगठन का क्या महत्व है इसका प्रचार करने के लिए, एक विशेष मीटिंग साधु कैम्प में की गई। यू० पी० के सार्वजनिक जीवन में अपनी सादगी और त्याग के कारण प्रसिद्ध देशभक्त डा० जवाहरलाल जी (कानपुर) इसके प्रधान निर्वाचित हुए। पंडित रामगोपाल जी (लाहौर) ने उनका स्वागत करते हुए मीटिंग का उद्देश्य बतलाया। आर्य स्वराज्य सभा की आवश्यकता और उसके उद्देशों पर २॥ घंटे गरमागरम बहस हुई, जिसमें पञ्जाब, यू० पी० सी० पी०, बिहार, बँगाल, बम्बई सिंध के प्रसिद्ध स्वराज्यवादियों ने भाग लिया। इसका प्रभाव संगठन बनाने के पक्ष में बहुत अच्छा रहा और सम्मेलन के लिये दिलचस्पी पढ़ गई। फल यह हुआ कि ९०० के लगभग सज्जनों ने सभा के उद्देशों से सहमत होकर सभाके मंतव्योंपर हस्ताक्षर कर दिए उन्हें प्रतिनिधि-रूपसे सम्मति देनेका अधिकार दिया गया। ये प्रायः भारत के सभी प्रान्तों के थे। उनमें डाक्टर, वकील, बैरिस्टर, सौदागर, सम्पादक, उपदेशक, सन्यासी, कौंसिलर, म्युनसिपल कमिश्नर, लोकल बोर्डों के अध्यक्षों के अलावा चमार, जुलाहे, किसान मज़दूर भी थे। आर्य (हिंदू) रियासतों के भी प्रतिनिधि थे।

१९तारीख़ को शुद्धिसभा के पंडालमें मातृवन्दना के पश्चात पञ्जाबभूषण डाक्टर सत्यपाल जी ने सभापति श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का स्वागत करते हुए एक उत्तम भाषण दिया। आप ने ऋषि के राष्ट्रीय स्वरूप, आर्यस्वराज्य सभा की स्थापना, उसके उद्देशों की व्याख्या सभा के दलित जातियों में सफल काम और कार्यप्रणाली का वर्णन करते हुए आर्यों से अपील की कि वह आर्य स्वराज्य परिवार में सम्मिलित होकर आर्य सभ्यता का सन्देश सारे संसार को दें और ऋषि के ऋण को उतारें।

स्वागताध्यक्ष डा०सत्यपाल के प्रस्ताव व पं० रामगोपाल जी के अनुमोदन पर सभापति का आसन स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ग्रहण किया। श्री स्वामी जी के चित्ताकर्षक भाषण का बड़ा प्रभाव पड़ा। आप ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए प्रार्थना के पश्चात् कहा कि वेद में सरस्वती गौ और स्वदेश तीन माताओं का वर्णन किया है। आचार्य दयानन्द की देशभक्ति किसी से छिपी नहीं, वह एक अनुभवी सेनापति थे। उनके अनुयायी भी अपने अन्दर वीर सैनिकों का सा जोश रखते हैं। जब तक वह कांग्रेस में काम करते रहे तब तक उसमें जीवन रहा। एक आर्य जन्म से ही स्वराज्य-प्रिय देशभक्त है। वह आर्य्य आर्य नहीं जिसके दिल में स्वराज्य का प्रेम नहीं। स्वामी जी ने ऋषिके राष्ट्रीय प्रोग्राम व राजनैतिक सिद्धांतों पर बहस करते हुए आर्य्य स्वराज्य सभा के उद्देश्य का जिक्र किया और स्वराज्य प्राप्ति के लिए सहनशीलता, परस्पर विश्वास, प्राणिमात्र से प्रेम, हृदय की शुद्धि और मातृभूमि से बेहद प्यार का उपदेश किया।

कार्य्याधिक्य के कारण श्री स्वामी जी अधिक समय तक न बैठ सके और प्रधान-कार्य्य श्रीमान् कुंवर चाँदकरण जी शारदा के सुपुर्द कर चले गये, तत्पश्चात् निम्नलिखित ५ नवयुवकों ने आगामी एक वर्ष के लिए गरीबी की जिन्दगी व्यतीत कर सभा का काम करने का व्रत लिया।

(१) अजीतसिंह सत्यार्थी, (२) श्री प्रेमनाथ जी, (३) श्री मोहोरसिंह जी, (४) मिलखीराम जी, (५) श्री गोपालदत्त जी। स्वामी नृसिंहदेव जी ने इन युवकों को आशीर्वाद दिया।

तत्पश्चात् ला० रामप्रसाद जी बी० ए० रईस शाहाबाद ने दयानन्द दलितोद्धार फंड (स्वराज्यसभा) के लिए अपील की। और सार्वजनिक सभा विसर्जित होकर प्रतिनिधियों की मीटिंग हुई जिसमें

विशेष दर्शकों को मिलाकर १००० के लगभग उपस्थिति थी। उसमें कुछ बहस के बाद अखिल भारतीय आर्य्य स्वराज्य सभा बनाने का निश्चय किया गया और १०१ सदस्य उसके लिए निर्वाचित किए गये।

अखिल भारतीय सभा के नियम आदि बनाने के लिए ११ सदस्यों की एक उपसभा बनाई गई जो अधिकारियों से मिलकर स्वराज्य सभा के काम में सहायता दे। उसमें निम्न लिखित सज्जन चुने गए।

१-श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी २-पं० शांतिस्वरूप ३-डा० जवाहरलाल जी, ४-श्री के० सी० भल्ला, ५-श्री अमरचन्द, ६-श्री स्वामी शिवानन्द, ७-श्री ज्योतिस्वरूप, ८-श्री बिहारीलालजी, ९-श्री अजितसिंह सत्यार्थी, १०-श्री पं० रामगोपाल और ११-श्री रामचरण जी विद्यार्थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल सम्मेलन से पूर्व विषय निर्वाचिनी सभा में प्रस्ताव तैयार किये गए जो खुले इजलास में सर्वसम्मति से पास हुए। सभा के मुख्य उद्देश्य में 'आर्य सभ्यतानुसार' इन शब्दों के स्थान में 'आर्य सभ्यता की रक्षा करते हुए' यह शब्द तजवीज़ किये गये। एक सशोधन 'आर्य सभ्यता' की जगह 'भारतीय सभ्यता' शब्द रखने का था जो गिर गया। कोहाट दुर्घटना सम्बन्धी प्रस्ताव पर बहस में कांग्रेस पर कुछ आक्षेप किये गये थे जिनका सन्तोषजनक उत्तर डा० सत्यपाल जी ने दिया। उस दिन पं० विष्णु शर्म्मा व कृष्णगोपाल जी दो युवकों ने अपनी सेवाएं सभा को भेंट कीं। प्रतिनिधियों ने अपने २ प्रांतों में स्वराज्य सभाएं सङ्गठित करने का वचन दिया। तृतीय सम्मेलन कानपुर कांग्रेस के अवसर पर निमंत्रित किया गया। भारतभिक्षु स्वामी परमानन्द जी ने अपने ओढ़ने का एक ही कम्बल दलित बच्चों के लिये आर्य स्वराज्य सभा को दे दिया। यह सम्मेलन सर्वथा सफल रहा। अखिल भारतीय आर्य स्वराज्य सभा का बन जाना और उसके लिये ८ त्यागी नवयुवक सेवकों का मिल जाना उसके भारी परिणाम हैं।

सम्मेलन के प्रस्ताव।

सम्मेलन में निम्न लिखित प्रस्ताव पास हुए:-

(१) स्वराज्य प्राप्ति और आर्य जगत् की आर्थिक स्थिति उन्नत करने के लिये यह सम्मेलन निश्चय करता है कि प्रत्येक आर्य खद्दर का व्यवहार करे तथा अन्य स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करे।

(२) यह सम्मेलन निश्चय करता है कि १०१ सभासदों की अखिल भारतीय आर्य स्वराज्य सभा बनायी जावे।

(३) स्वराज्य प्राप्ति के लिये दलितोद्धार अनिवार्य है अतः यह सम्मेलन आर्य जनता से प्रार्थी है कि वह शीघ्र से शीघ्र दलित भाइयों की दशा को उन्नत करें और उनसे क्रियात्मक समानता का व्यवहार करें

(४) यह सम्मेलन अनुरोध करता है कि प्रत्येक आर्य संस्था में धार्मिक शिक्षा के साथ २ राजनीति का भी समुचित समावेश हो।

(५) इस सम्मेलन की सम्मति में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धांत, जिससे भिन्न २ जातियों को म्युनिसिपल कमेटियों तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में और शिक्षा संस्थाओं में पृथक् अधिकार दिये जावें, राष्ट्रीय उन्नति के मार्ग में अत्यन्त बाधक और हानिकारक है, अतः यह सम्मेलन सब कांग्रेस आदि राजनैतिक संस्थाओं से आग्रह पूर्वक निवेदन करता है कि वे ऐसा कोई समझौता न करें।

(६) भारतीयों के स्वास्थ्य, सम्पत्ति और ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये यह सम्मेलन निश्चय करता है कि प्रत्येक आर्य गौओं की उचित उपायों से रक्षा करे।

(७) यह सम्मेलन निश्चय करता है कि हरेक आर्य राष्ट्रनिर्माण के लिए हिंदी भाषा का प्रचार करे और आर्य संस्थाओं से अनुरोध करता है कि

वे अपने सारे कार्य आर्य भाषा और नागरी लिपि में करें।

(८) यह सम्मेलन शताब्दी आर्य परिषद् की राजार्य सभा की स्थापनापर हार्दिक बधाई देता है।

(९) यह सम्मेलन निश्चय करता है कि आर्य स्वराज्य सभा का प्रत्येक सभासद नित्य व्यायाम करना अपना कर्तव्य समझे।

(१०) यह सम्मेलन निश्चय करता है कि अ० भा० आर्य स्वराज्य सभा का तृतीय अधिवेशन कांग्रेस के साथ दिसम्बर १९२५ में कानपुर में हो।

(११) इस सभा का मुख्य उद्देश्य "आर्य सभ्यतानुसार स्वराज्य स्थापित कराने" की बजाय आर्य सभ्यता की रक्षा करते हुए स्वराज्य स्थापित करना व कराना हो।

(१२) यह सम्मेलन कोहाट की भीषण दुर्घटना के लिए अत्यन्त खेद प्रकट करता हुआ वहां के पीड़ित हिंदु भ्राताओं के साथ सहानुभूति प्रकट करता है और उनपर अत्याचार करने वालों के प्रति घृणा प्रकाश करता है। इस सम्मेलन की यह स्पष्ट सम्मति है कि सरकार ने हिंदुओं की जान और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपने को अयोग्य सिद्ध किया है। आर्य (हिंदु) मात्र से निवेदन है कि वह इन दुःखित भाइयों की पूर्ण सहायता और उनके प्रति व्यवहारिक समवेदना करे।

(२) अ० भा० आर्य कुमार सम्मेलन

ता० १५ फरवरी १९२५ को दिन के १ बजे से शताब्दी पंडाल न० २ में राजराजेन्द्र शाहपुराधीश सर नाहरसिंह जी के सभापतित्व में आर्यकुमार सम्मेलन का महत्वपूर्ण विशेष अधिवेशन आरम्भ हुआ।

ठीक १ बजे राजराजेन्द्र की मोटर आगई। श्री परमात्मा शरण जी तथा श्री कृष्णकुमार जी ने राजाधिराज का स्वागत किया। थोडी देर देर बाद ही बड़ौदा आर्य कुमार सभा का बैंड राजाधिराज की सलामी उतारता हुआ आया। पंडाल में तुरन्त ही रामचरण जी विद्यार्थी की अध्यक्षता में आर्य कुमारों ने भजन व गीतिका आरम्भ करदीं। "दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे" और "आया है हम को यह दिन गुणधाम सौ बरस में" इन गीतिकाओं का गाना आर्य कुमारों के मुख से सुनते ही बनता था। इस समय पंडाल में हजारों दर्शकों के अतिरिक्त भिन्न २ कुमार सभाओं के प्रतिनिधि और माननीय नेतागण उपस्थित थे। राजाधिराज के अतिरिक्त श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज, श्री नारायणस्वामी जी, मास्टर आत्माराम जी, डा० केशवदेव जी शास्त्री, कु० चांदकरण जी शारदा, हरबिलास जी शारदा, डा० कल्याणदास जी देशाई, रावराजा तेजसिंह जी, ला० अलखमुरारी जी, बा० गंगाप्रशाद जी आदि नेतागण, परिषद् के समस्त अधिकारी व अन्तरङ्ग सभासद (केवल दो तीन को छोड़ कर) उपस्थित थे।

गायन के पश्चात् गुरुकुल वैद्यनाथ के ब्रह्मचारियों ने प्रार्थना की। तत्पश्चात् स्वागताध्यक्ष श्री मास्टर आत्माराम जी प्रधान परिषद् ने अपना स्वागत-भाषण पढ़ा। आपके भाषण के बाद डा० केशवदेव जी शास्त्री ने महाराजाधिराज का परिचय देते हुए उनका नाम प्रधान पद के लिए उपस्थित किया, जिसका अनुमोदन तथा समर्थन श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी, डा० कल्याणदास जी देशाई, श्री हरविलास जी शारदा, रामचरण जी और धर्मेन्द्र जी सीवान ने किया। करतल-ध्वनि व जय-जयकार के मध्य महाराजाधिराज खड़े हुए। आपने कहा :—

प्रस्तावक तथा अनुमोदक महाशयों ने जो मेरी प्रशंसा की है मैं कदापि उसके योग्य नहीं हूं। मैं तो आर्य समाज का तुच्छ सेवक हूं। आर्यकुमारों की उत्तम शिक्षा व दीक्षा का मैं बडा पक्षपाती हूं। जिस प्रकार इमारत में एक भी गन्दी ईंट लग जाने से इमारत गिर जाती है इसी प्रकार आर्य कुमारो! आपके अनार्य होनसे सारा भारत नाश हो

सकता है। मेरे जो कुछ विचार इस सम्बन्ध में हैं वे आप को पढ़ कर सुनाये जावेंगे। इसके पश्चात आपका लिखित भाषण आपके मन्त्री जी ने पढ़कर सुनाया। जिसके मुख्य अंश नीचे दिये जाते है।

"आज दिनतक जितने अवतार, जितने आचार्य, जितने वीर, जितने सम्राट् व लाट हुए हैं उन सबों ने अपने जीवन-काल की भावी उन्नति के साधनों को कुमारावस्था में प्राप्त किया है अतएव सभी अवस्थाओं में यह कुमारावस्था ही सर्वोत्तम है। कुमारगण ही देश जाति वा धर्म के संरक्षक हैं। जिस देश व जातिके कुमार सदाचारी, विद्यानुरागी और सत्कर्मानुयायी होते हैं वह देश तथा जाति उन्नत होती है और इसके विपरीत बिगड़ जाती है। महाषवर श्री दयानन्द सरस्वती जी जब मुझ पर कृपा करके शाहपुर पधारे थे तो उन्होंने मुझे यह बतलाया कि आर्य धर्म जो शिथिल हो चला है और देश दीनावस्था को पहुंच रहा है इसका मुख्य कारण एतद्देशीय कुमारों की दीनता है। इस देश में अब तक ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन-परिपाटी, स्वाध्याय और सदाचार के नियम नहीं पाले जाते जिससे हमारा देश निर्बल, मूर्ख और धर्महीन होता जारहा है इस लिए देश, धर्म और जाति के कल्याणकारी आप कुमार ही हैं। वर्तमान काल में जो आपके वृद्ध नेता कार्य कर रहे हैं वे इस आशा पर कर रहे हैं कि हमारा कुमार-समूह तय्यार हो रहा है, वह हमारे मस्तक का भार उतार लेगा। मैं आशा करता हूं कि यह परिषद् उनकी आशा पूर्ण करेगी।

"आर्यकुमार परिषद् क्या है? मेरी समझ में वह सच्चा आर्य बनने का सांचा है। इस परिषद के के द्वारा ही हम "कृण्वंतो विश्वमार्यम्" का सिद्धांत पालन कर सकेंगे या यों समझिये कि यह वह नर्सरी है कि जिसमें आर्य कल्पतरु के पौधे पाले जाते हैं। मैं कुमार परिषद् के कुमारों से अनुरोध करता हूं कि वे अपने पर बडी भारी जिम्मेदारी का काम उठा चुके हैं। उस कार्य को सिद्ध करने के लिए उनको वेद भगवान् की आज्ञाओं का पालन कर ब्रह्मचर्य आदि महाव्रतों का पालन परमावश्यक है, क्योंकि कुमारवृन्द देश के भाग्य-निर्माण की सामग्री हैं। ब्रह्मचर्य से ही धर्म कमाया जाता है। आयुर्वेद की नीति से सिद्ध है कि बिना ब्रह्मचर्य के शारीरिक दिव्य शक्ति प्राप्त नहीं होती और शारीरिक शक्ति के बिना धर्मका साधन नहीं होता। कहा भी है, "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" यह शरीर धर्म अर्थ काम मोक्षादि फलचतुष्टय के लिए होता है। इस लिए अखण्ड सुख प्राप्ति के लिए पहला सोपान ब्रह्मचर्याश्रम ही है।

"कुमारगण! आर्य संसार टकटकी लगाकर आप की ओर देख रहा है। क्योंकि फूल मुरझाने वाले होते हैं और बीज में फलों की आशा रहती है। आप लोगों पर ही देश व धर्म के उद्धार का भार है। इसलिए आप लोग वीर बनें, सच्चे धर्मात्मा बनें, ब्रह्मचारी बनें परोपकारी बनें और आप की भावी सन्तानें भारत का मुख उज्ज्वल करने वाली हों। उनके द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार हो और विश्व मात्र का उपकार हो।"

आपके भाषण के बाद विषय निर्वाचिनी की बैठक हुई जिसमें थोड़ा देर बैठ कर राजाधिराज बड़े पंडाल में चले गये और श्री अलखमुरारी जी ने सभापति का कार्य किया। दो एक प्रस्ताव स्वीकृत होने के बाद एक उपसमिति नियमों पर विचार करने तथा प्रस्ताव निश्चय करने के लिए बना दी गई। उपसमिति ने नियमों को तो देख लिया परन्तु प्रस्तावों पर विचार न कर सकी अतः सभापति जी की आज्ञासे प्रस्तावों का मसविदा तय्यार किया गया

आर्य कुमार सम्मेलन के प्रस्ताव

दूसरे दिन ता० १६ फरवरी को ठीक १ बजे सभापति श्री शाहपुराधीश पंडाल में पधारे। प्रार्थना व भजनों के बाद सभापति जी की आज्ञा

से निम्न लिखित प्रस्ताव श्री भ्राता वीरदेव जी (देहली) ने प्रस्तुत किया:—

"श्री दयानन्द जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् का यह विशेष सम्मेलन सकल आर्य प्रतिनिधि सभाओं एवं आर्य-समाजों से सानुरोध प्रार्थना करता है कि वे आर्य कुमार सभाओं के प्रति सच्ची भातृ-संरक्षावत व्यवहार करें, उनके सदस्यों की मानसिक सामाजिक एवं आत्मिक उन्नति के लिए कार्य-शील साधन प्रदान करें तथा उनके संचालन में पूरे हृदय से भाग लें।

प्रो० परमात्माशरण जी तथा ब्र० धर्मेन्द्र जी [सीवान] ने इसका अनुमोदन व समर्थन किया और सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

दूसरा प्रस्ताव श्री वैद्यनाथप्रसादसिंह जी [सीवान] ने उपस्थित किया कि "भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् का यह विशेष सम्मेलन निश्चय करता है कि संगठन को दृढ करने के लिए सारी आर्य कुमार सभाओं और युवक समाजों का परिषद् से सम्बंध करने के लिए प्रयत्न किया जाय और वैमनस्य के कारणों को खोज करने के अर्थ एक उपसभा निम्न सज्जनों की बनाई जावे जो भेद के कारणों का अन्वेषण कर उसको दूर करने के साधनों को काम में लावें।

'(१) ला० गङ्गाराम जी [शिमला] (२) प्रो० कृष्णकुमार जी (३) डा० केशवदेव जी शास्त्री (४) शान्ति नारायण जी कानपुर (५) रामचरण जी विद्यार्थी (संयोजक)।"

श्री रामचरण जी विद्यार्थी तथा शान्तिनारायण जी (कानपुर) ने इसका अनुमोदन व समर्थन किया तथा सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

इसके पश्चात श्री महादेवशरण जी (झरिया) ने सभापति जी की आज्ञा से अपना निम्नलिखित प्रस्ताव जो विषय--निर्वाचिनी में गिर गया था प्रस्तुत किया।

"क–यह सम्मेलन वैदिक धर्मोद्धारक आर्य-समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द की प्रथम जन्म शताब्दी की स्मृति में भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद के अन्तर्गत एक आर्य कुमार स्वयं-सेवक संघ सङ्गठित करना उचित समझता है और आर्य नवयुवकों से सप्रेम अनुरोध करता है कि वे इसके उचित नियमों के स्वीकृति-पत्र पर हस्ताक्षर कर उत्साह पूर्वक पूरी संख्या में सभासद बनें।

"ख–इस सम्मेलन की सम्मति में पांच सज्जनों की एक उपसभा बनाई जाय जो इस संघ के उचित नियम उपनियम बना कर परिषद् की अन्तरंग में शीघ्र उपस्थित करे।"

डाक्टर युद्धवीरसिंह ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया तथा म० शान्तिनारायण जी, देवदत्त जी तथा कृष्णदेव जी ने विरोध किया। बहुसम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

इसके बाद सभापति जी की ओर से "आर्य-कुमार परिषद्" के नियमों में संशोधन उपस्थित किये गये जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए।

इसके पश्चात सभापति की ओर से डॉ० केशवदेव जी शास्त्री ने अन्तिम भाषण किया और घोषणा की कि २००) वार्षिक राजराजेन्द्र परिषद् को देते रहेंगे। अन्त में परिषद् के प्रधान मास्टर आत्माराम जी ने सभापति जी का धन्यवाद देते हुए कुमारों को सदुपदेश दिया तथा डा० युद्धवीरसिंह मन्त्री परिषद् ने राजराजेन्द्र को धन्यवाद देते हुए कुमारों से उत्साहपूर्वक परिषद् को दृढ़ करने का अनुरोध किया। शान्तिपाठ के साथ सम्मेलन का अधिवेशन ३ बजे समाप्त हुआ।

(३) दलितोद्धार कान्फरेन्स

शताब्दी महोत्सव में दलितोद्धार कान्फ्रेंस का आयोजन देहली की दलितोद्धार सभा की ओर से किया गया था। दलितोद्धार सभाने इस कान्फ्रेंस की व्यवस्था के लिए डा० सुखदेव जी, लाला ज्ञानचन्द्र

जी, पं० इन्द्र जी, स्वामी रामानन्द जी और लाला देशबन्धु की एक कमिटी बनायी थी। इसी ने कानफरेन्स की सब तैयारी आदि की थी। पहिले इस कमिटी का विचार था कि कानफरेन्स का सभापति श्री० सेठ जुगलकिशोर बिड़ला को बनाया जाय। परन्तु उनके अस्वीकार कर देने पर क्रमशः बड़ोदा-नरेश और लाला लाजपतराय से प्रार्थना की गयी। ये दोनों सज्जन कारण-वश समय पर उपस्थित नहीं हो सकते थे, इस कारण अंत को महात्मा हंसराज जी के सभापतित्व में इस कानफरेन्स की कार्यवाही हुई। कानफरेन्स की संक्षिप्त कार्रवाई निम्न लिखित है।

ता० १८ फरवरी दोपहर के समय मुख्य पंडाल में दलितोद्धार सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। लाला ज्ञानचन्द्र के प्रस्ताव, पं० रामगोपाल शास्त्री के अनुमोदन और ला० केदारनाथ जी के समर्थन करने पर तुमुल हर्षध्वनि और जयकारों के बीच महात्मा हंसराज जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

श्री हंसराज जी का व्याख्यान

ला० हंसराज जी ने अपने सभापतित्व के भाषण में बताया कि अन्त्यज या अछूत कहे जाने वाले लोग हमारे पैर हैं। जिस प्रकार हम पैरों के बिना कार्य नहीं कर सकते, उसी प्रकार कोई भी जाति शूद्र रूपी पैरोंके बिना कार्य नहीं कर सकती। आज चारों ओर से हिंदू जाति पर हमला हो रहा है। हिंदू जाति दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। उसके ह्रास का वेग पहाड़ी नदी के वेग की तरह अधिक ही अधिक तीव्रतर होता जाता है। क्या कारण है कि मद्रास में ईसाइयों की संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है। वहां तीन प्रकार के लोग हैं। ब्राह्मण अपने आपको बहुत ऊंचा समझते हैं। दूसरे नायर लोग हैं। इनका मान नहीं है, पर ये अस्पृश्य भी नहीं समझे जाते। तीसरे थिया लोग है। ये चाहे सुशिक्षित और सभ्य भी हैं, पर इन्हें अछूत समझा जाता है। यदि ब्राह्मणों का मुहल्ला है, तो उसमें कोई अछूत नहीं जा सकता। मल उठाने के लिये भंगियों की आवश्यकता होती है उसके लिए ईसाई भङ्गी उपयोग में लाये जाते हैं। हिंदू भङ्गी ब्राह्मणों के मुहल्ले में नहीं जाने पाते। ट्रावन्कोर में पिछली मर्दुमशुमारी के अनुसार २४फी सदी ईसाई थे, अबकी बार उनकी संख्या ३३ फी सदी होगई है। वायकम सत्याग्रह का वृत्तांत आप पढ़ते होंगे। उसको करने वाले थिया लोग ही हैं। मैं आप से प्रार्थना करूंगा कि वायकम सत्याग्रह पर ध्यान दें। इस समय वहां ४८००० आदमी आप के निर्णय की प्रतिक्षा कर रहे हैं। यदि आर्य समाजी उनको सड़कों पर चलने का अधिकार दिला देंगे, तो वे आर्यसमाजी बन जावेंगे। यदि हिंदु उन्हें यह अधिकार दिला देंगे, तो वे हिंदु बने रहेंगे, नहीं तो वे ईसाई या मुसलमान हो जावेंगे। एक बिशपका कहना है कि ५० सालमें सबको ईसाई बना लिया जायगा। इसके बाद

स्वामी श्रद्धानन्द जी का भाषण

हुआ। आप ने कहा अस्पृश्यता एक पाप है, मैंने भी यह पाप किया है। इसके लिये मैं प्रायश्चित्त कर रहा हूं। अपने भाइयों को अछूत समझते हुए हम लोग शताब्दियों से पाप कर रहे हैं, इसके लिए हमें प्रायश्चित्त करना है। यह समय व्याख्यानों और युक्तियों का नहीं है। अब करना क्या है? प्रायश्चित्त का समय है। दिल्ली में आज संगठन हो रहा है, यह शुभ सूचना है। सब स्थानों पर संगठित होने की आवश्यकता है। मैं ऊँची जातियों से कहता हूं कि दलितों को अपनाओ, उनको आर्य बनाओ। दलितों से मैं कहता हूं कि अपने आप को संगठित करो। महाराष्ट्र में आज ५८ लाख अब्राह्मण १० लाख ब्राह्मणों के विरुद्ध उठ खड़े हुए हैं। यह सर्वत्र होगा, यदि तुम इनको अपनाओगे नहीं। अपने में भेदभाव उत्पन्न न करो। आर्यों से मैं कहता हूं, तुम आगे बढ़ो। हिंदू तुम्हारे पीछे

चलेंगे। हिंदू लोग सदा तुम्हारे पीछे चले हैं। शुद्धि आन्दोलन का उदाहरण तुम्हारे सामने है। हिंदू लोग पहले कब माने हैं, ये तो जबरदस्ती करने पर ही मानते हैं। कम से कम इतना तो करो कि इनके हाथ का पानी पिओ; भोजन खाओ। ये गन्दे हैं, पर हम ने ही इन्हें गन्दा बनाया है। श्रीयुत केलकर ने कहा था कि २०० व्याख्यानों के बदले एक दलित के हाथ का भोजन कर लेना अधिक श्रेयस्कर है। मैंने तो प्रायश्चित्त करने का निश्चय कर लिया है। यदि ५०० भी साथी हों तो सारे भारतमें फैल जायँ और अपने आपको भी दलितों में मिला दें। कोई आपत्ति आवे तो मैं तो अपनेको भी चमार कहकर इन भाइयों के साथ रहकर आगे २ चलूंगा ब्राह्मणों आदि की पञ्चायतों ने न जाने कितनी बार प्रस्ताव पास किए हैं पर उनका पालन नहीं किया है। दिल्ली के चमारों और भंगियों ने तो एक बार निश्चय कर लिया और उस पर दृढ़ रहे। उनमें ताक़त है, साहस है। आओ! तुम इस काम को कर सकते हो, तुम अकेले नहीं हो। दयानन्द अकेला था, उसका चमत्कार चार दिन से देख रहे हो। गुरु गोबिन्दसिंह एक २ सिक्ख को सवा लाख से लड़ाता था। पर दयानन्द से सारे सँसार से लड़ाई छिड़ी थी। तुम उसी के अनुयायी हो। आगे कदम बढ़ाओ हिंदू तुम्हारे पीछे चलेंगे। रणजीतसिंह के सेनापति हरिसिंह नलुआ के नाम से आज भी मुसलमान अपने बच्चों को चुप कराते हैं। तुम्हारे नाम से भी बोलने से मुसलमान डरने लगे हैं। जब तुम्हारी बन्दर--घुड़की का यह फल है तब जिस समय तुम साहस के साथ आगे बढ़ोगे, तो कौनसी शक्ति है, जो तुम्हारा मुकाबला करेगी! काशी में दयानन्द अकेला था। बलदेव प्रसाद ने कहा महाराज! काशी-नरेश अपने सब पंडितों के साथ आ रहे हैं, आप अकेले हैं। दयानन्द ने कहा—'परब्रह्म एक है, उसका ज्ञान वेद एक है। कोई भय नहीं।' वह सिंह के समान डटा रहा। आज भी हम उनके शिष्यों को अपने गुरु की भांति चलना होगा। अपनी शक्तियों का प्रयोग करो। तुम इसको कर सकते हो। परमपिता तुमको बल दें। तुम कह दो अस्पृश्यता दोष नहीं है, प्राणीमात्र एक हैं मानव जाति एक है। परमात्मा कल्याण करेंगे। सुखों की वर्षा करेंगे। दयानन्द की मुक्त आत्मा मङ्गल कामना करेगी।

इसके बाद बड़ौदा की दलित बालिकाओं ने गीता के श्लोकों और हिन्दी गीतों द्वारा मङ्गलाचरण किया।

कानफरेंस में निम्न आशय के प्रस्ताव स्वीकार किये गये।

प्रस्ताव

(१) यह सम्मेलन दलितों की देशव्यापी जागृति पर सन्तोष प्रकट करता है, और इस सम्बन्ध में काम करने वाली संस्थाओं तथा व्यक्तियों की हार्दिक प्रशंसा करता है। जन्म के कारण कोई अछूत नहीं है। अछूतपन अवैदिक और अमानुषिक तथा राष्ट्रीय उन्नति के लिए बाधक है।

(२) यह सम्मेलन आर्य्य जाति का ध्यान इस ओर खींचता है कि शुद्ध आचार व्यवहार करने वाले दलित भाइयों को खान पान में समान अधिकार दिये जावें।

(३) अछूत कहो जाने वाली जातियों में कई सदियों के बहिष्कार के कारण कुछ बुरी आदतें पड़ गई हैं। उन्हें दूर करने का उनको यत्न करना चाहिये। तथा अपने अन्दर विद्यमान जाति भेद को मटाना चाहिए।

(४) यह सम्मेलन ट्रावनकोर के हिन्दू जाति के दलितों के प्रति दुर्व्यवहार को अत्यन्त घृणित और निन्दित समझता है। इस दुर्व्यवहार को दूर करने के लिए वायकम में सत्याग्रहियों ने जो यत्न किया है उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। ट्रावनकोर दरबार ने आर्य बने हुए दलितों की

प्रार्थना करने पर भी उन्हें अछूत ही समझा है. इसकी यह सम्मेलन निन्दा करता है और अनुरोध करता है कि दरबार अपनी इस अनुचित आज्ञा को शीघ्र ही वापिस ले ले।

(५) यह सम्मेलन हिन्दू रियासतों के शासकों से प्रार्थना करता है कि वे अपने राज्यों के अन्दर बसे हुए दलितों को अन्य लोगों के समान अधिकार दें।

सब प्रस्ताव प्रायः सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। लोगों में बहुत अधिक उत्साह था। प्रस्तावों के समर्थन में अनेक प्रसिद्ध पुरुषों तथा स्त्रियों के लाभदायक व्याख्यान हुए।

(४) साधु सम्मेलन

श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी के शुभ अवसर पर जहां और भी बहुत से सम्मेलन हुए, वहां एक साधु सम्मेलन भी उल्लेखनीय है। अन्य सम्मेलनों के कैम्पों की नाईं साधुओं का भी एक पृथक् कैम्प था जिसमें सैकड़ों संन्यासी एकत्रित हुए थे और एकत्रित हुए साधुओं की संख्या के द्वारा विदित हुआ कि आर्य सन्यासियों की संख्या सैकड़ों में है। साधु कैम्प में एक लङ्गर था जिसमें समस्त साधु मत भेद से रहित हो दोनों समय भोजन करते थे। इस लङ्गर में एक समय, एक सौ से लेकर चारसौ तक सन्यासी गण भोजन करते रहे। इस लङ्गर के व्यय का भार विशेषतया ला० ईश्वरदास पिण्डदादन खां पर था। इन्होंने सातों दिन के व्यय का भार अपने ऊपर लेना स्वीकार किया था, परन्तु इनके अतिरिक्त और भी सज्जन थे जो इस पुण्य कार्य में भाग लेना चाहते थे। इनमें से श्री० वैद्यराज पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा लाहौर ने एक समय के भोजन में २०० रुपये व्यय करके साधुओं को भोज दिया। इसी प्रकार एक समय म० लक्ष्मणदास जी वानप्रस्थी ने भोजन दिया। आपने यह भोजन अपने सन्यासोपलक्ष में दिया था।

साधु कैम्प पंडाल के निकट शहर की ओर जाने वाली सड़क पर था। इसमें दोनों ओर छप्पर की कुटियां बनी हुई थीं जिनमें साधु महात्मा रहते थे। कैम्प के निकट ही एक कुआं था जिस पर साधु लोग स्नान करते थे। भोजन-भवन तथा रहने के लिए दो कमरे भी थे। कैम्प में एक पंडाल भी था जहां पर व्याख्यान हुआ करते थे। इस पंडाल में व्याख्यान होने १० फर्वरी से ही आरम्भ होगए थे। स्वामी सर्वदानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, स्वामी ओंकार सच्चिदानन्द, स्वामी विद्यानन्द, स्वामी अच्युतानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी सत्यदेव, स्वा० ब्रह्मानन्द, स्वा० चिदानन्द आदि प्रभृति आर्य सन्यासियों के व्याख्यान होते रहे। प्रायः रात्रि के दस बजे तक प्रचार कार्य होता रहता था।

स्वामी सर्वदानन्द जी ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' की ५० जिल्दें भिन्न २ साधुओं में वितरण कीं। साधु महात्माओं ने केवल गृहस्थियों को ही उपदेश नहीं दिया वरन् अपनी उन्नति के साधनों पर भी विचार किया। सबसे आवश्यक प्रश्न उनके सम्मुख प्रस्तुत किया गया कि साधुओं के लिए एक आश्रम बनाया जावे जहां रहकर वे लोग स्वाध्याय कर सकें। यह निश्चय हुआ कि एक साधु आश्रम खोला जावे। स्थान के प्रश्न पर मतभेद था। अन्ततोगत्वा यह निश्चय हुआ कि एक साधु महोदय को अजमेर भेजा जाय वह वहां रहकर देखें और रिपोर्ट करें कि वहां आश्रम चल सकता है वा नहीं। इसके साथ ही हरिद्वार में स्थान तलाश किया जावे, और उसके पश्चात् निर्णय किया जाय कि स्थायी तौर से आश्रम कहां खोला जाय?

नौ साधुओं की एक कमेटी बनायी गई जो साधुओं के संगठन एवं आश्रम खोलने का प्रबन्ध करेगी। इसमें सर्वदानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी, नारायण स्वामी जी, स्वा० परमानन्द, स्वा० स्वत-

न्नानन्द और स्वा० ओङ्कार सच्चिदानन्द जी सम्मिलित हैं।

साधुओं की एक कमेटी में यह भी निश्चय हुआ कि साधारणतया ३० वर्ष की आयु से पूर्व किसी को सन्यास न दिया जाय। विशेष अवस्था में २५ वर्ष की आयु में भी सन्यास दिया जा सक्ता है परन्तु इससे कम अवस्था में किसी प्रकार नहीं। यह भी निश्चय हुआ कि जो व्यक्ति सन्यास लेना चाहे उसके लिए आवश्यक है कि उसने 'सत्यार्थ प्रकाश' 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' और 'संस्कार विधि को पढ़ा हो और आर्य भाषा का अच्छा ज्ञान हो। इस प्रस्ताव पर अमल करते हुए कतिपय व्यक्तियों को सन्यास देने से इनकार किया गया।

इस अवसर पर साधु पुरुषों के पास जिन वस्तुओं का अभाव देखा गया वे दी गयीं। ८० अमृतसरी आसन दिये गये। लगभग ८० स्वदेशी चादर १०० 'सत्यार्थ-प्रकाश' तथा 'संस्कार विधि' की प्रतियां साधुओं को भेंट दिए गए। जिस साधु को यह पुस्तकें दी जाती थीं उससे पढ़वाया जाता था। उसके भली भांति सुनाने के पश्चात् उसे वैदिक धर्म्म का उन्नत करने के लिए प्रयत्नशील होने का उपदेश दिया जाता था।

३३ मन आटे के अतिरिक्त कुल ५०७०) की आय उदार पुरुषों की सहायता से हुई।

इस प्रकार यह कार्य सानन्द सकुशल और निर्विघ्न समाप्त होगया।

(५) शुद्धि कान्फरेंस।

१९ फरवरी को शताब्दी के मुख्य मंडप में बड़ी भारी शुद्धि कान्फरेन्स हुई। जिसकी स्वागतकारिणी के सभापति श्रीयुत राजा जयेन्द्रबहादुरसिंह जी महेवा-नरेश और सम्मेलन के प्रधान श्रीयुत आनरेबुल राजा सर रामपालसिंह जी के० सी० आई० ई० थे। इस सम्मेलन में बहुत से शुद्ध हुए ठाकुर तथा दूसरे ठाकुरों के अतिरिक्त श्रीयुत महाराज नाहरसिंह शाहपुराधीश लिफ्टिनेन्ट राजा दुर्गानारायणसिंह जी तिर्वा सरनऊ नरेश, शिवगढ़ नरेश और राजकुमार अमेठी भी शामिल थे।

स्वा० चिदानन्द जी ने सब से पूर्व स्वागत-समिति के प्रधान महेवा-नरेश का परिचय कराया। पुनः राजा साहब ने अपना निम्न भाषण पढ़ाः—

पूज्य उपस्थित सज्जनो!

आपका स्वागत करने के पूर्व मैं आपकी सेवा में इस सभा का संक्षिप्त इतिहास निवेदन करना उचित समझता हूं। ३० अगस्त १९२२ ई० को क्षत्रिय उपकारिणी महासभा की बैठक, जो काशीधाम में श्रीमान् राजा सर रामपालसिंह जी के० सी० आई० ई० मेम्बर कौन्सिल आफ़ स्टेट, प्रेसीडेन्ट तअल्लुकेदारान सभा अवध के सभापतित्व में हुई थी, उसमें इस आशय का प्रस्ताव पास हुआ था कि शाही ज़माने में जो राजपूत हिंदू धर्म तथा हिंदू जाति से अलग हो गये थे तथा जो अपने धर्म और बिरादरी में मिलना चाहते हैं उन्हें शुद्ध करके पुनः बिरादरी में मिला लिया जाय। राजपूत जाति की सम्मति जानने के लिये यह प्रस्ताव समाचारपत्रों में छपवाया गया। इसके पश्चात् क्षत्रिय महासभा आगरा के २६ वें वार्षिकोत्सव मे ३१ दिसम्बर सन् १९२२ ई० को श्रीमान् राजाधिराज सर नाहरसिंह जी के० सी० आई० ई० शाहपुराधीश की अध्यक्षता में यह प्रस्ताव पुनः उपस्थित हो कर सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। अभी शुद्धि का कार्य आरम्भ करने का विचार हो ही रहा था कि लाहौर के एक समाचारपत्र द्वारा मुसलमानों को इस विचारका ज्ञान हुआ। बस फिर क्या था मुसमलान लोग आपे से बाहर हो गये और उन्होंने राजपूत महासभा को कोसना आरम्भ कर दिया। स्थान २ पर उनकी सभाएं होने लगीं और मुसलमानों को भड़काना आरम्भ कर दिया। समाचारपत्रों द्वारा राजपूत जाति को युद्ध-निमन्त्रण दिया जाने लगा। मौलवी लोग आगरा, मथुरा आदि जिलों तथा भरतपुर राज्य में मलकाना

भाइयों को भांति २ के प्रलोभन देकर शुद्ध न होने के लिये प्रेरणा करने लगे। सबसे पूर्व खंदवाई ग्राम में कई चोटियां भी काट दी गयीं। इन घटनाओं के कारण १३ फरवरी सन् १९२३ ई० को आगरे में श्रीमान् स्वामी श्रद्धानन्द जी के सभापतित्व में समस्त हिंदू सम्प्रदायों का संगठन कर भारतीय हिंदू शुद्धि सभा की स्थापना की गई। उस समय यह भी निश्चित हुआ कि जो मलकाना राजपूत अपनी शुद्धि कराना चाहें उन्हें सभा द्वारा शुद्ध कर फिर उनकी बिरादरीमें मिला दिया जाय।

इस निश्चय की सूचना आगरे के निकट कई ग्रामों तथा बड़े २ नगरों और तीर्थों में पहुंची तो हिंदुओं और उनकी समस्त सभाओं ने भी उसका समर्थन किया। सब से पूर्व रायभा (आगरा) निवासी ठा० केहरीसिंह जी अपने परिवार सहित २५ फरवरी सन् १९२३ ई० को शुद्ध सभा द्वारा शुद्ध किये गये।

इस प्रकार ३१ दिसम्बर सन् १९२४ तक शुद्धि सभा ने २६० ग्रामों को शुद्ध किया। इस शुद्धि कार्य ने हिंदू जाति में जीवन और जागृति उत्पन्न कर दी।

यद्यपि लोगों ने शुद्ध हुए मनुष्यों को अपनी २ बिरादरी मे मिलाकर उन से सम्बन्ध भी कर लिये हैं, तथापि कहीं २ से संकुचित व्यवहार की भी खेदजनक सूचना आ रही है। अब समस्त हिंदू जाति और मुख्यतः राजपूतों का यह परम कर्तव्य है कि इन शुद्ध हुए भाइयों के साथ खान पान तथा विवाह सम्बन्ध करने में किसी प्रकार का संकोच न करें, जिससे शुद्ध हुए भाइयों की कठिनाइयाँ दूर हो जायं तथा विधर्मियों को बहकाने का अवसर न मिले।

राजपूत जाति को यह स्मरण रखना चाहिए कि स० १९२१ ई० की मनुष्य गणना के अनुसार ३१ करोड़ भारतवासियों में १ करोड़ से भी कम राजपूत लोग हैं। ऐसी दशा में लगभग ३० लाख बिछड़े हुए राजपूत भाइयों को एकत्रित कर उनसे टूटी हुई जाति-माला का संग्रन्थन कर लिया जाय तो केवल राजपूत ही नहीं अखिल हिंदू जाति की शोभा बढ़ेगी। इसी प्रकार जाट, गूजर तगे, ब्राह्मण, कायस्थ, अहीर आदि भी अपने लोगों को शुद्ध कर मिलावें तो जाति तथा धर्म की बड़ी ही रक्षा हो।

जाति-निर्माण का कार्य बड़ा कठिन है, हमारी हिंदू जाति बहुत ही विश्रृंखलित है, उसके सुश्रृंखलाबद्ध करनेमें शुद्धि-कार्य उसका पूर्व रूप है। हम चाहते हैं कि इस महान् यज्ञवेदि पर प्रत्येक शिखा-सूत्र-धारी स्वार्थ त्याग की आहुति देना अपना परम कर्तव्य समझे।

इसके अतिरिक्त मैं अन्य कुछ निवेदन करना नहीं चाहता और न इसके लिए समय ही है। अब आप के सम्मुख हमारे सभापति महोदय अपने विमल विचार प्रकाशित करेंगे, आप उन्हें ध्यान—पूर्वक श्रवण कर तदनुसार आचरण करें। मैं एक बार फिर प्रशंसित सभापति महोदय का हार्दिक स्वागत करता हुआ विश्राम लेता हूं।

इसके पश्चात स्वा० श्रद्धानन्द जी के प्रस्ताव और बाबू पूरणचन्द जी के अनुमोदन के बाद सर राजा रामपालसिंह जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया और कहा कि शुद्धि आन्दोलन अत्यन्त आवश्यकीय है। भारत-मिलापके बिना हिंदू धर्म जीवित नही रह सकेगा। कुछ शताब्दियों से मलकाने भाई हम से पृथक् थे परन्तु अब वह अपनी प्यारी जाति की गोद में आने के लिए उत्सुक हैं। क्या आप इस प्रकार पाषण-हृदय हैं कि इन रत्नों को अपने हाथ से खो देंगे? हिंदू जाति का यह कर्तव्य है कि इनको अपनी प्रेममयी गोद में ले। अन्यथा आपके आलस्य का परिणाम यह निकलेगा कि हिंदू जाति सदा के लिए अपना अस्तित्व खो बैठेगी। अपने दिलों में पूर्ण निश्चय कर लो और अपने धर्म पर डट जाओ और इसके लिए अपने जीवन को अर्पण कर दो। इस समय आप की जाति पर चहुं ओर से

आक्रमण हो रहे हैं। ईसाई और मुसलमान ऋषि सन्तान को हड़प रहे हैं इस लिए हिंदू मात्र का परम कर्तव्य है कि वह अपनी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जायं। इसके बाद आप का लिखित भाषण आपके ही प्राइवेट सेक्रेटरी ने सुनाया। जिसमें आपने शुद्धि की शास्त्र-विहितता आदि पर विचार करते हुए शुद्धि के विरोधियों को उचित जवाब दिया और सब लोगों से उदासीनता छोड़कर शुद्धि-कार्य में लग जाने की अपील की। आप के भाषण के बाद निम्नलिखित महानुभावों की वक्तृतायें हुईं:—

महात्मा हंसराज जी ने कहा कि स्वागतकारिणी और सम्मेलन के प्रधान बड़े प्रसिद्ध पुरुष हैं। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि बड़े २ राजे और महाराजे भी इस कार्य के सहायक हैं। हमें आशा है कि इस आन्दोलन में अवश्य सफलता होगी।

महाराजा तिर्वा-नरेश जी ने कहा कि यह आन्दोलन जिस पर कि आज हम विचार कर रहे हैं महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने ४० वर्ष पूर्व ही बता दिया था। इस समय तक सब लोगों ने मान लिया है कि यह शुद्धि नहीं है अपितु भ्रातृ-सम्मेलन है। अगर कोई भाई गृह से रुष्ट होकर चला जाय तो सब सम्बन्धी उसको मनाने के लिए आते हैं। अब आप के सामने ऐसा ही प्रश्न है। मैं उन भाइयों का धन्यवाद करता हूं कि जिन्होंने हम से अलग होकर भी अपने रस्म-रिवाज और रहन सहन को नहीं छोड़ा, आप लोग इस प्रकार कष्ट उठाकर महर्षि की जन्म शताब्दि मनाने को आये हैं अब आप लोग यहां से क्या अपूर्व वस्तु लेकर जायंगे? मेरी सम्मति में बिछुड़े भाइयों को गले लगाना ही सब से अपूर्व कार्य है।

लाला देवराज जी ने देवियों को सम्बोधित कर के प्रतिज्ञा कराई कि शुद्धि कार्य में बाधा न डालकर हम हर प्रकार की सहायता करेंगी।

राजा बरखंडी नरेश प्रतापनारायणसिंह जी शिवगढ़ ने कहा कि बिछुड़े हुए भाइयों को गले लगाने में कोई दोष नहीं है। यह शास्त्रोक्त धर्म है। ऋषि मुनियों ने इसका उपदेश और प्रचार किया था। इससे सब भाइयों को निर्भय होकर इस कार्य में पूरा भाग लेना चाहिए।

राजकुंवर रणञ्जयसिंह जी राज्य अमेठी ने कहा कि देश की उन्नति के लिए जो कार्य हो रहा है उसमें शुद्धि आन्दोलन कुछ साधारण विषय नहीं है। स्वराज्य-प्राप्ति के लिये एकता की अत्यन्त आवश्यकता है। सच्ची एकता तब तक नहीं हो सकती है जब तक धार्मिक एकता न हो जाय। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय एकविचार हो कर देशोन्नति में लग जायं। जिस समय बड़ी जन-संख्या का यह देश धार्मिक उन्नति कर लेगा उस समय संसार की कोई शक्ति न होगी जो इस को दास बना सके। विचारों की एकता के लिये लिये शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। इस लिये आप इस कार्य में हाथ बढ़ाने के लिये तैयार हो जाइये। हिंदू धर्म कोई साधारण धर्म नहीं है अपितु बड़ा विशाल धर्म है और कभी सारे संसार पर इसका प्रभाव था। पर हमारा दुर्भाग्य है कि हम उपरोक्त बात से अपरिचित हैं। अगर आप का यह विश्वास है कि वेद भगवान प्राणिमात्र के लिये हैं तो आपको इस आन्दोलन में जीवन डालना चाहिये। इसी में देश तथा धर्म की उन्नति है।

महाराजा मरनऊ ने कहा कि शुद्धि आन्दोलन कोई नया नहीं है। क्योंकि इसका उल्लेख सर्वत्र धार्मिक ग्रन्थों में आता है। मैं शुद्धि आन्दोलन को दिल से चाहता हूं। अतः प्रत्येक हिन्दू को चाहिए कि अपने संकुचित विचारों को छोड़ कर बिछड़े हुओं को गले लगावे।

महाराजाधिराज सर नाहरसिंह जी शाहपुराधीश ने कहा कि सबसे पूर्व आप यह विचार करें कि शुद्धि आन्दोलन आज का नहीं अपितु प्राचीनकाल से है। मनु भृगु, याज्ञवल्क्य और देवल आदि स्मृतियों में शुद्धि का विधान है।

प्राचीन समय में जो जातियां अन्य देशों से भारत वर्ष में आई उनको हमारे पूर्वजों ने शुद्ध कर हिंदू धर्म में मिला लिया। यदि वेद संकीर्णता का उपदेश करें और हिंदुओं को तंग रहें तो वह ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकते हैं। आदि सृष्टि से ही वेद ऋषियों द्वारा हमको प्राप्त हुए हैं। यदि वेद आदि सृष्टि में प्राप्त न होते तो हिंदू-धर्म सार्वभौम न होता। यदि कोई कहे कि ईश्वरीय ज्ञान हज़रत ईसा या हज़रत मुहम्मद से प्रारम्भ हुआ तो मैं पूछता हूं कि क्या ईश्वर उससे पूर्व सोता था। वैदिक धर्म के अतिरिक्त बहुत से स्वार्थियों ने नये २ पन्थ चला दिये क्योंकि ब्राह्मणों ने वेदों को अपनी सम्पत्त समझ लिया था इस लिए आम लोगों में वेदों का प्रचार बन्द हो गया। जब से मुझे अक़ल आई है और ऋषि दयानन्द ने शुद्ध का उपदेश किया है तब से ही मैं शुद्ध के पक्ष में हूं। पहिले भी मैंने थोड़े २ कई मनुष्यों की शुद्धियां देखी थीं। मगर राजपूत सभा के उत्सव के पश्चात मुझे अधिक शुद्धि देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। पुनः वृन्दावन भ्रातृ-सम्मेलन के अवसर पर हज़ारों मलकानों को शुद्ध करने का अवसर प्राप्त हुआ। आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि अपने दिलों से संकीर्णता को निकाल दें और जो हिंदू धर्म में शामिल होना चाहें उन्हें सहर्ष शामिल करलें।

इसके बाद निम्न लिखित प्रस्ताव पास हुए

१--यह सम्मेलन निश्चय करता है कि शुद्धि धर्मशास्त्र के अनुकूल है और हिंदू जातिके अस्तित्व के लिए परमावश्यक है।

२-यह सम्मेलन हिन्दुओं की सब जातीय और धार्मिक संस्थाओं से प्रार्थना करता है कि वह अपनी अपनी सभाओं के अन्दर शुद्धि सभा की शाखा खोल कर बिछड़े हुये भाइयों को मिलाने का कार्य आरम्भ करें।

३-यह सम्मेलन क्षत्रिय उपकारिणी महासभा और उसके नेताओं का धन्यवाद करता है जिन्होंने अपने बिछड़े हुए भाइयों को मिलाने का निश्चय किया और जिसके अनुकरण से ही सहस्त्रों नर-नारी पुनः अपनी बिरादरी में सम्मिलित हुए हैं।

४-यह सम्मेलन उन धार्मिक संस्थाओं विद्वानों और हिंदू नेताओं का धन्यवाद करता है कि जिन्होंने शुद्ध के अनुकूल व्यवस्थायें देकर इस पवित्र कार्य में सहायता की है।

५-यह सम्मेलन जाट महासभा, गूजर महासभा ब्राह्मण महासभा और कायस्थ महासभा आदि का धन्यवाद करता है जिन्होंने क्षत्रिय उपकारिणी महासभा का अनुकरण करते हुए अपने २ जाति के बिछड़े हुए भाइयों का मिलाना स्वीकार किया है। साथ ही उन हिंदू नेताओं का यह सम्मेलन धन्यवाद करता है जिन्होंने मलाबार के चेलानायरों को अपनी पूर्व बिरादरी में सम्मिलित कराने के लिए सहायता पहुंचाई है।

६-यह सम्मेलन सर्व हिंदू राजा और महाराजाओं से प्रार्थना करता है कि वह अपने राज्य में ऐसे कानून बनावें कि जिससे कोई नाबालिग हिंदू बच्चा या कोई हिंदू स्त्री अपने धर्म को परिवर्तन न कर सके। और यदि कोई विधर्मी उन्हें हिंदू धर्म से पतित करना चाहे तो उसको कड़ा दण्ड दिया जाय।

७-यह सम्मेलन सानुरोध प्रार्थना करता है कि सब हिदुओं का परम कर्तव्य है कि वह भारतीय हिंदू शुद्ध सभा को तन मन धन और जन से सहायता करें और नियमानुसार इसके सभासद बनें।

सभापति ने अन्तिम भाषण करते हुए कहा कि जो प्रस्ताव आपने पास किये हैं उनमें बहुत उत्साह के साथ हाथ उठाये हैं। यह बात स्मरण रखने योग्य है। किसी वस्तु को स्वीकार करना ऐसा आसान नहीं कि गृह पर जाकर ही भूल जांय। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इन प्रस्तावों को अपने सामने रक्खेगे और हर समय इनको कार्य रूप में परिणत करने के लिए कटिबद्ध रहेंगे।

अगर आपने ऐसा न किया तो स्मरण रखना कि आप इस पवित्र अवसर पर की हुई प्रतिज्ञा का उल्लङ्घन करेंगे। अन्त में सभापति का धन्यवाद देकर यह कानफरेंस समाप्त हुई।

(६) जात पांत तोड़क मण्डल

२० फरवरी सन् १९२५ के मध्यान्होत्तर श्री डाक्टर क ाणदास जी के सभापतित्व में जात पांत तोड़क मंडल का अधिवेशन हुआ। सभापति-निर्वाचन-विषयक प्रस्ताव के अनुमोदन समर्थन के पश्चात श्री ऋषिराम जी ने 'आवो शताब्दी मनावें, गुरुवर की कीर्ति को गावें' यह होली गायी और तदनंतर सभापति ने अपना प्रारम्भिक भाषण देते हुए कहा: –

सज्जनो और नर नारियो,

आज मुझे इस सभा के सभापति का आसन देकर आपने जो मान दिया है, इसके वास्ते मैं आप सभ्यगण का धन्यवाद करता हूं। 'जात पांत तोड़क' नाम सुनकर आप सोचेंगे कि क्या जात पांत तोड़क मंडल वाले जात पांत को तोड़ डालेंगे? क्या जातियों को मनुष्य तोड़ सकता है? क्या गाय को घोड़ा बनाया जा सकता है? (हास्यध्वनि) तो इसको जाति तोड़ने वाला मंडल मत समझिये। जाति का शब्द इसमें इसलिए लिख दिया है कि जाति का नाम लेकर लोग अकसर धोखा देते हैं। उसी धोखे को दूर करना चाहिए। इस धोखे का एक दृष्टांत लीजिये। आप से कोई पूछे कि आप कौन हैं? तो आप विचार करेंगे कि यह क्या? मैं कौन हूं? मैं तो मनुष्य हूं। तो वह पूछने वाले कहेंगे, हां आप मनुष्य तो हैं मगर कौन हैं? आप उनसे कहेंगे कि आपका इससे मतलब क्या है? फिर वह पूछेंगे कि आप कौनसी जाति में जन्म पाये हैं? आप मनुष्य मनुष्य कहेंगे तो वह कहेंगे कौन जाति में हैं? अगर आप कहेंगे उदीच्य, सनाढ्य, कान्यकुब्ज आदि, तो उनका उत्तर हो जायगा (हास्यध्वनि)। मनुष्य कहना पर्याप्त नहीं होगा।

शास्त्र में मनुष्यों के दो भाग बताये हैं--अच्छे हैं वह आर्य और जो लूटते हैं अशुद्ध रहते हैं वह अनार्य। परंतु आर्यों में भी ४ भेद हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। अब ब्राह्मणों की कल्पित जाति १८ हजार कर डालीं। इसी तरह क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों में भी जाति का ढोंग रचा रक्खा है। इससे जब देश की उन्नति करने का काम आता है तो सब इकट्ठे नहीं होते। भोजन करने आये तो कहेंगे कि अपनी जाति में करेंगे। किसी मित्र के साथ खा लेंगे जो जाति में नहीं है तो मुकद्दमा होगा, आप जाति से निकाले जायंगे। और उस आदमी के साथ, जो इतना मैला है कि उसके पास बैठना भी आप पसन्द नहीं करते पर आप की जाति में है, खाना पड़ेगा, उसका निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ेगा, और उस प्यारे मित्र का जिसके साथ आप खाना पसंद करते हैं आप निमंत्रण स्वीकार नहीं करसकते अगर वह आपकी जाति का नहीं है। इसी तरह एक विद्वान् है, मैं उसे अपनी पुत्री देना चाहता हूं, तो यह सवाल होता है कि वह मेरी जाति में नहीं है। भोजन इत्यादि में हम मिल जुल नहीं सकते। पानी तक नहीं पी सकते! परिस्थिति ऐसी बिगड़ गई है!

अब आज यहां निश्चित करना है कि उस एक आ जाति में, जिसमें सभी वर्ण शामिल हैं, सबका परस्पर व्याह और भोजन हो सके। कोई इसमें कहेगा कि जिस वर्ण में जन्म लिया है उसी में करेंगे तो इस के लिये तो यह है कि हज़ारों ब्राह्मण हैं जो जन्म लेते हैं ब्राह्मण कुल में, परन्तु उनको वेदों का नाम भी नहीं आता। जिसने वेद का नाम भी नहीं सुना वह ब्राह्मण कैसे होगा? यही हालत वैश्य, शूद्र और क्षत्रिय की है। तो उनको चाहिये कि यह झूठा अभिमान और गौरव छोड़कर सब एक हो जांय और इस प्रकार अन्तरजातीय व्याह और भोजन का तरीका जारी हो। जो आर्य भाई आ सम्मेलन में हैं उनको चाहिये वह मिल-

जुल कर कानून बनाने का यत्न करें और प्रतिनिधि सभायें ऐसे ब्याहों की एक रिपोर्ट रखें और ऐसी व्यवस्था हो कि यह प्रणाली सारे हिंदुस्तान में फैल जाय।

इसके अनन्तर जा० पां० तो० मं० के मन्त्री महाशय ने कहा कि महाराज नाहरसिंह जी शाहपुराधीश भी अपना समय निकाल कर इसमें शामिल होंगे। मैंने आप को यह बतलाना है कि ज़ात पांत तोड़क मंडल ने क्या किया है। आज से तीन वर्ष पहले देवता स्वरूप भाई परमानन्द के एक व्याख्यान से यह विचार हुआ कि इस तरह का एक मंडल कायम करें। लाहौर में यह कायम हुआ और तीन वर्ष से काम कर रहा है। इस के तीन सम्मेलन हुए। पहला लहौर में, दूसरा गुरुकुल कांगड़ी में और तीसरा यह है। सम्मेलन के लगभग पांच सौ सभासद हैं। यह ज़रूरी है कि आर्यजनता इसमें उत्साह से काम करे। कोई भी कार्य शिथिलता से नहीं करना चाहिये। अब तक जो कार्य हुआ है वह पूरे उत्साह से हुआ है। मेरे पास एक छोटी सी सूची है उन लोगों की जिन्होंने जात पांत तोड़ कर व्याह किये हैं। उनमें से मुख्य २ नाम ये हैं। श्री सीताराम साहनी पञ्जाब लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर हैं उन्होंने अपने भतीजे का व्याह जात पांत तोड़कर किया है। लाला हरकिशनलाल के पुत्रने इसी तरह का ब्याह किया है। शताब्दी से दो चार दिन पहले एक स्नातक ने एक ऐसा ब्याह किया वह ब्राह्मण हैं। गोकुलचन्द जी बी० ए० शास्त्री ने एक मद्रासी कन्या से जो उनकी जात की नहीं है ब्याह किया है। पं० धर्मेन्द्रनाथ जी ने अपना और अपनी भगिनी का ब्याह जात पाँत तोड़कर किया। भगिनी का ब्याह एक खत्री से किया। गुरुकुल के स्नातक वंशीधर ने भी इसी तरह व्याह किया। इसके सिवा जिन्होंने ऐसे व्याह किये हैं उनके नाम की सूची लम्बी है।

आप जानते हैं कि गुरुकुल वृन्दावन और कांगड़ी ने इतना काम हमारे लिए किया है। उससे साफ दिखाई देता है कि अगर आप दृढ़ संकल्प करके चलें तो जो वर्णव्यवस्था गुण कर्म से शास्त्रों में बनाई है वह शीघ्र प्रचलित हो जायगी। कल आप ने देखा दो महानुभावों ने सन्यास लेकर नया पथ पकड़ा है। आप भी यहां से नया व्रत लेकर जांय।

मंडल के प्रस्ताव

इन दो व्याख्यानों के अनन्तर जात पाँत तोड़क मंडल में तीन महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए गए। इन प्रस्तावों पर स्वामी श्रद्धानन्द जी, बाबू घासीराम एम० ए०, स्वामी मुनीश्वरानन्द, स्वामी सत्यदेव, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० धर्मदेव सिद्धांतालंकार और स्वामी अच्युतानन्द जी आदि महानुभावों के समर्थनपरक और मनोरञ्जक भाषण हुए। प्रस्तावों का आशय निम्न प्रकार था।

१—यह जात पांत तोड़क मंडल इस बात पर सन्तोष प्रकट करता है कि अब हिंदुओं में गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था को मानने की प्रवृत्ति अधिकाधिक बढ़ रही है और आशा करता है कि शीघ्र ही इस सिद्धांत पर आचरण भी होने लगेगा।

२—इस मंडल की सम्मति में आज कल जो वर्ण व्यवस्था प्रचलित है वह बुरी है, इसलिए आवश्यक है कि खान पान और व्याह विषयक प्रचलित जात पांत को जान बूझकर तोड़ा जाय। यह भी आवश्यक है कि खान पान व्याह विषयक बन्धनों को उठा दिया जाय इसलिए यह मंडल प्रत्येक आर्य युवक और युवती से प्रेरणा करता है कि ब्याह आदि के कार्यों में जो मौजूदा जाति बंधन हैं, उन्हें जान बूझकर तोड़ें और जात पांत के बाहर ब्याह करें।

३—यह मंडल अनुभव करता है कि इस समय भिन्न २ प्राँतोंमें जात पांत तोड़कर ब्याह किये जाने

की आवश्यकता है और इसीलिए आर्यसमाजों की प्रतिनिधि सभाओं से अनुरोध करता है कि वे योग्य कन्याओं और वरों का रजिस्टर रखें कि जिससे इस प्रकार के सम्बन्ध करने में सुभीता हो।

(७) महिला सम्मेलन

शताब्दी महोत्सव में महिला सम्मेलन की बैठकें भी सफलता पूर्वक होती रहीं। विशेष कर १३-१४ फरवरी को होने वाली दोनों बैठकें सम्मेलन की प्रधाना श्रीमती ठाकुरदेवी जी वानप्रस्थिनी पञ्जाब निवासिनी की अध्यक्षता में विशेष शांति और सफलता पूर्वक हुईं। उपस्थिति '१५००' डेढ़ हज़ार के लगभग थी। उसके पश्चात भी ता० १५ से २१ फरवरी तक नित्य प्रति १०॥ से १ बजे तक महिला सम्मेलन का उत्सव होता रहा। स्थानाभाव से महिला परिषद् की बैठकें कई स्थानों पर हुईं। प्रातः ५ बजे से देवियां एकत्रित होकर महिला परिषद् के पण्डाल से चल कर सम्पूर्ण शताब्दी कैम्प में सङ्कीर्तन करती हुई ७ बजे वापिस आती थीं। महिला परिषद् के प्रस्तावानुसार सैकड़ों ही देवियों ने इस महान् यज्ञ के समय यज्ञोपवीत धारण किये। २१ फरवरी को होने वाली परिषद् की बैठक में बस्तर मयूरभञ्ज के वैवाहिक सम्बन्ध के विषय में एक प्रस्ताव पास हुआ तथा रानी साहिबा पर होने वाले अत्याचारों पर हार्दिक शोक प्रकट किया गया और राज्य कर्मचारियों को सुमति प्रदान के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई।

(८) कवि-सम्मेलन।

शताब्दी के अवसर पर द्वितीय पंडाल में २० फरवरी को मध्यान्होत्तर काल में कविसम्मेलन बड़े समारोह से हुआ। सभापति का आसन कविता-कामिनी-कांत कविराज श्री पं० नाथूरामजी 'शंकर' शर्मा ने सुशोभित किया था। बाहर से लगभग १०० कवियों की कविताएं प्राप्त हुई थीं। अनेक सुप्रसिद्ध कवियों ने स्वयं पधार कर कविसम्मेलन की शोभा बढायी थी। पं० रामनारायण मिश्र, मराल, श्रीमती सुशीलादेवी, श्री चमूपति, पं० वंशीधर जी विद्यालङ्कार और श्री चातक जी आदि की कविताएँ जनता ने ख़ूब पसन्द कीं। श्री स्वामी नृसिंहदेव जी सरस्वती के मधुर गान से जनता चित्रलिखित सी हो गई। कविसम्मेलन में साहित्याचार्य श्री० पं० पद्मसिंह जी शर्मा, श्री पं० घासीरामजी एम० ए०, श्री पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी श्री रायसाहब मदनमोहन जी सेठ एम० ए०, श्री० ठा० नन्दलालसिंह जी, श्री बाबू अलखमुरारी जी, श्री बाबू पूर्णचन्द जी, श्री पं० रामजीलालजी शर्मा और श्रीमती रानी हीरादेवी आदि गण्य मान्य और साहित्य-मर्मज्ञ उपस्थित थे।

श्री० मदनमोहन सेठ जी ने, पं० रामनारायण जी मिश्र और श्रीमती सुशीलादेवी की कविता पर प्रसन्न होकर दो पदक देने की घोषणा की। श्री० पं० रामजीलाल जी शर्मा तथा श्रीमती रानी हीरादेवी जी ने श्रीमती सुशीलादेवी को पांच २ रुपये का उपहार दिया। एक देवी ने सर्वोत्तम पूर्तिकार को २०) प्रदान किये।

इन सम्मेलनों के अतिरिक्त शताब्दी महोत्सव के अवसर पर आर्योपदेशक सम्मेलन, गौ-कांफ्रेंस, क्षत्रिय कांफ्रेंस और नाई ब्राह्मण सम्मेलन के अधिवेशन भी हुए थे, जिनमें उन सम्मेलनों में रुचि रखने वाले सज्जनों ने भाग लिया था। क्षत्रिय कांफ्रेंस के सभापति रावराजा तेजसिंह जी थे। इस में महात्मा हंसराज जी, स्वामी सत्यदेव, जगदीशसिंह गहलौत आदि के व्याख्यान और शुद्धि के समर्थक, क्षत्रियों के संगठन व बस्तर मयूरभंज विवाह विषयक प्रस्ताव पास हुए।

दयानन्द शताब्दी में सभी आर्य पुरुष उपस्थित हुए थे उनमें कोई नशीले पदार्थों का व्यसनी नहीं था, इस कारण मादक-द्रव्य-निषेधक कानफरेंस पृथक कराने की कोई आवश्यकता ही न था। तथापि आर्य पुरुषों के अतिरिक्त सामान्य जनता को लाभ पहुंचाने के लिए विविध व्याख्यानों में ही श्री देवीदत्त द्विवेदी टेम्परेंस प्रीचर (ग्राम सिमौरी जिला फतेहपुर) का भी एक व्याख्यान रख दिया गया था। आपने अपने व्याख्यान में अङ्क आदि देकर वैज्ञानिक प्रमाणों से मादक-द्रव्य-सेवन की हानियों का वर्णन किया था, जिससे मादक द्रव्य सेवन न करने वालों को भी बहुत सी नई बातें मालूम हुईं।



बारहवां परिच्छेद

कैम्प, पण्डाल, प्रबन्ध और लोगों की भीड़

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्म का प्रथम शत-सांवत्सरिक महोत्सव; भगवान कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की जन्मभूमि, मथुरा में ता० १५ फर्वरी से आरम्भ होकर गत २१ फरवरी १९२५ को निर्विघ्न समाप्त हो गया। २॥ लाख मनुष्य महर्षि के पुण्य चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि चढ़ाने के लिये एकत्र हुए थे। चारों ओर से स्पैशल गाड़ियां यात्रियों से भरी हुई मथुरा आ रही थीं। पञ्जाब से आने वाली स्पैशल ट्रेनों पर ओ३म् का झण्डा और महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी स्पैशल ट्रेन की पताका फहरा रही थी। सम्राट् हर्ष के पश्चात् भारत की पुण्य वसुन्धरा पर भिन्न २ देशों से आर्य पुरुषों का इतनी वृहद् संख्या के एक धार्मिक कार्य के लिये एकत्र होने का यह पहला ही अवसर था। भारत वर्ष के सभी प्रांतों-युक्तप्रांत, पञ्जाब, राजस्थान, बंगाल, आसाम बर्मा, मध्यप्रदेश, गुजरात, बम्बई, मद्रास आदि के निवासियों के अतिरिक्त नैपाल, लंका, अफगानिस्तान, दक्षिणी और पूर्व अफ्रीका, जापान, मारीशस, एंडमान, अदन और बगदाद तक से लोग इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आये थे।

आर्य-नगरी।

शताब्दी महोत्सव का स्थान मथुरा शहर और मथुरा रेलवे जङ्कशन के बीचों बीच था। इसी स्थान पर शताब्दी महोत्सव का बड़ा भारी पंडाल बनाया गया था जिसमें २५००० आदमी बैठ सकते थे। यह सारा स्थान चारों ओर से केसरिया पताकाओं

घूरा घेर दिया गया था और रेलवे में बैठे हुए यात्रियों को बड़ा सुहावना जान पड़ता था।

जङ्कशन से महोत्सव-भूमि की ओर को आते हुए दाहिने हाथ पर पहिले शुद्धि सभा का पंडाल पड़ता था और बांये हाथ पर भिन्न २ प्रांतों के यात्रियों के उतारे के लिए बनाये हुए कैम्प थे जो मुख्य पंडाल तक चले गये थे। इनमें सबसे पहिला कैम्प दयानन्द कालेज कानपुर का था शुद्धि सभा के कैम्प के बाद दयानन्द स्कूल आगरा, आगरा अनाथालय और आगरा आर्यसमाज के कैम्प थे। इसके बाद एक धर्मशाला थी जिसमें स्वामी श्रद्धानन्द जी अन्य बहुतसों के साथ अपना आसन जमाये हुए थे। यहां सड़क के दोनों ओर दो सजे हुए बांस के दरवाजे थे। एक पंडाल की ओर को जाने के मार्ग का दरवाजा था और दूसरा रहने के कैम्पों और शताब्दी बाजार का प्रवेश-द्वार था। पंडाल के दरवाजे के दाहिनी ओर एक अस्थायी वाचनालय था और बाईं ओर कानपुर आयुर्वेदिक मुफ्त औषधालय, तथा पंडाल कैम्प के मैनजर का दफ़्तर था।

यज्ञों की व्यवस्था

दरवाज़े में घुसने पर पंडाल के मुख्य द्वार तक सड़क बड़ी सुन्दर बनी हुई थी। पंडाल के चारों ओर पांच बड़ी यज्ञशालाएं बनी हुई थीं। इनमें आर्योपदेशक और आर्य सन्यासी नित्य प्रातः सायं बड़ा यज्ञ करते थे। यज्ञ की कार्यवाई शंखध्वनि से शुरू हुआ करती थी। यज्ञशालाओं की शांति और लोगों के स्वतन्त्रता पूर्वक आने जाने को तथा उनके श्रद्धा-भाव को देखकर प्राचीन ऋषियों के आश्रम की स्मृति हो आती थी। लोग आते और जाते रहते थे परन्तु यज्ञ-क्रिया में किसी प्रकार का विघ्न नहीं होने पाता था। प्रत्युत जो आते जाते थे उनके मुख पर यज्ञशाला में प्रवेश करते ही एक अवर्णनीय शांति श्रद्धा, भक्ति और गम्भीरता का सम्मिलत भाव दृष्टिगोचर होता था। आर्य महिलायें भी यज्ञों में पर्याप्त संख्या में सम्मिलित हुआ करती थीं। आर्य महिलायें स्वयं तो यज्ञशाला में शांत रहती ही थीं, अपने साथ अपने बालकों को भी लाती थीं और उनके हृदयों पर वैदिक श्रद्धा के भाव अंकित करने का यत्न करती थीं। यदि कोई बालक रोते थे व चंचलता करते थे तो उनको आर्य मातायें समय की गम्भीरता का ध्यान रखते हुए बड़ी संजीदगी से शांत करा देती थीं। इन यज्ञशालाओं में ता० १० फरवरी से ही यज्ञ शुरू होगए थे और महोत्सव के अन्तिम दिन तक होते रहे। श्री नारायण स्वामी जी की ओर से प्रत्येक यज्ञशाला का कार्य कुछ नियत उपदेशकों और सन्यासियों को सौंप दिया गया था, जो अपनी अपनी यज्ञशाला में सब से पहिले स्नानादि से निवृत्त होकर उपस्थित हो जाते और यज्ञ की कार्यवाही शुरू कर देते थे। यज्ञ की पवित्र अग्नि इन यज्ञशालाओं में लगातार सात आठ दिन तक प्रतिक्षण प्रज्वलित रहती थी।

ऊपर लिखे यज्ञों के लिए निम्न महाशयोंने दान दिया था:—

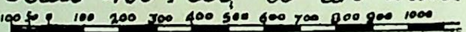
सेठ रघुवरदयाल [कलकत्ता] १००० रु०, म० जीयालाल [पहाडी धीरज, देहली] २५० रु०, म० ख्यालीराम वानप्रस्थी [जलालाबाद] २५० रु०, दीवान सिंह जी रिटायर्ड तहसीलदार [प्यावली] २५० रु०, साहू रामस्वरूप [मुरादाबाद] २५० रु०, लाला वेदमित्र जी रईस [तीतरा] २५० रु०, चौधरी मामराजसिंह [शामली] २५० रु०, राजाराम नंदी दीन [मोमिनाबाद] १५० रु०, चौधरी लालसिंह लथेडा १५० रु०। म० अम्बाप्रशाद जी बरेली वालों ने भी एक माकूल रक़म यज्ञों के लिए दी थी।

पंडालों का प्रबन्ध

शताब्दी-कार्य के लिए तीन बड़े २ पण्डाल बनाये गये थे। प्रधान पडाल कांग्रेस पंडाल के ढंग पर १९६ खम्भों का बना था। रात्रि में उसकी छटा विद्युत प्रकाश से बड़ी अनूठी मालूम पड़ती थी।

MAP OF RISHI DAYA NAND JANAM SHATABDI. MUTHRA.

Scale 400 Feet to an Inch.



FROM BHARATPUR.
½ MILE DISTANCE FROM M JUNCTION G.I.P.
SHUDHI SABHA CAMP
SPECIAL CAMP OF TENTS.
G.I.P. RAILWAY LINE
TO DELHI.
TO DELHI.
GAU SHALA. O.P.W.
TEMPLE.
SHIVTAL.
TO BRINDRABAN.
SHUDHI SABHA CAMP
CAMP OF TENTS
AGRA CAMP.
DHARAM SHALA SETH LALLUMAL
B.B.&C.I. RAILWAY BRANCH LINE.
UPDESHAKS. CAMP
SADHU ASHARAM CAMP.
ROAD.
KACHA ROAD.
U.P. CAMP
BOMBAY & BENGAL
MADRAS & BIHAR CAMP.
RAJISTHAN CAMP.
SPECIAL CAMP OF TENTS.
BOOK SELLERS SHOPS
MAIN BAZAR ROAD.
GIN FACTORY GROUND.
PROVINCIAL BAZAR.
U.P. CAMP.
PROVINCIAL ROAD.
SERVICE ROAD.
LANE.
AFRICA & DELHI CAMP.
TO BHARATPUR GATE.
GURUKUL U.P. CAMP.
VILLAGE NAGLA
PROVINCIAL BAZAR.
PANJAB CAMP.
PANJAB CAMP.
PANJAB CAMP.
TEMPLE
ROAD.
DAMPIER PARK ROAD.
DISTRICT EXHIBITION.
MISSION GATE.
BILOCHISTAN CAMP.
SPECIAL TENTS.
SERVICE LANE.
PARKARMA ROAD.
TO HOLI GATE.
B.B.&C.I. RAILWAY LINE.
MUTHRA CANTT. STATION.
BAHADR PURA.
DAMPIER PARK
SHATABDI SPORTS & TOURNAMENT GROUND.
MUTHRA CANTONMENT.
MUTHRA CITY.

REFERENCE.

1 KITCHEN.
2 NARAYAN SWAMI-ASHARAM.
3 SHATABDI OFFICE.
4 YAGN SHALA.
5 YAGNSHALA.
6 PLATFORM.
7 PRESS GALLERY.
8 MAIN PUNDAL.
9 YAGN SHALA.
10 PUNDAL.
11 PUNDAL.
12 YAGN SHALA.
13 PARDARSHANI.
14 PUNDAL.
15 YAGN SHALA
16 ENQUIRY OFFICE
17 HOSPITAL.
17 CHOBE GARDEN.
18 CHUNGI HOUSE.
19 SHATABDI GATE.
20 BHARATPUR GATE ½ MILE.
21 D.A.V. COLLEGE LAHORE CAMP.
22 KANYA GURUKUL INDRA PRASTH AND KANYA MAHA VIDIYALA JALANDHER.
23 STATUE OF MR. DAMPIER.
24 SHATABDI GATE.
25 SPECIAL CAMP.
26 CHOUBE GARDEN
27 MANAGER'S CAMP, POST OFFICE.
28 GURUKUL KANGRI CAMP.
29 MAN BHAWAN.
30 MAHARAJA SHAHPUR ADHISH CAMP
31 SWEET SELLER'S SHOPS 50.
32 HAVAN, SAMAGGRI, SHOPS ETC. 20
33 LATRINE.
34 BOOK SELLER'S SHOPS-80

इसमें साधुओं, राजाओं, महिलाओं, विद्यार्थियों, व्याख्याताओं, प्रेस-प्रतिनिधियों और अन्य लोगों के लिए पृथक् २ स्थान नियत थे। इसके अतिरिक्त और दो छोटे पंडाल बनाये गये थे, जिनमें एक ही समय में भिन्न भिन्न सम्मेलन और परिषदें होती रहती थीं। तीनों पंडाल स्त्री पुरुषों से हर समय खचाखच भरे रहते थे। स्त्री मंडप भी हमेशा स्त्रियों से भरा रहता था। शुद्धि सभा और साधु मंडल के अपने अपने पृथक् पंडाल थे। इनमें भी बड़ी भीड़ रहती थी। प्रधान पंडाल में स्थान २ पर तथा अन्य स्थानों पर भी संस्कृत, हिंदी और अंग्रेज़ी सिद्धांत-वाक्य (मोटो) लगे हुए थे। पंडालों के भीतर व्याख्यानादि के समय लोगों में व्यवस्था रखने के लिए स्वयंसेवकों की नियुक्ति की गयी थी।

अन्य विविध कैम्प

मुख्य पंडाल के पीछे की ओर एक दुमंजिली कुटी थी, जिसमें शताब्दी महोत्सव का सदर दफ्तर था और इसी की ऊपर की मंज़िल में श्री नारायण स्वामी जी रहते थे। आप महोत्सव की सब व्यवस्था और बन्दोबस्त करने के लिए कई महीने पहिले ही मथुरा आ रहे थे। इस उत्सव की सफलता के लिये आपने जो कठिन परिश्रम और निःस्वार्थ सेवाएं कीं उनके लिए प्रत्येक शताब्दी यात्री आपका कृतज्ञ था। द्वितीय पंडाल के पास ही शताब्दी-प्रदर्शनी खोली गयी थी, जिसका वर्णन पृथक् दिया गया है।

मुख्य पंडाल के समीप ही साधुओं का कैम्प था जहां बहुत सा खुला मैदान व्याख्यान उपदेशादि के लिए छोड़ दिया गया था। इसमें ३०० साधु सन्यासियों ने अपना डेरा जमाया हुआ था। स्वामी सत्यदेव ने भी इसी कैम्प में अपने लिए एक तम्बू रिज़र्व कराया हुआ था।

साधु कैम्प के सामने एक कौटन फैक्टरी थी। इसे आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा (लाहौर) ने काबू कर लिया था और यहां पर महात्मा हंसराज जी तथा अन्य कालिज पार्टी के प्रमुख आर्यसमाजी ठहरे हुए थे। फैक्टरी के अहाते में बहुत से तम्बू ताने गए थे। अहाते के बाहर बहुत सी छोलदारियां और छोटे ख़ेमे थे जिनमें अनेक यात्री और आर्य स्वराज्य सभा, लाहौर तथा शुद्धि सभा, आगरा आदि के दफ्तर थे। शताब्दि कैम्प के दरवाजे के पास वाला आख़िरी तम्बू महाशय खुशहालचन्द्र खुरसंद लाहौर वालों का था। इसमें उन्होंने अपने दैनिक पत्र "मिलाप" (उर्दू) का दफ्तर खोला हुआ था।

बाज़ार औषधालय आदि

दरवाजे के भीतर शताब्दी बाज़ार था। इसमें कई सौ दुकानें भिन्न २ प्रांतों से आई हुई थीं। ज्यादातर दुकानें पुस्तकों की थीं। इनके सिवा हलवाइयों, पानवालों, होटलों, भोजनालयों और विश्रांतिगृहों की भी कमी नहीं थी। एक बाल बनवाने का सेलून और स्नानगृह भी थे जिनको नई रोशनी के लोगों ने बहुत पसन्द किया। बाज़ार के अन्त में एक चक्करदार सड़क थी जो एक प्रकार का गोल दायरा बनाती थी। इस दायरे के बीचों बीच जनरल कैम्प मैनेजर का एक दफ्तर था और इसके चारों ओर प्रांतिक कैम्प मैनेजरों के दफ्तर थे। यहीं पर एक अस्थाई डाक व तार घर और कई आयुर्वेदिक औषधालय भी थे। इन औषधालयों में एक गुरुकुल वृन्दावन का था, जहां पर मुफ्त दवाई बांटी जाती थी। इस गोल दायरे से भिन्न २ प्रांतों की समाजों व कैम्पों को रास्ते निकलते थे। पञ्जाब और संयुक्त प्रांत के कैम्प सब से बड़े थे। राजस्थान, बिहार बंगाल, उड़ीसा और मध्य प्रदेश के कैम्प भी काफी बड़े थे। बम्बई और मद्रास प्रांत से भी कुछ यात्री आये थे।

स्वास्थ्य-रक्षा का प्रबन्ध

स्वास्थ्य रक्षा का प्रबन्ध सर्वथा संतोष जनक था। स्थानीय म्युनिसिपैलिटी और उसके अध्यक्ष

सब शताब्दी-यात्रियों के धन्यवाद के पात्र हैं क्यों कि उन्होंने भी पानी आदि के प्रबन्ध में शताब्दी कैम्प के प्रबन्धकों की पूरी सहायता की थी। एक विशेष हैल्थ औफीसर शताब्दी के मेले के लिए तैनात किया गया था। दूकानें और कैम्प साफ रखे जाते थे। खाने पीने की चीजों पर सख्त निगरानी रखी जाती थी। नहाने और पीने के पानी के लिए अलग अलग नल लगे हुए थे। सड़कें खूब चौड़ी थीं और उनपर रोज पानी का छिड़काव होता था। टट्टियें भी साफ रखी जाती थीं। उनके पास भंगी दिन रात तैनात रहते थे। इतने दिनों तक लाखों आदमियों के एक ही स्थान पर इकट्ठा रहने पर भी मथुरा में कोई बीमारी नहीं फैली, यही इस बात का प्रबल प्रमाण है कि स्वास्थ्य रक्षा की व्यवस्था उत्तम थी। बीमारों के लिए यों तो कई मुफ्त आयुर्वेदिक औषधालय थे ही, शताब्दी कमिटी की ओर से भी देसी और अंग्रेज़ी दवाखाने खुले हुए थे, जिनमें दिनरात डाक्टरों और स्वयंसेवकोंकी ड्यूटी लगी रहती थी। ये डा० और स्वयंसेवक अपना काम बड़े निःस्वार्थ भाव,प्रेम,त्याग और मुस्तैदी से करते थे। रोगियों की सेवा करते हुए इनको अपने आराम की फिक्र नहीं रहती थी। जिन स्वयंसेवकों ने रोगियों की सेवा का काम किया उनमें पञ्जाब बाय स्काऊट असोसिएशन (अमृतसर) का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। इन्होंने निमोनिया सरीखे भयानक रोगों के रोगियों की सेवा की थी। शताब्दी कमिटी के दवाखानों में सभी प्रकार के रोगी आते थे। परन्तु खांसी, जुकाम, जखम, पेट और गले के रोगियों की संख्या सब से अधिक थी।

भीड़ और उसका नियंत्रण

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि शताब्दी मनाने के लिए भारतवर्ष के सब प्रांतों से और भारत के बाहर से भी आर्य यात्री मथुरा पधारे थे। इनकी संख्या का अनुमान दो से तीन लाख तक किया जाता है। ऊपर जिस आर्य नगरी का वर्णन किया गया है उसका विस्तार तीन मील तक हो गया था। परन्तु यात्रियों की संख्या इतनी अधिक थी कि इतना विस्तृत नगर भी सब यात्रियों के लिए पर्याप्त सिद्ध नहीं हुआ। शताब्दी की आर्य नगरी के सिवा मथुरा के सब बंगले, डेम्पीयर नगर और धर्मशालायें भी शताब्दी के यात्रियों से भरी हुई थीं। ता० १८ फरवरी को मथुरामें जो जलूस निकाला गया था वही दो मील लम्बा होगया था यद्यपि सब यात्री उसमें सम्मिलित नहीं हुए। बहुत से यात्री और स्वयंसेवक आर्य नगरी की रक्षा के लिए आर्य नगरी में ही रह गए थे। इतनी बड़ी भारी भीड़ के होते हुए भी इसका नियंत्रण और संरक्षण बिना पुलिस की सहायता के आर्य स्वयंसेवकों ने ही ऐसी उत्तमता से किया कि किसी को कोई शिकायत का मौका नहीं मिला। इसका कारण यह है कि शताब्दी के सब यात्री शुद्ध धर्म की भावनाओं और दयानन्द की पवित्र शिक्षाओं से अनुप्राणित थे। उनमें अपूर्व उत्साह था, प्रगाढ़ प्रेम था और नवीन भावनायें थीं। लोगों के उत्साह का इससे बढ़कर क्या प्रमाण हो सकता है कि अनेक स्थानों से यात्रियों की छोटी २ मंडलियां पैदल चलकर मथुरा पहुंची थीं। इनमें १७ वर्ष के एक बङ्गाली युवक सुधीरकुमार का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। यह बालक ता० ३ फरवरी को बङ्गाल के एक ग्राम से ९०० मील चलकर १८ तारीख को मथुरा पहुंचा था और रास्तों में केवल तीन स्थानों पर इसने विश्राम किया था। इसके पास मार्ग-व्यय के लिए एक पाई भी नहीं थी।

स्वयँ-सेवक

इस परिच्छेद को महोत्सव के स्वयंसेवकों की सेवाओं का उल्लेख किये बिना समाप्त कर देना कृतघ्नता की पराकाष्ठा होगी। स्वयंसेवकों ने शताब्दी महोत्सव में जिस त्याग, उत्साह, मुस्तैदी

और निःस्वार्थता से पूरा तन मन लगा कर जो काम किया वह संसार में अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। यों तो श्री नारायणस्वामी जी की सूचनाओं पर उत्सव के आरम्भ में ही बहुत सी सेवा समितियां मथुरा पहुंच गयी थीं परन्तु तारीख १२ फरवरी को ही यात्रियों की बढ़ती हुई तादाद को देख कर अन्दाज़ होने लगा कि उपस्थित स्वयं सेवकों की संख्या पर्याप्त न होगी। इस कारण दो तीन बार पंडालों में प्लेटफार्मों पर से अपील कर करके तुरन्त नये स्वयं सेवक भरती किये गये। यात्रियों को उनके ठहरने के स्थान बतलाना, बिछडी हुई स्त्रियों को और बच्चों को उनके साथियों तक पहुंचाना, भीडका नियन्त्रण करना, पंडालों में श्रोताओं को व्यवस्था पूर्वक बिठलाना, दिन रात कैम्पों में पहरा देना, यात्रियों के बाहर चले जाने पर डेरों की रक्षा करना बीमारों की सेवा व उनको औषधि आदि देना, सफाई रखना, भोजन पानी पहुंचाना, आदि कोई सेवा-कार्य ऐसा नहीं था जो इन स्वयं-सेवकों ने न किया हो।

पानी की सुव्यवस्था के लिए फर्रुखाबाद की सेवासमिति का नाम विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। इसके ५० स्वय सेवक अपने लोटे बालटी पानी की गाडी और बडी २ डेगें आदि लेकर आरम्भ में ही मथुरा पहुंच गये थे। ये रात्रि के तीन बजे से रात्रि के बारह बजे तक स्थान २ पर यात्रियों को पानी पहुंचाने का काम बड़ी उत्तमता से करते थे।

दि पञ्जाब बॉय स्काउट असोसिएशन का नाम तो रोगियों की सेवा के लिए पहिले आ ही चुका है।

जिला बरेली की आर्य सेवासमिति बिहारीपुर, सेवा समिति कुंअरपुर, आर्यकुमार सभा भूड़ बरेली आर्यसेवक मण्डल भूड़ बरेली, और कन्या पाठशाला भूड बरेली, इन संस्थाओं ने भी बडा उत्तम काम किया। ये स्वयंसेवक संयुक्त प्रांत मध्य-प्रदेश और बिहार बङ्गाल के कैम्पों में पहरे तथा रक्षा का, और मुख्य पंडालमें व्यवस्था का काम करते थे। जिस दिन सब लोग नगर-कीर्तन के लिए बाहर चले गये थे उस दिन भी इन स्वयसेवकों ने पीछे रहकर कैम्प-रक्षाका काम किया था। विशेषता यह है कि बरेली की आर्य स्वयं-सेविकाओं ने स्त्रियों को भी सार्वजनिक सेवा का मार्ग दिखलाया। एक घटना बहुत मनोरञ्जक है। शताब्दी महोत्सव में आर्यसमाज के शत्रुओं की ओर से हानि पहुंचाने के अनेक यत्न किए गए थे। ता० १९ फरवरी को एक स्त्री गुरुकुल वृन्दावन के कैम्प के पास आग लगाना चाहती थी। आर्य-सेवक मंडल भूड बरेली के एक स्वयंसेवक ने उसे देख लिया और पास जा कर पूछा तो वह स्त्री रोने लगी इस पर उसे बाबू पन्नालाल जी सहायक कैम्प मैनेजर के सुपुर्द कर दिया गया। बरेली के स्वयं-सेवकों में मास्टर रामभरोसालाल, मास्टर रोशनलाल, बाबू राजाबहादुर वर्मा, महाशय लालसिंह, राजाराम शर्मा, आर० बी० सेवक (स्काउट), राधेश्याम स्काउट और श्रीयुत सत्यपाल उर्फ़ चोखेलाल के नाम उल्लेख योग्य हैं।

इन सेवा समितियों के अतिरिक्त कई कैम्पों वालों ने अपने कैम्प की रक्षा के लिए आपस में ही स्वयं-सेवक इकट्ठे कर लिए थे। इनमें डी० ए० वी० कालेज लाहौर और पञ्जाब की कई आर्यसमाजों का काम बहुत प्रशंसनीय था।

कैम्पों का प्रबन्ध।

पहिले लिखा जा चुका है कि प्रबन्ध के लिए श्री नारायण स्वामी जी तो सबके प्रमुख थे ही, परन्तु कार्य की सुगमता के लिए एक जनरल कैम्प मैनेजर का दफ्तर था और उस के नीचे अलग २ कैम्पों के विविध दफ्तर थे। जनरल कैम्प मैनेजर का काम बाबू शालिगराम जी वकील, बाबू पन्नालाल जी और डा० ज्वालाप्रसाद जी की सहायता से करते थे। ये तीनों सज्जन आगरा निवासी थे। प्रांतिक कैम्प मैनेजरों का काम उन २ प्रांतों के

ही प्रमुख आर्य पुरुषों को सौंपा गया था। इन कैम्पों के अतिरिक्त एक पंडाल कैम्प था। इस कैम्प के कार्यकर्ताओं के आधीन सब पंडालों और उनके आस पास लगे हुए तम्बुओं तथा छोलदारियों की व्यवस्था का काम था। इस कार्य के संचालक बाबू शिवनारायण जी नायब नाज़िर जजी मुरादाबाद, चौधरी श्यामसिंह जी वर्मा उछोटी निवासी, बाबू बुद्धबिहारी जी हेड वालन्टियर सेवासमिति कुंवरपुर (बरेली) बाबू विंध्यवासिनीप्रसाद जी माथुर मुख्त्यार पुस्तकाध्यक्ष आर्यसमाज मुरादाबाद और ठाकुर हरगोविंदसिंह जी हापुड़ निवासी आदि थे।

संयुक्त प्रांत के कैम्प मैनेजर का काम लाला बाबूराम जी अमरोहा निवासी ने बड़ी उत्तमता से किया था।

ऊपर जिन स्वयंसेवकों का और सेवा समितियों का नाम आ चुका है उनके सिवा कासगंज और बहरायच के स्काउटों (बालचरों) और गुरुकुल पोठोहार (दाक्षण) के ब्रह्मचारियों ने भी पहरे व रक्षा का काम उत्साहपूर्वक किया।

श्री नारायण स्वामी जी ने इनमें से बहुत सी सज्जनों और सेवा समितियों को उनके कार्य से प्रसन्न होकर प्रशंसापूर्वक प्रमाण पत्र भी भेंट किये थे।

दुर्घटनाएँ।

शताब्दी कमिटी और प्रांतिक प्रबन्धकर्ताओं और स्वयंसेवकों के पूर्ण प्रयत्न करने पर भी कुछ मामले छोटी २ चोरियों के सुनाई पड़ते ही थे। परन्तु यह ध्यान रहे कि ये सब मामले उन्हीं तम्बुओं में सुने जाते थे जो सड़क के किनारे लगाये गये थे। शताब्दी कैम्प के निवास स्थान तो सर्वथा सुरक्षित ही थे। लोगों को खुले छप्परों में अपने खाये हुए आने पाई के सिक्के तक पा जाते थे। २० फरवरी तक कोई गम्भीर दुर्घटना सुनने में नहीं आई।

परन्तु ता० २१ फ़रवरी को अन्तिम दिन मथुरा के कुछ हिंदुओं की अदूरदर्शिता और भोलेपने से एक ऐसी दुर्घटना हो ही गयी जिससे शताब्दी महोत्सव के पवित्र नाम पर एक छोटा सा धब्बा पड़ गया। तथापि इस दुर्घटना को स्वामी श्रद्धानन्द जी प्रभृति आर्यसमाज के प्रमुख पुरुषों ने आरम्भ में ही दबा दिया और मामला आगे नहीं बढ़ने दिया। इससे फूट फैलाने वालों के अरमान दिल ही दिल में रह गये।

कुछ आर्य विद्यार्थी नित्य प्रातःकाल यमुना के विश्रामघाट पर शौच स्नानादि के लिए जाया करते थे। ता० २१ फरवरी के प्रातःकाल भी वे अपने नित्य नियमानुसार गये और जब वहाँ दातुन करने लगे तो हिंदू पन्डों ने उनके साथ बहुत दुर्व्यवहार किया और गाली गलौज के साथ उन्हें दातुन करने से रोका। आर्य विद्यार्थी इतने पर भी चुप रहे और उन्होंने दातुन करना बन्द कर दिया। बाद को एक विद्यार्थी ने नहाते हुए साबुन लगाया। इस पर पंडे मार पीट करने पर उतारु हो गए और थोड़ी मार पीट हो भी गई जिसमें दोनों ओर से कुछ आदमी जख्मी हो गए। परंतु स्वामी श्रद्धानन्द जी आदि आर्य नेता समय पर ही मौके पर पहुंचे और उन्होंने सब को समझा बुझाकर शांत कर दिया। इसी घटना को असोसिएटेड प्रेस ने और कुछेक सनातनधर्म की रक्षा के ठेकेदार पत्रों ने बहुत बढ़ाकर प्रकाशित किया जिससे बात का बतंगड़ बन गया। वस्तुतः बात कुछ भी नहीं थी।

और पीछे यह भी मालूम हुआ कि इस करतूत के कराने में सारी साजिश देहली के श्री राजनारायण षटशास्त्री की थी, जो कि हिंदुओं को हिंदुओं से लड़ाने के लिए काफ़ी नाम हासिल कर चुके हैं। यह महाशय खास इसी मतलब से देहली से मथुरा गये थे। वहाँ पहुंचकर पहिले इन्होंने सनातनधर्म सभा से आर्यसमाजियों को शास्त्रार्थ का चेलैंज दिलवाया। परंतु आर्यसमाजी समझ

गए और उन्होंने शताब्दी के अवसर पर शास्त्रार्थ करने से इनकार कर दिया। तब श्री राजनारायण ने आर्यसमाजियों और स्वामी दयानन्द को गालियों से भरे हुए बहुत से पोस्टर छपवा कर जगह जगह शहर में लगवा दिए। इस पर भी आर्यसमाजी शांत रहे। फिर इन्हीं महाशय ने विश्रामघाट पर आर्य समाजियों के विरुद्ध व्याख्यान देने के लिए एक सभा बुलाई जिसमें पंडों को आर्य समाजियों के खिलाफ खूब भड़काया। इसको आर्य समाज के भी कुछ जोशीले युवक नहीं सह सके। और उनमें भी उत्तेजना आ गई इसीसे यह दङ्गा हो गया। तथापि इसमें अब कोई सन्देह नहीं रहा कि पंडों की पहिले से झगडा करने की इच्छा थी। उन्होंने इसके लिए आसपास के मकानों की छतों पर ईंट पत्थर भी जमा कर रखे थे। उन्हें किसी बहाने की जरूरत थी और वह बहाना श्री राजनारायण जी की मेहरबानी से मिल गया। परन्तु साथ ही उनका दुर्भाग्य था कि मथुरा के प्रतिष्ठित लोग और समाज के नेता झगड़ा नहीं चाहते थे। वे शांति-प्रिय थे और इसी कारण बहुत जल्दी समझौता होगया तथा दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षरों से युक्त निम्न लिखित घोषणा-पत्र प्रकाशित किया गया, जिसने सर्वत्र शांति-स्थापना का प्रशंसनीय कार्य किया:—

सम्मिलित घोषणापत्र

"श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी के अन्तिम दिवस मथुरापुरी के विश्रामघाट पर जो झगडा तीर्थ-पुरोहितों के साथमें हुआ, हमें दुःख है कि कुछ नासमझ लड़कों ने मर्यादा का उल्लङ्घन करके, उसे उत्पन्न किया।

"शताब्दी के प्रथम दिवस से मथुरा के हिंदू मात्र इसमें बड़े प्रेम से सहयोग दे रहे थे। १७-२-२५ के बृहत् जलूस का मथुरा-निवासियों ने जो स्वागत किया वह हिंदू जाति के लिए बड़े शुभ चिन्ह का सूचक था। जो झगड़ा हुआ उससे आर्य समाज, चतुर्वेदी पुरोहितों तथा अन्य सनातन धर्मावलम्बियों के परस्पर सम्बन्ध में कोई भेद नहीं आ सकता।

"जिन लोगों ने मर्यादा का उल्लङ्घन करके इस बृहद् यज्ञ में विघ्न पैदा किया उन्हें हम घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

"हम लोग इस विज्ञापन द्वारा घोषणा करते हैं कि हमारा कोई भी परस्पर विरोध नहीं है।"

श्रद्धानन्द सन्यासी, प्रधान दयानन्द जन्मशताब्दी।

नारायण चौबे ब्रह्मचारी। गरुड़ध्वजशर्मा चतुर्वेदी।

महापुरुषों की उपस्थिति

शताब्दी महोत्सव में जहां आम जनता लाखों की संख्या में उपस्थित हुई थी वहां महापुरुषों की उपस्थिति की दृष्टि से भी उत्सव कम सफल नहीं रहा।

आर्य समाज के प्रमुख नेता और विद्वान महात्मा हंसराज, लाला साईंदास एम० ए०, लाला दीवानचन्द्र एम० ए०, स्वामी श्रद्धानन्द जी, श्री नारायण-स्वामी, स्वामी सर्वदानन्द, डा० केशवदेव, मास्टर आत्माराम, प्रो० बालकृष्ण एम० ए०; श्री घासीराम एम० ए०, देवस्वरूप भाई परमानन्द एम० ए० आदि महानुभावों के अतिरिक्त राष्ट्रीय सन्यासी स्वामी सत्यदेव जी भी उपस्थित थे। राजा रईसों में शाहपुरा के महाराज सर नाहर-सिंह, जोधपुर के रावराजा तेजसिंह, अमेठी के राजकुमार श्री रणञ्जय-सिंह, राजा रामपालसिंह कुर्रीसुदौली, तिर्वा के राजा दुर्गानारायणसिंह, महेवा के राजा तथा अन्य कई नरेश भी उपस्थित थे। महाकवि शङ्कर, पं० पद्मसिंह शर्मा, ईश्वर, कर्ण, मराल, 'चातक भद्र', मधुर, सोम, चमूपति आदि प्रसिद्ध कविगण भी उपस्थित थे।

तेरहवां परिच्छेद

श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी मथुरा की प्रदर्शिनी और खेलें।

श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी की कार्यकारिणी सभा की बैठक ता० २३ अप्रेल सन् १९२४ को देहली में बैठी थी, उसके निश्चय संख्या १० के अनुसार, यह फैसला हुआ था कि महोत्सव के साथ एक प्रदर्शिनी भी होगी तथा प्रदर्शिनी में अन्य वस्तुओं के साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यवहृत वस्त्र एवं अन्य वस्तुओं के दिखाने का भी यत्न किया जायगा। इस प्रदर्शिनी के सम्बन्ध में आवश्यक प्रबन्ध करने के लिए एक उपसभा निम्नलिखित सज्जनों की बनाई गयी थी:—

(१) श्री बाबू घासीराम जी एम. ए. मेरठ
(२) चौ० मुख्तारसिंह जी वकील मेरठ
(३) बाबू ब्रजनाथ मित्थल वकील मेरठ

प्रदर्शिनी के लिए २५०० रुपये का बजट भी स्वीकार किया गया था। प्रदर्शिनी के समस्त प्रबन्ध का भार उपसभा के ही ऊपर रखने का निश्चय हुआ। साथ ही उपसभा को यह भी अधिकार दिया गया कि आवश्यकता पड़ने पर वे चार तक और सभासद बढ़ालें।

उपसभा ने अपनी ता० १ सितम्बर १९२४ ई० की बैठक में विश्वम्भर सहाय जी प्रेमी तथा म० चरणदास जी मित्थल बी० ए० एल० टी० हैड मास्टर डी० ए० वी० हाई स्कूल मुज़फ़्फ़रनगर को भी उपसभा के सभासदों की सम्मत्यनुसार सभासद बना लिया।

उपसभा के निश्चय के अनुसार देश और विदेश के भिन्न २ प्रमुख पुस्तकालयों को, इस कार्य में साहाय्य प्रदान करने एवं प्रदर्शिनी में वैदिक साहित्य सम्बन्धी पुस्तकें, लिपियां और हस्त लिखित ग्रन्थ सर्वसाधारण के सम्मुख प्रगट करने के अभिप्राय से भेजने के लिए एक पत्रिका लिखी गई थी परन्तु खेद है कि इस विषय में कुछ भी सफलता प्राप्त न हुई। भांडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना के मन्त्री महोदय ने तो उत्तर देने की कृपा की थी तथा अपने यहां का सूचीपत्र भी भेज दिया था, जिसके लिए उपसभा हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करती है, परंतु अन्य किसी ने उत्तर तक नहीं दिया।

कई प्रकार से प्रबल प्रयत्न किया गया कि प्रदर्शिनी में दिखलाने को आर्य बालकों तथा बालिकाओं की बनाई हुई वस्तुएं अधिक संख्या में आसकें परन्तु आशानुरूप सफलता प्राप्त न हुई। यद्यपि मुम्बई गुरुकुल, आर्य कन्या विद्यालय कलकत्ता, देहरादून, वेलगांव आदि जैसे दूर के स्थानों से कुछ वस्तुएं प्राप्त हुईं तथापि सहस्रों आर्यसामाजिक संस्थाओं में से केवल एक वा दो दर्जन के लगभग संस्थाओं की ही वस्तुएं आना विशेष प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। सम्भव है कि इसका कारण यह हो कि आर्य पुरुषों एवं आर्य ललनाओं, बालक और बालिकाओं को शताब्दी महोत्सव के मुख्य कार्य में ही अधिक दिलचस्पी रही और उनका ध्यान विशेष रूपेण इस ओर आकर्षित नहीं हुआ।

स्वामी जी की व्यवहृत वस्तुओं तथा उनके पत्रादियों की प्राप्ति में भी तनिक भी सफलता प्राप्त न हुई। केवल श्रीमान शाहपुराधीश जी ने एक दुशाला भेजा था। एक खद्दर का कोट व पायजामा जो श्री स्वामी जी महाराज के आदेशानुसार शाहपुराधीश ने तैयार कराया था, एवं आर्यसमाज मेरठ का भेजा हुआ एक सींकों का बना हुआ बटवा भी प्रदर्शिनी में रक्खा गया था।

प्रदर्शिनी ५ दिवस तक जारी रही। इसका कारण कार्यकर्ताओं का अभाव था। प्रथम दो दिवस तक इस विचार से, कि वस्तुएं कुछ अधिक न थीं, कोई टिकट नहीं लगाया गया, परन्तु इसके फल स्वरूप अधिक भीड़ लगी और प्रबन्धक को प्रबन्ध करना कठिन हो गया। तीसरे दिन दो आने टिकिट लगाया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि भीड़ भी कम हो गई एवं दो दिन के भीतर ४३६) की आय हो गई।

प्रदर्शिनी का फुटकर व्यय ८२॥।=) हुआ परन्तु जो पदक अभी प्रदान करने हैं उनमें लगभग २०००) लगेंगे। इस प्रकार आय व्यय से अधिक रहेगी। वस्तुओं की न्यूनता के कारण पारितोषिक अधिक नहीं रक्खे गए। जिन संस्थाओं से अधिक सामान प्राप्त हुआ था उन्हें विशेष रूप से एक २ स्वर्णपदक प्रदान किया जायगा।

उपसभा की ओर से श्रीयुत विश्वम्भरसहाय जी प्रेमी विशेष रूपेण धन्यवाद के पात्र हैं। आपने १० फरवरी से ही अपने प्रेस का कां छोड़कर मथुरा पहुंच कर कार्य करना स्वीकार किया था। आप के बिना प्रदर्शिनी कदापि सफल न होती। इस कार्य में आप को अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसी विचार से उपसभा ने प्रेमी जी को अमूल्य सेवाओं के बदले उन्हें भी एक पदक देना स्वीकार किया है।

शताब्दी महोत्सव के खेल।

शताब्दी कमेटी ने जनता में शारीरिक बल की उन्नति करने की प्रवृत्ति तथा मर्दाने खेलों की ओर रुचि बढ़ाने के लिए महोत्सव में मर्दाने खेल कराने का भी निश्चय किया और इसके लिये

१. प्रो० रमेशचन्द्र सिद्धांत-शिरोमणि, डी० ए० वी० कालेज कानपुर (संयोजक)
२. प्रो० देवराज सेठी गुरुकुल कांगड़ी
३. बाबू अलखमुरारी सब जज आगरा
४. कुंवर चांदकरण शारदा अजमेर
५. श्रीयुत महेन्द्रनाथ शास्त्री
६. प्रो० अमरनाथ बाली डी.ए.वी.कालेज लाहौर
७. पं० जीयालाल आर्यसमाज अजमेर और
८. पं० गोविन्दराम डी० ए० वी० कालेज कानपुर

की एक कमिटी बना दी थी। इसी कमिटी ने पीछे शताब्दी महोत्सव में सब खेलों का आयोजन किया। उत्सव से पहले ही समाचारपत्रों में खेलों के नियम, इनाम, समयविभाग आदि छपवा कर सब आर्य संस्थाओं को खेलों में भाग लेने के लिये निमन्त्रण दिया गया। शताब्दी कमिटी से १००० रुपये अच्छे खिलाड़ियों को इनाम देने के लिये स्वीकार करवाये। शारीरिक शिक्षण के लिये ख्याति पाये हुए महानुभावों को व्याख्यान देने तथा अपने करतब दिखाने के लिये निमन्त्रण दे कर बुलाया। इन सब प्रयत्नों का फल यह हुआ कि खेलों के प्रोग्राम की शताब्दी महोत्सव के अत्यन्त सफल प्रोग्रामों में गणना हुई और उन में निम्न लिखित संस्थाओंने खूब उत्साहपूर्वक भाग लिया:—

१. डी० ए० वी० कालेज लाहौर
२. गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी
३. गुरुकुल वृन्दावन
४. ए० वी० हाई स्कूल अजमेर
५. हाथरस सरस्वती राष्ट्रीय विद्यालय
६. गुरुदत्त भवन लाहौर
७. अनाथालय अजमेर
८. ए० वी० हाई स्कूल अनूपशहर
९. आर्यसमाज रानीमण्डी क्लब
१०. व्यापारी महाविद्यालय, कचहरी रोड अजमेर।

इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक महाशयों ने व्यक्तिगत रूप से भाग लिया।

सप्ताह भर लगातार इन खेलों के सामुख्य (Match) होते रहे। सातों दिन क्षेत्र चारों ओर हज़ारों की संख्या में नरनारियों से खचाखच भरा रहता था। भिन्न २ दलों के साथी अपने २ खिलाड़ियों को करतल-ध्वनि व शङ्ख-ध्वनियों से उत्साहित करने में कोई कसर न छोड़ते थे। फुटबौल तथ हौकी के मैच बड़े रोचक रहे। जिन संस्था तथा स्थानिक दलों ने शताब्दी अवसर पर सामुख्यों में भाग लिया था उनको हम धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते। उनके हृदय उत्साह पूर्ण थे।

निम्न लिखित संस्थाओं का उत्साह सराहनीय एवं अनुकरणीय था:—

१ डी. ए. वी. कौलिज लाहौर, गुरुकुल महाविद्यालय कांगड़ा ३ गुरुकुल महाविद्यालय वृन्दावन, ४ अजमेर ए. वी. हाई स्कूल, ५ हाथरस सरस्वती राष्ट्रीय विद्यालय।

इनके अतिरिक्त स्थानिक दल जैसे गुरुकुल कांगड़ी का स्नातक मंडल, हरदोई आर्यकुमार दल, गुरुदत्त भवन दल इनका भी उत्साह सराहनीय था। उपर्युक्त दलों ने फुटबौल तथा हौकी के अतिरिक्त पटा, गदका, रस्सा, कबड्डी में भी उत्साह दिखाया। उपर्युक्त दलों में से विजयी दल इस प्रकार थे।

फुटबौल और रस्से में डी. ए. वी. कौलिज लाहौर विजयी रहा। हौकी के अन्तिम सामुख्य के लिए एक २ दिन में तीन २ बार खेल होने पर भी अन्तिम निर्णय नहीं हो सका। हौकी के अन्तिम मैचमें गुरुकुल कांगड़ीका स्नातक मंडल और डी. ए. वी. कौलिज लाहौर खेले थे जो दोनों बराबर रहे।

हमारी इच्छा है उनका अन्तिम मैच किसी अवसरपर यदि प्रबन्ध हो सके तो करा दिया जावे।

गदका फरी और बनैटी के खेल भी अद्भुत व रोचक थे। दो २ बनैटी एक २ अंगुली पर घुमाना, जञ्जीर की बनैटी घुमाना, अग्नि सहित बनैटी घुमाना आदि बड़े उत्तम चित्ताकर्षक हस्तलाघव के खेल थे। कतिपय रोचक खेल जो कि हम भीड़ अधिक होने की वजह से न करा सके अति ही रोचक थे। जैसे कुश्ती, मील भर की दौड़ आदि।

अब ता० २०—२—२६ की रात्रि के खेलों का कुछ हाल देंगे। टिकट का मूल्य पर्याप्त होने पर भी जनता ने इनमें जो उत्साह दिखलाया वह सर्वथा सराहनीय था। लोगों की भीड़ इतनी थी कि बैठने को स्थान भी मुश्किल से मिलता था। सब से प्रथम अजमेर अनाथालय वालों ने वाद्य पर लेजिम का कार्य दिखलाया जो कि जनता को मुग्ध करने वाला था। उसके बाद कुछ व्यायाम रिंग पर दिखलाये गये जिनमें से कि दो डी० ए० वी० कौलिज के विद्यार्थी थे जिन्होंने नाना प्रकार के कौशल रिंग पर दिखलाये।

तदनन्तर पं० कृष्णस्वरूप जी तथा पं० देशबन्धु जी विद्यालङ्कार ने नाना प्रकार के खेलों को दिखाया। पत्थर उठाना जंजीर तोड़ना तथा धनुषबाण के विविध प्रकार के खेल देर तक होते रहे। अन्त में जनता के अधिक तादाद में आगे बढ़ आने तथा इंतिज़ाम के बाहर हो जाने से एक मोटर रोकना, दो मोटर रोकना, कुश्ती आदि कई खेल बन्द करने पड़े।

सहभोज

ता० २० फरवरी को दोपहर को शाहपुराधीश नाहरसिंह जी ने गुरुकुल कांगड़ी के कैम्प में एक अन्तर्जातीय सहभोज दिया था। जिसमें सब जातियों और सब प्रान्तों के ५००-६०० से अधिक प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इनके उक्त अवसर पर मनोरञ्जक भाषण भी हुए थे। इस सहभोजने जात पांत व खान पान की झगड़ों को दूर करने में व्यावहारिक शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया।





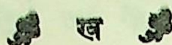
(परिशिष्ट 'अ')

[५६ वें पृष्ठ के दूसरे कालम के अन्त से आगे]

अधिक यह कि वह अपने पढ़े हुए को अच्छी प्रकार से याद कर सकता है। ऐसे ही लौस ऐंजलस हाई स्कूल में मौरेस मर्के नाम का ८ वर्ष का एक लड़का है। परीक्षा करने से पता लगा है कि उसकी मानसिक शक्ति २० वर्ष की आयु के मनुष्यों के बराबर है अर्थात् इस अन्श में यह मस्तिष्क सम्बन्धी अद्भुत योग्यता रखने वालों में से एक है। उसने बहुत समय पूर्व 'कान' द्वारा गायन किया था जो उसे किसी ने सिखाया नहीं था। उसको नक्षत्र विद्या में बड़ा आनन्द आता है और उसका मन उस विषय को पहिले से ही ग्रहण करता है जिन्हें कि कालेज के कई विद्यार्थी समझ भी नहीं सकते। परीक्षक कहता है कि यह बालक एक विषय में ही नहीं किन्तु सभी विषयों में प्रवीण है। वह खेलने में भी वैसी ही चतुरता प्रदर्शित करता है जैसी कि कार्य में। वह अपने आस पास रहने वाले सब लड़कों से दौड़ने, लड़ने, तैरने, डुबकी लगाने में अधिक चतुर है। इन सब बातों के होते हुए भी बालकों की भांति वह चित्ताकर्षक भी है। वह अपने स्कूल में सर्व प्रिय बालक है एवं नैथेली क्रेन नाम का एक बालक है जिसकी आयु अभी ११ वर्ष की भी नहीं किन्तु उसकी कविताओं का प्रथम भाग प्रकाशित हो रहा है। (Wonderchild) नामक साम्मुख्य का विजेता ऐलबर्ट जे हौयत नाम का ७ वर्ष का बालक है। यह बालक अपने ही ढंग का विचित्र बालक है। इसने पक्षियों के विषय में एक पुस्तक लिखी है जिसका चित्रकार भी यह स्वयं ही है। इसने कई अन्य कथाएं और कविताएं भी लिखी हैं। यह बालक इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, नक्षत्र-विद्या, और साहित्य में अति प्रवीण है। यह अपनी स्मृति-शक्ति द्वारा ही सब जातियों के झण्डों का चित्र खींच सकता है। ...... रात्रि के आकाश से वह ऐसा परिचित है जैसे अपने बाग़ से। वह बिना किसी कष्ट के अपने टैलिस्कोप से जहां चाहे वहां नक्षत्रों को देख सकता है। इसके अतिरिक्त वह खेलने, कूदने, दौड़ने में भी बहुत प्रवीण है।

प्रचारक-बालक

परन्तु इन सबसे बढ़कर जो सबको आश्चर्य में डालते हैं वह प्रचारक बालक हैं। न्यूटन हेस्टिंग नामक एक ७ वर्ष का बालक है जो अपने प्रचार द्वारा मनुष्यों को स्तम्भित और चौकन्ना कर देता है। वह अपने निवास-स्थान सलसबरी से सारे राज्य में भ्रमण करता है। और जब भी यह विज्ञापन दे दिया जाता है कि उसका उपदेश होगा तो गिरजा अवश्य भरजाता है। उस से हाथ मिलाने की प्रतीक्षा में लोगों की भीड़ बाहर खड़ी रहती है। वह स्कूल की द्वितीय श्रेणी में है और अभी लिखना पढ़ना सीखने लगा है। इस लिये अपने उपदेशों को वह तैय्यार नहीं कर सकता......उस का बाप उन सुधरे हुए मनुष्यों में से एक है जिन पर उस के उपदेशों का प्रभाव पड़ा है। जब उस ने अपने पुत्र की प्रतिभा शक्ति को देखा तो वह गिर्जे में भरती हो गया और अब श्रद्धा से वहां सेवा करता है।" हमने ऊपर निर्देश किया है कि ऐहिक सुख दुःखवाद में भी दुःख की लाग पाई जाती है। निराशावादी इस सिद्धान्त को अति की सीमा तक लेजाते हैं। कुछ समय से बौद्ध धर्म के विषय में यह कल्पना प्रचलित थी कि यह धम निरपेक्ष दुःखवादी है, इस का ध्येय अभाव की प्राप्ति है। वर्तमान खोज ने इस धारणा को निर्मूल कर दिया है। आत्म-हत्या ऐहिक दुखों का एक मात्र उपाय है— यह प्रस्ताव प्रसिद्ध जर्मन विचारक शोपन हावर का है परन्तु उसने स्वयं आत्म-हत्या नहीं की, किन्तु समय आने पर ही मरा। यह उस के मत का उसके अपने जीवन से प्रत्यक्ष खण्डन है। वेद ने आत्म-हत्यारे को महा पापी कहा है:—



असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ य. ४.३.

घोर अन्धकार से घिरी हुई अदैव अवस्थाएं ऐसी हैं जहां आत्म-हत्यारे मर कर भी जाते हैं।

यदि मर जाना अभाव को प्राप्त हो जाना होता

संयम तो शोपनहावर के कथन में कुछ सत्य की मात्रा होती। अभाव की अवस्था में सुख न सही, दुःख भी न होता, परन्तु यह तो आत्म-सत्ता ही बता रही है कि आत्मा मरने पर मर नहीं जाता। जभी तो उसने आत्म-हत्या नहीं की। आत्म-हत्या भीरुओं का मार्ग है और भीरुता स्वयं दुःख है।

ऐहिक सुख, जिस प्रकार साधारण जनता उसे भोगती है, दुःख से शून्य नहीं। इसकी भंगुरता दुःख है। ऐन्द्रिय सुख को स्थिर रखने का कोई साधन नहीं। खाते जाओ पीते जाओ, कोई भोग निरन्तर भोगते जाओ, वही स्वयं रोग बन जाता है। भोग का आनन्द कभी २ लिया जा सकता है, निरन्तर नहीं। सुख कभी २ में अर्थात् संयम-पूर्वक भोगने में। संयम इन्द्रिय-जन्य नहीं, आत्म-जन्य है। यह तो हुई संसार के भोगों की अवस्था कि वह भी बिना वशीकार के वश में नहीं आते फिर आत्मरति का तो कहना ही क्या है? सुकरात को विष के प्याले से ग्लानि नहीं होती। प्रभु ईसा सूली पर परमात्मा की इच्छा की पूर्त्ति चाहते हैं। दयानन्द फफोलों भरे शरीर में प्रसन्नवदन रहते हैं और जब इस भोग की समाप्ति होती है तो वही महात्मा ईसा के शब्द दोहरा देते हैं। कारण क्या? इन्हें दुःख का होना तो प्रत्यक्ष है, परन्तु उसका भान नहीं। संसारी लोग ग़म दूर करने को मादक द्रव्यों का आश्रय लेते हैं। कुछ समय के लिये इनसे मस्ती आ जाती है परन्तु उस मस्ती का उतार कठोर यातना होता है। आत्म ज्ञानी 'नाम खुमारी' में मस्त रहता है। उसके अन्तर्हृदय में बोध उत्पन्न होजाता है कि मैं शरीर नहीं। सांसारिक द्वन्द्व 'मात्रास्पर्श' देहमात्र को छू जाने वाले हैं।

इन्द्रायेन्दो परिस्रव। ऋ० ९. ११३

इन्द्रियों के अधिपति के लिये आत्म-ज्ञान की गंगा वहती है।

योगी संसार के कार्य से विमुख नहीं होता।

जीवन्मुक्त आपत्तियों में आता है, झंझटों में पड़ता है, क्योंकि यह तो देह-धर्म है शरीर-यात्रा में कर्म करना आवश्यक है। साधारण जनों में और योगी महात्मा में भेद यह होता है कि वह तो केवल इन्द्रियों के ही सुख दुःख का अनुभव करते हैं जो चिरस्थायी नहीं, और इसे एक स्थिर सुख की निरन्तर अनुभूति होती रहती है। उस अनुभूति का प्रभाव इतना होता है कि ऐहिक सुख दुःखों का उस में लोप हो जाता है। ऐहिक सुखों में भी सुख पना उसी योग के साधन 'संयम' से आता है।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा। य० ४०. १.

इस लिये तू त्याग-पूर्वक भोग कर।

यह त्याग अर्थात् आत्म वशीकार का भाव अध्यात्म जगत् की उपज है, अनात्मा की नहीं।

वेद ने आत्म-हत्या को पाप और उसका परिणाम राक्षसी भाव ठहरा कर दुःख से बचने का उपाय बताया है:—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत। अ०

ब्रह्म चर्य के तप से देव-स्वभाव मनुष्यों ने मृत्यु का हनन कर दिया है।

यही सुख दुःख की समस्या का समाधान है। जब जीते २ मनुष्य इस प्रकार मृत्यु को मार लेता है तो मरने पर उसका अमृत होना स्वाभाविक हो जाता है।

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत्।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥
ऋ० ९. ११४. १

जिसने पवित्र करने वाले आत्म-ज्ञान के साधनों का अनुष्ठान किया, हे आत्मरति! जिसने

मन को तेरे अर्पण किया, उसका जन्म सफल हुआ ! हे आत्म सुख की गंगा ! उस आत्मवशीकर्त्ता के चारों ओर वह ।

सार ।

मानसिक चिकित्सा वाद वालों का मत है कि दुःख की कोई सत्ता नहीं। केवल अपने भ्रम से मनुष्य दुःख की सृष्टि करते हैं। निराशावादी संसार को दुःख ही दुःख का हेतु मानते हैं। यह दोनों की भूल है। तर्क भ्रम-मात्र सत्ता को भी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकता। दुःख वादी शोपनहावर को आत्म-हत्या का साहस नहीं हुआ। उस का जीवन उस के मत का खण्डन था।

वास्तविक सत्ता

लोगों की आयु समान नहीं, सन्तति समान नहीं, सम्पत्ति समान नहीं, स्वास्थ्य में भेद है, मानसिक योग्यताओं का भेद है। यह भी नहीं कि एक अङ्ग की कमी दूसरे अङ्ग की अधिकता से पूरी हो जाए। व्यक्तियों के भोग में वस्तुतः तारतम्य है, यही तारतम्य सुख दुःख की पहेली है।

तारतम्य

यह तारतम्य कहां से आता है ? प्रकृति वादी कह सक्ता है, परिस्थिति-भेद से, परन्तु परिस्थिति-भेद क्यों होता है ? आत्मवादी आत्मा को प्रकृति का खिलोना नहीं बना सक्ता। परमात्मा की इच्छा मात्र को इस तार तम्य का कारण मानना परमात्मा को या पक्षपाती मानना है या केवल तरंगी और यह किसी धर्मवादी को अभीष्ट नहीं। धीर पुरुष अपने सुख दुःख का उत्तरदायित्व अपने ही ऊपर डालेंगे अर्थात् इसे जीव के कर्मों का फल ही ठहराएंगे। वेद आत्मा को स्वधया गृभीतः (ऋ० १. १६४. ३८) कहता है अर्थात् जीव स्वतन्त्रता से ही बन्धन में पड़ता है।

कर्म का फल

कुछ भोग ऐसे हैं जो जन्म के साथ आते हैं जैसे वंशज स्वभाव, वंशज स्वास्थ्य, वंशज संपत्ति आदि। यह इस जीवन के कर्मों के फल नहीं नांही इस जीवन के सभी कर्म इसी जीवन में फलित हो जाते हैं। यदि ऐसे भोगों और कर्मों को आकस्मिक मान लिया जाए तो पुरुषार्थ-वाद के लिये कोई यौक्तिक आधार नहीं रहता। जीवनों की एक शृंखला प्रतीत होती है जो अनादि काल से चली आती है और अनन्तकाल तक चली जायगी।

पुनर्जन्म

स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहु प्रजा निर्ऋतिमाविवेश।

ऋ० १. १६४. ३२

वह माता के गर्भ में लिपटा हुआ बहुत जन्म धारण करता और भोग को प्राप्त होता है।

पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष प्रमाण वह चमत्कारी बालक हैं जो छोटी आयु में गान, कविता, तथा उपदेश आदि का कार्य निपुणता से कर सके हैं। इन से भी स्पष्ट और अकाट्य साक्षि उन बालकों की है जो अपने पूर्व-जन्म का वृत्तान्त सुनाते हैं और जब उन के निर्देशानुसार उन्हें अपने पूर्व जीवन के निवास-स्थान में लेजा कर पूछ ताछ की जाती है तो उन का वृत्तान्त प्रायः सत्य सिद्ध होता है। ऐसे उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं।

इन सुख दुःखों के सत्य होते हुए भी आध्यात्मिक आनन्द का रस इतना प्रबल है कि यदि वह प्राप्त हो जाए तो भौतिक सुख दुःख का उस आनन्द में लोप हो जाता है। भौतिक आनन्द भी संयम पूर्वक ही भोगे जा सक्ते हैं, अन्यथा वह स्वयं रोग बनजाते हैं और यह संयम अध्यात्म पक्ष की चीज़ है।

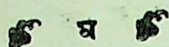
जीवन्मुक्ति

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। यजु० ४० १.

इस लिये त्याग पूर्वक भोगकर।

यही संयम आत्मवशीकार है। इसी के अभ्यास से मनुष्य आत्मरति को प्राप्त करता है जिस से मुक्ति होती है।

इन्द्रायेन्द्रो परिस्रव



है अमर सुख की गंगा ! संयमी के चारों ओर वह।

यही जीवन की सफलता है। वेद की आज्ञा स्पष्ट है:—

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत्।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

ऋ० ९. ११४. १.

जिसने पवित्र करने वाली आत्मरति के साधनों का अनुष्ठान किया, जिसने अपना मन इस आत्मरति के अर्पण किया, उसे सफल-जन्म कहते हैं। उस आत्मवशीकारी के चारों ओर अक्षय आनन्द की गंगा बहती है।

लेखक श्री० पं० चमूपति एम.ए.

(परिशिष्ट 'आ')

[पृष्ठ ५६ के पहिले कालम स्मृतियां लाता है का नोट]

* राय बहादुर सुन्दरलाल ने लीडर (अगस्त १९२३) में लेख छपवाया था जिसका भाषानुवाद नीचे दिया जाता है:—

मुझे कई वर्षों से पूर्वजन्मके सम्बन्ध में ऐसे प्रमाणों को ढूंढने का अवसर मिला है जिनसे कि कई स्त्रियों व पुरुषों के अपनी पिछले जन्म की घटनाओं का स्मरण रखने की साक्षि मिली है। उनमें से कई यथावसर पत्रोंमें प्रकाशित भी होते रहे हैं। अभी हालमें ही भरतपुर रियासतमें एक ऐसी घटना हुई है जिसकी ओर महाराजा भरतपुर ने मेरा ध्यान आकर्षित किया। इस विषय की खोज भी महाराज के आधीन ही हुई है। अतः मैं उसका संक्षिप्त वृत्तान्त (जैसा कि महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी से प्राप्त हुआ) नीचे लिखता हूं:—

प्रभुनाम का एक ब्राह्मण लड़का खैराती ब्राह्मण सलीमपुर (भरतपुर रियासत) का रहने वाला था। इसकी आयु ४ वर्ष की थी और वह अपने पूर्व जन्म की हालत को याद करता था। महाराज भरतपुर की कृपा से मेरा ध्यान अगस्त १९२२ को इसकी ओर आकर्षित किया गया। नायब तहसीलदार द्वारा मार्च १९२३ के दिन बच्चे के ही घरपर जाकर उसके हालात का पता लगाया गया। उसका विवरण नीचे दिया जाता है:—

(१) मैं अपने पूर्वजन्ममें भरतपुरके गांव हत्योरी का रहनेवाला हरबक्ष ब्राह्मण था।

(२) घुरी और शामलाल नाम के मेरे दो लड़के और कोकिल और भोली नामकी मेरी २ लड़कियां थीं, जिनका विवाह क्रमशः खेरली निवासी रहमत और बावर निवासी गोकुल के साथ हुआ था। मैंने पहिली लड़की के विवाहके लिये कुछ धन लिया था परन्तु दूसरी का विवाह बिना कुछ ले के किया।

(३) मेरे अपने रहने के लिये हत्योरीमें एक पक्की हवेली थी।

(४) मेरे घरसे मिलता हुआ स्वरूपा जाट का घर था।

(५) स्वरूपा जाटके १ लड़का और १ लड़की थी

(६) वहां एक पत्थरोंसे चिनी हुई एक उठी हुई सड़क (Pathway) थी।

(७) वहां एक पक्का तालाव था जिसमें एक मकान खड़ा था और तालाव के ऊपर छत्री लगी हुई थी।

(८) तालाव में एक ओर छतपर २ मकान थे

(९) हत्योरीमें पानी पीने के निम्न कूंए थे।

(क) पनहरी वाला—इसके पास २ पिप्पल के वृक्ष थे।

(ख) कंकरवाला—इसके पास बेरके वृक्ष थे

(ग) मूलियांवाला—इसके पास आम के वृक्ष थे।

(१०) भोरे गांवका एक गुज्जर मेरा यजमान था।

(११) वहां किले के एक गुप्त स्थान पर एक सांप रहता है।

(१२) सम्वत् १९३४ के अकाल के साल में मैं अपने गांव हत्योरी में था। मेरे पास एक बैलों का



जोड़ा था जिससे मैं खेती किया करता था।

(१३) मैं अपने पिताके जीवन-कालमें ही अपने गांव के बाहर के १ बंगलेमें मर गया था।

(१४) अपनी मृत्यु के बाद में आध्यात्मिक (परमात्माके) संसार में रहा।

(१५) परमात्माके मूछें और दाढ़ी थी।

(१६) परमेश्वर ने मुझे मेरी उत्पत्तिके वर्त्तमान स्थान सलीमपुर में जाने को कहा।

(१७) मेरी स्त्री का नाम गञ्जो था जिस का अर्थ गञ्जे सिर वाली है।

(१८) मेरे पिता का नाम मुंडे था।

(१९) मेरा मामा वर्गमान में था।

(२०) मेरा श्वसुर बुटवारी में था।

(२१) एक बार मूला जाट मेरे कूंए में गिरपड़ा जहां कि मैंने उसे सुरक्षित निकाल लिया और उसका जीवन बच गया।

नोट—तहसीलदार लिखता है कि जब बच्चे की परीक्षा की जारही थी तो बीच २ में वह हंसता था और बच्चे की भांति बातचीत करता था।

घटना का पुनर्निरीक्षण

महाराज भरतपुरके प्राइवेट सेक्रेटरी से उपर्युक्त वृत्तान्त की प्राप्ति पर मैंने उनसे प्रार्थना की कि बालक को उन २ स्थानोंपर लेजाकर घटनाओं के सत्यासत्यका निर्णय करना चाहिये। मेरी प्रार्थना पर वीयरके नायब तहसीलदार द्वारा २३ अप्रैल १९२३ को बालक को हत्योरी गांवमें लेजाया गया। नायब तहसीलदारकी रिपोर्ट निम्न है।

प्राइवेट सेक्रेटरी और Palace Member के आदेशानुसार मैं बालक प्रभुको बैलगाड़ी द्वारा हत्योरी गांव में ले गया। मैं वहां दिन छिपे पहुंचा और गाँव से बाहर कुछ दूरी पर ठहरा। बालकसे मैंने पूछा कि वह पक्का तालाब कहाँ है। उसने उत्तर दिया कि ठीक गांव के नीचे था किन्तु मैं उसकी ठीक स्थिति नहीं बता सकता। और नांही वह उसकी तरफ़ चलने को उद्यत हुआ। अंधेरा था, हम गांव की ओर चले और रात्रि वहीं बिताई।

अगले दिन मैंने प्रातः ही गांवके निम्न मुखियों को इकट्ठा किया—

(१) धर्मसिंह फ़ौजदार; आयु ६० वर्ष।

(२) फ़ौज़दार अज़मतसिंह (गांवका नम्बरदार) आयु ५० वर्ष।

(३) फ़ौज़दार रामसिंह; आयु ७२ वर्ष।

(४) हरकण्ठ ब्राह्मण आयु ४० वर्ष।

इनकी उपस्थिति में बालक की परीक्षा लीगई—

1. उसने अपना नाम हरबक्ष और पिता का नाम मुंडे बताया। यह सत्य प्रमाणित हुआ।

2. तब उसने कहा कि उसके ३ भाई थे—

(१) गिल्ला। यह जीता था जब हरबक्ष की मृत्यु हुई।

(२) चुन्नी उससे पूर्व ही मर चुका था।

(३) नाम याद नहीं।

ग्रामवालोंसे खोज करने पर पता लगा कि हरबक्ष का केवल एक भाई शिवबक्ष था। चुन्नी और गिल्ला उसके चाचा भोलाके पुत्र थे जिनमेंसे कि चुन्नी हरबक्षसे पूर्व ही मर चुका था जैसा कि ऊपर कहा गया।

3. उसने अपने दो पुत्र श्यामलाल (जो उससे पूर्व ही मर चुका था) और घुरे तथा भोली और कोकिला नाम की २ लड़कियां बताई थीं जोकि सत्य प्रमाणित हुईं इनके विवाह के विषय में उसने जो बात कही थी वह भी सर्वांशमें सत्य सिद्ध हुई।

4. संख्या (२) (४) (५) (६) में कही हुई बातें भी ठीक २ प्रमाणित हुईं। किन्तु हवेली खण्डहर (उजाड़) अवस्था में है और पहाड़ की ओर से आने वाला रास्ता भी वैसा ही है।

5 कंकरवाला कूंआ अब सूखा पड़ा है और बहुत समय से काम में नहीं आ रहा। हरबक्ष के जीवन-कालमें भी यह इसी प्रकार था। खोज करने

से पता लगा कि पहले इसपर बेरी के वृक्ष थे जो अब नहीं हैं किन्तु वहां एक पीपल का वृक्ष है।

झसरोय वाले कूए पर एक आम और एक पीपल का वृक्ष है। पनिहार वाले कूए पर पीपल का वृक्ष है जैसा कि उसने बताया था। खेड़ा कूआ पर कोई वृक्ष नहीं है। ये सब कथन सत्य प्रमाणित हुए।

6. संख्या (१३) में कही बात सत्य सिद्ध नहीं हुई। नायब तहसीलदार की स्थानीय खोज बताती है कि हरबक्ष अपने पिताकी मृत्यु के बाद गांवके अपने घरमें ही मरा था।

7. हरबक्षकी पूर्वजन्मकी उत्पत्ति का ठीक वर्ष नहीं बताया जा सकता। यह कहाजाता है कि वह ५५ वर्ष का होकर सम्वत् १९६२ में मरा जिससे १९०७ व १९०८ में उसके जन्म होने का पता लगता है।

8. सं० (१२) में वर्णित घटना बिलकुल सत्य सिद्ध हुई।

9. संख्या (१९) में वर्णित घटना भी ग्राम निवासियों की साक्षि द्वारा सत्य प्रमाणित हुई।

10. सं० (२०) में कथित बात भी सत्य सिद्ध हुई किन्तु वह उन परिवारों के सदस्योंके नाम नहीं बता सका।

11. सं० (१७) में कही बात भी सत्य सिद्ध हुई। उसने अपनी स्त्री का छोटा हास्य का नाम 'गाँजो' रक्खा था। खोज से पता लगा कि उसका वास्तविक नाम 'गौरा' था किन्तु गंजे सिर वाली होने के कारण उसने उसका नाम 'गंजो' रक्खा था।

12. सं० (२१) में वर्णित के विषय में कुछ निश्चय नहीं किया जा सका। इस विषय में किसी को कुछ स्मरण नहीं रहा था।

13. सं० (८) में कही हुई बात भी सत्य है। वहां एक बड़ा तालाब है और ३ छतों वाला घर भी है, जिसमें से २ छतें पानी के नीचे है। उसे वह तालाब दिखाया गया तो उसने पहिचान लिया कि यह तालाब वही है।

14. उसका यह कहना कि वह गोंद गांव का पुरोहित था, यह भी सत्य सिद्ध हुआ। उसका पुत्र घूरे अब भी उसी स्थान के १ मन्दिर का पुजारी है।

15. सं० (११) में कही हुई बात भी हर प्रकार से सत्य सिद्ध हुई। वहां के लोगों का अब तक यह विश्वास चला आता है कि वहां साँप रहता है। हरबक्ष ने इसी विश्वास को सत्य समझ कर अपने हृदय में स्थान दे दिया होगा।

16. सं० (१५) में कही हुई बात को उसने फिर नहीं दुहराया। उसने कहा कि उसकी अपनी लम्बी दाढ़ी थी और खोज करने पर यह बात सत्य सिद्ध हुई।

17. सांप की कहानी के विषय में उसने कहा कि एक बड़ा सांप उसे जंगल में मिला था जिसे उस ने मुग्ध कर दिया था और उसे गूलर के वृक्ष के पास फेंक दिया था किन्तु इस कथा के विषय में कुछ सिद्ध नहीं हुआ।

18. तब उसे अपने पुराने घर का रास्ता बताने को कहा गया। वह ४, ५ क़दम आगे बढ़ा और फिर हिचक कर वहीं ठहर गया। मैंने उसका हाथ पकड़ा और हम चलने लगे। वह एक दूसरी गली की ओर मुड़ा और थोड़ी हिचकिचाहट के बाद सीधा अपने घर की ओर मुड़ा और अपने पुत्र घूरे को अपनी उंगली से पकड़ लिया। रास्ता लम्बा और चक्कर दार था किन्तु बालक ने उस घर का पता लगा लिया। वहाँ बहुत से घर उजाड़ अवस्था में थे। अपने घर की अवस्था को देख कर आश्चर्य में पड़ गया और उजड़े घरों में से अपने घर को न पहिचान सका तहसीलदार कहता है कि यदि वह अकेला होता तो अपने घर को न पहिचान सकता। उसे अपने घर की एक फीकी सी स्मृति थी।



19. बालक ने 'हत्यारी' गांव के पुरुषों में से जिसे उसने अपने से पूर्व जन्म में देखा था किसी को नहीं पहिंचाना और नांही वह दूसरों के नाम ही याद कर सका सिवाय उन के जिनके नाम वह पहिले कह चुका था।

अन्त में तहसीलदार कहता है कि मेरी सम्मति में बच्चे को किसी ने सिखाया नहीं था। यह पूर्व जन्म की स्मृति की एक अद्भुत आश्चर्य-जनक वास्तविक घटना है।



परिशिष्ट [क]

आर्य्य समाजों के मन्दिरों

का

नक़्शा

(जिस की घोषणा पृष्ठ ५ में दी गई है वह अब तय्यार है)

शताब्दी सभा ने सुप्रसिद्ध इंजिनीयरों से भिन्न २ नक़शे बनवा कर इस नक़्शे को तय्यार करवाया है। आर्य्य समाजों के मान्दिर भविष्य में इसी रीति से निर्माण करवाये जावें।

मिलने का पताः—

मन्त्री सार्व देशिक सभा
सार्व देशिक भवन
देहली

॥ ओ३म् ॥

आर्य सार्वदेशिक साहित्य पुस्तकालय की नींव रूप शताब्दी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की

विस्तृत तालिका

(≡३२२२२

ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थ कर्ता	किस प्रेस में छपी	संख्या	मूल्य प्रति पुस्तक	योग	प्रेसों
सं० सत्यार्थ प्रकाश	अनुवादक पं० शङ्कर देव पाठक सिवहारा (बिजनार)	किशोर प्रेस बरेली	२०००	२।) अ० २॥) स०	४५४२)	४॥)
आर्य पर्व पद्धति	श्री पं० भवानीप्रसाद जी हल्दौर (बिजनौर)	,,	३०००	।॥)	२२५०)	१॥)
प्राणायाम विधि	,, पूज्य नारायण स्वामी	,,	५०००	-)	३१२॥)	=)
दयानन्द लहरी	,, पं० मेधाव्रत जी कविरत्न येवला (नासिक)	सरस्वती प्रेस मुरादाबाद	२०००	-)॥	१८७॥)	≡)
दश नियम व्याख्या	,, स्वा० सत्यप्रकाश जी	,,	२०००	।)	५००)	॥)
भजन.भास्कर	,, पं० हरिशङ्कर जी सम्पादक आर्यमित्र (आगरा)	,,	३०००	॥)	१५००)	१)
आर्यसमाज क्या है ?	,, पं० गंगाप्रसाद जी एम. ए. (प्रयाग)	लीडर प्रेस (प्रयाग)	२०००	।॥)	१५००)	१॥)
ओ३म् प्रत्यक्ष	,, स्वा० सत्यप्रकाश जी	ओङ्कार प्रेस (प्रयाग)	१०००	।॥)	७५०)	१॥)
वैदिक सिद्धान्त	,, नारायण स्वामी	विद्या प्रेस ,,	२०००	१।) अ० १॥) स०	२७६९॥)	२॥)
विरजानन्द विजय	,, विद्याभूषण विभु (प्रयाग)	लीडर प्रेस (प्रयाग)	१०००	।)	२५०)	॥)
Crucifixion.	,, नारायण स्वामी	,,	२०००	।=)	७५०)	।॥)
Truth & Vedas.	,, राय ठाकुरदत्त धवन	,,	२०००	॥)	१०००)	१
Truth Bedrocks of aryan culture.	,, ,, ,, ,,	,,	२०००	॥=)	१२५०)	१।)
Vedic teachings.	,, आत्मा	,,	१०००	१।॥)	१७५०)	३॥)
Voice of Arya-Varta.	,, टी० एल० वास्वानी (कराची)	,,	६५३०	॥)	३२६५)	
					२२५७६॥)	२०१-)

* आ३म् *

आर्य सार्वदेशिक साहित्य-पुस्तकालय

की

उत्तमोत्तम पुस्तकें ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत पुस्तकें

१. आर्याभिविनय
२. सत्यार्थ प्रकाश
३. काशी शास्त्रार्थ
४. सत्य धर्म विचार
५. पञ्च महायज्ञ विधि
६. आर्योद्देश्यरत्न माला
७. संस्कार विधि
८. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका
९. व्यवहार भानु
१०. वेदविरुद्ध मत खंडन
११. शिक्षा पत्री ध्वान्तनिवारण
१२. भ्रमोच्छेदन
१३. भ्रान्ति निवारण
१४. गोकरुणा निधि
१५. स्वीकार पत्र

(१ सेट २ भाग मूल्य ५)

स्वामी दर्शनानन्द जी कृत पुस्तकें

१. आनन्द संग्रह मूल्य १)
२. वैशेषिक दर्शन का भाषानुवाद ,, १॥)
३. सांख्य दर्शन ,, ,, १)

श्री नारायणस्वामी कृत पुस्तकें

१. प्राणायाम विधि मूल्य ~)
२. वर्ण व्यवस्था ,, ~)
३. आत्मदर्शन

श्री स्वामी श्रद्धानन्द कृत पुस्तकें ।

१. मुक्तिसोपान मूल्य ॥=)
२. कल्याण मार्ग का पथिक १॥)

श्री स्वामी सत्यप्रकाश कृत पुस्तकें

१. आर्य समाज के दश नियमों की व्याख्या ।)
२. ओ३म् प्रत्यक्ष ॥)

श्री स्वा० सत्यानन्द जी कृत पुस्तकें

१. सत्योपदेश माला १)
२. भक्ति दर्पण ॥)
३. सन्ध्या योग ।~)

श्री पं० लेखराम कृत पुस्तकें

१. आर्य हिंदू और नमस्ते का अनुसन्धान =)

श्री राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी कृत पु०

१. संस्कार चन्द्रिका ३) सजिल्द ४)
२. सृष्टि विज्ञान ~)
३. दिग् विज्ञान १॥)
४. वैदिक विवाहादर्श १)

भाई परमानन्द एम० ए० कृत पुस्तकें

१. भारत माता का सन्देश ॥)

श्री लाला लाजपतराय कृत

१. कृष्ण का जीवन चरित्र १)

शताब्दी संस्करण की अन्य पुस्तकें

१. संस्कृत सत्यार्थ प्र० (अनुवा० पं० शङ्करदेव पाठक काव्यतीर्थ) २।) सजिल्द २॥)
२. आर्य पर्वपद्धति (श्री पं० भवानीप्रसाद जी) ॥।)
३. आर्य समाज क्या है (श्री पं० गङ्गाप्रसाद एम० ए० उपाध्याय प्रयाग) ॥।)
४. वैदिक सिद्धान्त १।) सजिल्द १॥)
५. भजन भास्कर (श्री पं० हरिशङ्कर जी द्वारा संगृहीत) ॥)
६. विरजानन्द विजय (श्री विद्याभूषण विभु) ।)

श्री पं० घासीराम एम० ए० मेरठ कृत पुस्तकें

१. महर्षि जीवन कथा ~)
२. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का इंगलिश अनुवाद, २) सजिल्द २॥)

मुद्रक ... के द्वारा अर्जुन प्रेस नया बाजार देहली में मुद्रित।



